पंजाब का इतिहास

[1469–1857]

विद्यासागर सूरी
भूतपूर्व निदेशक,
पुरालेख एवं पुरातत्त्व विभाग
तथा राज्य सम्पादक गजेटियर्स, पंजाब

हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
चण्डीगढ़

भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज-कल्याण-मंत्रालय की प्रादेशिक भाषाओ मे विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ के तत्त्वावधान में रचित एव प्रकाशित।

History of Panjab by Shri V S Suri has been brought out by Haryana Hindi Granth Akademi under a scheme sponsored by Ministry of Education and Social Welfare (Department of Culture) Government of India for the production of University-level Books and Literature in regional languages

प्रथम सस्करण : 1976

मुद्रित प्रतियाँ : 2000

मूल्य : बारह रुपये पचास पैसे (Rs. 12.50)

बैस्ट प्रिंटिंग प्रैस, बाज़ार चढ़त सिंह, जालन्धर शहर

प्रस्तावना

कोई 60 वर्ष पूर्व सुप्रसिद्ध अग्रेज इतिहासकार रैमज़े म्यूर ने अपनी पंजाब यात्रा के समय 31 जनवरी, 1914 को लाहौर मे पजाब हिस्टॉरिकल सोसायटी के सदस्यो को सम्बोधित करते हुए ठीक ही कहा था कि इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से पजाब एक अत्यधिक रुचिकर एव आकर्षक क्षेत्र है। उसके कथनानुसार सभी जातीय एवं धार्मिक तत्त्व, जिन से कि भारतवर्ष के इतिहास का निर्माण हुआ है, पंजाब से होकर गुज़रे है। इस क्षेत्र का इतिहास इन्ही तत्त्वों के पारस्परिक सघर्ष एव सम्मिश्रण की कहानी है। तभी तो पजाब को "भारतीय लोगों तथा मध्य एशिया की यायावर एव निरतर परिवर्तनशील जनजातियो का टकराव-बिंदु कहा गया है।"

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री विद्यासागर सूरी स्वय एक ख्याति-प्राप्त इतिहास-अनुसधाता है। वह सयुक्त पजाब मे निदेशक, पुरालेख एव पुरातत्त्व विभाग तथा राज्य सम्पादक, गजेटियर्स के उच्च पद पर भी रह चुके है। इस के अतिरिक्त उन्होंने दयाल सिंह कॉलेज लाहौर और इवनिंग कॉलेज पजाब युनिवर्सिटी, चण्डीगढ मे कई वर्षों तक अध्यापन कार्य भी किया है। अपने अध्यापन-अनुभव और अपनी पंजाब के इतिहास से सम्बन्धित खोजों का पूर्ण लाभ उठाते हुए लेखक ने विश्वविद्यालयो के छात्रो के लिए इस पुस्तक को अधिकाधिक उपयोगी बनाने का भरसक प्रयास किया है। पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रमों को ध्यान मे रखकर लिखी गई है। इस का पुनरीक्षण श्री पुरुषोत्तम निझावन ने किया है। पुस्तक का सम्पादन एवं सज्जा-सयोजन अकादमी के प्रकाशन अनुभाग द्वारा सम्पन्न किया गया है। इसके प्रकाशन की सिफारिश अकादमी की विषय-नामिका ने की थी।

पुस्तक को अधिक छात्रोपयोगी बनाने के लिये प्रत्येक अध्याय के अन्त में अभ्यास के लिए परीक्षोपयोगी प्रश्न भी दिए गए हैं। पुस्तक मे पंजाब के इतिहास से सम्बन्धित

अनेक मानचित्र/रेखाचित्र भी सम्मिलित किये गये हैं ताकि विद्यार्थियो को विभिन्न स्थानो, नदियों व पर्वतो की भौगोलिक स्थिति की समुचित जानकारी हो सके ।

आशा है पंजाब के इतिहास का अध्ययन तथा अध्यापन करने वालो के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी ।

शिक्षा मत्री, हरियाणा,
एव अध्यक्ष,
हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

निदेशक,
हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्राक्कथन

सन् 1973 के मध्य मे मुझे जब स्नातक स्तर के विद्यार्थियो के लिए "पंजाब का इतिहास" लिखने के लिए हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की ओर से निमत्रण प्राप्त हुआ तो बडी प्रसन्नता हुई । इस प्रसन्नता का विशेष कारण यह था कि अपने पिछले लगभग 40 साल के भारतीय इतिहास के अध्ययन से मै ने यह महसूस किया था कि अभी तक पजाब के इतिहास पर कोई सतोषजनक पुस्तक नही लिखी गई है। मुझे यह अच्छी तरह से याद है कि पजाब विश्वविद्यालय लाहौर मे सन् 1935 मे एम० ए० की परीक्षा मे भारतीय इतिहास के पेपर मे केवल एक प्रश्न ही पजाब के इतिहास पर पूछा जाता था । इससे स्पष्ट है कि उस समय पजाब के इतिहास को केवल 15-20 अक का ही महत्त्व प्राप्त था । उससे छोटी कक्षाओ मे पजाब के इतिहास को इतना भी महत्त्व प्राप्त नही था । ऐसी स्थिति मे पजाब के इतिहास पर किसी अच्छी पुस्तक के लिखने का कोई प्रयास क्योकर किया जा सकता था ?

यह सत्य है कि पजाब सरकार के कुछ अग्रेज अफसरो ने अपने सेवाकाल मे पजाब के सिक्ख काल के इतिहास पर कुछ पुस्तके लिखी थी । परन्तु खेद इस बात का है कि उन्होने अपने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से घटनाओ को मोड देकर पजाब के इतिहास से बहुत अन्याय किया था । एक-दो पुस्तक जो हिन्दुस्तानियो ने लिखी थी, उनमे भी अग्रेजो की स्तुति ही की गई थी और ऐसा जताने की भी कोशिश की गई थी कि अग्रेजो की हर एक बात सत्य है और उनके विरोधियो की हर एक बात गलत । इस प्रकार की पुस्तको मे घटनाओ के सही-सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की बहुत कम झलक नजर आती थी । अग्रेजो या उनके समर्थक हिन्दुस्तानियो का पक्षपात क्रूरता और नग्नता की हद तक स्पष्ट था । इसमे सर्वाधिक अखरने वाली बात यह थी और शायद यह अग्रेज शासको की नीति के अनुरूप ही थी कि हर हिन्दुस्तानी नेता के चरित्र को कुछ इस प्रकार पेश किया जाए कि वह देशवासियो का सर्वप्रिय नेता न समझा जाए । इन पुस्तकों को लिखने का मूल उद्देश्य यह था कि जनसाधारण अंग्रेजो के सब कामों की प्रशंसा और गुणमान करे ।

और भी दुर्भाग्य की बात यह है कि इस किस्म की पुस्तकें जो कि आज से 70-80 साल से भी अधिक पहले अग्रेजो ने या उनके समर्थक हिन्दुस्तानियों ने लिखी थी आज भी उसी रूप मे पढ़ी और पढ़ाई जा रही है । उनमे नई खोज या नये चिन्तन द्वारा किसी किस्म का सशोधन अभी तक नही किया गया मानो कि ये एक तरह से देववाणी की तरह स्थिर है ।

इन सब बातो को ध्यान मे रखते हुए यह मेरी प्रबल इच्छा थी कि पंजाब का इतिहास पक्षपातरहित और सच्चे ऐतिहासिक रूप मे, जोकि जातिभेद को महत्त्व न देकर वास्तविक घटनाओं पर आधारित हो, लिखा जाये ताकि इससे देशवासियों के मन मे अपने पूर्वजो के गौरव के प्रति सम्मान पैदा हो और राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहन मिल सके, अर्थात् अपने नये रूप मे यह इतिहास लोगो में राष्ट्र प्रेम बढाने वाला हो और इसमे हर प्रकार की उस ऐतिहासिक एव पुरातत्त्वीय सामग्री, जो अब तक प्राप्त हो चुकी है, का समावेश हो और जो हर प्रकार से सम्पन्न भी हो।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ साधन मुझे पिछले 25 वर्षों मे सयुक्त पजाब राज्य के पुरालेख और पुरातत्त्व विभाग के निदेशक के तौर पर काम करते समय प्राप्त हुए। यह काम करते हुए, भारत की स्वतत्रता के उपरान्त यह विशेष प्रबन्ध किया गया था कि ऐतिहासिक और पुरातत्त्वीय सामग्री को एक केन्द्रीय स्थान पर इकट्ठा करके उसके आधार पर नये पजाब का इतिहास लिखने का प्रबन्ध किया जाये। परन्तु यह कार्य सरकारी तौर पर करने का प्रबन्ध न हो सका और न ही इस प्रकार की पुस्तक लिखने के लिए विश्वविद्यालयो ने कोई उत्साह ही दिखाया। जो पुस्तकें लिखी भी गई वे अधिकतर पुरानी प्रचलित पुस्तको के अनुवाद थी या फिर विद्यार्थियो को अधिक परिश्रम किये बिना सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखी गई थी। इन्हे लिखते समय खोज करने का जोखम बहुत कम उठाया गया और न ही उस सामग्री का, जो कि उपलब्ध हो चुकी थी, अच्छी तरह उपयोग ही किया गया। बात यह बनी कि या तो तोते की तरह पुरानी बातों को दोहरा दिया गया या उनका स्वरूप ही बिगाड दिया गया।

इस कमी को पूरा करने का यह पुस्तक एक छोटा-सा प्रयास है। इसमे मैं ने अपने पिछले 40 वर्षों के पजाब के इतिहास के अध्ययन का निचोड प्रस्तुत किया है। पुरालेख और पुरातत्त्व विभाग के निदेशक के तौर पर पजाब के इतिहास के संदर्भ मे मुझे जो भी सामग्री मिली इस पुस्तक मे उस सब का प्रयोग किया गया है।

आशा है कि विद्यार्थी इस पुस्तक को पढकर लाभ उठा सकेंगे और पंजाब के इतिहास का महत्त्व वे न केवल परीक्षा में सफलता के रूप मे ही ग्रहण करेंगे बल्कि अपनी मातृभूमि के इतिहास के रूप में भी इसका गौरव समझेंगे। यदि नई पीढ़ी को इस पुस्तक से पंजाब के इतिहास को पढने और समझने की प्रेरणा मिल सके तो इसको मैं अपना सौभाग्य और सफलता समझूँगा। इसी उद्देश्य से लिखी गई यह पुस्तक मै उन्ही भावी स्नातको को समर्पित करता हूँ।

विद्यासागर सूरी

विषय-सूची

मान चित्रो/रेखाचित्रो की सूची

1

पंजाब की भौगोलिक स्थिति और इतिहास पर उसका प्रभाव

प्राचीन पंजाब के कुछेक महत्त्वपूर्ण नाम

पजाब का अर्थ है वह भूखंड अथवा प्रदेश जिसमे पाँच नदियाँ बहती हो। यह दो शब्दो—पज (पाँच) और आब (नदी)—के मेल से मुस्लिम काल मे फारसी भाषा के प्रभाव से बना। जिन पाँच नदियो की ओर इसमे सकेत है वे है जेहलम, चिनाब, रावी, ब्यास और सतलुज।

वैसे ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस प्रदेश की पश्चिमी सीमा सिन्धु नदी तक रही है। तभी शायद वैदिक काल मे सिन्धु शब्द को नदी की धारा के अर्थ मे लेकर इसे सप्त-सिन्धु के नाम से भी पुकारा जाता था। तब इसकी पूर्वी सीमा सरस्वती तक थी। कालातर मे यह नदी राजस्थान के बढते हुए मरुस्थल मे खो गई। परम्परा के अनुसार तब यह पृथ्वी के अन्दर बहने लगी। कुछ विद्वान् इसे आज भी घग्गर नदी मानते है जो शिवालिक पर्वत से निकल कर राजस्थान की रेतियो अर्थात् रेतीले क्षेत्र मे विलीन हो जाती है। वैदिक साहित्य मे इस भूभाग को ब्रह्मवर्त्त भी कहते थे—यह शब्द मुख्यत: सम्मानसूचक ही था। पाँच जनपदो का प्रदेश होने के कारण कही-कही इसे "पंचजना" भी कहा गया है। तथापि जहाँ सप्त-सिन्धु एक निश्चित भौगोलिक सज्ञा है, ब्रह्मवर्त्त या पचजना. की भौगोलिक सीमाओं के बारे मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता।

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में सिकदर महान् के आक्रमण के कारण जो यूनानी यहाँ आकर बसे वे इसे "पान्तपुतेमिया" के नाम से पुकारने लगे। यूनानी इतिहासकारो के अनुसार इस प्रदेश मे तब 37 नगर और उपनगर थे। विख्यात पुरा-तत्त्व-वेत्ता सर एलैग्जैंडर कनिंघम ने पजाब का एक प्राचीन नाम "टाकी" भी बताया है क्योकि इस नाम का एक शक्तिशाली कबीला काफी समय तक यहाँ राज्य करता रहा था।

स्वतन्त्रता के उपरान्त सन् 1947 मे विभाजन होने के कारण जो भाग भारत मे रह गया था उसको कुछ समय तक पूर्वी पजाब भी कहा गया। पर भारत के सविधान मे इसका नाम फिर से पजाब हो गया।

स्पष्ट है, पजाब के लम्बे इतिहास मे इसका वर्गफल और जनसख्या अक्सर बदलते रहे है। सन् 1849 मे एक समय ऐसा भी था जबकि पंजाब यमुना से लेकर जमरूद तक फैला हुआ था। परन्तु 1947 के विभाजन और उसके पश्चात् 1966 मे होने वाले

पुनर्गठन के फलस्वरूप अब इस का क्षेत्रफल केवल 50,230 वर्ग किलोमीटर रह गया है। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार इसकी जनसख्या 1,11,35,069 है।

समय-समय पर राजनीतिक फेर-बदल और क्षेत्रफल मे परिवर्तन होने पर भी पजाब को आदि से अत तक एक ही खण्ड मानकर उसका इतिहास जानना अधिक उपयुक्त होगा। ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक लगता है कि भौगोलिक तौर पर सारा खण्ड आज भी एक है। अत भौगोलिक स्थिति का इतिहास पर प्रभाव जानने के लिए भी यही आधार अपनाना अभीष्ट है ।

इतिहास और भूगोल—पारस्परिक सम्बन्ध

किसी देश के इतिहास को अच्छी तरह जानने और समझने के लिए उसके भूगोल का ज्ञान बहुत जरूरी है। भौगोलिक स्थिति को अच्छी तरह जाने बिना हम किसी देश, खण्ड/प्रान्त की ऐतिहासिक स्थिति को भली प्रकार समझ ही नही सकते। भूगोल के अध्ययन से ही हमे इस बात का ज्ञान हो सकता है कि किसी देश को क्या आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त थी, या उसके विकास मे क्या कठिनाइयाँ मौजूद थी ? साथ ही साथ हम यह भी जान सकते है कि वहाँ के निवासियो ने अपनी सुरक्षा के लिये क्या-क्या प्रबन्ध किये और इनसे उनके आचार और जीवन पर क्या विशेष प्रभाव पडा ? इन सब बातो को सामने रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि किसी देश/खण्ड के इतिहास को समझने से पहले उसके भूगोल को भली-भाँति समझा जाए। साराश यह कि किसी भी देश के इतिहास को पूरी तरह जानने की कुजी उसका भूगोल है।

पंजाब की भौगोलिक स्थिति और उसकी विशेषताएँ

भौगोलिक रूप से पजाब उत्तर और उत्तरपूर्व मे हिमालय पर्वत से जुड़ा हुआ है और उसके पश्चिम और उत्तर-पश्चिम मे सुलेमान पर्वत से, पूर्व मे यमुना नदी उसकी सीमा बनाती है और दक्षिण मे सिन्ध और राजस्थान के मरुस्थल। इस भौगोलिक खण्ड को मुख्य रूप से तीन भागो मे बाँटा जा सकता है। ये तीन भाग है—

(क) हिमालय की शृखला, (ख) तराई के क्षेत्र, (ग) पजाब का विशाल मैदान।

(क) हिमालय की शृंखला : पंजाब के मानचित्र को यदि ध्यान से देखे तो पजाब का आकार एक त्रिकोण का सा बन जाता है, जिसके उत्तरपूर्व और उत्तरपश्चिम एवं पश्चिम मे पहाड़ो की शृंखला हिमालय की पर्वत शृखला है जो कि संसार मे सबसे ऊँचा पर्वत है। इतिहास के आरभिक काल से हिमालय ने कितने ही ऋषि-मुनियो और कवियों को मुग्ध किया है। इसी संबध मे एक महान् कवि सर मुहम्मद इकबाल ने ठीक ही तो कहा था ·

"पर्वत वह सबसे ऊँचा, हमसाया आसमा का,
वह संतरी हमारा वह पासबाँ हमारा।"

पंजाब के साथ लगने वाला हिमालय का भाग, जिस को पीर पंजाल कहा जाता है, कई स्थानों पर 15,000 फुट से भी अधिक ऊँचा है। पजाब के उत्तर मे हिमालय की शृंखला

पश्चिम की दिशा मे सुलेमान पर्वत शृंखला से जा मिलती है, उस हिस्से को हिन्दूकुश पर्वत कहा जाता है।

हिमालय की शृखला बहुत ऊँची होने के कारण यातायात के लिए उपयुक्त नही है। इसमे से होकर भारत मे प्रविष्ट होने के रास्ते बहुत कम और बहुत ही बीहड है क्योकि वे सदा ही बर्फ से ढके रहते है। परन्तु पश्चिमोत्तर मे हिन्दूकुश शृखला न तो इतनी ऊँची है और न ही उसमे से होकर आने वाले रास्ते उतने कठिन है। परिणाम-स्वरूप पजाब मे किंवा भारत पर अग्रेज़ो के आगमन से पहले के सब आक्रमण इसी दिशा से धरती के रास्ते से हुए।

हिमालय के प्रभाव : हिमालय पर्वत एक बडी दीवार के रूप मे पजाब के उत्तर मे सीमा का काम करता है। इसी कारण से मध्य एशिया की ठण्डी हवाएँ सीधे इस देश मे नही आ सकती। हिमालय का असली अर्थ "बर्फ का घर" है। यह देश के लिए सतरी का काम ही नही करता, हमारे देश को इस से और भी बहुत से लाभ है। बर्फ के गलने से और वर्षा ऋतु मे भारी वर्षा होने के कारण पजाब की नदियो मे सारा वर्ष पानी रहता है। साथ ही साथ नदियो मे बहकर आने वाली मिट्टी पजाब के विशाल मैदान को बहुत उपजाऊ बनाती है। पश्चिम की ओर कुराकर्म, हिन्दूकुश और सुलेमान पर्वतो की शृंखलाएँ कोयटा तक चली जाती है। उससे आगे इनकी ऊँचाई कम हो जाती है। फिर भी ये कराची तक फैली हुई है।

जैसा कि पहले बताया गया है कि सुलेमान पर्वत कम ऊँची पर्वत शृखला है और उसमे से आने-जाने के कई रास्ते हैं। इन्ही दर्रों या पहाडी मार्गो को पजाब का "द्वार" कहा जाता है। इन दर्रों के नाम है खैबर, बोलान, कुर्रम, टोची, गोमल, कोहाट और पंवारी। इनमे से होकर उत्तर पश्चिमी दिशा से सिन्धु घाटी मे प्रवेश किया जा सकता है। "ये दर्रे सदा से ही मध्य एशिया की चरागाहो और वादियो से निकल कर आने वालो के सुख-सपनो को पूर्ण करने वाली धरती तक पहुँचाने का मार्ग और सदियो तक व्यापार खोलने का मार्ग बने रहे है।" साराश कि ये रास्ते अन्दर की तरफ खुलने वाले वाल्वो (Valves) की तरह पजाब के पश्चिम व उत्तर के मैदानो से समय-समय पर विदेशियो के भारी सख्या मे प्रवेश का कारण बने। इन्ही के कारण पजाब अनेक जातियो और सभ्यताओ का सगमस्थल बन गया। आदि काल से इन विदेशियो के लिए अपने ही घरो मे अधिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त न होने के कारण पजाब एक "सोने की चिडिया" बना रहा। प्रागैतिहासिक काल की जातियो को छोडकर भारत मे समय-समय पर जो जातियाँ आई अर्थात् आर्य, ईरानी, यूनानी, शक, गूजर, अरब, अफगान, तुर्क और मगोल आदि सभी जातियो ने इन्ही रास्तों से प्रवेश किया और कालातर मे यहाँ के जनजीवन का अग बनकर यहाँ की सभ्यता को ही समुन्नत किया। इस तरह उत्तर-पश्चिम की तरफ से पजाब मे प्रवेश के रास्ते प्राचीनकाल से ही भारत की धन-सम्पत्ति से दूसरो को ललचाने के लिए "स्वर्ण द्वार" सिद्ध हुए। इन्ही रास्तों से समय-समय पर [illegible] आक्रमण भी होते रहे हैं और जिनके फलस्वरूप यहाँ नए-नए साम्राज्यो की नीव पड़ी। [illegible] इन्ही रास्तो से वे

विचार और दर्शन भी पजाब मे प्रवेश करते रहे जिनके कारण पजाब तथा सारे देश में नए-नए धार्मिक सुधारो और सास्कृतिक आदोलनो का सूत्रपात हुआ।

उत्तर पश्चिमी सीमा का महत्त्व . उत्तर पश्चिमी पहाडो मे चूँकि बहुत कम अनाज उगता है और इस कारण वहाँ पर बसे लोग बहुत ही मेहनती, बलवान, युद्धकला मे अधिक निपुण थे। इसलिए वे पजाब के लिए हमेशा एक खतरा बने रहे है। इस कारण से ही उत्तर-पश्चिमी सीमा का सुरक्षा प्रबन्ध देश के केन्द्रीय शासन के लिए सदा एक भारी समस्या बना रहा हैं। प्राचीन काल मे ही नही बल्कि अग्रेजो के शासन काल मे भी इस प्रदेश मे कानून और व्यवस्था बनाए रखना एक कठिन समस्या बनी रही।

(ख) तराई के क्षेत्र : पजाब मे हिमालय के साथ लगने वाले थोडे से ढलुआँ खण्ड को तराई का इलाका कहा जाता हैं। यहाँ काफी वर्षा होती है और यह जगलो से ढका हुआ है। यह इलाका उपज और जनसख्या के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण नही रहा। इस प्रदेश की साधारण ऊँचाई क्रमश 1,000 से 3,000 फुट तक है। तराई का इलाका सुरक्षा के लिए अधिक लाभदायक माना जाता था। सकटकाल मे बाहरी आक्रमणो का मुकाबला न कर सकने पर यहाँ छिपने का अच्छा स्थान था।

(ग) विशाल मैदानी प्रदेश : हिमालय के दक्षिण की तरफ सारा पजाब एक विशाल मैदान है जिसमे पाँच बडी नदियाँ और उनकी सहायक नदियाँ बहती हैं। इस क्षेत्र को दो मुख्य भागों मे बाँटा जा सकता है।

(1) पूर्वी मैदान और (2) पश्चिमी मैदान।

1. *पूर्वी मैदान :* पूर्वी मैदान यमुना और रावी नदी के बीच के इलाके को माना जाता था।
2 *पश्चिमी मैदान :* रावी से लेकर सिन्धु नदी तक का प्रदेश पश्चिमी भाग कहलाता था।

दोआब : मुगल काल से मैदानी इलाके का वर्णन पाँच दोआबों अर्थात् दो दरियाओं के बीच की भूमि के रूप में मिलता है। हर एक दोआब का नाम दोनों दरियाओ के नामों को मिलाकर बनाया जाता था। जैसे—

1. *सिन्ध सागर दोआब :* जेहलम और सिन्ध नदी के बीच का प्रदेश।
2. *चज दोआब :* चिनाब और जेहलम नदियों के बीच का प्रदेश।
3. *रचना दोआब :* रावी और चिनाब नदियो के बीच का प्रदेश।
4. *बारी दोआब :* ब्यास और रावी नदियो के बीच का प्रदेश।

यह प्रदेश बहुत अधिक उपजाऊ और पजाब का मध्य भाग होने के कारण आज भी "माँझा" कहा जाता है।

5. *बिस्त जालन्धर दोआब :* सतलुज और ब्यास नदियो के बीच का प्रदेश। यह प्रदेश भी बहुत उपजाऊ है और इसमे बहुत से प्रसिद्ध नगर स्थित हैं।

मालवा : यमुना और सतलुज के बीच के प्रदेश को मालवा कहा जाता है। इस भाग की भूमि न इतनी उपजाऊ थी, न ही यहाँ कोई प्रसिद्ध नगर थे।

भूगोल का इतिहास पर सम्पूर्ण प्रभाव

भौगोलिक दृष्टि से पजाब के इतिहास पर यहाँ की (क) जलवायु, (ख) उपजाऊ भूमि, (ग) नदियो के रूप मे प्राकृतिक सचार–साधनो का विशेष प्रभाव पडा है।

(क) इस भूखण्ड मे निवासियों को काफी सुख-साधन उपलब्ध हो सकते है। उन्हे प्राकृतिक सुविधाओ के कारण जीवन की साधारण जरूरते प्राप्त करने के लिए ज्यादा परिश्रम नही करना पडता था। शायद, जलवायु गर्म और बहुत अधिक परिश्रम की जरूरत न होने के कारण पजाब के लोग कालातर मे आलसी हो गये और बाहर से होने वाले आक्रमणो का अच्छा मुकाबला न कर सके। इसके मुकाबले मे उत्तर पश्चिम से आने वाले और पहाडो के रहने वाले आक्रमणकारी अक्सर सफल होते रहे।

प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मदलतीफ के शब्दो मे

> "पजाब अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण भारत का मुकुट और प्रवेश-द्वार बना रहा है। उत्तर की तरफ से हर एक आक्रमणकारी ने इस पर अधिकार करने के बाद ही भारत के साम्राज्य को पाने की कोशिश की है।"

दूसरे शब्दो मे, प्राचीन काल से ही पजाब के लोगो को उत्तर-पश्चिम की दिशा से आक्रमणों का निरंतर मुकाबला करना पडा। इसका कारण यह भी है कि पजाब बाहरी आक्रमणों के मुकाबले के लिए देश की रक्षा की प्रथम पक्ति बना रहा है। भारत के ऊपर आक्रमण करने वालो को यहाँ पहले अपने कदम जमाने पडे।

(ख) पंजाब का विशाल मैदानी प्रदेश अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण इतिहास का बडा केन्द्र सिद्ध हुआ है। पजाब के मैदानो मे ही देश मे प्रवेश करने वालो से राजनीतिक और सास्कृतिक संघर्ष होता रहा। पजाब के मैदानो से आगे जाकर ही बाहर से आने वाले भारत के शासक बनते रहे। इस दृष्टिकोण से पंजाब को एक बडा सास्कृतिक और राजनीतिक अखाडा या कुठाली भी कहा जा सकता है। यहाँ पर ही समय-समय पर प्रवेश करने वाले मध्य एशिया के लोगो को पंजाबियो से सबसे पहले संघर्ष करना पडा और यहाँ अपनी सत्ता जमाने के पश्चात् ही वह आगे बढ सके थे। फलस्वरूप, भारत मे, पजाब मे ही सबसे पहले राजनीतिक, सास्कृतिक, व्यापारिक आदान-प्रदान होता रहा है। पजाब की भौगोलिक स्थिति के फलस्वरूप ही यहाँ के लोगों का जीवन बाहर से आने वाले लोगो से, उनके आचार-विचार से सदा प्रभावित होता रहा है। बाहर के लोग भी यहाँ के लोगों के धर्म, चरित्र और आचार-विचार से प्रभावित हुए और इस प्रकार कई धार्मिक और सास्कृतिक आदोलन यहा शुरू हुए जो बाद मे देश के दूसरे भागों मे भी फैल गये। इस दृष्टिकोण से पंजाब को देश की एक प्रयोगशाला कहा जा सकता है, जहाँ से नई-नई विचारधाराएँ उदय होकर आगे फैलती रही है।

(ग) पंजाब की नदियों का भी इस प्रदेश के इतिहास पर बहुत प्रभाव पड़ा है। ये नदियाँ ही समय-समय पर स्थापित होने वाले राज्यो की सीमा का रूप धारण करती रही और सुरक्षा के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। डाक्टर हरिराम गुप्ता के शब्दो मे "पंजाब की नदियाँ विशेषतौर पर प्राचीन काल में आक्रमणकारियो के लिए बडी प्राकृतिक

रुकावटे सिद्ध होती रही । दरियाओ को पार करने की कठिनाइयो को सामने रखते हुए बहुत से आक्रमणकारी पहाडियो के साथ-साथ तराई प्रदेश से होकर जाने वाले रास्तो से दिल्ली पहुँचते रहे है । तराई के प्रदेश मे नदियाँ अभी कम चौडी होती है और उन पर पुल बनाना भी अपेक्षाकृत आसान था ।"

पजाब के दरियाओ का प्रवाह समय-समय पर बदलता रहा है जिसका इतिहास पर बहुत प्रभाव पडा है । कहा जाता है कि प्राचीनकाल की एक नदी जिसका नाम "हरका" था और जो राजस्थान और सिन्ध के मरुस्थलो को सीचती थी, का चलना बन्द हो गया था । शायद यही वह सरस्वती नदी है, ऋषियो ने जिसकी बहुत स्तुति की है और जो बहुत छोटी होकर राजस्थान की रेतियों मे लुप्त हो गई है । नदियो के साथ लगने वाले जगलो के विनाश के कारण कुछ उपजाऊ इलाका बजर बन गया था । कहा जाता है कि हरियाणा (जिस को हरा-भरा प्रदेश होने के कारण ही यह नाम दिया गया था) तैमूर के आक्रमण के समय (1398) मे इतना उपजाऊ था कि यहाँ पर गन्ने के जगल थे । अब टोहाना और उसके आसपास का इलाका इतना उपजाऊ नही है ।

भौगोलिक स्थिति के कारण ही पजाब भारत के इतिहास मे निर्णायक युद्धो का केन्द्र बना रहा । दिल्ली के शासको के लिए आवश्यक था कि राजधानी की रक्षा के लिए आक्रमणकारी को यमुना और सतलुज के बीच कही रोका जाये । इसी कारण भारत के इतिहास मे प्रसिद्ध युद्ध थानेसर, कुरूक्षेत्र, तरावड़ी, सरहिन्द और पानीपत के स्थानो पर होते रहे हैं और ये सब स्थान मालवा प्रान्त मे स्थित है ।

भौगोलिक स्थिति और उसके कारण होने वाली ऐतिहासिक घटनाओ का पंजाब वासियों के जीवन पर बहुत प्रभाव पडा है । अक्सर लोगो को अपनी रक्षा का प्रबध अपने आप करना पडता था । इसलिए पजाब वासियो का जीवन साधारणत. फौजी जीवन रहा है । अपनी रक्षा के लिए हर समय तैयार रहना उनके लिए बहुत आवश्यक था ।

बार-बार विदेशियों के आक्रमण होने और उनके द्वारा धन-सम्पत्ति लूटे जाने के परिणामस्वरूप यहाँ के निवासियो का ध्येय "जो कमाया सो खाया" बन गया और वे धन-संचय की आदत को बुरी समझने लगे । इस विचारधारा का प्रमाण "खादा-पीता लाहे दा, बाकी अहमद शाहे दा" से मिलता है । पजाबियो के उदार और परिवर्तनशील होने का भी शायद यही कारण है कि यहाँ पर आमतौर पर उथल-पुथल होती रही है और नये विचारों का आदान प्रदान होता रहा है । समूचे तौर पर कहा जा सकता है कि पंजाब की भौगोलिक स्थिति का उसके इतिहास, धर्म, समाज एवं जनजीवन पर विशेष प्रभाव पडा है । इसलिए यह कहना गलत नही है कि पजाब की भौगोलिक स्थिति उसके इतिहास को समझने की कुजी है । उसका महत्त्व डाक्टर बुद्ध प्रकाश के शब्दों मे कुछ इस तरह से है

'पजाब के मैदान इसका सबसे महत्त्वपूर्ण भौगोलिक अंग है । ये विशाल मैदान ही पजाब की कृषि-सम्पत्ति के साधन है । यहाँ पर ही प्रसिद्ध शहर बसे और यही पर महान्

सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवर्तन होते रहे है। भारत के धार्मिक और सामाजिक तत्त्व सबसे पहले पंजाब मे ही समुत्पन्न हुए। अत पजाब को भारत और मध्य एशिया के यायावर और परिवर्तनशील सभ्यताओ का टकराव केन्द्र कहा जा सकता है। परिणाम-स्वरूप यहाँ पर विज्ञान और सभ्यता की विशेष उन्नति हुई और लोगो मे एक सर्वव्यापी दृष्टिकोण पैदा हुआ, उनकी रुचि नये-नये प्रयोग करने की हो गई। सबसे अधिक, यहाँ के लोगो मे दूसरो के दृष्टिकोण को समझ कर उसको अपनाने का साहस पैदा हुआ। इस तरह से पजाब मे नए-नए विचारो, दर्शनो और जीवन-मानो का उदय होता रहा, जिनका न केवल पजाब के लोगो के जीवन पर ही बल्कि समूचे भारत की सस्कृति पर भी बहुत प्रभाव पडा।"

प्रश्न

1. What were the effects of physical features of Panjab on its history ?

   पजाब की प्राकृतिक अवस्था का उसके इतिहास पर क्या प्रभाव पडा ?

2. Write notes on —

   (i) Name of the Panjab. (ii) Physical features of Panjab. (iii) Importance and bearing of Himalayas on the history of Panjab.

   निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो

   (i) पजाब का नामकरण (ii) पजाब की प्राकृतिक अवस्था (iii) हिमालय की महत्ता और पजाब के इतिहास पर उसका प्रभाव।

2

पंजाब के इतिहास के स्रोत

यह सत्य है कि किसी देश के इतिहास का आधार मुख्यतौर पर उसके स्रोत होते है। पजाब के मध्यकालीन इतिहास के बारे मे बहुत कठिनाइयाँ इस कारण है कि उसको लिखने के लिए बहुत कम सामग्री उपलब्ध है। मध्यकालीन पजाब के इतिहास के स्रोतो का जो अपेक्षाकृत अभाव है, उसके कुछ विशेष कारण है । पहला तो यह कि निरतर राजनीतिक उथल-पुथल होते रहने के कारण बहुत कम तत्कालीन ऐनिहासिक पुस्तके उपलब्ध है। दूसरा, सिक्ख मत और इस्लाम के बीच सघर्ष राजनीतिक न होकर धार्मिक एव सामाजिक हो गया, इसलिए वास्तविक रूप से घटनाओ का वर्णन नही किया गया। सिक्ख मत के विकास के बारे मे भी बहुत सी बाते धार्मिक पक्षपात से रहित नही हैं। इन कारणो के इलावा इस काल के इतिहास के स्रोत काफी बिखरे हुए है। इन सब कठिनाइयो को सामने रखते हुए इस काल का इतिहास जानने के लिए भिन्न-भिन्न स्रोतो को इकट्ठा करके और काफी विचार करने पर ही ऐतिहासिक तथ्यों का कुछ हद तक ठीक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। तथापि पजाब के मध्यकालीन इतिहास के स्रोतो को दो मुख्य भागो मे बाँटा जा सकता है।

I. समकालीन अथवा प्राइमरी (मौलिक) स्रोत

(क) धार्मिक साहित्य

समकालीन स्रोतो मे सर्वप्रमुख है धार्मिक साहित्य जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित आते है .

1 **आदिग्रन्थ** यह सिक्ख धर्म का मूल आधार है और सबसे श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसका इतिहास के स्रोत के रूप मे विशेष महत्त्व है। इस ग्रन्थ मे उस समय के प्रवर्त्तक गुरु नानक देव जी के सम्बन्ध मे कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटानाओ का भी जिक्र है जिनकी चर्चा उन्होने स्वय की है। इसमे सामाजिक और आर्थिक स्थिति का भी समुचित सिंहावलोकन और समालोचन किया गया है। गुरु नानक देव जी ने अपने धर्म का वर्णन करते हुए उस समय की राजनीतिक दुर्दशा, धार्मिक कुरीतियों और आर्थिक कठिइनायों का भी जिक्र किया है। अत आदि ग्रन्थ अपने काल के इतिहास का एक प्रमुख स्रोत है।

2 **धार्मिक वारां** ऐतिहासिक घटनाओ को कविता के रूप मे बयान करने का एक विशेष तरीका है जो पंजाबियों मे प्रचलित है। वार कविता की बहुत प्राचीन विधा है। चूँकि यह अक्सर तत्कालीन तथ्यों पर आधारित होती है, इसलिए इसमे काफी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है। एक विशेष प्रकार से गाए जाने के कारण यह पीढी-दर-पीढी चलती रहती है। प्रसिद्ध धार्मिक "वारो" के निम्नलिखित नाम है ·

(i) **टीके दी वार** यह दो कवियो सत्ता और बलवन्द द्वारा रचित है जो कि गुरु ग्रन्थ साहिब मे मिलती है। इस "वार" मे पहले 5 गुरुओ के बारे मे जानकारी प्राप्त होती है।

(ii) **गौरी दी वार** यह भाई जेठा जी, जो कि बाद मे गुरु रामदास के रूप मे प्रसिद्ध हुए, द्वारा रचित है। इसमे गुरु अमरदास जी (तीसरे गुरु) का वर्णन है।

(iii) **सच नाम दी वाणी** कवि सुन्दर द्वारा रचित है। इस कविता से हमें उस काल की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक दशा का पता चलता है।

(iv) **भाई गुरदास की वारें** गुरु अर्जुन देव जी के काल मे लिखी हुई भाई गुरुदास की कुल 40 वारे आदि ग्रन्थ मे मिलती है। इसमे से केवल पहली, दसवी, चौबीसवी और पच्चीसवी ही ऐतिहासिक महत्त्व की है। इन वारो से हमे गुरु नानकदेव जी के जीवन और उनकी "उदासियो" का वर्णन मिलता है।

"दबिस्ताँ-ई-मजाहब" : फारसी भाषा मे मोहसिन-फानी की यह धार्मिक पुस्तक पाँचवे, छटे और सातवे गुरु साहिब के काल से सबध रखती है। इस उदार धार्मिक विचार वाले लेखक ने सिक्ख धर्म के विकास का अच्छे रूप मे वर्णन किया है। उसका दृष्टिकोण धार्मिक पक्षपात से रहित है। मोहिसन-फानी छटे गुरु हरगोबिन्द जी के मित्र थे।

(ख) जीवन-चरित

इस श्रेणी की पुस्तके, जो कि उस समय के प्रसिद्ध व्यक्तियो के बारे मे लिखी गई, इतिहास के स्रोतो के रूप मे बहुत महत्त्वपूर्ण है।

1. **विचित्र नाटक** इस किस्म के ग्रन्थो मे गुरु गोबिन्द सिंह जी का **विचित्र नाटक** जो कि उन्होने आत्मचरित के ढग से लिखा था उल्लेखनीय है। ब्रजभाषा मे लिखी इस पुस्तक मे गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने पिता गुरु तेग बहादुर की शहादत पर प्रकाश डाला है और अपने जीवन की कुछ घटनाओ और "भगाणी के युद्ध" (जो कि सन् 1686 मे भगाणी नामक स्थान पर उन्होने पहाडी राजाओ के विरुद्ध लडा था) का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इसमे गुरु गोबिन्द सिह जी के अपने जीवन और उनके ध्येय पर भी प्रचुर सामग्री मिलती है।

2. **'जफर-नामा' अर्थात् विजय-पत्र :** यह वह लम्बा पत्र है जो गुरु गोबिन्द सिंह जी ने 18 वी शताब्दी के आरम्भ मे उस समय के मुगल सम्राट् औरगजेब को लिखा था। इस ऐतिहासिक पत्र मे गुरु जी ने अपने और उनके परिवार पर किये गये अत्याचारो का वर्णन करते हुए औरंगजेब को खरी-खरी सुनाई है और मत को स्पष्ट करते हुए कहा है कि उन्होने अपने धर्म की रक्षा के लिए तलवार केवल उस समय उठाई जब किसी और तरीके से काम नही चल सका था उनके शब्दों में ·

"चूँ-कार-अज़ हमाँ हील्लते बिगु-ज़श्त,
हलालस्त शमशीर बुर्दन-बै-दस्त"

(अर्थात् जब काम किसी भी हीले से न निकल सके तो हाथ मे तलवार उठाना उचित होता है)

3 **अहवाल-ए-अदीना बेग :** पजाब के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और द्वाव बिस्त जालन्धर के फौजदार के जीवन से सबधित यह पुस्तक किसी अज्ञात लेखक ने फारसी मे लिखी। चूँकि इस पुस्तक मे इस प्रसिद्ध पजाबी के जीवन की घटनाओ का जिक्र है, इसलिए 18 वी शताब्दी के मध्य के पजाब के राजनीतिक जीवन को जानने मे इसका महत्त्व बहुत अधिक है। अदीनाबेग बहुत ही छोटे ओहदे से अपनी मेहनत और सूझबूझ से प्रान्त का गर्वनर बन गया था।

4 **"तहमास नामा" अर्थात् एक गुलाम की आत्मकथा :** फारसी की इस पुस्तक मे तहमास खाँ नामी एक मुसलमान जो कि किसी समय एक गुलाम था, के जीवन का वर्णन है। तहमास खाँ मिसकीन के नाम से भी प्रसिद्ध है। वह अपनी योग्यता से पंजाब के गवर्नर का सचिव बना था। वह मीर मन्नू की धर्म पत्नी मुगलानी बेगम का प्राइवेट सेक्रेटरी रहा था। मीर मन्नू की मृत्यु के पश्चात् मुगलानी बेगम के समय मे पजाब की राजीतिक दुर्दशा का मिसकीन ने बहुत अच्छा वर्णन किया है। मिसकीन कई स्थानो पर जुद-जुदा नामो से रहा था। अपनी आत्मकथा मे उसने अब्दाली के आक्रमणो, मुगलानी बेगम के राजनीतिक षड्यन्त्रो और मराठो के लाहौर मे प्रवेश पर प्रकाश डाला है। उसने लिखा है कि उसने सन् 1758 ईस्वी मे लाहौर पर मराठो के आक्रमण के समय किले के द्वार खुद खुलवाये थे और इस प्रकार वे लाहौर के मालिक बने थे।

(ग) ऐतिहासिक सामग्री

1 **जीवनियाँ** मध्यकालीन पजाब के इतिहास के बारे मे बहुत से स्थानो से ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की गई है। इसमे शामिल है प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ गुलबदन बेगम का "बाबर नामा", अकबर के समय मे रचित "आईने अकबरी", जहाँगीर की लिखी "तोज़क-ए-जहागीरी"। पहली दो पुस्तको से उस समय के इतिहास पर काफी प्रभाव पडता है। सम्राट् जहागीर की रचित तोजक मे उसने अपने शब्दो मे लिखा है कि किस आधार पर उन्होंने गुरु अर्जुन देव को मृत्यु दण्ड दिया था। तोजक मे लिखा है "गोईन्दवाल जो कि ब्याह (ब्यास) के किनारे पर है, मे एक अर्जुन नामी हिन्दू है जिसने साधु-सत का रूप धारण करके कुछ सीधे-सादे हिन्दुओ पर प्रभाव डाला है। उसने कुछ मूर्ख और नावाकिफ मुसलमानो को भी अपने साथ मिला लिया है। 3-4 पुश्तो से धार्मिक रूप मे उनकी यह दुकान खूब चलती रही है। कई बार मेरे मन मे आया कि इस मिथ्या काम का अन्त कर दिया जाए या इसको इस्लाम जमात मे शामिल कर लिया जाए।

2. **जंग नामा काजी नूर मुहम्मद का :** अहमदशाह अब्दाली के साथ पजाब मे उसके सातवें आक्रमण के समय सन् 1765 मे आने वाले प्रसिद्ध लेखक काजी नूर मुहम्मद ने यह जगनामा लिखा था। इसमे उसने अफगानों के साथ सिक्खो के संघर्ष का विस्तृत वर्णन किया है। काजी नूर मुहम्मद की यह पुस्तक धार्मिक पक्षपात

से पूर्ण है और इसमे सिक्खो के बारे मे बहुत गदी भाषा का प्रयोग किया गया। प्रत्येक सिक्ख के लिए बुरे से बुरे शब्द बरतने के बावजूद भी उसने इस बात को माना है कि उनके सगठन मे अपने धर्म के लिए कुरबानी देने और युद्ध मे सख्त से सख्त कठिनाइयो को झेलने वाले सिक्ख की बहुत कद्र है। अन्त मे उसने खुद लिखा है कि सिक्ख युद्ध मे शेर की तरह लडते थे और अपने धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार थे। इस पुस्तक का समकालीन वर्णन इतिहास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

3 ऐतिहासिक स्रोतो के रूप मे प्रसिद्ध युद्धो के बारे मे लिखी गई "वारो" या "जगनामो" का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये रचनाएँ जनसाधारण मे जोश पैदा करने के लिए महत्त्वपूर्ण युद्धो या योद्धाओ के बारे मे लिखी जाती थी। उदाहरण के तौर पर गुरु गोबिन्द सिंह जी के काल से सबधित "भगाणी की वार" जिसका जिक्र पहले किया गया है, एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका सग्रह फतेहनामा "गुरु खालसा" जी के नाम से शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसी तरह शाह मुहम्मद कृत "जगनामा-लाहौर" भी बहुत प्रसिद्ध वार है। जिसमे सिक्खो और अग्रेजो की पहली लडाई का भरपूर वर्णन है जो बहुत प्रभावशाली भी है।

समकालीन विदेशियो की लिखी हुई पुस्तकों मे प्रमुख पुस्तक "ए जरनी फ्राम बंगाल टू इग्लैंड" फौरेस्टर साहिब द्वारा रचित है। इसमे उत्तरी भारत मे सन् 1782-83 की उसकी यात्रा का वर्णन है। उस समय की राजनीतिक अवस्था के साथ-साथ उसने सिक्खो द्वारा राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने और पजाब मे मिसलो के रूप मे राज्य कायम करने का विशेप वर्णन किया है। उसने उस समय की दशा का ही सच्चा वर्णन नही किया, बल्कि महाराजा रणजीत सिह के द्वारा पजाब पर अधिकार प्राप्त करने की ओर भी स्पष्ट इशारा किया है। हालाकि यह पुस्तक रणजीत सिंह के जन्म से तीन चार साल बाद लिखी गयी थी, पर यह भविष्यवाणी सच्ची हो गई।

(घ) शिला-लेख

सन् 1916 मे जो पजाबी सैनिक पहले विश्वयुद्ध मे भाग लेने विदेशो मे गये थे, उन्होने बगदाद मे एक शिला-लेख का पता लगाया था जिसमे गुरु नानक देव जी के सन् 1520 मे वहाँ जाने का और वहाँ के प्रसिद्ध मुस्लिम सत शाह बहलोल से मिलने का वर्णन है। यह अपने ढग का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

(ङ) हुक्मनामे

सिक्ख गुरुओ ने समय-समय पर प्रसिद्ध व्यक्तियो या सिक्ख सगतो के नाम जो पत्र जारी किये और जिनको "हुक्मनामे" कहा जाता है, ऐतिहासिक सामग्री के रूप मे बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन हुक्मनामो से हमे उन विशेष घटनाओ का पता चलता है जिनके कारण ये जारी किये गये थे। पटियाला राजपरिवार के पास उनके पूर्वजों तिलोका और रामा के नाम जारी किये गये सन् 1696 के हुक्मनामे अब भी सुरक्षित है। जिसमे गुरु साहिब ने अपनी सेना सहित उनकी सहायता के लिए आने का आदेश देते हुए लिखा था "तेरा घर सो मेरा आसे"। इससे सिद्ध होता है कि पटियाला राज-

परिवार घराना गुरु साहिब के बहुत निकट था। इसी प्रकार के बहुत से हुक्मनामे विशेष तौर पर गुरु तेगबहादुर जी ने और गुरु गोबिन्द सिंह जी ने सगतो के नाम लिखे थे। दक्षिण मे मुगल सम्राट् के साथ जाने के पश्चात् उन्होने प्रसिद्ध अनुयायियो को एक विशेष हुक्मनामा देकर बन्दा बहादुर के साथ भेजा था, जिस मे सिक्खो को उनका साथ देने और उनको अपना फौजी लीडर मानने के लिए कहा गया था। ऐसे हुक्मनामो का एक सग्रह डाक्टर गण्डा सिंह ने सन् 1966 मे प्रकाशित किया है।

(च) ऐतिहासिक भवन तथा स्थान

सिक्ख धर्म के अनेक प्रसिद्ध गुरुद्वारो का इस दिशा मे खास महत्त्व है। क्योकि अधिकतर यह गुरुद्वारे वहाँ बनाये गये है जहा पर प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाएँ घटी। सिक्खो के चार बडे गुरुद्वारे "तख्त" कहलाते है जैसे कि अमृतसर, आनन्दपुर, पटना और नादेड के ऐतिहासिक गुरुद्वारे। इसके इलावा भिन्न-भिन्न स्थानो पर और भी बहुत से ऐतिहासिक गुरुद्वारे बने हुए है जिनसे उनके साथ सबधित ऐतिहासक घटनाओ का पता चलता है।

इन्ही दिनो पजाब सरकार ने "गोबिन्द सिह मार्ग" का निर्माण किया है। यह मार्ग सिक्ख ऐतिहासिक स्थान जहाँ पर कि खालसा का जन्म हुआ था, आनन्दपुर साहिब से आरम्भ होकर तलवन्डी साबू अथवा मुक्तसर तक जाता है। इस 600 किलोमीटर से अधिक लम्बे मार्ग द्वारा 91 ऐतिहासिक गुरुद्वारो की यात्रा की जा सकती है जो कि इस मार्ग के ऊपर स्थित है।

(छ) अवशेष

सिक्ख गुरुओ के साथ सबध रखने वाली बहुत सी वस्तुएँ भी कई जगहो पर सुरक्षित रखी हुई है। इनमे अधिकतर शस्त्र है। गुरु गोबिन्द सिंह जी के कुछ शस्त्र उनके तीन सौवे जन्मदिवस के समय पर विशेष तौर पर भारत ने इग्लैड से प्राप्त किये थे। इसी प्रकार गुरुओ के पवित्र वस्त्र और शस्त्र कई स्थानो पर गुरुद्वारो में रखे हुए मिलते है।

गुरु हर गोबिन्द जी का प्रसिद्ध खण्डा और कुछ शस्त्र जिला जालन्धर मे करतारपुर मे सोढी साहब के पास है। जिला लुधियाना मे गुरुद्वारा कढानी मे गुरु हरगोबिन्द सिंह जी का एक अगरखा (52 कलियो वाला), एक पोथी और जूतियों का एक जोड़ा भी पडा है। अगरखे के बारे मे कहा जाता है कि यह वही अगरखा था जिसको वे ग्वालियर किले से मुक्त होने पर पहने हुए थे। वे अपने साथ दूसरे राजनीतिक बन्दियो को भी छुडाकर लाये थे और हर एक बन्दी ने इस अगरखे की एक-एक कली पकड ली थी। इस घटना के आधार पर उनको "बन्दी छोड बाबा" का सम्मान प्राप्त हुआ था। गुरु गोबिन्द सिंह जी के प्रसिद्ध हुक्मनामो, जो कि उन्होंने रामा और तिलोका को भेजे थे, के साथ और भी बहुत सी पवित्र चीजे बुर्ज बाबा आला सिंह, किला मुबारिक, पटियाला मे सुरक्षित है।

(ज) पारिवारिक रिकार्ड

पंजाब के बहुत से विशिष्ट परिवारों के पास वे विशेष पत्र और सनदे मौजूद

है जिनसे उन परिवारो के इतिहास का पता चलता है। यह सनदे अधिकतर जागीर प्राप्त करने या दूसरी ऐसी सेवाओ के बारे मे है जोकि उन परिवारो ने उस समय की सरकार की की और जिनके दृष्टिगत जागीरे या दूसरे इनाम उन्हे दिये गये।

कुछ सन्त साधुओ के डेरे भी ऐसे है जिनके पास पुरानी सनदे है जिन से पता लगता है कि वे कितने पुराने है और उनको डेरे की सम्पत्ति किस धर्मार्थ कृत्य के लिए दी गई थी। मालवा मे बहुत से साधुओ के ऐसे डेरे है जिन्हे सरकार से जागीरे प्राप्त थी।

जिला गुरदासपुर के जखवार नामक स्थान मे भी जोगियो का एक ऐसा डेरा है, जिनके पास मुगलकाल की सनदे है।

जीन्द के निकट कुछ भाट परिवारो के पास ऐसी प्राचीन "बहियाँ" है जिनमे उन्होने अपने जजमानो की कई पुश्तो का वर्णन किया हुआ है। अत. इन बहियो से उन परिवारो के इतिहास का पता चलता है। यही नही कुछ ऐतिहासिक घटनाओ का भी उनमे वर्णन है। यह "बहिएँ" जिस लिपि मे लिखी है, उसे "भटाक्षरी" कहा जाता है। खासतौर पर इन बहियो द्वारा भाई मनी सिंह जी कि शहीदी और आनन्दपुर की महान् घटनाओ का पता लगता है। इन बहियो को माइक्रोफिल्म करके पटियाला के अभिलेखागार मे रखा गया है।

(झ) संधियाँ और विशेष प्रमाणपत्र

सिक्ख काल मे मिसलो के साथ होने वाली कुछ सधियो के दस्तावेज और पटियाला राजघराने को दी हुई अहमदशाह अब्दाली की विशेष सनदे भी पटियाला के अभिलेखागार मे मौजूद है। कुछ इकरारनामे, जो जनरल पैरो, जार्ज टामस और जयपुर नरेश और मिसलो के बीच हुए थे, अपने असली रूप मे पजाब के अभिलेखागार मे मौजूद है।

II सैकेन्डरी अथवा दूसरी श्रेणी के स्रोत

सैकेन्डरी स्रोत वे स्रोत है जो घटनाओ के बाद मे लिखे गये, अत इनका महत्त्व द्वितीय दर्जे का ही है।

(क) जन्म साखियाँ

इन स्रोतो मे सबसे महत्त्वपूर्ण "जन्म साखियाँ" है। यह गुरु नानकदेव जी के जीवन के बारे मे परम्परागत कथाएँ है। इन प्रचलित कथाओ के लेखको के नामो का पता नही है। जन्मसाखी के रूप मे इनको सबसे पहले गुरु नानक देव जी की मृत्यु के 80 साल के बाद लिखित रूप मे लाया गया था। इसके अनतर इन मे कई प्रकार के परिवर्तन किये जाते रहे है। यह कथाएँ पौराणिक कथाओ से मिलती-जुलती है। सरदार खुशवन्त सिंह के शब्दों मे ऐसा लगता है कि ये साखियाँ ·

"अधपढ लोगो ने अनपढ़ श्रोताओ के लिये लिखी थी"

इनका बहुत सा अश काल्पनिक है और ये देवी-देवताओ की तरह किसी

अलौकिक शक्ति पर आधारित है। इनमे से निम्नलिखत तीन जन्म साखिया प्रमुख है

1 **पुरातन जन्म साखी** यह सन् 1772 मे प्राप्त हुई थी। इसे एक प्रसिद्ध अग्रेज कोल ब्रुक साहिब सन् 1815 मे विलायत ले गये। इसकी एक प्रति ट्रम्प साहिब को दी गई थी जबकि वह गुरु ग्रथ साहिब का अनुवाद कर रहे थे। इस जन्म साखी को विलायत वाली जन्म साखी कहते है। बाद मे पजाब के लैफ्टीनैन्ट गवर्नर एचिसन ने इसे वापिस मगवाया और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने इसे छपवाया।

2 **हाफिजाबाद वाली जन्म साखी** औरियण्टल कॉलेज लाहौर के प्रोफैसर गुरमुख सिह ने यह जन्मसाखी हाफिजाबाद से प्राप्त की थी। यह बहुत हद तक विलायत वाली जन्म साखी से मिलती है, सिर्फ थोडा सा अन्तर है।

3 **भाई बाला वाली जन्म साखी :** यह जन्मसाखी बाला की लिखी हुई कही जाती है जो कि उन्होने गुरु अगद के कहने पर लिखी थी।

जन्म साखियाँ गुरु नानक देव जी के जीवन के बारे मे कुछ ऐसी घटनाओ का वर्णन करती है जो कि किसी और जगह नही मिलती। प्रत्येक जन्मसाखी मे वर्णित घटनाओ को बहुत विचार करने और दूसरी घटनाओ द्वारा उनकी पुष्टि होने पर ही सत्य माना जाना चाहिये। जन्म साखी का उद्देश्य गुरु नानक देव जी की महानता का वर्णन है। इस रूप मे बहुत सी असभव बाते भी इन मे आ गई है।

(ख) दूसरे धार्मिक ग्रन्थ

जन्म साखी की तरह ही सिक्खो के कुछ और धार्मिक ग्रन्थ भी है। इन मे से निम्नलिखित उल्लेखनीय है

1. "प्राचीन पथ प्रकाश" नामक ग्रन्थ भाई रत्न सिंह मगू का लिखा हुआ है जो कि अधिकतर जन्म साखी पर ही आधारित है।
2. ज्ञानी ज्ञान सिंह जी द्वारा रचित "पन्थ प्रकाश" प्राचीन पन्थ प्रकाश से काफी मिलता-जुलता है। इसमे तिथियाँ काफी गलत है।
3. भाई सतोख सिंह द्वारा रचित "सूरज प्रकाश" एक और प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ है जिसमे सिक्ख धर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन उल्लिखित है। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य खोजने के लिए इसको भी बहुत सोचविचार से पढना चाहिये।

(ग) लोक गीत या गाथाएँ

पंजाब में प्रचलित बहुत सी लोक-कथाएँ ऐसी है जो कि लोगो को शूरवीर और साहसी बनाने के उद्देश्य से लिखी गई थी। इनका विशेष तौर पर गुरु हरगोबिन्द सिंह जी ने उपयोग किया था जो कि अपने साथियो को युद्ध प्रेमी बनाना चाहते थे। ये गाथाएँ हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख कवियों द्वारा समय-समय पर रची गईं।

पजाब मे प्रचलित कुछ कविताएँ ऐसी भी है जिनसे ऐतिहासिक घटनाओ का

ज्ञान होता है। मीर मन्नू के समय मे सिक्खो मे यह कविता मशहूर थी

"मन्नू असा दी दात्री, असी है उस दे सोये,
ज्यूँ-ज्यूँ सानू वढदा, दूण सिवाये होये,"

अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणो के समय मे होने वाली अराजकता और लूट-खसूट के कारण पजाब के लोगो मे यह उक्ति आम प्रचलित थी—"खादा पीता लाहे दा, बाकी अहमद शाहे दा।" इससे स्पष्ट होता है कि पजाबियों का ऐसा आचार ही बन गया था कि जो कुछ सम्पत्ति अपने पास हो उसको खा-पीकर समाप्त करना चाहिये क्योंकि यदि कुछ बाकी रह गया तो उसे अहमदशाह लूट ले जाएगा। इसी तरह पानीपत की तीसरी लडाई, जिस की तिथि हिजरी साल 1174 का (सन् 1762) जमादी-उल-सानी मास है, का वर्णन एक समकालीन लोकगीत मे इस तरह किया गया है—

"ग्यारह सै पर बर्स 74, पानीपत मे हुआ चरित्र
7 जमादी उलसानी, हार मराठा जीत दुर्रानी"

इसके अलावा और भी बहुत से ऐतिहासिक कवित्त पजाब मे प्रचलित थे जिन से सबधित घटनाओ का ज्ञान होता है।

उपर्युक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि पजाब के ऐतिहासिक स्रोतो के भिन्न-भिन्न साधन अथवा उनके बिखरे हुए होने के बावजूद इस किस्म के फुटकर स्रोतो का अध्ययन करने से हमे पजाब के इतिहास का काफी ज्ञान हो सकता है और उसकी रूप-रेखा भी स्पष्ट हो जाती है।

प्रश्न

1. Write a critical note on the Adi Granth. How far, you think the study of the Granth would be found helpful by a student of the social and political history of the Panjab during the 16th Century.

   आदि ग्रन्थ पर विवेचनात्मक टिप्पणी लिखिए। आप के विचार मे सोलहवी शताब्दी के पजाब के सामाजिक और राजनीतिक इतिहास को जानने के लिए ग्रथ साहिब का अध्ययन कहाँ तक सहायक सिद्ध हो सकता है।

2. Critically examine the nature and contents of the sources of early Sikh history (the period of 1st-5th Gurus) and show how far they have been helpful in giving us authentic account of the events ?

   प्रारभिक सिक्ख इतिहास के स्रोतो (पहले से पाँचवे गुरु तक) के स्वरूप और विषयवस्तु की तर्कसहित विवेचना कीजिए और यह भी बताइये कि ये स्रोत घटनाओ का प्रामाणिक लेखा-जोखा देने मे कहाँ तक सहायक सिद्ध हुए है ?

3 Critically evaluate the sources of early Sikh history.
प्रारभिक सिक्ख इतिहास के स्रोतो का तर्कसहित मूल्याकन कीजिए।

4 Attempt an estimate of the importance of the Adi Granth and the Dasam Granth as source books of the history of the Panjab.
इस तथ्य का मूल्याकन कीजिए कि आदि ग्रन्थ और दसम ग्रन्थ की पजाब के इतिहास की स्रोत-पुस्तको के रूप मे क्या महत्ता है ?

5. Write a critical note on the importance of the Adi Granth and the Janam Sakhis as sources of history.
इतिहास के स्रोत के रूप मे आदि ग्रन्थ और जन्म साखियो की महत्ता पर विवेचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

3

पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त में पंजाब की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति

मध्य काल मे मुसलमानो के पजाब मे प्रवेश करने और यहाँ पर अपना राज्य स्थापित करने के पश्चात् यहाँ के लोगो के जन-जीवन मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। मुसलमानो के राज्य की सबसे बडी और नई विशेषता यह थी कि उन्होने अपनी हकूमत (शासन) की नीव धार्मिक नीति पर रखी थी। पजाब मे सत्ता प्राप्त करने का उनका कम-से-कम कथित उद्देश्य इस्लाम का प्रचार और प्रसार करना था। चूँकि इस्लाम धर्म को मानने वाले अल्प सख्या मे थे, इसलिए उन्होने अपनी सत्ता कायम रखने के लिए हर प्रकार से बहुसख्यक गैरमुसलमानो पर अपने धर्म का प्रभाव डाला और इस्लाम के प्रति विशेष वफादारी का, जैसे भी हो सका और जितना भी हो सका, प्रमाण देने की कोशिश की।

पजाब के लोगो मे अपनी पुरानी धार्मिक सहिष्णुता की परम्परा के विरुद्ध इस धार्मिक नीति की बहुत अद्भुत प्रतिक्रिया हुई। मुसलमानो से पहले जो अनेक आक्रमण-कारी यहाँ आये थे उनकी राजनीतिक सत्ता धर्म पर आधारित नही थी। इसी कारण वे सास्कृतिक रूप मे यहाँ के समाज का एक अग बन गये थे और यहाँ ऐसे घुल-मिल गये थे कि उनका विदेशीपन बिल्कुल गायब हो गया था।

राजनीतिक अवस्था

तेरहवी शताब्दी के आरम्भ से पजाब मे सुलतानो का मुस्लिम राज्य चलता आ रहा था। समय बीतने पर भारतीय धर्म, जन-जीवन और रीति-रिवाजो का भी इस्लाम पर प्रभाव पड चुका था। इस्लाम एक मिशनरी धर्म होने के कारण अलग धर्म तो जरूर रहा पर उसका रूप काफी बदल गया था।

मुसलमानो के सास्कृतिक जीवन की उच्चता को गैरमुसलमानो ने कभी स्वीकार नही किया था। इसी कारण उनका राज्य होते हुए भी उनकी सस्कृति को उच्च नही समझा गया और न ही उनका मन से सम्मान किया गया। हिन्दू प्रजा अपने शासको को मलेच्छ मानती रही और उनके राज्य को एक मुसीबत।

मुसलमानो को राजनीतिक दृष्टिकोण से जो सफलता मिली थी वह उस समय की भारतीय राजनीतिक दशा की कमजोरी का प्रतीक थी। सुलतानो के राज्य मे उनकी अपनी अदरूनी अवस्था भी धीरे-धीरे विगड़ती गई थी। इस बारे मे तैमूर लग का सन् 1398 का आक्रमण यह सिद्ध करने के लिए काफी था कि सुलतानो का शासन-

प्रबन्ध खोखला हो चुका था और उस की शक्ति हीन हो चुकी थी। केन्द्रीय राज्य की सत्ता घटनी शुरू हो गई थी और प्रादेशिक राज्य स्थापित होने शुरू हो गये थे और वे दिन प्रतिदिन अधिकाधिक प्रबल होते जा रहे थे।

पन्द्रहवी शताब्दी के मध्य मे लोधी सुलतान दिल्ली मे राज्य करते थे जिन मे से बहलोल लोधी 1451-89, सिकन्दर लोधी 1489-1517 और इब्राहीम लोधो 1517-1526 ईस्वी तक राज्य करते रहे थे। लोधी वश के समय मे, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, तैमूर के आक्रमणो का फल प्रादेशिक राज्यो के उभरने के रूप मे काफी स्पष्ट हो चुका था। उस समय सुलतान का अपना दर्जा भी इतना नीचा हो गया था कि उसको केवल एक मुखिया माना जाता था। सुलतान खुद भी अपनी महानता कम दिखाना चाहते थे। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि बहलोल लोधी राज सिहासन पर बैठने की बजाय अपने अमीरो-वजीरो के साथ फर्श पर बैठना पसन्द करता था और सामाजिक सम्मेलनो मे भी उनके साथ घुलना-मिलना पसन्द करता था। इस से उनके कुछ प्रसिद्ध अमीरो तथा सबधियो के हौसले इतने बढ गये थे कि वह सत्ता छीनने के लिए उत्सुक थे और कई तो इसके लिए षड्यन्त्र भी रचने लगे थे। अमीरो-वजीरो मे आपसी मतभेद और ईर्ष्या भी काफी बढ चुकी थी। इन सब कारणो से राजनीतिक अवस्था काफी छिन्न-भिन्न, ढीली और भ्रष्ट हो गई थी। इस आपसी फूट का फल, जैसा कि भारत के इतिहास मे होता रहा है, एक बार फिर बाहरी आक्रमण के रूप मे हुआ। इस अवस्था को देखकर ही और लोधी परिवार के कुछ सदस्यो तथा प्रसिद्ध अधिकारियों के निमन्त्रण पर ही बाबर जो कि अपने छोटे से फरगाना राज्य में अपनी सत्ता खो बैठा था काबुल के रास्ते पजाब पर कई आक्रमण करने और अपनी शक्ति बढाने के पश्चात् भारत का सम्राट् बनने के स्वप्न देख रहा था।

धार्मिक अवस्था

धार्मिक रूप मे भी पजाब की इस काल मे काफी बुरी दशा थी। मुस्लिम राज्य धर्म पर आधारित था और इस कारण इस्लाम के न मानने वालो को वे अधिकार प्राप्त नही थे जो मुसलमानो को दिये गये थे। इस्लाम के भारत मे प्रवेश से धार्मिक संघर्ष का सूत्रपात हुआ था और मुसलमान हाकिम इस पर बहुत बल देते थे। इस्लाम के प्रति अपनी विशेष श्रद्धा दिखाने और बहु संख्यक गैर मुसलमानो को उनका नीचा दर्जा जताने के लिए धर्म के नाम पर बहुत से दुर्व्यवहार तथा अत्याचार भी करते थे। इस काल मे मन्दिरों को तोडने और इस्लाम के न मानने वालो को कत्ल करने की अनेक घटनाएँ होती रहती थी। कुतबुद्दीन एबक के बारे में कहा जाता है कि उसने 700 मन्दिर तोडकर उनके स्थान पर मस्जिदें बनवा दी थी। चित्तौड की विजय के समय अलाउद्दीन खिलजी ने 30 हज़ार हिन्दुओं को कत्ल कर दिया था। इसी तरह तुगलक सुलतानों के बारे मे कहा जाता है कि वे प्राचीरों पर हिन्दुओ के कटे हुए सिर देखकर प्रसन्न होते थे। तैमूर के आक्रमण के समय कहा जाता है कि कई लाख हिन्दुओं को मरवा दिया गया था। ऐसी स्थिति मे मुस्लिम धर्म को न केवल राजधर्म बल्कि उत्तम धर्म भी मनवाना ज़रूरी था। अधिक से अधिक लोगों को इस धर्म मे प्रवेश करने के

लिए कई तरह से लालच देकर या दबाव डालकर प्रेरित किया जाता था। ऐसी अवस्था मे धार्मिक स्वतत्रता या सहिष्णुता का तो सवाल ही नही पैदा होता था। इसके विरुद्ध जो गैर मुसलमान लोग थे उनको अपने धर्म की रक्षा के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पडता था और कई प्रकार के अत्याचार भी सहन करने पडते थे।

सुलतानो के राज्य काल मे इस्लाम धर्म मे प्रवेश करने का अर्थ यह लिया जाता था कि वे लोग अपने आप को उच्च और राज करने वाला समझते थे। इस्लाम मे जो लोग इस धर्म के पालन मे और प्रचार मे विशेष काम करते थे उनको बहुत सम्मान दिया जाता था। ये मुल्ला लोग कुरान के आधार पर कानून बनाते और उनको लागू करने मे सहायता देते थे। जनसाधारण मे इन्ही के माध्यम से प्रचार होता था।

इस्लाम को न मानने वालो को दूसरे दर्जे के शहरी तो समझा ही जाता था, इसके अलावा उनको खुले तौर पर अपने धर्म का पालन या प्रचार करने की बहुत कम सुविधाएँ थी। अपने धर्म को वचाने की इच्छा से कई तरह की कुरीतियाँ पैदा हो गई थी और ये लोग अपने धर्म का असली रूप न जानते हुए उसको प्रचलित रूप मे ही मानते थे। इस भावना के कारण ही किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के इस्लाम के जरा भी प्रभाव मे आने पर उनको समाज से बाहर निकाल दिया जाता था। इन सब कारणो से हिन्दू धर्म का बहुत ही बिगडा हुआ रूप आम लोगों ने अपना लिया, कुछ लोगो ने इसको प्रोत्साहन भी दिया। हिन्दू धर्म का यह रूप टूणा, जादू या अनेक देवी-देवताओ के रूप मे लोगो मे फैल गया। धर्म के मूल रूप या महानता को लोग भूल से गये और बाहरी रूप मे ही और कट्टर हो कर उसका पालन करने लगे। हम इसको धर्म की बजाय केवल अन्ध-विश्वास ही कह सकते है।

सामाजिक अवस्था

शासक होने के नाते मुसलमान उस समय के समाज का उच्च वर्ग माने जाते थे। उनमे भी कई वर्ग थे। राजपरिवार के अलावा एक ऐसा वर्ग था जो शासन मे उच्च पदवियों पर लगा हुआ था। इनमे बहुत से कुछ विदेशी भी थे जो कि फौज या सिविल शासन प्रबन्ध के उच्च पदो पर लगे हुए थे। कुछेक बडी-बडी जागीरो के मालिक थे जो कि उनको उनके पदानुसार या राजपरिवार के साथ सबध के आधार पर दी गई थी।

ये लोग जिन्हे अमीर-वजीर कहा जाता था बडे ठाठ से जीवन व्यतीत करते थे क्योकि उन्हे सब तरह की शानो-शौकत के साधन प्राप्त थे। उनका जीवन भी बहुत ऐश और आराम मे कटता था। उनके पास असख्य दास-दासियाँ होते थे। राज्य की आमदनी का बहुत बडा भाग वे अपने आप पर ही खर्च करते थे। अमीरो के बाद के दर्जे मे वे मुसलमान थे जो या तो फौज मे नौकर होते थे या स्थानीय अधिकारी बनाये जाते थे। मुसलमानों मे मध्य श्रेणी के लोगों में बडे-बडे लेखक, धर्म-प्रचारक, व्यापारी आदि होते थे। इन लोगों का राजपरिवार या उच्च अधिकारियों के साथ सीधा सबध होता था। इनका जीवन भी काफी सुखी था। सबसे निचलो श्रेणी के मुसलमान लोग गुलाम कहलाते थे। वह घरो मे नौकरो के तौर पर छोटे-मोटे काम करते थे। इस

समय के मुसलमान राज्य मे यह विशेषता अवश्य थी कि अगर कोई गुलाम अपनी योग्यता से अपने स्वामी को खुश कर लेता था तो उसको उच्च पदो पर भी लगा दिया जाता था। यह बात इस काल के कुछ सुलतानो के, जो कि खुद गुलाम थे, सर्वोच्च अथवा सुलतान पद प्राप्त करने से सिद्ध होती है। मुसलमानो मे बहुत कम लोग ऐसे थे जो खेतीबाडी का काम करते थे। बडे शहरो में बहुत से मुसलमान कारीगर उच्च मुसलमान वर्गों के लिए ऐसी वस्तुओ के बनाने मे लगे रहते थे जो कि उनके साधारण जीवन मे काम आती थी।

हिन्दुओ को समाज का दूसरे दर्जे का और जुदा अग समझा जाता था हालाकि उनकी सख्या हाकिम वर्ग से बहुत अधिक थी। हिन्दुओ मे प्राचीन जात-पात के आधार पर चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अभी तक चले आ रहे थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है मुसलमानो के प्रभाव से अपने धर्म को बचाने के लिए जात-पात और भी कट्टर बन गई थी ताकि इस्लाम के प्रचार से बचा जा सके। हिन्दुओ ने अपनी रक्षा के लिए अपने आप को छोटी-छोटी जातियो मे इसलिये भी बाँट लिया था कि सब के सब एक बार ही मुसलमान न बन सके। राजनीतिक तौर पर कमजोर होने के कारण उन्होने अपनी रक्षा के लिए जात-पात का खाइयो के रूप मे प्रयोग किया था। उनकी दृष्टि मे इस्लाम की बाढ़ को रोकने का यह एकमात्र साधन था। हिन्दुओ मे जात-पात की कट्टरता उनकी निर्बलता से ही आई थी। साधारणतया हिन्दू छोटे-मोटे धन्धे करते थे। उनमे से कुछ लोग भूमि-कर इकट्ठा करने या दूसरे वित्त और राजस्व सबधी पदो पर लगे हुए थे। सामाजिक रूप मे मुसलमानो का उनके प्रति घृणात्मक व्यवहार था। उनको अपने धर्मप्रचार अथवा खुले तौर पर पूजा-पाठ आदि करने की आज्ञा नही थी। इससे भी अधिक उनको मुसलमानो के बराबर पालकी मे तथा घोडे पर सवारी करने का अधिकार नही था। कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते है कि उनको सामाजिक रूप मे निचले दर्जे का नागरिक समझा जाता था। ऐसी स्थिति मे गैर मुसलमानो का जीवन किस तरह का हो सकता है, हम इस का अच्छी तरह अन्दाजा लगा सकते है। उनकी स्थिति दलित और पिछडी हुई थी। उनके ऊपर जज़िया व विशेष धार्मिक कर लगाये जाते थे जिस से कि उनको मुसलमानो से नीचे दर्जे का समझा जाये और उनको मुसलमान बनने की प्रेरणा मिले।

आर्थिक अवस्था

पजाब अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बहुत उपजाऊ प्रान्त रहा है। यहाँ की भूमि अच्छी थी। वर्षा और दरियाओ और नदियो के साथ-साथ नहरों और कुँओ से भी सिंचाई सुविधाएँ मिलने के कारण पजाब कृषि-प्रधान था। यहाँ की जनता साधारणतया खेती-बाड़ी करके अपना अच्छा गुज़ारा कर सकती थी और उसके साथ-साथ पशु-पालन का काम भी काफी महत्त्वपूर्ण था क्योकि इसके बहुत से हिस्सो मे चरागाहे और जंगल मौजूद थे।

उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित होने के कारण पंजाब का मध्य एशिया के

मुसलमानो के साथ विशेष सबध हो गया था। इसलिए यह प्रान्त व्यापार का बडा केन्द्र बन गया था। उत्तर पश्चिमी दिशा से दूर-दूर के व्यापारी अपनी वस्तुएँ मुख्य शहरो मे ऊँचे वर्ग के लोगो के लिए लाते थे और भारत से भी पजाब के रास्ते बहुत सी वस्तुएँ विदेश भेजी जाती थी।

दस्तकारी अच्छे रूप मे केवल बडे-बडे शहरो मे ही केन्द्रित थी। उसमे उन चीजों को, जो कि अमीर लोगो के काम आती थी, प्रमुखता दी जाती थी। इसमे आमतौर पर उनके लिए ऐश्वर्य की वस्तुएँ होती थी जिसमे कीमती वस्त्र, सजावट का सामान और सजधज के सामान होते थे। ये दस्तकारियाँ विशेषतौर पर बडे शहरो तक सीमित थी।

छोटे-छोटे ग्रामों मे रहने वाले साधारण लोगो की आवश्यकताएँ वहाँ पर ही अपने कारीगरो द्वारा, जिन मे मुख्यत जुलाहे, लुहार, तरखान और कुम्हार आदि थे, पूरी हो जाती थी। इस रूप मे ग्राम प्राय पूरी तरह आत्म-निर्भर होते थे। आर्थिक रूप मे यह बहुत बडी सुविधा थी और जनजीवन के लिए बडी उपयोगी सिद्ध होती थी। राजप्रबध मे आये दिन परिवर्तन होने पर भी ग्रामीण जीवन उसी तरह से चल सकता था।

मध्य-कालीन पंजाब की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक अवस्था विशेषतौर पर खराब थी। राजनीतिक ढाँचा पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त तक काफी जर्जर हो चुका था और आपसी फूट के कारण विदेशी हमलो का या आपसी षड्यत्रो का अखाडा बन गया था। पजाब की विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण विदेश से आक्रमण करने वाले इनका लाभ उठा रहे थे। बाबर ने अपने आरभिक चार आक्रमणो मे यहाँ की दुर्दशा का पूरा लाभ उठाया था और पजाब पर अपना अधिकार जमा लिया था और इसको उसने हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त करने का विशेष साधन बनाया था। दौलत खाँ लोधी ने खुद बाबर को निमत्रण भेजा था और उस समय के सुलतान इब्राहीम लोधी को पराजित कराने मे उसका विशेष हाथ था। उस समय की शिथिल राजनीतिक अवस्था लोधी वश के पतन का और मुगल साम्राज्य की स्थापना का कारण बनी।

धार्मिक दृष्टिकोण से इस्लाम का आगमन धार्मिक कटुता, असहिष्णुता और घृणा का कारण बन गया था। मुसलमान शासको की धार्मिक नीति हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच धार्मिक मतभेद को दूर करने मे बाधक थी। इस्लाम भी अपनी पहली शक्ति को खो चुका था और तलवार से धर्म प्रचार करने की उसकी नीति भी काफी कमजोर हो गई थी। ऐसे समय मे कुछ "सूफी" विचारधारा के मुसलमान धर्म-प्रचारको ने दोनो धर्मो को एक दूसरे के निकट लाने का विशेष प्रयत्न किया था। साथ ही साथ, लोगो के पुराने विचारो का इस्लाम पर भी प्रभाव पडा था और इसका अपना स्वरूप भी काफी बदल गया था। इस्लाम मे भी कुछ ऐसी बाते प्रवेश कर गई थी जो कि इसके मूल सिद्धान्तो के प्रतिकूल थी। मुसलमानो मे भी यहाँ के कुछ रस्मो-रिवाजो

का प्रचलन हो गया था और साधारण मुसलमान भी भ्रातियो के शिकार हो गये थे। वह भी पीरो, फकीरो तथा कबरो की पूजा करने लगे थे। इस्लाम खुद अपना पुराना रूप छोड चुका था और मुसलमान बहुत हद तक स्थानीय परम्पराओ का पालन करने लगे थे और हिन्दुओ के मेलो आदि मे सम्मिलित होने लगे थे।

उस समय का समाज दो स्पष्ट भागो मे—मुस्लिम अथवा हाकिम वर्ग और गैर मुस्लिम बहुसख्यक प्रजा वर्ग मे बँटा हुआ था। हिन्दुओ की दशा दूसरे दर्जे के नागरिको की सी हो गई थी और उनके सामाजिक और धार्मिक जीवन पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हुए थे।

सब बातो को सामने रखते हुए कहा जा सकता है कि उस समय मे पजाब की हालत काफी गिरी हुई थी और इसी कारण इसमे परिवर्तन की बडी आवश्यकता थी।

प्रश्न

1. Give short account of the invasions of the Panjab by Babar between 1519—26 (previous to his final victory at Panipat) Which of these invasions is specially mentioned by Guru Nanak in his hymns and in what strain?

   पानीपत की अतिम विजय से पूर्व सन् 1519 से 26 तक बाबर ने जो पंजाब पर आक्रमण किए, उनका सक्षिप्त वर्णन करो। इन आक्रमणो मे से गुरु नानक देव जी ने कौन से आक्रमण का प्रमुख रूप से और किस आशय से अपने पदों मे ज़िक्र किया है?

2. What were the social and political conditions of the Panjab on the eve of Babar's invasion.

   बाबर के आक्रमण के समय पंजाब की सामाजिक तथा राजनीतिक दशा कैसी थी?

3. Describe the social and political conditions of the Panjab in 1469.

   सन् 1469 मे पंजाब की सामाजिक तथा राजनीतिक दशा का वर्णन करो।

4. Discuss the social and religious conditions prevailing in the Panjab towards the close of the 15th century.

   पद्रहवीं शताब्दी के अंत मे पजाब की सामाजिक और धार्मिक दशा का वर्णन करो।

4

पंजाब में भक्ति आंदोलन और उसकी विशेषताएँ

"भक्ति द्रावड उपजी, लाया रामानन्द उत्तर,
प्रगट कियो कबीर ने सप्त द्वीप नवखण्ड"

(भावार्थ भक्तिमार्ग सबसे पहले द्राविड लोगो मे अर्थात् दक्षिण मे पैदा हुआ था । रामानन्द ने इसको उत्तर भारत मे फैलाया और कबीर ने इसका प्रचार सात द्वीपो और नौ खण्डो मे अर्थात् सारे ससार मे किया) । जैसा कि ऊपर वाले दोहे से पता चलता है, भक्ति मार्ग बहुत पुरानी धार्मिक लहर थी । इसका मुख्य उद्देश्य उन लोगो को सच्चा मार्ग बताना था जो समय-समय पर आने वाली धार्मिक कुरीतियो के कारण हिन्दू धर्म से पूरी तरह सतुष्ट नही थे या जो हिन्दू-धर्म मे उचित सुधार करने के लिए कटिबद्ध थे । मूलत भक्ति मार्ग एक ऐसे आदोलन के रूप मे प्रचलित हुआ था जिसका उद्देश्य सामाजिक सुधार था ।

इस्लाम के भारत मे प्रवेश से इस प्राचीन धर्म मे पैदा हुई कुरीतियाँ और लोगों की कठिनाइयाँ विशेष रूप से सामने आने लगी थी । इस्लाम धर्म मे केवल एक ईश्वर को माना जाता है और जात-पात के विरुद्ध सब मुसलमानो को बराबर का दर्जा दिया जाता है । हिन्दू-धर्म मे काफी समय से कुछ वर्ग दलित चले आ रहे थे जिन को समाज मे बहुत नीचा दर्जा दिया जाता था । इसके साथ-साथ अनेक देवी-देवताओं की पूजा भी प्रलचित थी । इस्लाम के राजधर्म बनने पर कम-से-कम दलित जातियों को उसकी तरफ विशेष आकर्षण था । मुसलमान शासक ऐसे लोगो को प्रोत्साहन देते थे कि वे हिन्दू धर्म त्याग कर मुसलमान बन जाये जिससे उनको आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समता का लाभ हो सके । इस दोहरे खतरे का मुकाबला करने के लिए कुछ उदार विचार वाले हिन्दू धार्मिक नेता जिनको भक्त कहा जाता था, अपने-अपने समय मे भक्ति-वाद का प्रचार करने लगे थे ।

भक्तिवाद सबसे पहले रामानुज ने द्रविड देश मे आरम्भ किया था । वह उस समय के हिन्दू,-धर्म मे सुधार और जोत-पात की बुराइयो के विरुद्ध उनके निराकरण के लिए प्रचार करते थे । उनका जीवन काल ग्यारहवी शताब्दी माना जाता है । उनकी शिक्षाओ को एक और प्रसिद्ध भक्त नामदेव ने महाराष्ट्र मे काफी जोर से फैलाना शुरु किया था । नामदेव खुद जन्म से एक नीची जाति के दर्ज़ी थे । उन्होने महाराष्ट्र के दूसरे प्रसिद्ध धार्मिक नेता एकनाथ, तुकाराम के साथ मिलकर भक्तिवाद को फैलाया था । महाराष्ट्र से यह आदोलन पूर्व की ओर प्रसिद्ध कवि जयदेव द्वारा

(जिनकी रचना गीत गोविन्द है) और प्रसिद्ध बगाली धार्मिक नेता चैतन्य महाप्रभु द्वारा बगाल मे फैल गया। पूर्वी भारत से ही भक्तिवाद का उत्तरी भारत मे प्रचार हुआ। उत्तरी भारत मे भक्तिवाद के प्रमुख प्रचारक रामानन्द ही माने जाने चाहिएँ। उनको भक्त नामदेव जी का चौथा धार्मिक उत्तराधिकारी भी माना जाता है। कुछ लेखको ने रामानन्द को दक्षिण से उत्तर भारत मे भक्तिवाद को लाने के लिए एक पुल के रूप मे भी वर्णन किया है।

रामानन्द जी अपनी शिक्षाओ मे विशेषतौर पर ईश्वर भक्ति, जात-पात के निराकरण और दिखावे के पूजा-पाठ के त्याग पर बल देते थे। उनकी प्रसिद्ध शिक्षा उनकी कविता —"जात-पात पूछे न कोये, हर को भजे सो हर का होय" से यह बात स्पष्ट है। उन्होने जात-पात का ज़ोरदार खण्डन किया और इसी कारण उन्होने अपने प्रसिद्ध चेले, जिन मे पीपा, नर-हरि और कबीर प्रसिद्ध है, खासतौर पर नीची जाति मे से चुने। कबीर जिन का जन्मकाल निश्चित नही, परन्तु सन् 1398 कथित है, रामानन्द के सबसे मशहूर शिष्य थे। उनकी शिक्षाएँ सरल एव साधारण तथापि उच्च-कोटि के विचारो से भरपूर थी जिनके कारण भक्ति आदोलन भारत-वर्ष के कोने-कोने मे फैल गया। उनकी शिक्षाएँ जन-साधारण के लिए थी और उन्होने भक्ति आदोलन को जन-साधारण तक पहुँचाने मे बहुत सफलता प्राप्त की। कबीर हिन्दू-मुस्लिम एकता के सबसे पहले प्रचारक थे। उनका कथन था कि तुर्क और हिन्दू एक ही मिट्टी के बने हुए बर्तन है और वें जुदा-जुदा रास्तो से एक ही ईश्वर को प्राप्त करने का यत्न करते है। इसी कारण कबीर को सबसे पहला धर्म-प्रचारक कहा जाता है जिसने हिन्दू मुसलमानो के बीच धार्मिक मिलाप के लिए खासतौर पर यत्न किया। उनके दोहे हिन्दू और मुसलमान दोनो मे ही एक-जैसे लोकप्रिय थे। वह धर्म की ऐसी मूल बातों का प्रचार करते थे जो हिन्दू और मुसलमानो मे साझी थी।

कबीर जात-पात के कट्टर विरोधी थे और ब्राह्मणों की जन्मजात उच्चता और उनके अहकार को नही मानते थे। वह मूर्ति-पूजा में विश्वास नही रखते थे। उनका धर्म एक ईश्वर मे विश्वास और मानवता से गहरे प्यार पर आधारित था। उनकी शिक्षा स्पष्ट और सरल और जन-साधारण के लिए लाभकारी थी।

पंजाब में भक्ति आंदोलन की विशेषताएँ

पजाब मे भक्ति आदोलन के सबसे बडे स्तभ गुरु नानकदेव जी थे। उनके ऊपर भक्ति आंदोलन के बडे-बडे संतों का आमतौर पर और कबीर साहिब का खासतौर पर प्रभाव माना जाता है। गुरु नानकदेव जी ने कबीर साहिब के उपदेशो को विशेष रूप से लोगों मे फैलाया। गुरु नानक देव जी ने अपने चिन्तन, भ्रमण और उस समय के धार्मिक नेताओं से वाद-विवाद द्वारा आदोलन को पजाब मे एक विशिष्ट दिशा दी। जिस रूप मे उन्होने भक्ति आदोलन को पजाब मे चलाया वह भारत के दूसरे हिस्सों के भक्ति आंदोलन से काफी भिन्न हो गया। गुरु नानक देव जी ने भक्तिवाद के मूल सिद्धान्त को मानते हुए 'नाम' की महानता, गुरु भक्ति और ईश्वर चिन्तन पर विशेष बल दिया।

पंजाब मे भक्ति आंदोलन की भिन्नता

जिस रूप मे गुरु नानकदेव जी ने भक्ति आदोलन को पजाब मे चलाया था उसकी कुछ विशेषताएँ निम्नलिखत है

1. गुरु नानकदेव जी ने ससार को छोडकर मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग का पू ँ रूप से विरोध किया ।

2. अपने चलाए हुए भक्ति आदोलन मे उन्होने एक सशरीर गुरु का खास महत्त्व रखा । गुरु से उनका अभिप्राय एक ऐसे आदर्श व्यक्ति से था जो उस धर्म को मानने वालों के लिए प्रकाश स्तम्भ हो और वह उन शिक्षाओ को अपने जीवन मे ढाल कर दूसरो को दिखा सके ।

3 गुरु नानकदेव जी ने धर्म के ज्ञान के लिए मस्कृत को जानना जरूरी नही समझा तथा देवी-देवताओ और पौराणिक कथाओ का भी खण्डन किया ।

4 गुरु नानकदेव जी जात-पात को बिल्कुल नही मानते थे ।

5 गुरु नानकदेव जी का विश्वास केवल एक निराकार ईश्वर मे था । वह "चिद्-आकार" ईश्वर मे बिल्कुल विश्वास नही रखते थे, उनके विचार मे ईश्वर सारे संसार मे प्रत्येक से बडा और काल से ऊपर अथवा 'अकाल-पुरख" है ।

इन विशेषताओं के कारण ही पजाब मे भक्ति आदोलन का विशेष स्वरूप बन गया था और उसने विशेष मार्ग ग्रहण किया था । इन्ही कुछ कारणो से यह आदोलन पजाब मे निर्बाध रूप से चलता रहा, यही नही पजाब मे भक्ति आदोलन निरतर प्रबल होता गया, इसकी गति मन्द नही पडी । अपनी इन्ही विशेषताओ के कारण भक्ति आदोलन हिन्दू-धर्म मे लुप्त होने से बच गया और पुराने धर्म की कुरीतियो का इस पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा । इस का डाक्टर इन्दु भूषण बैनर्जी ने सुन्दर शब्दो मे वर्णन किया है कि "जहाँ भक्ति आदोलन भारत के दूसरे भागो मे कुछ समय खूब जोर से चलने के बाद धीरे-धीरे गतिहीन हो गया और छोटे-छोटे न समझ मे आने वाले सम्प्रदायो मे बँट गया पजाब मे यह आदोलन सिक्ख धर्म के रूप मे एक जुदा ही दिशा मे चल पडा था जो कालातर मे अपने आप में एक विशिष्ट राष्ट्रीय और धार्मिक चेतना बन गया ।"

प्रश्न

1. Mention briefly the distinctive features of the Bhakti movement in the Panjab. How far was Sikhism a part of that movement ?
   पजाब मे भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषताओ का सक्षिप्त वर्णन करो । सिक्ख धर्म को किस सीमा तक इस आन्दोलन का एक भाग कहा जा सकता है ?

2. "But whereas the other schools developed, more or less, on traditional lines, and after short periods of fruitful activity, quieted down into narrow, hidebound or at best mystical sects, Sikhism went off at a tangent " (Indubhushan Banerjee). In the light of the above remarks bring out clearly the distinguishing features of Sikhism vis-a-vis the Bhakti cult

"परन्तु जबकि भक्ति आंदोलन के अन्य सम्प्रदाय, न्यूनाधिक, परम्परागत ढर्रे पर पनपे, और कुछ थोडे समय के लिए उन्हे अपनी गतिविधियो में सफलता भी मिली, पर वे शीघ्र ही संकीर्ण, सीमित और ज्यादा कहे तो रहस्यात्मक सम्प्रदायो मे बदल गए, परन्तु सिक्ख सम्प्रदाय इन सब से जुदा ही दिशा मे चल पडा था...... "(इन्दु भूषण बैनर्जी)। इस कथन के दृष्टिगत सिक्ख धर्म व भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषताओ का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

5

गुरु नानक देव (1469—1539)

(उनका जीवन और शिक्षाएँ)

आरम्भिक जीवन

गुरु नानक देव जी का जन्म मैहता कालू के घर माता तृप्ता की कोख से 'तलवण्डी' नामक स्थान मे (जिस को आजकल ननकाना साहिब कहा जाता है) जो लाहौर से कोई 40 मील उत्तर पश्चिम की ओर है, तीन बैसाख 1526 विक्रमी अर्थात् 15 अप्रैल, 1469 को हुआ था।

गुरु नानकदेव जी की जन्म तिथि के बारे में विचार

सिक्खो के पुराने धर्म ग्रन्थो और जन्म साखियो मे उनकी जन्म तिथि बैसाख मे बताई जाती है। परन्तु आजकल उनका जन्म दिवस कार्तिक की पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस अन्तर के कुछ कारण यूँ बताये जाते है.

1. सेवादास की जन्म साखी, जो कि सन् 1588 ईस्वी मे लिखी गई थी, गुरु नानक देव का जन्म बैसाख मे बताती है।

2 भाई मनी सिंह जी ज्ञान रत्नावली मे और भाई गुरदास जी अपनी "वाराँ" मे बैसाख को सिक्खो का सर्वप्रसिद्ध उत्सव लिखते है।

3. परम्परागत रूप मे भी सन् 1815 तक गुरु जी का जन्म दिवस बैसाख महीने मे ननकाना साहिब के प्रसिद्ध स्थान (जो कि तलवण्डी का नया नाम है) पर मनाया जाता था।

4. सबसे पहले जन्म दिवस की तिथि मे परिवर्तन का जिक्र ज्ञान नानकप्रकाश जो कि सन् 1823 ईस्वी मे भाई संतोख सिंह ने लिखा था, मे आया है और इस ग्रन्थ मे गुरु नानक देव जी का जन्म कार्तिक 1526 विक्रमी मे बताया गया है। गुरु नानक देव जी की मृत्यु की तिथि असूज (आश्विन) 1526 विक्रमी के बारे मे कोई मतभेद नही है। यह भी बताया जाता है कि उनका जीवन काल 70 साल 5 महीने और सात दिन था। इस के अनुसार उनका जन्म कार्तिक की बजाय बैसाख मे बनता है।

मैकालिफ ने लिखा है कि सबसे पहले उनके जन्म दिवस के लिए कार्तिक की तिथि महाराजा रणजीत सिंह के समय मे भाई सन्त सिंह जो कि अमृतसर के एक प्रसिद्ध धार्मिक नेता थे, ने बताई थी। इसका कारण यह बताया जाता है कि कार्तिक की पूर्णिमा के मौके पर अमृतसर के निकट रामतीर्थ स्थान पर हिन्दुओं का बहुत बडा मेला लगता है। इसलिए गुरु नानकदेव जी का जन्म दिवस बैसाख की बजाय कार्तिक मे मनाया

जाने लगा ताकि बहुत से सिक्ख लोग रामतीर्थ मेले मे शामिल न हो सके । दूसरा जो कारण हो सकता है वह इस तरह से कथित है कि बैसाख के महीने मे बहुत से प्रसिद्ध त्यौहार मनाये जाते हैं और कार्तिक मे शरद् ऋतु होती है और जन्म दिवस मे ज्यादा लोग इकट्ठे हो सकते है ।

उनका बचपन बडा असाधारण था । उनकी चिंतन शक्ति और विवेक सब को चकित कर देने वाले थे । ऐसा कहा जाता है कि उनकी कुण्डली से ही अनुमान लगाया गया था कि या तो वे छत्रधर राजा बनेंगे या बहुत मान्यता प्राप्त धर्म प्रचारक । गाँव के पाधे से शिक्षा प्राप्त करते हुए उन्होने अपने अद्भुत-ज्ञान का परिचय दिया था । उनके बचपन की कुछ घटनाएँ उनकी आश्चर्यजनक चेतना का प्रतीक थी । इन घटनाओ मे प्रसिद्ध है उनके पशु चराने जाने और उस समय उनके सो जाने के पश्चात् उनके पशुओ का एक खत मे घुसकर खेत को चर जाना । जब किसान ने अपने खेत की बरबादी की शिकायत की तो उन्होंने अपने पिता के साथ खेत मे ले जाकर उस किसान को दिखाया कि खेत तो उसी तरह से हरा भरा था और यह आरोप निराधार था । यह घटना "क्यारा साहिब" के नाम से प्रसिद्ध है ।

इसी तरह जब उनके पिता मैहता कालू ने उनको कुछ धन देकर व्यापार करने के लिए भेजा तो व्यापार की बजाय उन्होने इस धन राशि को रास्ते मे ही कुछ भूखे साधुओ को भोजन कराने मे खर्च कर दिया । घर आने पर जब उनके पिता ने पूछा कि वह धन किस काम पर खर्च हुआ तो नानक देव जी ने जवाब दिया कि उन्होने "सच्चा सौदा" करके वह धन खर्च कर दिया है । उनका भाव यह था कि उन्होंने वह रुपया परमार्थ के काम मे लगा दिया है, जिस को सासारिक काम के मुकाबले मे वह "सच्चा सौदा" मानते थे । इस पर पिता ने उनको दण्ड दिया । इस घटना से नानक की आध्यात्मिक वृत्ति का परिचय मिलता है ।

इस बालक की सासारिक कामो मे रुचि न होने के कारण माता-पिता ने उनका विवाह 14 साल की आयु मे बटाला निवासी मूला खत्री की सुपुत्री सुलखनी के साथ कर दिया (आज भी उनके विवाह की स्मृति मे बटाला, जिला गुरदासपुर, मे वार्षिक उत्सव मनाया जाता है) । नानक देव जी के दो सुपुत्र थे—श्री चन्द और लखमी चन्द । उनके बहनोई ने नानक देव जी को भी सुलतानपुर मे वहाँ के लोधी फौजदार के पास मोदीखाने (स्टोर) मे भण्डारी की पदवी पर लगवा दिया । ऐसा कहा जाता है कि वे मोदी खाने से खाने की वस्तुएँ खुले तौर पर गरीबो मे बाँट दिया करते थे । गिनी चीजें तोलते समय "तेरा" शब्द (जिस का अर्थ 13 अक या सब कुछ भगवान् को, जिस को भी "तेरा" कह कर पुकारा जाता है) उच्चारण करते थे । कहते है कि उनकी शिकायत होने पर कि वे फौजदार का माल लोगों मे मुफ्त बाँट देते है, जब पडताल की गई तो सब कुछ ठीक मिला था ।

सुलतानपुर-लोधी मे रहते हुए उन्होने जीवन का सच्चा अर्थ जानने के विशेष यत्न किये । वह अक्सर वहाँ पर नदी (जिस को काली बेंई कहते है) पर जाकर उसमें स्नान करते समय समाधि मे लीन हो जाते थे । ऐसा कहा जाता है कि एक दफा वह नहाते

समय 3 दिन तक अलोप रहे और उसके पश्चात् उनको यह ज्ञान हो गया कि "न कोऊ हिन्दू न कोऊ मुसलमान" और इस चीज का उन्होंने लोगो मे प्रचार करने का इरादा कर लिया। वास्तव मे इसको उन्होने अपने जीवन का मिशन बना लिया। उसी उद्देश्य को सामने रखते हुए अपने व्यवस्थित जीवन को छोडकर वह जिज्ञासु के रूप मे जगह-जगह जाने और भिन्न-भिन्न मत-मतातर के नेताओ से मिलकर विचारविनिमय करने लगे। इसीलिए सुलतानपुर छोडकर उन्होने भ्रमण करने का निश्चय किया।

गुरु नानक देव जी ने अपने जीवन के मिशन को पूरा करने के लिए कुछ प्रसिद्ध यात्राएँ की जिन को "उदासियाँ" कहा जाता है।

पहली उदासी, पूर्व तथा दक्षिण दिशा मे

सुलतानपुर मे ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् गुरु नानक देव जी ने सासारिक धन्धा छोड़ कर अपने नये मिशन का प्रचार करने का कार्यक्रम बनाया। भारत या भारत से बाहर भिन्न-भिन्न स्थानो पर हिन्दू व मुस्लिम धर्म स्थानो की यात्रा का उनका मुख्य उद्देश्य वहाँ पर जाकर उस समय के धार्मिक नेताओ से मिलकर अपने विचारो की परख करना था। वे जानना चाहते थे कि उनके विचार दूसरो के साथ तुलना करके कहाँ तक सत्य सिद्ध होते हैं। इस रूप मे वह एक जिज्ञासु थे जो भिन्न-भिन्न धर्मो के पालन करने वालो को देखकर या उनके नेताओ से विचार-विनिमय करके यह सिद्ध करना चाहते थे कि दूसरो के विचार कहाँ तक मिथ्या है और उनके अपने विचार कहाँ तक सच्चे सिद्ध होते है। इन यात्राओ को केवल देश-देशातर मे भ्रमण के रूप मे ही नही लिया जाना चाहिए अपितु गुरु नानक देव जी की इस प्रबल एषणा का प्रमाण समझना चाहिये जो वह सत्य की खोज करने मे रखते थे। उनकी इन यात्राओ को यदि वास्तविक ज्ञान की खोज के अनुष्ठान कहा जाये तो, अनुचित न होगा। जो कुछ ज्ञान उन्होने अपने चिन्तन से प्राप्त किया था उसको वे सत्सग और विचार-विनिमय की कसौटी पर घिस कर परखना चाहते थे ताकि वह अपने तौर पर दृढ निश्चय कर सके कि जो नया धर्म वह स्वय चलाना चाहते थे वह वास्तव मे ही सत्य पर आधारित है।

अपनी प्रथम यात्रा मे पहले वे सैयदपुर (एमनाबाद) पधारे, जहाँ पर कि कहा जाता है कि उनका सबसे पहले भक्त भाई लालो ने स्वागत किया। यह भी मशहूर है कि इसी स्थान पर वहाँ के प्रसिद्ध धनी मलिक भागो ने उनको भोजन पर बुलाया और उन्होने उसको अस्वीकार कर दिया और भाई लालो का साधारण भोजन खाना मान लिया। उन्होने यह दिखाया कि मलिक भागो के भोजन को हाथ से दबाने पर रक्त निकला था और भाई लालो के भोजन को इसी प्रकार दबाने से उसमे से दूध निकला था। भाव यह था कि गुरु जी जानते थे कि मलिक भागो की कमाई नेक कर्मो का फल नही थी और उसके मुकाबले मे गरीब भाई लालो का भोजन अच्छे कर्मों का फल था। गुरु साहिब ने सबसे पहले अपने धर्म प्रचार का केन्द्र या "मँजी" को भी एमनाबाद मे ही स्थापित किया था।

इसके बाद वह तोलम्बा (मुलतान के निकट) पहुँचे जहाँ पर उन्होंने सज्जन नामक

प्रसिद्ध ठग को अपना सेवक बनाया। उसने अपना पुराना लूटने का काम छोड कर उनका धर्म ग्रहण कर लिया। तोलम्बा से गुरु जी सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र पधारे जहाँ बहुत से यात्री आये हुए थे। कहा जाता है कि इस तीर्थ स्थान पर एक जगत राय नामी भक्त ने उनको मृग का माँस भेंट किया, जिसे कि गुरु जी ने पकाना शुरू कर दिया। वहाँ इकट्ठे हुए ब्राह्मणो के एक धार्मिक नेता ने इसको बहुत बुरा बताया। परन्तु गुरु नानकदेव जी ने उनको यह उत्तर दिया "मन की पवित्रता ही असली पवित्रता है। खान-पान अथवा दूसरी बाहरी बातो से उस पर कोई असर नही पडता"। इसके पश्चात् हरिद्वार पहुँचने पर गुरु जी ने अपने विचारो का, लोगो के भ्रम और मिथ्यावाद को मिटाने के लिए अद्भुत रूप से प्रचार किया। कुछ लोगो को स्नान के बाद पितरो को पानी छोडते देखकर उन्होने भी लोटा उठाकर उलटी दिशा मे पानी गिराना आरम्भ कर दिया। लोगो के पूछने पर कि उनके ऐसा करने का क्या उद्देश्य है, उन्होने उत्तर दिया कि वह करतारपुर में स्थित अपने खेतो को पानी दे रहे है। लोगो के आश्चर्य प्रकट करने पर कि उनका पानी इतनी दूर खेतो मे कैसे पहुँच जायेगा। उन्होने उनसे प्रश्न किया, तो फिर आपका गिराया हुआ पानी दूसरी दुनिया मे आपके पितरो को कैसे पहुँच जायेगा ? उनका भाव यह मर्म समझाना था कि यह सब कुछ केवल भ्रम है।

हरिद्वार से चल कर गुरु जी पानीपत पहुँचे जहाँ उनका परिचय वहाँ के मशहूर सूफी सत शेख शरफुद्दीन से हुआ। यहाँ से वह दिल्ली होते हुए बनारस पहुँचे जहाँ यह मशहूर हो गया कि एक पजाबी साधू बडे मीठे शब्दो मे हिन्दू और मुसलमानो को एक नये मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। बनारस के चतुरदासी नामी ब्राह्मण नेता के साथ विवाद मे गुरु जी ने यह सिद्ध कर दिया कि अच्छे कर्म करने और नाम जपने से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। बनारस के बाद गोरख-मत्ता स्थान पर जो कि पीली-भीत के पास है गुरु जी एक जोगियो के मठ मे पहुँचे जहाँ पर उन्होने उपदेश दिया कि शरीर पर बभूत लगाने अथवा कानो मे छेद करवाने से ईश्वर की प्राप्ति नही हो सकती और उनके मतानुसार : "मनुष्य मात्र को सासारिक अपवित्रता मे पवित्र रहने की कोशिश करनी चाहिये।"

इससे आगे गुरु जी गया होते हुए कामरूप (असम) पहुँचे। कहा जाता है कि वहाँ पर उनकी भेंट नूरशाह नामी एक जादूगर सुन्दरी से हुई जिस ने मन्त्र, तन्त्र से गुरु जी को अपने वश मे करने का बहुत यत्न किया। परन्तु गुरु जी ने इनको विफल कर दिया। यहाँ से होकर गुरु जी उडीसा मे प्रसिद्ध जगन्नाथ पुरी मन्दिर में पहुँचे। उनके वहाँ पर देवताओं की आरती में शामिल न होने का कारण पूछने पर उन्होने उत्तर दिया कि वह मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं रखते और उनके विचार मे ईश्वर की आरती सदा ही "गगन में थाल " के रूप में होती रहती है। भाव यह था कि केवल एक ईश्वर की पूजा करने और नाम जपने से ही मनुष्य की मुक्ति हो सकती है। वहाँ से चलकर पाँगल, गुडप्पा, मद्रास, नागा-पट्टम, रामेश्वरम् से होते हुए वे श्री लका पहुँचे। उनका मुख्य उद्देश्य श्री लका पहुँचकर वहाँ के विख्यात राजा शिवनाभ या शिवनाथ से भेंट करना था। श्री

लंका मे उन्होने प्रसिद्ध धार्मिक स्थान देखे और अपना प्रचार किया। कहा जाता है कि उन्होंने 'प्राण संगली' नामक पुस्तक भी वही लिखी थी और वहाँ पर अपनी सगत भी स्थापित की थी। वहाँ से वापस आते हुए उन्होने लाहौर के दो प्रसिद्ध खत्रियो, दूनी-चन्द और करोडीमल को अपना भक्त बनाया। कहा जाता है कि उनकी सहायता से गुरु जी ने अपनी नयी बस्ती करतारपुर (रावी के दाहिने किनारे) डेरा बाबा के निकट बनाई।

दूसरी उदासी, उत्तर दिशा में

गुरु जी की दूसरी यात्रा सन् 1514 मे हिमालय की ओर थी। इस यात्रा मे उनके साथ हसन लुहार और सिहॉछिम्ब (छपाई करने वाला) थे। उन्होने इस यात्रा में ऊँचे पहाडो पर जाने वाले वस्त्र, चमडे के लम्बे जूते और जानवर की खाल की फरवाली टोपी धारण की थी। इस दिशा मे वे तराई के इलाके से होते हुए कश्मीर की घाटी मे पहुँचे थे। वहाँ पर उन्होने प्रसिद्ध कश्मीरी पण्डित ब्रह्मदास और उनके साथियों को शास्त्रार्थ मे जीत कर अपने विचारो को मानने वाला बना लिया था। वहाँ पर उन्होने अपने धर्म का केन्द्र अथवा सगत भी स्थापित की थी। कश्मीर से आगे कहा जाता है कि गुरु जी ऊँचे पहाडो मे जोगियो और सिद्धों को मिलते हुए मानसरोवर और कैलाश तक पहुँचे थे। उनको अपनी कोई विशेष करामात दिखाने के लिए कहने पर उन्होने उत्तर दिया था कि सच्ची करामात 'सत-नाम' है।

वापसी पर गुरु जी हसन अब्दाल (जो आजकल पजा साहिब के नाम से प्रसिद्ध है) के रास्ते आये थे। वहाँ पर उनकी भेंट एक मुसलमान पीर बाबा वली से हुई जो कि उस जगह स्थित एक पहाडी के ऊपर रहते थे। कहा जाता है कि बाबा वली ने ईर्ष्या-वश गुरु नानक देव जी के ऊपर पहाडी पर से एक बड़ी चट्टान उनको हानि पहुँचाने के लिए लुढका दी थी। गुरु जी ने उस पत्थर को अपने हाथ से रोक दिया। इस हाथ का निशान उस पत्थर पर जो कि सिक्खो का एक प्रसिद्ध तीर्थ है आज भी मौजूद है और इसी कारण उसको पजा साहिब कहा जाता है।

तीसरी उदासी*, पश्चिम एशिया की दिशा में

तीसरी बार गुरु जी सन् 1519 के लगभग पश्चिमी-दिशा मे भारत से

---

*गुरु नानक देव जी की उदासियाँ परम्परागत पाँच मानी जाती है परन्तु यह वास्तविक नही है। नई खोज द्वारा अब यह सिद्ध हो गया है कि गुरु नानकदेव जी की केवल तीन उदासियाँ थी जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है। यह बात गुरु नानक देव जी के समकालीन यात्रा मार्गों से भी सिद्ध होती है कि उन्होने तीन से अधिक यात्राएँ नही की। साधारणतया यही उचित समझा जा सकता है कि कोई भी यात्री उडीसा स्थित जगन्नाथ पुरी तक पहुँचकर अगर उसका उद्देश्य लका तक जाने का है, लौटकर पंजाब नही आयेगा और दुबारा इतने लम्बे रास्ते पर जाने का जोखम नही उठायेगा।

बाहर यात्रा पर गये थे । उनका उद्देश्य प्रसिद्ध मुस्लिम धार्मिक स्थानो पर जाकर वहाँ के नेताओ से विचार-विमर्श करना था । मुस्लिम देशो मे जाने के उद्देश्य से गुरु जी ने नीले वस्त्र धारण किये और ऐसा स्वरूप बनाया जैसा कि मुस्लिम दरवेशो का होता है । इस यात्रा मे उल्लेखनीय बात उनका मक्का पहुँचकर "काबा" की तरफ पाँव करके एक वृक्ष के नीचे सो जाना था । वहाँ के पुजारी के आक्षेप करने पर उन्होने उससे प्रार्थना की कि वह उनके पाँव उस दिशा मे कर दे जिसमे "काबा" नही है । ऐसा कथन है कि उनके पाँवों को मोडने पर काबा भी उसी दिशा मे घूम गया । भाव यह था कि ईश्वर सर्वव्यापी है । हम उससे बाहर नही जा सकते । मक्का से गुरुजी मदीना पहुँचे और वहाँ पर उन्होने पवित्र जीवन और नेक कर्म करने का उपदेश दिया । मदीना के पश्चात् गुरु जी बगदाद पहुँचे । कहा जाता है कि वहाँ पर मुस्लिम सत शेख बहलोल से उनका परिचय हुआ और वह गुरु जी के विचारो को मानने लगा । यह भेट एक शिला-लेख जो सन् 1916 मे कुछ पजाबी सिपाहियोने जो कि पहले विश्वयुद्ध मे मैसेपोटेमिया गये थे, खोजा था से सिद्ध होती है । इसमे अर्बी भाषा मे लिखा हुआ था कि एक हिन्दू गुरु, नानक, फकीर बहलोल को मिले थे । इस मुलाकात का साल 917 हिजरी अर्थात् सन् 1520-21 माना जाता है । गुरु जी अपने पुराने भक्त भाई लालो को मिलने के लिए सैयदपुर अथवा एमनाबाद पहुँचे । दुर्भाग्य-वश उस समय बाबर बादशाह ने उस शहर पर आक्रमण कर दिया था जिस के फलस्वरूप वह बर्बाद हो गया और वहाँ बहुत से लोग मारे गये और बदी बना लिये गये । उनमे गुरु नानक देव जी स्वय भी पकडे गये थे और उनको कारागार मे दूसरे कैदियो की तरह चक्की पीसने का काम दिया गया था । लोगो की दुर्दशा देखकर ही गुरु नानक देव जी ने उस समय कहा था "बावर अपने साथ पाप की बारात लेकर काबुल से आया है और लोगो के धन को अपनी दुलहन के रूप में प्राप्त करना चाहता है "फलस्वरूप" लोगो की इज्जत और धर्म सब उड गये है और झूठ हर जगह फैल गया है" । सैयदपुर पर बाबर के आक्रमण का वर्णन जो कि गुरु नानक जी ने अपनी आँखो से देखा और उनके अपने अनुभव पर आधारित है, आदि ग्रन्थ में मिलता है । ऐसा भी कहा जाता है कि गुरु नानक की बाबर से स्वय भेंट हुई थी और उन्होने ऐसे धार्मिक नेता को कैद किये जाने पर खेद प्रकट किया था और उनको छोड़ने का आदेश दिया था । परन्तु गुरु जी ने उस समय तक आज़ाद न होने का आग्रह किया जब तक दूसरे कैदियो को नही छोड दिया जाता ।

उसी तरह सैयदपुर की घटना उनकी तीसरी उदासी से सबधित है क्योंकि पेशावर की दिशा से लौटते हुए दूसरे प्रसिद्ध धर्म-स्थानो पर ठहरते हुए सैयदपुर साथ ही लगता था ।

नई खोज के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि गुरु नानक देव जी की उदासियाँ केवल तीन थी, न कि चार या पाँच जैसा कि कुछ लेखकों ने सिद्ध करना चाहा है । यह ऐतिहासिक रूप से केवल तीन ही सिद्ध हुई हैं ।

सैयदपुर से आगे गुरु जी पसरूर और स्यालोकट गये थे । वहाँ पर उन्होने अपनी संगती की स्थापना की थी । इससे आगे मिट्ठनकोट पहुँचकर उन्होने वहाँ के प्रसिद्ध मुस्लिम सत मियाँ मिट्ठा को अपना भक्त बना लिया । तलवण्डी पहुँचकर उन्होने नई बसाई हुई बस्ती करतारपुर का और विकास किया और आगे के लिए वहाँ रहने का प्रबध किया ।

अपने जीवन का बाकी समय गुरु जी ने करतारपुर मे ही अपने साथियो समेत व्यतीत किया । अब उन्होने अपने बनाये हुए धर्म को व्यावहारिक रूप देकर उसके अनुकूल रहना शुरू कर दिया । करतारपुर मे उन सब का जीवन आम परिस्थितियों जैसा जीवन था । सब लोग सारे कामो मे लगकर अपने धर्म का पालन इस रूप मे करते थे जैसे गुरु जी ने प्रचार किया था, "ससार की अपवित्रता मे पवित्र जीवन धारण करे ।"

करतारपुर मे रहते हुए अपने जीवन के कोई 15 साल गुरु जी ने अपने साथियों समेत बिताये थे । वहाँ सब के लिए एक ही भोजनालय और एक ही प्रार्थनालय थे । सब लोग बिना किसी ऊँच-नीच के भेदभाव के सादा और निर्मल जीवन व्यतीत करते थे । प्रभात के समय सब मिलकर उपासना करते और उसके बाद अपने-अपने कामो मे लग जाते और सध्या समय फिर इकट्ठे होकर ईश्वर स्तुति करते थे । गुरु जी के प्रसिद्ध साथी मर्दाना, बाघीरथ, भाई बुड्ढा, मियाँ मिट्ठा और भाई लैहणा (जो उनके बाद गुरु अगद बने) थे । आपस मे प्रेम के नाते सब एक दूसरे को "भाई" कहकर पुकारते थे । इन सब को गुरु के शिष्य होने के कारण "सिक्ख" कहा जाने लगा ।

सब लोग एक जैसे विचार रखते हुए और नये धर्म के अनुकूल अपना आचार बनाने के कारण एक ही परिवार के रूप मे रहते थे ।

अन्तिम दिनो मे गुरु जी ने भाई लैहणा को अपना उत्तराधिकारी बनाया जो गुरु अगद देव के नाम से प्रसिद्ध हुए । वह भाई लैहणा को अपने इतना निकट समझते थे कि उन्होने उसे अपने जिस्म के अग का नाम दिया था । उन्होने गुरु गद्दी के लिए केवल योग्यता को ही महानता दी और अपने पुत्रो को भी इस पद के लिए योग्य नही समझा । उन्होने यह प्रबध सन् 1538 ईस्वी मे मरने से पहले ही कर दिया था ।

70 साल पाँच महीने और सात दिन की आयु पाकर जोती-जोत समाने से पहले गुरु जी ने अपने ईश्वर से मिलने की खुशी मे एक "सोहला" अर्थात् मगल गीत गाया । जिससे उनकी ईश्वर के लिए अथाह भक्ति और श्रद्धा का प्रमाण मिलता है ।

मरणोपरान्त कहा जाता है कि हिन्दू और मुसलमानो ने अपने-अपने तरीके से उनका अन्तिम सस्कार करने का आग्रह किया । जब मृत देह के ऊपर से सफेद चादर को उठाकर देखा गया तो वहाँ मुट्ठी भर फूलो के सिवाय कुछ नही था । चादर को हिन्दू और मुसलमानो ने बाँटकर क्रमश जला और दफना दिया । गुरु नानक देव जी के हिन्दुओ और मुसलमानो मे प्रिय होने का इस कथन से भी ज्ञान होता है कि उनको "बाबा नानक शाह फकीर, हिन्दुओ का गुरु मुसलमानो का पीर" कहकर पुकारा जाता था ।

गुरु नानक देव जी की शिक्षाएँ

स्वरूप और विशेषताएँ

गुरु नानक देव जी ने भक्तिवाद को न केवल नया रूप दिया अपितु उसको विशेष दिशा भी दी। मुख्यत परिवर्तन जो उन्होंने किये वे नये आन्दोलन के सामाजिक और आध्यात्मिक स्वरूप को स्पष्ट करते हैं।

मूल सिद्धांत

नया आन्दोलन मूल रूप मे निम्नलिखित बातो पर आधारित है

(क) एक ईश्वर मे विश्वास,

(ख) "नाम" की महानता और उपासना, और

(ग) गुरु की नितात आवश्यकता।

(क) एक ईश्वर में विश्वास

ईश्वर का नया स्वरूप जो गुरु नानक जी समझते थे वह निराकार और सर्वव्यापी था। उनके सिद्धान्त के अनुसार परमात्मा एक है और सारे ब्रह्माण्ड मे समाया हुआ है। उनके ईश्वर का स्वरूप करुणा-मय और दयालु है, जिसको सच्ची भक्ति और शुद्ध और पवित्र जीवन से प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर भक्ति के लिए हर किस्म के अभिमान (काम-क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) को त्याग कर स्वय को ईश्वर के अर्पण करके उसमे लीन हो जाने को ईश्वर प्राप्ति कहते हैं।

(ख) 'नाम" की महानता और उपासना

गुरु नानक देव जी ने "सत नाम" को सब से बडी उपासना बताया। उनके कथनानुसार " जो कोई सत नाम का उच्चारण नही करता, वह जीवन-मरण के चक्कर से मुक्त नही होगा।" उनके विचार मे ईश्वर प्राप्ति का सबसे अच्छा साधन "नाम" ही हैं। उनके विचार मे "नाम सब देवताओ का परम देवता" है। परन्तु "नाम" की उपासना पूर्ण श्रद्धा और पवित्रता—मन, वचन और कर्म से होनी चाहिये।

(ग) गुरु की महानता

प्राचीन परम्परा "गुरु बिन गत नाही" के अनुसार गुरु नानक देव जी ने गुरु पद को बहुत उच्च और आवश्यक माना। यह विशेष रूप से गुरु साहिब की शिक्षाओ मे कहा गया है कि गुरु ही मुक्ति दिलाने वाला है। साधारण रूप से भक्तिवाद मे गुरु की महानता को माना गया है। परन्तु गुरु नानक देव ने इस पदवी को अपने नये आन्दोलन की नीवे मजबूत करने के लिए और उसे अपनी मृत्यु के बाद भी चलाने

के लिए इस सस्था को अपने धर्म का आवश्यक अग बना दिया। वास्तव मे सिक्ख धर्म के सफल रूप से चलते रहने का एक विशेष कारण गुरु सस्था ही है जो कि एक के बाद दूसरे को सौप दी जाती थी। गुरु को लगातार और शारीरिक रूप मे स्थापना के कारण ही यह नया आन्दोलन अच्छी तरह से चलता रहा और सफल हो सका था।

शिक्षाओं का सामाजिक रूप

1. सर्वसाधारण के जीवन मे परिवर्तन लाने के लिए गुरु नानक देव ने सबसे ज्यादा बल शुभ कर्म करने पर दिया है। वास्तव मे उन्होने दूसरे भक्तिवाद के प्रवर्तक के कथनानुसार "जात-पात पूछे नही कोय, हर को भजे सो हर को होये," को इस रूप मे प्रचलित किया था, "करमाँ दे होणगे नबेडे, जात किसे पूछणी नही"। गुरु जी ने कर्म को अपने साधारण और आध्यात्मिक जीवन मे एक जैसा महत्त्व दिया है। वह सासारिक जीवन को छोडने या वैराग्य धारण करने के एकदम विरुद्ध थे। उन्होने अच्छे कर्मो को ही मुक्ति का साधन माना था। उनके शब्दो मे, "सत्य बहुत महान् है, मगर उससे भी महान सत्य कर्म है।"

2. इस सिद्धान्त के अनुसार गुरु साहिब सब प्रकार के दिखावे वाले रस्मो-रिवाज को मिथ्या समझते थे। उन्होने इन सब चीजो के विरुद्ध आवाज़ उठाई और इन्हे धर्म का बिगडा हुआ स्वरूप बताया।

3. जहाँ गुरु साहिब ने अच्छे कर्मो की महानता पर बल दिया था, वहाँ साथ ही साथ उन्होने यह भी सिद्ध किया था कि हम ये अच्छे कर्म अपने साधारण जीवन मे ही करके मुक्ति प्राप्त कर सकते है। यही सिक्ख धर्म की एक बडी विशेषता है। अत आम गृहस्थियो का धर्म होने के कारण यह धर्म बहुत जल्दी सर्व-प्रिय बन गया।

4 गुरु नानक जी एक ईश्वर के सब भक्तो को समान समझते थे। वह जात-पात के विरुद्ध थे। ऊँच-नीच की भावना को मिटाने के लिए ही उन्होने सुलतानपुर मे ज्ञान प्राप्त करने के बाद कहा था "न कोई हिन्दू, न कोई मुसलमान" अर्थात् हिन्दू और मुसलमानो का भेदभाव और उनमे परस्पर घृणा और सघर्ष निराधार है। सब एक ईश्वर के बच्चे है। गुरु साहिब की शिक्षाओ का उद्देश्य परस्पर प्रेम और सद्भावना उत्पन्न करना है। उनका कहना था कि "ईश्वर सब का एक पिता है और सब प्राणी भाई-भाई है"।

गुरु नानकदेव की शिक्षाओं की सफलता के कारण

गुरु नानक देव जी के नये आन्दोलन की सफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित थे :

1. इन कारणो मे सबसे प्रमुख था उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व। वह स्वभाव से कोमल मगर अपने विचारो के बहुत दृढ थे। जहाँ भी वो जाते थे, आम लोगो मे उनके प्रचार का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। वह अपनी मीठी वाणी से सब को मोह लेते थे।

2 गुरु नानक देव जी ने जो कुछ लोगो मे प्रचार किया, उसको स्वय अपने

जीवन मे ग्रहण करके उच्च आचार और उच्च विचार का सबूत दिया। वास्तव मे वह जो कुछ लोगो को कहते थे अपने जीवन मे खुद वैसा ही करते थे। उनकी अपनी मिसाल का बहुत अच्छा असर पडा।

3 गुरु नानक देव जी के उपदेश बहुत सरल, स्पष्ट और जनसाधारण के जीवन मे बिना किसी कठिनाई के पालन किये जा सकते थे। उनकी शिक्षाओ मे कोई ऐसी बात नही थी जो कि आम आदमी की समझ मे न आ सके। उनकी एक बहुत बडी विशेषता यह थी कि अपने प्रचार मे गूढ से गूढ बातो को भी जनसाधारण को बहुत अच्छे ढग से समझा देते थे।

4 गुरु नानक देव जी के प्रचार की सफलता का एक बहुत बडा कारण सस्कृत की बजाय बोल-चाल की भाषा (पजाबी) मे प्रचार करना था। इसी लिए उनकी शिक्षा अधिक लोगो तक पहुँच सकी और बहुत जल्द ही लोगो मे फैल भी गई।

5 गुरु नानक देव ने अपनी नई शिक्षाओ को ऐसे रोचक ढग से लोगो मे फैलाया कि उनको बुरा भला कहे बगैर ही कुरीतियो का ज्ञान उनको करवा दिया। उदाहरणार्थ, हरिद्वार मे हिन्दुओ को अपने पितरो को पानी देते हुए देखकर उनका उलटी दिशा मे पानी गिराने का उद्देश्य लोगो को यह बताना था कि यह सब प्रपचवाद है। मगर जो कुछ उन्होने किया वह व्यग्य रूप मे था ताकि लोगो का ध्यान उनकी तरफ आर्कषित हो सके और बिना वाद-विवाद किए लोगो को उनकी गलती बताई जा सके। इसी तरह मक्का जाने पर उनके पॉवो की दिशा मुसलमानो के धार्मिक स्थान की तरफ करने पर आपत्ति करने वालो को उनका यह कहना कि "पॉव उस तरफ कर दो जिधर परमात्मा नही है", का उद्देश्य यह जतलाना था कि यह सब कुछ मिथ्या है। दूसरे स्थानों पर भी वह अपने हास्य और व्यग्य के लिए सर्व-प्रिय हो गये थे। इस ढग से प्रचार करने के फलस्वरूप उनकी शिक्षाएँ बहुत जल्दा फैल गई थी।

6 गुरु नानक देव की शिक्षाओ की सफलता का एक कारण यह भी था कि मुसलमानो मे उनके उदारमना "सूफी" सन्तो के प्रचार के कारण अनुकूल वाता-वरण उत्पन्न हो गया था। इस्लाम और हिन्दू-धर्म के अनुयायियो के कई सौ साल तक साथ-साथ रहने के कारण जनसाधारण मे एक दूसरे के विरुद्ध कटुता बहुत हद तक दूर हो गई थी और फिर सन्तो की शिक्षाएँ भी बहुत हद तक वेदान्त के विचारों से मिलती-जुलती थी। गुरु नानक देव जी ने दोनो धर्मों के अनुयायियो को परस्पर एक दूसरे को समझने की रुचि को बढावा दिया। इस प्रकार उन्होने हिन्दुओ और मुसलमानों को परस्पर एक दूसरे के अधिक निकट लाने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अत: जन-साधारण यह महसूस करने लगे कि उनकी शिक्षाओ मे दोनो धर्मों की अच्छी बातो का मिश्रण है।

उपर्युक्त कारणो से गुरु नानक देव को अपनी शिक्षाओ के प्रचार और प्रसार मे अद्भुत सफलता प्राप्त हुई। इन सब कारणों से ही थोडे समय मे ही सिक्ख धर्म सर्व-प्रिय बनकर एक प्रबल समुदाय बन गया।

गुरु नानक देव की शिक्षाओं का हिन्दू धर्म और इस्लाम के साथ संबंध

जैसा कि गुरु नानक देव जी की शिक्षाओ की सफलता से सिद्ध होता है कि जिन बातो का उन्होने प्रचार किया वे वास्तव मे हिन्दू धर्म और इस्लाम मे साँझी थी। उन्होने मोटे तौर पर उन बातो को अपना लिया जिन पर कि ये दोनो धर्म सहमत थे। इस लिए सिक्ख धर्म के बारे मे यह नही कहा जा सकता कि उस मे केवल एक धर्म के सिद्धान्तो का ही समावेश है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो सिक्ख धर्म की उत्पत्ति हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनो को परस्पर एक दूसरे के निकट लाने के उद्देश्य से हुई थी ताकि यहाँ रहने वाले दोनो धर्मों के अनुयायी आपस मे सघर्ष और घृणा को त्याग दे और मूल सिद्धान्तो पर वाद-विवाद करना छोड दे। सिक्ख धर्म को इस रूप मे यदि मध्यम मार्ग या बीच का रास्ता कहा जाये तो अनुचित न होगा। ऐसा लगता है कि गुरु नानक देव जी ने "न कोऊ हिन्दू, न कोऊ मुसलमान" कथन से हिन्दुओ और मुसलमानो को यह जतलाने की चेष्टा की थी कि दोनो के मूल सिद्धान्त एक है और भिन्नता केवल बाहरी आडम्बर के कारण है। सरदार खुशवन्त सिह का भी यही कथन है। वह लिखते है कि "सिक्ख धर्म हिन्दू और मुसलमानो के धर्म के प्रभावाधीन पुनर्जागरण की एक उच्च मिसाल है। सिक्ख धर्म एक ऐसे भवन का प्रतीक है जिसको हिन्दुओ की ईंटो और मुसलमानो के गारे से बनाया गया हो।"

गुरु नानक देव सुधारक या क्रान्तिकारी

(क) इस बात पर बहुत से इतिहासकारों मे मतभेद है कि गुरु नानक देव मूलत एक सुधारक थे या क्रान्तिकारी। इन्दू भूषण, जिन्होंने सिक्ख इतिहास का विशेष अध्ययन किया है, यह मानते है कि "सिक्ख धर्म भक्ति आन्दोलन का एक स्वरूप था और उस समय के जनसाधारण मे फैलाये जाने वाले धर्मो के परिवार का एक सदस्य था"। इस दृष्टिकोण से गुरु नानक देव जी के एक सुधारक होने की बात सिद्ध होती है। उन्होने हिन्दू धर्म के सिद्धान्तो मे कोई मूलभूत परिवर्तन नही किया। मात्र उसकी कुरीतियो को दूर करने की ही कोशिश की। उनका उद्देश्य हिन्दू धर्म मे जो बुरी बाते या उलटी मर्यादाएँ उत्पन्न हो गई थीं उन्हे दूर करना था। उनकी शिक्षाएँ दूसरे भक्तो की शिक्षाओ के अनुकूल थी। इसीलिए उनकी वाणी गुरुग्रन्थ साहिब, जो सिक्खो का मूल धर्मग्रन्थ है, मे मिलती है। गुरु नानक देव जी स्वय अपनी शिक्षाओ मे उनका वर्णन करते थे। डाक्टर इन्दूभूषण बैनर्जी के कथनानुसार, "गुरु नानक देव का उद्देश्य हिन्दू धर्म का सफाया करना नहीं, अपितु उनको शुद्ध करना था। मार्टन लूथर जो उनके समकालीन ही थे, की भाँति ही उनका आदोलन भी धर्म के विद्रूप को ठीक करने के लिए ही था। गुरु नानक देव मूर्तिवाद, अन्धविश्वास और मिथ्या कर्म-काड का विरोध करते थे, जिनके कारण धर्म का शुद्ध रूप लुप्तप्राय हो चुका था और लोग ईश्वर से दूर हटते जा रहे थे।

गुरु नानक देव जी को एक क्रान्तिकारी मानने वाले लोगो मे से भाई कोहन सिंह,

डाक्टर गण्डा सिह, प्रोफैसर तेजा सिह ग्रौर मैकालिफ के नाम उल्लेखनीय है। उनके विचार मे गुरु नानक देव जी एक ऐसे क्रान्तिकारी थे जो "समाज मे उथल-पुथल लाकर उनके खण्डहरो पर एक नये समाज का निर्माण करना चाहते थे।" उनके कथनानुसार यह बात जात-पात के विरोध ग्रौर मन्यासवाद की ग्रालोचना, मूर्ति पूजा का खण्डन ग्रौर पौराणिक कथाग्रो मे ग्रविश्वास से सिद्ध होती है।

गुरु नानकदेव जी के जीवन को भली भाँति समझने ग्रौर उन की शिक्षाग्रो के भाव से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह भ्रमवाद के विरोधी थे। परन्तु उन्होने मूल सिद्धान्तो को नष्ट करने की कभी कोशिश नही की। हिन्दू धर्म की कुरीतियो की तरफ विशेष ध्यान दिलाने मे उनका मतलब इसका नाश करना नही था। यह तो उसके खोट को दूर करने का यत्न था। इस बात को सामने रखते हुए यह मानना पडेगा कि गुरु नानक देव जी एक महान सुधारक थे ग्रौर उनका ग्रान्दोलन हिन्दू धर्म मे से सब खोट निकाल कर उसे एकदम विशुद्ध करने का एक भगीरथ प्रयास था। इस दृष्टि से उन्हे एक "क्रान्तिकारी" सुधारक की सज्ञा दी जा सकती है। क्योकि वह जो परिवर्तन लाना चाहते थे, वे बहुत ग्रनोखे ग्रौर विशाल थे। गुरु नानक देव खुद भी यह मानते थे कि वह कोई नया धर्म नही चलाना चाहते। वह केवल पुराने धर्म की बुराइयो को जड से उखाड कर उसका पवित्र रूप लोगो के सामने लाना चाहते थे। उनका ग्रान्दोलन इन कुरीतियो के विरुद्ध था जोकि हिन्दू धर्म मे प्रवेश कर गई थी ग्रौर जिन्होने उसके ग्रसली रूप को बिगाड दिया था।

गुरु नानक देव का इतिहास में स्थान

गुरु नानक देव पजाब के इतिहास मे बहुत ऊँचा स्थान रखते है। पजाब के बाहर भी उनकी महानता यह है कि उनको सदा मानवता के महान रक्षको मे गिना जाएगा। इस लिए उनकी तुलना ईसामसीह, महात्माबुद्ध कनफ्यूशस ग्रौर जौराष्ट्र जैसे धर्म प्रवर्तको से की जा सकती है। सर गोकुल चन्द नारग ने ठीक ही कहा है, "गुरु नानक देव पजाब के हिन्दुग्रो को जिस ग्रवस्था मे वे उनके ग्राने से पहले थे, उससे कही बहुत ग्रच्छी हालत मे छोडकर गये थे। उन्होने हिन्दुग्रो की विचारधारा ग्रौर उनके सामाजिक ग्रौर धार्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला था।" गुरु नानक देव बहुत बडे सुधारक थे जिसके कारण वे इतने सर्वप्रिय हो गए थे कि उनकी शिक्षाएँ जल्दी ही घर-घर मे फैल गई थी। लाखो पजाबवासी—जिन मे हिन्दू ग्रौर मुसलमान दोनो शामिल थे, उनका हार्दिक सम्मान करते थे। उनकी सर्वप्रियता का इससे बडा प्रमाण नही मिल सकता कि उनके निधन पर हिन्दू ग्रौर मुसलमान ग्रपने-ग्रपने ढग से उनका ग्रन्तिम संस्कार करना चाहते थे। उनकी शिक्षाएँ जो कि सारे संसार ग्रथवा प्राणी मात्र के लिए थी, उनको ग्रमर बनाने की विशेष कारण बनी। जो बात उन्होने बार-बार लोगो को बताई, वह थी ग्रच्छे कर्म करके ग्रौर सासारिक जीवन मे रह कर मुक्ति प्राप्त करना। यह बात सब लोगो के मन मे जल्दी ही घर कर गई थी। इसी कारण गुरु नानक देव का नाम ग्राज भी उसी सम्मान से लिया जाता है जैसाकि उनके जीवन काल मे।

प्रश्न

1. Comment on Guru Nanak's famous saying "There is no Hindu, No Mussalman".
"न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान" गुरु नानक जी की इस प्रसिद्ध उक्ति पर टिप्पणी दे ।
2. "The whole system of Nanak stands distinguished from other reform movements by two peculiarities, its non-sectarian character and secondly, its reconciliation with secular life". State the essentials of the teachings of Guru Nanak and examine the statement in the light of above.
नानक जी के समूचे धर्म- मे दो ऐसी विशेषताएँ थी जो उसे अन्य सुधार आदोलनो से विलग करती थी पहली विशेषता तो इसका असाम्प्रदायिक स्वरूप था और दूसरे इसकी शिक्षाएँ सासारिक जीवन के अनुरूप थी ।" गुरु नानक जी की शिक्षाओं सबधी आवश्यक बातो का उल्लेख करते हुए उपर्युक्त कथन पर विवेचनात्मक टिप्पणी दीजिए ।
3. "The legend of Guru Nanak's life will always bring into activity the tender feelings of human soul and all men will proclaim that among sons of man none was born greater than Nanak" (Sewa Ram Singh). Elucidate the above.
"गुरु नानक देव जी के जीवन की कहानी मनुष्य-आत्मा की कोमल भावनाओ को सदा-सदा के लिए विलोडती रहेगी और सभी व्यक्ति यह दावा करेगे कि मानव-जाति ने जिन महान् पुत्रो को जन्म दिया, नानक उनमे सर्वाधिक महान् थे" (सेवाराम सिह) । उपर्युक्त कथन का सविस्तर विवेचन कीजिए ।
4. What are the different versions of Guru Nanak's date of birth ? what is your own view about it ?
गुरु नानक देव जी की जन्म-तिथि के बारे मे विभिन्न मतो का उल्लेख करे। इस सबध मे आप का अपना विचार क्या है ?
5. "Guru Nanak aimed at upsetting the cherished institutions of society in which he was born, bringing about a social cataclysm on the ruins of old." Elucidate.
गुरु नानक जी का उद्देश्य उस गले-सडे एव जर्जर सामाजिक ढाँचे की, जिस मे उन्होने जन्म लिया था, सुस्थापित सस्थाओ को जडसे उखाड फेकना था ताकि क्रातिकारी सामाजिक सुधार किए जा सके ।" इस कथन की व्याख्या कीजिए ।
6. Give a critical account of the life of Guru Nanak. Indicate your sources.

गुरु नानक जी की जीवनी के बारे मे ग्राप क्या जानते है ? इसका विवेचनात्मक विवरण दे ग्रौर इसके स्रोतो का भी उल्लेख करे ।

7. Do you think Sikhism had its start in a portest against conventionalism ? Comment on Guru Nanak's statement, "There is no Hindu, no Mussalman".
क्या ग्राप के विचार मे सिक्ख धर्म का जन्म रूढिवादिता के विरुद्ध प्रोटेस्ट करने के लिए हुग्रा ? "न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान," गुरु नानक जी के इस कथन पर टिप्पणी कीजिए ।

8. Discuss critically whether Guru Nanak was a reformer or a revolutionary ?
"गुरु नानक एक समाज सुधारक थे ग्रथवा क्रातिकारी," इस पर विवेचनात्मक टिप्पणी दीजिए ।

9. Give a critical acccount of the 'Udasis' of Guru Nanak.
गुरु नानक की 'उदासियो' का ग्रालोचनात्मक विवरण दीजिए ।

10 "Guru Nanak's unique position in history is essentially due to the universal appeal of his teachings". Elucidate with special reference to the new religious system evolved by him
"गुरु नानक जी की शिक्षाएँ विशेषकर सर्वव्यापी एव सार्वत्रिक होने के कारण इतिहास मे उन्हे ग्रद्वितीय स्थान प्राप्त है ।" इस कथन की उस द्वारा प्रचारित एव प्रचालित नई धार्मिक पद्धत्ति के सदर्भ मे व्याख्या कीजिए ।

11. Evaluate "Janam Sakhis" as a source of information on the life of Guru Nanak.
गुरु नानक जी की जीवनी के सूचना स्रोत के रूप मे "जन्म साखियो" का मूल्याकन कीजिए ।

12. "The spirit of both Hinduism and Islam was hidden beneath a mass of formalities and extraneous observances." Elucidate with reference to the conditions prevailing in the Panjab towards the close of the 15th Century
"हिन्दू धर्म ग्रौर इस्लाम दोनो की ही ग्रात्मा (स्पिरिट) ढेर-सारी ग्रौपचारिकताग्रों ग्रौर बाहरी दिखावे के नीचे छिप गई थी ।" 15वी शताब्दी के ग्रन्त मे जो परिस्थितियाँ पंजाब मे विद्यमान थी, उनके सन्दर्भ मे उपर्युक्त कथन की व्याख्या कीजिए ।

13. "He was not to kill, but to heal, not to destroy but to conserve" (Indubhushan Banerjee). Discuss the above with reference to Guru Nanak's mission.

"उसने मारने के लिए नही, उपचार के लिए और विनाश के लिए नही, बल्कि सुरक्षा के लिए जन्म लिया था" (इन्दु भूषण बैनर्जी) । गुरु नानक के मिशन के संदर्भ मे इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

14. Write a critical note on the value of "Janam Sakhis" as a source of Sikh history.
"जन्म साखियों" का सिक्ख इतिहास के स्रोत के रूप मे क्या मूल्य है ? इस पर एक समीक्षात्मक टिप्पणी लिखिए ।

15. What is significance of Guru Nanak's utterance, 'There is no Hindu, no Mussalman".
"न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान," गुरु नानक के इस कथन का क्या महत्त्व है ?

16. What are the salient features of the teachings of Guru Nanak Dev.
गुरु नानक देव की शिक्षाओ की प्रमुख विशेषताएँ क्या है ?

6

सिक्ख पंथ की स्थापना और उसका संगठन

गुरुनानक देव जी के निधन के समय सिक्खों की स्थिति

गुरु नानक देव जी परलोक सिधारने के समय तक सिक्ख मत न तो स्पष्ट रूप से स्थापित हो सका था और न ही उसकी अपनी विशेषताएँ उभर कर सामने आई थी। उन्होंने केवल अपने उत्तराधिकारी गुरु अगद देव को नियुक्त करके अपने पथ को आगे चलाने का काम उनको सौपा था। हिन्दू धर्म से अलग सिक्ख मत के मानने वाले उस समय एक छोटे से पथ से ज्यादा नही थे। उनकी एक नये पथ के रूप मे स्थापना, अपनी विशेष भाषा, साहित्य परम्पराएँ और मर्यादाएँ अभी उत्पन्न नही हुई थी। गुरु नानक देव जी ने अपने अनुयायियो को सगठित कर एक नये मत का आधार बनाया था, नया सदेश दिया था। नये मत का अभी अच्छी तरह सचालन न होने के कारण हो सकता था कि इसको मानने वाले बहुत थोडे समय मे ही फिर से हिन्दू धर्म मे समा जाते और पिता पुरखी धर्म का अंग बन जाते, जैसा कि सिक्ख मत से पहले के भक्ति आदोलनो मे हुआ था। हिन्दू धर्म के बारे मे यह प्रसिद्ध हो चुका था कि जब किसी नये आदोलन को चलाने वाला नेता नही रहता था तो यह उस आन्दोलन को हड़प्प कर जाता था। गुरु नानक देव ने इस बात का विशेष ध्यान रखते हुए गुरु अगद को अपने जीवन मे ही गुरु बनाकर नये मत के मानने वालों का सगठन करने का काम सौप दिया था।

गुरु अंगद (1538-1552) का सिक्ख मत के संगठन के लिए काम

अपने गुरु काल मे अगद देव ने सिक्ख पथ के प्रचार और प्रसार के लिए विशेष उपाय किये

1 सबसे पहले उन्होने गुरमुखी लिपि के विकास का काम प्रारभ किया जिस के माध्यम से नये मत का प्रचार किया जा सकता था। उस समय भी प्रचलित लिपियो मे से एक विशेष लिपि को शुद्ध करके उसका नाम गुरमुखी रखा गया। यह लिपि उस समय के पजाब मे लँडे अथवा टाकरी की जगह अपनाई गई। इसकी आवश्यकता इसलिए समझी गई कि साधारण लोग सस्कृत को जो हिन्दुओ के पवित्र ग्रन्थों की भाषा थी, बहुत कम जानते थे और सिक्ख धर्म का प्रचार करने के लिए जनसाधारण की बोली ही उपयोगी हो सकती थी।

2. गुरु नानक देव जी की वाणी को इकट्ठा करके और नयी लिपि मे प्रतियाँ तैयार करवा कर गुरु अगद देव ने अपने नये मत के प्रचार केन्द्रो मे उन्हे भेजने का

प्रबन्ध किया। उनका उद्देश्य यह था कि नये मत के अनुयायियो को गुरु नानक देव जी के जीवन से परिचित कराया जाए ताकि उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति की भावना पैदा हो सके। इसी कारण नये मत के मानने वालो का नाम नानक पथी पड गया। इसका दूसरा उद्देश्य यह था कि नये मत के मानने वाले हिन्दुओ की धर्म कथाओं के स्थान पर इन कथाओ को सुने।

3 गुरु अगद ने लगर की प्रथा भी चालू की। "लगर" जिस का अर्थ सब का मिलकर एक स्थान पर भोजन करना था, का उद्देश्य नये मत के मानने वालो को एक स्थान पर इकट्ठा करके उनमे ऊँच-नीच अथवा जात-पात के विचार को दूर करना था। लंगर प्रथा सब को एक जैसा बनाने के लिए बहुत आवश्यक समझी गई थी। नये मत के प्रचार का भी यह बहुत बडा साधन बन गई थी।

4. गुरु अगद ने नये मत के मानने वालो को उदासी मत के प्रभाव से बचाने का भी विशेष यत्न किया। उदासी मत गुरु नानक देव के सुपुत्र श्री चन्द ने चलाया था। सिक्ख मत की रक्षा के लिए ऐसा करना बहुत जरूरी था ताकि नये मत के मानने वाले गुरुनानक देव के सुपुत्र के प्रभाव से अपना मत त्याग कर उदासी न बन जाये।

गुरु अंगद देव के काम का महत्त्व

उपर्युक्त प्रबन्ध और सिक्ख धर्म के प्रबल प्रचार के कारण इस मत का नया रूप उभरने लगा था। गुरु नानक के मत को मानने वाले एक विशेष पथ का रूप धारण करने लगे थे। परन्तु अत तक इस मत को मानने वाले पूरी तरह सगठित नही हुए थे और न ही नये मत के कोई विशेष चिह्न बन सके थे। फिर भी गुरु अगद का नेतृत्व सिक्ख धर्म के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ और इस मत के मानने वालो को ठीक मार्ग पर चलाने मे वे काफी सफल हुए।

गुरु अमर दास (1552-1574)

1 तीसरे सिक्ख गुरु अमर दास के लिए सबसे पहले उदासियो के विरोध को समाप्त करना जरूरी था। उदासियो के नेता श्री चन्द ने (जो कि नानकदेव के सुपुत्र थे) नये धर्म का नेता बनने का अधिकार प्राप्त करने की कोशिश की थी। गुरु अगद के बाद वे समझते थे कि उनको नेता माना जाएगा क्योकि उनके पिता ने स्वय गुरु नियुक्त किये थे, वह तो उनसे अधिक योग्य समझे जा सकते थे परन्तु गुरु अगद की मृत्यु के पश्चात् गुरु नानक के बडे सुपुत्र के नाते उनका अधिक अधिकार बनता था। गुरु अमरदास ने विशेष साधन किये कि नये मत के मानने वाले उदासियो के साथ किसी किस्म का सबध न रखे जिससे कि वे सिक्ख पन्थ को उदासी सम्प्रदाय से अलग रख सकें।

2. गुरु अमर दास अपना निवास स्थान बदल कर ब्यास के किनारे गोईदवाल मे चले गये। वहाँ पर उन्होने एक बावली का निर्माण किया जिस की 84 सीढ़ियाँ थी। ऐसा प्रचलित है कि जो सिक्ख बावली की यात्रा के समय हर एक पौडी पर

"जपु जी" का जाप करेगा वह 84 लाख जूनि से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर सकेगा। इस तरह यह बावली सिक्खों का नया तीर्थ बन गई।

3. गुरु अमर दास ने लगर प्रथा को बहुत दृढता और सुचारु ढग से लागू किया। उन्होने ऐसा आदेश दिया "जो कोई भी गुरु के दर्शन करना चाहते है वह पहले गुरु के लगर मे भोजन खाये"। गुरु अमर दास ने लगर की महानता पर बहुत बल दिया। परिणामस्वरूप एक ही स्थान पर सब सिक्खों के भोजन करने से उनके अन्दर ऊँच-नीच की भावना कम हो गई।

4 "मजी प्रथा" के अन्तर्गत धर्म प्रचार के लिए गुरु अमर दास ने नये केन्द्र स्थापित किये जिन को "मजी" का नाम दिया गया। यह इसलिए हुआ कि जो प्रचारक नियुक्त किये गये थे वह इन केन्द्रो मे "मजी" अथवा छोटी चारपाई पर बैठकर उपदेश दिया करते थे। इस रूप मे गुरु अमर दास ने 22 "मजी" अथवा प्रचार केन्द्र स्थापित किये। फलस्वरूप नये मत का अच्छी तरह प्रचार होने लगा।

5 गुरु अमरदास ने नये मत के मानने वालो को केवल बैसाखी और दीवाली के त्यौहार मनाने के आदेश दिये। उन्होने सिक्खो के जन्म और मरण के सस्कारो का भी विशेष रूप से मनाने का प्रबन्ध किया। सिक्खो के विवाह सस्कार के लिए एक नया आनन्द गीत रचकर उन्होने नये मत के मानने वालो को उसके अनुसार विवाह करने का आदेश दिया। गुरु अमरदास ने सती प्रथा को रोकने का भी आदेश दिया था। कहते है कि गोईदवाल मे सम्राट् अकबर गुरु अमरदास के दर्शन करने आये थे और उन्होने गुरु जी का बडा सम्मान किया था। ऐसा भी कहा जाता है क सम्राट अकबर ने उन्हे लगर के लिए भूमि देने की इच्छा प्रकट की थी परन्तु गुरु जी ने उसे स्वीकार नही किया था।

निष्कर्ष

गुरु अगद की भाँति गुरु अमर दास ने भी सिक्ख मत की स्थापना और सगठन के लिए विशेष काम किये थे जिनके कारण सिक्ख मत हिन्दू धर्म से भिन्न एक विशेष रूप धारण करने लगा था। इस मत के मानने वाले अब एक बिल्कुल जुदा वर्ग बन गये थे और उनके अलग चिह्न भी स्पष्ट होने लगे थे। इन्दू भूषण बैनर्जी के कथनानुसार "गुरु अमर दास के गुरु काल मे हिन्दू मत और सिक्ख मत का अन्तर स्पष्ट होने लगा और सिक्ख धीरे-धीरे पुराने हिन्दू समाज से दूर होने लगे और कालातर मे एक जुदा वर्ग अथवा एक बिल्कुल नये भाईचारे के रूप मे सगठित हो गये।"

गुरु राम दास (1574-1581)

गुरु रामदास ने पहले तीन गुरुओं द्वारा सिक्ख मत के सगठन के लिए किए गए काम को और आगे बढाया। उनकी रखी हुई नीव को और मजबूत किया। उन्होने नये धर्म के केन्द्र के लिये एक नया स्थान चुना और एक नये शहर की स्थापना के लिए 500 बीघे भूमि खरीदने का प्रबन्ध किया। नया स्थान मध्य पंजाब अथवा 'माझा' में एक ऐसे प्राचीन कुण्ड के किनारे स्थित था जिस के पानी मे बहुत सी बीमारियों को दूर करने की शक्ति थी। इसके लिए भूमि, सम्राट अकबर के सौजन्य से सस्ते

भाव अर्थात् कुल 700 रुपए मे तुँग जिमीदार मालिको से 1577 मे खरीदी गई थी। गुरु रामदास ने वहाँ पर नये सरोवर का निर्माण अपने निरीक्षण मे करवाया। इन कारणो से इस स्थान का नाम गुरु का "चक" अथवा गुरु "रामदास पुरी" भी पड गया था। कालातर मे कुड के पानी मे अमृत के कथित गुण होने के कारण नये शहर और सरोवर का नाम अमृतसर हो गया।

1. नये शहर का चुनाव करने के भी कुछ विशेष कारण थे। यह स्थान उन बलवान किसानो की भूमि है जो कि सर्वाधिक सख्या मे सिक्ख धर्म के अनुयायी बने और जिन्होने आगे चलकर इस धर्म की रक्षा का बीडा उठाया।

2. गरु जी का विचार नये शहर को व्यापार का केन्द्र बनाना भी था ताकि यहाँ से पजाब के मैदानो और शहरी लोगो के साथ व्यापार हो सके। यह शहर के उचित स्थान के चुनाव का ही परिणाम था कि आगे चलकर गुरु अर्जुन देव जी की कोशिशो से अमृतसर उत्तर-पश्चिम भारत मे सुप्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बन गया जिस का सबध एक तरफ तो मध्य ऐशिया और दूसरी तरफ हिमालय के पार लाहौल स्पीति एव तिब्बत के साथ था।

सम्राट् अकबर के साथ मित्रता

1. उदार धार्मिक विचारो वाले सम्राट् अकबर के सबध सिक्ख गुरुओ के साथ मित्रता-पूर्ण थे। सम्राट् अपने लाहौर प्रवास के समय पहले भी गोईदवाल गुरु अमरदास के साथ भेट कर चुके थे। उन्होंने उन्हे लगर की स्थापना के लिए भूमि देने की भी पेशकश की थी जो कि उन्होने स्वीकार नही की थी। सम्राट् अकबर तथा उनके उत्तराधिकारी गुरु रामदास की भी इज्जत करते थे और उनके मित्र बन गये थे। सम्राट् के साथ मेल के कारण गुरु रामदास जी का प्रभाव जनता मे और भी प्रबल हो गया था और उसकी मान्यता भी काफी बढ गई थी। गुरु रामदास ने अपनी हरिद्वार यात्रा के समय यात्रियो के ऊपर लगाये जाने वाले टैक्स के कारण सम्राट् अकबर से उसे हटाने की अपील की थी और उनकी इच्छा के अनुसार यह टैक्स बिल्कुल हटा दिया गया था।

2. मुगल सेना, जो कि अबकर के साथ लाहौर के पास ठहरी हुई थी, ने आम वस्तुओ के भाव बढा दिये थे और उससे साधारण लोगो को बडी कठिनाई हो रही थी। गुरु रामदास की प्रेरणा पर सम्राट् अकबर ने इस इलाके के लोगो को भूमि कर से एक साल के लिए मुक्त कर दिया था। इन कारणो से जनसाधारण गुरु की बहुत प्रशसा करने लगे थे और उनके भारी सख्या मे अनुयायी बन गये थे। जनता की भलाई के इन कामो के कारण माझा और मालवा मे सिक्ख धर्म को बहुत प्रोत्साहन मिला।

गुरु प्रथा का पिता पुरखी बनाया जाना

गुरु रामदास की पत्नी बीबी भानी, जो कि तीसरे गुरु रामदास की सुपुत्री थी, ने अपने पिता की बडी लगन के साथ सेवा की थी। कहा जाता है कि एक बार अपने पिता को स्नान कराने के लिए लकडी की चौकी पर बैठाते समय एक लोहे की कील उनके हाथ मे लग गई परन्तु उन्होने बिना किसी किस्म का दुख प्रकट किये अपने

पिता को स्नान कराया । इस श्रद्धा से प्रभावित होकर गुरु अमरदास ने अपनी सुपुत्री को वर माँगने के लिए कहा था । इस पर बीबी भानी ने अपने पिता से यह माँग की थी कि वे आगे के लिए गुरु प्रथा उनके परिवार मे रहने का वर दे और इसको पिता पुरखी बना दे । इस वरदान का सिक्ख धर्म के विकास पर विशेष प्रभाव पडा । गुरु की पदवी जो कि पहले केवल धार्मिक रूप ही रखती थी, अब एक ही परिवार से सबधित होने के कारण राजनीतिक महत्त्व भी ग्रहण करने लगी । इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु रामदास को बाहर से नया गुरु नियुक्त करने की आवश्यकता नही रही । हाँ, अपने ही परिवार मे वे जिस किसी को पात्र समझे,उसकी नियुक्ति कर सकते थे । गुरु की पदवी पिता-पुरखी बनने के कारण गुरु को "सत् गुरु" के साथ-साथ लोग "सच्चा पातशाह" भी कहने लगे थे । इस परिवर्तन से गुरु के शिष्य उनको अपना सासारिक पिता अथवा राजा भी मानने लगे थे ।

मसन्द प्रथा

जैसा कि हम जान चुके है सिक्ख गुरुओ ने धर्म प्रचार के लिए कुछ केन्द्र स्थापित किये थे जिन को "मजी" कहा जाता था । इसी प्रथा मे थोडा परिवर्तन करके गुरु पद के लिए भेट एकत्रित करने का साधन भी बना दिया गया था । गुरु के लिए धन तथा वस्तुएँ इकट्ठी करके पहुँचाने के लिए विशेष व्यक्ति नियुक्त किये गये थे जिन के नाम आरभ मे रामदासिये और बाद मे मसन्दिये रखा गया । वह अपने-अपने इलाके मे गुरु के ऐजेंटो के तौर पर भेट एकत्र करते थे। कुछ विशेष मसन्द दूर-दूर तक भेजे गये ताकि वहाँ से गुरु के निर्माण के कामो के लिए धन एकत्र करके लाएँ । इस पद्धति से जो आगे काम आरभ हुए थे उनको सम्पन्न करने के साधन जुटाने का प्रबध हो गया ।

धर्म प्रचार

1 निर्माण के कामो के साथ-साथ गुरु रामदास ने हण्डाल नामी जण्डियाला निवासी, प्रसिद्ध आदमी को अपना अनुयायी बनाया और उसे गावो मे जाकर सिक्ख धर्म का प्रचार करने का आदेश दिया ।

2. गुरु रामदास ने भाई गुरदास को, जो कि प्रसिद्ध विद्वान् और भक्त थे, अपना प्रचारक बनाकर आगरा भेजा ।

3. गुरु रामदास ने उदासियो का विरोध कम करने का भी यत्न किया । वह बाबा श्री चन्द (सुपुत्र श्री गुरु नानक देव) को बड़ी नम्रता से मिलने गये । कहा जाता है कि उन्होने अपनी दाढी से उनके चरणों को छुआ । प्रसन्न होकर बाबा श्रीचन्द ने गुरु रामदास को अपना पूज्य मान लिया और आशीर्वाद दिया । इन सब बातों के कारण ही गुरु रामदास जी को जो 48 वर्ष की छोटी) आयु मे ही परलोक सिधारे थे, सिक्ख गुरुओ मे एक महान गुरु माना जाता है । उनके द्वारा किए गए काम सिक्ख धर्म के लिए बडे महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए । गुरुरामदास अमृतसर शहर के स्थापक थे और आज तक भी उनके नाम पर इस शहर के बसने का दिन अमृतसर मे धूम-धाम से मनाया जाता है ।

प्रश्न

1. When and under what circumstances did the pontifical seat (Gurugaddi) became hereditary in the Sikh Church ? State if the change in any way influenced the subsequent history of the community.
सिक्ख धर्म मे गुरु का पद (गुरु गद्दी) कब और किन परिस्थितियो के अधीन पैतृक बन गया ? यह भी बताएँ कि इस परिवर्तन ने सिक्ख समुदाय के उत्तरवर्ती इतिहास को किस प्रकार प्रभामित किया ?

2. Trace the development of the Sikh Panth upto the compilation of the Granth Sahib in 1604
सन् 1604 मे ग्रन्थ साहिब के सकलन के समय तक सिक्ख पथ के विकास का विवरण दीजिए ।

3. Examine critically the part played by Guru Amar Dass in strengthening the foundations of the Sikh Church.
सिक्ख धर्म की नीवे सुदृढ करने की दिशा मे गुरु अमर दास द्वारा दिय गए योगदान पर विवेचनात्मक टिप्पणी दीजिए ।

4. Describe how the Sikhs were "gradually marked out as a distinct community by themselves" under Guru Angad.
वर्णन करे कि सिक्ख मत गुरु अगद के नेतृत्व मे किस प्रकार "शनै शनै अलग एव स्वतन्त्र मत बन गया ?"

5. Study the contribution of Guru Amar Dass towards the religious organisation of the Sikhs.
सिक्खो के धार्मिक सगठन के लिए गुरु अमर दास द्वारा किए गए कार्यो अथवा योगदान का अध्ययन कीजिए ।

6. What were the services of Guru Angad to the spread of Guru Nanak's mission ?
गुरु नानक के मिशन को फैलाने के लिए गुरु अंगद जी द्वारा की गई सेवाओं अथवा कार्यो का उल्लेख करे ।

7. "The pontificate of Guru Amar Dass may be regarded as turning point in the history of Sikhs Discuss.
"गुरु अमरदास के गुरुकाल को सिक्ख इतिहास मे मोड बिंदु कहा जा सकता है ।" व्याख्या कीजिए ।

8. What was the contribution of (a) Guru Angad (b) Guru Amar Dass and (c) Guru Ram Dass to the development and organisation of the Sikh faith.

(क) गुरु अगद, एव गुरु अमर दास और (ग) गुरु राम दास ने सिक्ख मत के विकास और सगठन के लिए क्या योगदान दिया ?

9. "Guru Angad Dev, no doubt, done something to give the Sikhs an individuality of their own, but it was under (Guru) Amar Dass that the difference between a Hindu and a Sikh became more pronounced... .." (I.B. Banerjee) Discuss.

"निस्सन्देह, गुरु अगद ने सिक्ख धर्म एव सिक्खो को एक पृथक् व्यक्तित्व प्रदान किया, परन्तु गुरु अमर दास के समय मे सिक्ख रूढीवादी हिन्दुओं से अलग दीख पडने लगे थे" (इन्दू भूषण बैनर्जी) । व्याख्या कीजिए ।

10. Write a detailed note on "Masand System"

'"मसद प्रणाली" पर एक सविस्तर टिप्पणी लिखिए ।

सिक्ख धर्मतंत्र (थियोक्रेसी) की स्थापना

गुरु अर्जुन देव (1581– 1606)

विशेष गुण गुरु अर्जुन देव एक महान व्यक्ति थे। वह जन्म से ही कवि, वास्तविक दार्शनिक, प्रबल सगठनकर्ता और नीतिवान थे। अपने पूर्वजों की तरह अपनी सत-वृत्ति और उच्च आत्म-शक्ति के लिए भी वह बड़े प्रसिद्ध थे।

सिक्ख धर्म के संगठन के लिए काम

गुरु अर्जुन देव के समय तक सिक्ख धर्म का विशिष्ट स्वरूप काफी निखर आया था। स्वय गुरु के प्रभाव और शक्ति मे काफी वृद्धि हो गई थी और 22 धर्म **प्रचार** के केन्द्र (मजियाँ) स्थापित हो चुके थे। इसके साथ ही लगर प्रथा सुदृढ हो गई थी और मसन्द सस्था भी कायम हो चुकी थी। मुगल बादशाह के साथ अच्छे सबधो के परिणाम-स्वरूप सिक्ख गुरुओ का बहुत सम्मान होने लगा था। इस तरीके से सिक्ख धर्म की नीव काफी पक्की हो चुकी थी और अब धर्म के आधार पर एक धर्मतत्र (थियोक्रेसी) का ढाँचा उभर रहा था।

गुरु अर्जुन देव के इस काम के लिए परिस्थितिया अनुकूल थी और उन्होने साहस-पूर्ण रूप से सिख पथ को सगठित करने का यत्न किया।

1. **आदि ग्रन्थ का सकलन** . सबसे पहले गुरु अर्जुन देव ने सिक्खो की उस समय तक की शिक्षाओं को पुस्तक का रूप देने का काम आरभ किया। इस काम की विशेष तौर पर कमी महसूस की जाती थी। उस समय तक सिक्ख धर्म की शिक्षाएँ बिखरी पडी थीं। इस सबध मे गुरु अगद ने गुरु नानक देव जी की शिक्षाओ को लिखित रूप मे लाने के और सगृहीत करने के सबध मे कुछ काम किया था। उनकी प्रतियाँ तैयार करवा कर सिक्खों के धर्म-प्रचार केन्द्रो मे बाँटी गई थी। परन्तु इस किस्म का कोई विशेष सग्रह उपलब्ध नही था।

2. **सामग्री का संग्रह करना** इस उद्देश्य से गुरु अर्जुन देव ने सामग्री एकत्र करने का काम आरभ किया। उन्होने गोईदवाल मे बाबा मोहन (सुपुत्र गुरु रामदास) के पास भाई गुरदास और बाबा बुढ्ढा को भेजा। परन्तु उन्होंने जो सामग्री उनके पास थी, उसे देने से इन्कार कर दिया और गुरु अर्जुन देव से खुद वहाँ आने का अनुरोध किया। गुरु अर्जुन देव खुद जाकर बाबा मोहन से यह सामग्री ले आये। इसी तरह उन्होने भक्तिवाद के दूसरे नेताओं के पास निमत्रण भेजे कि वे अपनी विशेष रचनाएँ

गुरु अर्जुन देव को भेजे। कहा जाता है कि एक विशेष दूत प्यारा सिंह को श्री लङ्का भेजकर वहाँ से "प्राण सगली", जो कि कहा जाता था कि गुरु नानक देव वही छोड आये थे, को प्राप्त करने का उपक्रम भी किया गया।

3 **संकलन की तैयारी** सामग्री सगृहीत होने के पश्चात् आदि ग्रन्थ के सकलन का काम करने का प्रबन्ध किया गया। इस काम के लिए गुरु अर्जुन देव ने सरोवर रामसर को बनवाया और वहाँ सतो, फकीरो, भाटों और सगीतज्ञो के विश्राम का प्रबन्ध किया। भाई गुरदास को लिखने का काम दिया गया। यह महान काम सन् 1604 मे समाप्त हो गया। तत्पश्चात् यह ग्रन्थ हर मन्दिर साहब मे रखा गया और भाई बुढ्ढा को सबसे पहला ग्रन्थी नियुक्त किया गया।

4 **गुरु ग्रन्थ की विषय सूची** आदि ग्रन्थ जिस को गुरु ग्रन्थ अर्थात् ग्रन्थ साहिब कहा जाता है निम्नलिखित उपदेशो का सग्रह है

(क) प्रथम पाँचो गुरुओं की बाणी जिसमे 2216 शब्द गुरु अर्जुन देव के है और उसमे गुरु गोबिन्द सिंह के समय मे कुछ शब्द गुरु तेगबहादुर के भी शामिल किये गये थे।

(ख) 16 दूसरे भक्तो और सन्तो, जिनमे हिन्दू और मुसलमान दोनो शामिल हैं, की बाणी।

(ग) भाटो की कविता जिनमे काल, नाल मथारा प्रसिद्ध है।

(घ) गुरु अर्जुन देव और उनसे पहले होने वाले गुरुओ की स्तुति मे लिखी कविताएँ। ये सत्ता, बलवन्द और मर्दाना जैसे प्रसिद्ध लोक कवियो की है।

(ङ) अन्तारा और एपैन्डिक्स-मुडा बाणी और राग माला (इन मे प्रसिद्ध राग और रागनियो की सूची दी गई है। इन के आधार पर सब शिक्षाओ का सकलन किया गया है)।

(च) *भाषा* मुख्य रूप से आदि ग्रन्थ की भाषा पजाबी का 15 वी शताब्दी मे प्रचलित रूप है। इसके अतिरिक्त हिंदी, गुजराती, मराठी, सस्कृत और फारसी के शब्द भी इसमे है जिन का भक्तो ने अपनी बाणी में प्रयोग किया था।

संकलन क्रम. प्रथम कुछ पृष्ठ जो 'जपुजी', 'सोपुरख' और 'कीर्तन सोलहा' से सबधित है और ईश्वर स्तुति के निमित्त है, को छोड़ कर सारे ग्रन्थ साहिब का क्रम 31 रागो के अनुसार है। हर एक राग के अधीन सबसे पहले गुरु नानकदेव की बाणी और उसके पश्चात् बाकी चार गुरुओ की बाणी का संकलन किया गया है। उसी राग के अधीन फिर सतो, कवियो और भक्तो और सगीतज्ञो की रचनाएँ लिखी गई है।

महत्त्व आदि ग्रन्थ सिक्खो की सबसे प्रसिद्ध धार्मिक पुस्तक है। इसका सकलन होने पर सिक्खो मे अपनी विशेष पुस्तक न होने की कमी दूर हो गई। अब वह भी मुसलमानों और ईसाइयो की तरह "एहले किताब" हो गए। प्रसिद्ध इतिहास-कार, सरदार खुशवन्त सिंह के शब्दो में, "आदि ग्रन्थ एक अतुल ऐतिहासिक पुस्तक है। शायद यह अपने किस्म की एक ही धार्मिक पुस्तक है जिसमें बगैर किसी टीका-

टिप्पणी और सजावट के धार्मिक नेताओ की रचनाएँ सुरक्षित है। इसमे शामिल करने से ही उस समय के कुछ कवियो की रचनाएँ अमर हो गई है। ग्रन्थ साहिब सिक्खो के लिए पूजा और कर्म-काण्ड की मूल पुस्तक है (जपुजी, पृष्ठ 11 से 12)। उपर्युक्त विशेषताओ के कारण सिक्खो की यह धार्मिक पुस्तक ऐतिहासिक सामग्री, तथा सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक अवस्था के बारे मे हमे उस समय के पजाब के बारे मे ज्ञान कराती है। उदाहरणार्थ, गुरु नानकदेव ने जिन शब्दो मे सैयदपुर (एमनाबाद) की बर्बादी, साधारण लोगो की दुर्दशा, लोधी हाकिमो की कायरता और बाबर की बबर्रता का वर्णन किया है, वह गुरु ग्रन्थ साहिब मे सम्मिलित हैं। इसी तरह उन्होने अपनी शिक्षाओ मे हिन्दू धर्म के पतन और उस समय हिन्दुओ और मुसलमानो मे प्रचलित बुराइयाॅ का भी बहुत स्पष्ट वर्णन किया है और सब तरह की कुरीतियो का खण्डन किया है।

II भवन-निर्माण और नये शहरों की स्थापना

गुरु अर्जुन देव ने चौथे गुरु राम दास के अमृतसर शहर और सरोवर के निर्माण के लिए शुरू किये हुए काम को सम्पन्न करने का विशेष यत्न किया। उन्होने भाई बुढ्ढा को वहाॅ पर चल रहे काम का निरीक्षण करने को कहा। यह काम सन् 1589 मे पूर्ण हुआ। सरोवर और हरमन्दिर के बन जाने के साथ-साथ गुरु अर्जुन देव ने नये शहर को एक बडा व्यापारिक केन्द्र बनाने का भी प्रबन्ध किया। उनकी प्रेरणा से अधिक सख्या मे सिक्ख वहाॅ जाकर रहने लगे। गुरु जी ने अपना हैडक्वार्टर भी वही स्थापित किया और वहाॅ के निवासियो को व्यापार के कामो मे अधिक रुचि लेने की प्रेरणा दी। इसी कारण धीरे-धीरे अमृतसर इस प्रदेश का एक महान व्यापारिक केन्द्र बन गया जहाॅ पर दूर-दूर से लाई हर प्रकार की चीजे प्राप्त हो सकती थी, चाहे वह मध्य एशिया या हिमालय से पार लद्दाख और तिब्बत और समरकन्द और बुखारा से आती हो। अमृतसर की विशेषता यह है कि उसके भिन्न-भिन्न भाग मण्डियो के रूप में बनाये गये थे जहाॅ विशेष वस्तुएँ उपलब्ध हो सकती थी। अमृतसर का व्यापारिक महत्त्व इस बात से सिद्ध होता है कि महाराजा रणजीत सिंह के राज्य काल मे व्यापारिक कर से ही यहा से 9 लाख रुपये प्रति वर्ष की आय होती थी।

III. दूसरे शहरों और पवित्र स्थानों की स्थापना

गुरु अर्जुन देव ने मध्य पजाब अर्थात् माझा मे दूसरे शहर और धर्म-स्थान स्थापित करने का भी प्रयत्न किया। सन् 1590 मे उन्होने अमृतसर की तरह तरन-तारण, जो बारी द्वाब मे स्थित है, के स्थान पर एक सरोवर और मन्दिर बनवाया जो कालातर मे अमृतसर की तरह ही माझा के सिक्खों का प्रसिद्ध धर्म-स्थान बन गया। गुरु अर्जुन देव ने जालन्धर के निकट एक नए शहर करतारपुर की स्थापना की और वहाँ पर एक सरोवर, जिस का नाम गगसर है, का निर्माण किया। लाहौर मे (डब्बी बाजार के निकट) एक बावली की नीव भी रखी। कहा जाता है कि इस बावली के निर्माण के लिए लाहौर के सूबेदार ने धन दिया था।

अपने सुपुत्र के नाम पर डेरा बाबा नानक के निकट एक नया शहर हर गोबिन्द-पुरा भी बसाया।

IV मसन्द प्रथा

निर्माण के कामो का अधिक विस्तार होने के कारण गुरु अर्जुन देव को बहुत धन की जरूरत थी। धन प्राप्त करने का प्रबन्ध ठीक करने के लिए उन्होने मसन्द प्रथा को, जो उनसे पहले से चल रही थी, सुसगठित किया। इस प्रथा को उन्होने धन प्राप्ति का विशेष साधन बना दिया। आमतौर पर सिक्खो को आदेश था कि वह गुरु के लिए यथाश्रद्धा भेट दे। परन्तु गुरु अर्जुन देव ने इसको सुधार कर अनिवार्य बना दिया। सिक्खो को अपनी आय का दसवाँ हिस्सा अर्थात् "दसौध" गुरु के लिए देने का हुक्म उन्होने ही दिया था। इस धन को मसन्दो के द्वारा इकट्ठा करके बैसाखी और दीवाली के त्योहारो के मौके पर अमृतसर पहुँचाने का भी आदेश दिया। मसन्दो को यह भी चेतावनी दी गई कि गुरु के धन मे किसी प्रकार की बेईमानी करने पर उनको श्राप लगेगा। मसन्द प्रथा के सुधार के साथ-साथ मसन्दो को उच्च पदवी भी दी ताकि वे गुरु की गोलक के लिए धन इकट्ठा करने का काम अच्छी तरह से कर सके। इस धन को देने के पश्चात् अमृतसर से रसीद प्राप्त की जाती थी। मसन्द अपने-अपने इलाके मे काम को अच्छी तरह से करने के लिये ऐजेन्टो को भी नियुक्त कर सकते थे। धन इकट्ठा करने के साथ-साथ मसन्दो को धर्मप्रचार का काम भी दिया जाता था और सिक्खो मे छोटे-मोटे विवाद दूर करने की जिम्मेदारी भी मसन्दो पर थी। मसन्द किसी विशेष इलाके के सिक्खों की समस्याओ से भी गुरु को अवगत कराते थे।

इस तरह से गुरु अर्जुन देव ने धर्म के आधार पर एक प्रकार से सिक्खों के राज-नीतिक सघ की भी नीव रखी और सरकारी कर्मचारियो के स्थान पर मसन्दो को यह काम दिया। गुरु के काम को पूरा करने की बहुत हद तक जिम्मेदारी मसन्दो को दी गई जिन का अपना स्थान इसी कारण बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा। मसन्द प्रथा का पुनर्गठन गुरु अर्जुन देव जी की विशेष उपलब्धि मानी जाती है।

V. मुगल बादशाहों के साथ संबंध और शहीदी

गुरु अर्जुन देव जी की बढती हुई शक्ति और उनके शाही ठाठ-बाठ से रहने के कारण उनको सच्चा पातशाह कहा जाने लगा। पथ प्रकाश मे इस परिवर्तन को इस तरह दर्शाया गया है "जब कि धन और दुनियावी दिखावा गुरु नानकदेव से 20 मील दूर था, यह फासला गुरु अगद के समय मे केवल 6 मील रह गया था। धन सम्पत्ति गुरु अमरदास के दरवाजे तक पहुँच गई थी और गुरु रामदास के काल मे उनके पाँव तक छूने लगी थी। परन्तु गुरु अर्जुन देव के गुरु काल मे यह दोनो चीजे उनके घर मे प्रवेश कर चुकी थीं।" गुरु अर्जुन देव के बढ़ते हुए प्रभाव से उनके बडे भाई पृथिया ने उस समय के एक मुसलमान अधिकारी सुलही के साथ मिलकर मुगल साम्राज्य के कान भरने शुरू किये। उनके विरुद्ध मुगल सम्राट् अकबर के पास रिपोर्ट पहुँची कि उन्होंने जो ग्रन्थ रचा है उसमें मुसलमानों के लिए अपमानजनक शब्द बरते है। इसका जवाब

माँगने पर गुरु अर्जुन देव ने भाई गुरदास और भाई बुढ्ढा को सम्राट् अकबर के पास भेजा, जिन्होने सिद्ध कर दिया कि गुरु ग्रन्थ साहिब मे कोई आपत्तिजनक शब्द नही लिखा गया है। अकबर ने गुरु ग्रन्थ साहिब मे लिखी हुई शिक्षाओ के सब के हित मे होने के आधार पर यह कहा था, "यह पुस्तक सब के लिए सम्मान योग्य है।"

परन्तु सन् 1605 मे अकबर की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी जहाँगीर के धार्मिक विचार उनसे बिल्कुल भिन्न थे। ऐसा सिद्ध होता है कि जहाँगीर के ऊपर मुल्ला पार्टी का अधिक प्रभाव था। अत उनके काल मे मुगलो की धार्मिक नीति मे विशेष परिवर्तन हुए। उनके पास गुरु अर्जुन देव जी के बारे मे फिर रिपोर्ट की गई जिस के आधार पर सम्राट् जहाँगीर ने तोजके-जहाँगीरी मे अपने शब्दो मे लिखा है, "गोइंदवाल मे, जो कि दरियाए ब्याह (ब्यास) के किनारे है, अर्जुन नामी एक हिन्दू साधु के वेश मे और सन्त के रूप मे काम करने के कारण कुछ साधारण हिन्दुओ और कुछ अज्ञानी और मूर्ख मुसलमानो पर बुरा प्रभाव डाल रहा है। पिछली 3-4 धार्मिक पुश्तो से यह काम चला आ रहा है। कई बार मेरे मन मे आया कि उन के इस पाखण्ड को समाप्त कर दिया जाए या उसको मुसलमानो के विशाल समूह मे मिला लिया जाए।" इससे स्पष्ट होता है कि मुगल साम्राज्य के विचार गुरु जी के विरुद्ध थे। सम्राट् जहाँगीर गुरु अर्जुन देव जी के इस कारण से और भी विरुद्ध हो गये थे कि गुरु साहिब ने अभागे शहजादा खुसरों को उस समय आशीर्वाद दिया था जब कि वह अपने पिता जहाँगीर के खिलाफ बगावत मे असफल होकर और भाग कर पजाब की दिशा मे आया था और गुरु जी की सेवा मे पहुँचा था। गुरु के द्वारा उसके माथे पर तिलक लगाना तथा उसको थोडा-सा धन देना जहाँगीर की नजरो मे बहुत बडा अपराध था हालाकि गुरु जी ने यह व्यवहार मानवता के नाते किया था जिसे भारी राजद्रोह की शक्ल दे दी गई।

गुरु अर्जुन देव और जहाँगीर के सबध खराब करने मे गुरु जी के बडे भाई पृथिया और उनके मित्र प्रसिद्ध मुसलमान कर्मचारी सुलही का भी काफी हाथ था। रही-सही कसर उस समय के लाहौर के हिन्दू दीवान चन्दू शाह ने पूरी करदी। गुरु जी के लडके हरगोबिन्द के लिए चन्दू शाह की लडकी का रिश्ता स्वीकार न करने पर चन्दू शाह ने बदला लेने की भावना से उनके विरुद्ध सख्त कारवाई करने का मन बना लिया। गुरु साहिब को हुकम दिया गया कि वह आदि ग्रन्थ मे से कुछ कथित इस्लाम विरोधी शब्द निकाल दे और दण्ड के रूप मे दो लाख रुपया सरकार को दे। गुरु जी ने दोनो बातो से इन्कार किया। वे समझते थे कि जो कुछ आदि ग्रन्थ मे लिखा गया है वह बहुत सोचविचार कर लिखा गया है और सत्य पर आधारित है। दण्ड के बारे मे उन्होंने कहा कि यह सम्पत्ति लोगों की है सन्तों का कोई अपना धन नही होता। इस स्थिति मे बताया जाता है कि लाहौर के हिन्दू और सिक्खों ने यह राशि देने की इच्छा प्रकट की और कथित है कि चन्दू शाह ने भी यह धन देकर गुरु साहिब को मुक्त कराना चाहा मोहसिन फानी के शब्दो मे "बादशाह ने अर्जुन मल (गुरु साहिब) को कैद करके लाहौर के रेगिस्तानी भाग मे भेज दिया और दड की रकम न देने और

इस्लाम मे प्रवेश न करने पर उनको बहुत पीडित किया गया जिससे वे प्राण त्याग गये ।" सिक्ख परम्परा के अनुसार गुरु साहिब को बडे 'लोह' (बडा तवा) पर आग के ऊपर बैठा कर गर्म-गर्म रेत उनके शरीर पर डाली गई। अत्यन्त दु खी होने पर उन्होने दरिया मे स्नान की इच्छा प्रकट की और पानी मे लोप हो गये। आग से शरीर जलने के पश्चात् ठण्डे पानी मे एकदम कूदने से जो अत्यन्त पीडा और कष्ट हो सकता है उसका अन्दाजा लगाना मुश्किल है। उनका लोप हो जाना ठीक ही था क्योंकि ऐसी अवस्था में तुरन्त मृत्यु हो सकती है ।

गुरु जी की शहीदी और उसका महत्त्व

गुरु अर्जुन देव की दु खदायी मृत्यु से सिक्खो को पूर्ण विश्वास हो गया कि उनको अपने धर्म की रक्षा के लिए सशस्त्र सघर्ष के लिए तैयार होना होगा। उनकी शहीदी से सिद्ध हो गया था कि मुगल साम्राज्य केवल धर्म के भिन्न होने की हालत मे कठोर से कठोर कारवाई करने से नही चूकेगा और गुरु जी की शहीदी इस दमन चक्र का पहला वार थी। गुरु जी ने स्वय अपने शब्दों मे अपने उत्तराधिकारी को आदेश दिया था, "अगर उसको अपने धर्म की रक्षा करनी है। तो उसे चाहिये कि अपने सिंहासन पर शस्त्र धारण करके बैठे।" स्पष्ट शब्दो मे इसका अर्थ यह था कि सिक्खो को अपने धर्म की रक्षा के लिए सावधान होना चाहिये और शस्त्र धारण किये बिना धर्म की रक्षा नही हो सकेगी ।

कुछ इतिहासकारो ने गुरु की शहीदी को राजनीतिक रूप देने की चेष्टा की है जो कि निराधार है। राजनीतिक रूप मे केवल एक ही घटना उनके विरुद्ध जाती है और वह खुसरो की सहायता है। यह सहायता एक सन्त के लिए राजद्रोह नही समझी जा सकती। उन्होने केवल करुणावश ही यह कारवाई की थी। माथे पर तिलक लगाना किसी प्रकार से भी राजद्रोह का चिह्न नही समझा जा सकता और तुच्छ धन राशि, जो साधारण भोजन आदि के लिए किसी को भी दी जा सकती है, राजनीतिक सहायता का रूप नही ले सकती। जैसा कि सर जदु नाथ सरकार ने कहा हे कि इस किस्म के दण्ड उन लोगो को दिये जाते थे जो सरकार का कर नही चुका सकते थे। गुरु अर्जुन देव ने किसी सरकारी कर को चुकाने मे किसी किस्म की चूक नही की थी ।

इसलिए गुरु अर्जुन देव की शहीदी केवल धार्मिक वैमनस्य पर आधारित थी। उन्हे किसी प्रकार से भी राजनीतिक अपराधी नही कहा जा सकता ।

गुरु अर्जुन देव जी की शहीदी सिक्ख धर्म के इतिहास मे एक बडी महान घटना है। यह मुगल बादशाहों के साथ गुरुओं के सबधो मे एक नए मोड की परिचायक है। एक तरह से अब सिक्ख गुरुओ न अपने धार्मिक कर्त्तव्यों के साथ-साथ राजनीतिक कर्त्तव्यो को भी अपना लिया यानी सत्गुरु के साथ-साथ ही उनको सच्चा पातशाह भी माना जाने लगा। दूसरी ओर इस धर्म को मानने वालों ने अनुभव किया कि अब केवल शान्ति की नीति से काम नही चलेगा। उनको सशस्त्र संघर्ष के लिए भी तैयार रहना चाहिये। इस तरह साधारण सिक्खों के विचार बदलने शुरू हो गये और वे अब केवल

सन्त बने रहने से सतुष्ट नही हो सकते थे बल्कि सिपाही बनने के लिए भी उत्सुक थे। आर्चर ने अपनी पुस्तक "दि सिख्ज" मे पृष्ठ 171 पर ठीक ही लिखा है कि "इस घटना के पश्चात् सिक्खो का शान्तिमय जनसमूह एक सैनिक सघ बन गया।"

प्रश्न

1. How fai it is true to say that under Guru Aijan Sikhism entered a new phase and began to assume more definite propoitions as an actually new community
   यह कहना कहा तक सच है कि गुरु अर्जुन देव के समय मे सिक्खो ने एक नए दौर मे प्रवेश किया और वे एक विशेष एव पृथक् सम्प्रदाय के रूप मे प्रकट हुए।
2. Study critically the circumstances leading to the martyrdom of Guru Arjan. Assess its significance in Panjab History
   गुरु अर्जुन देव का बलिदान जिन परिस्थितियो मे हुआ, उन का विवेचनात्मक अध्ययन कीजिए। पजाब के इतिहास मे इस घटना की क्या महत्ता है ?
3. Review briefly the circumstances leading to the martyrdom of Guru Arjan. Do you agree with Sii J N. Sarkar that the Guru suffered because he was a political offender ?
   गुरु अर्जुन देव का बलिदान जिन परिस्थितियो मे हुआ, उन का सक्षिप्त वर्णन कीजिए। आप जदु नाथ सरकार के इस मत से कहाँ तक सहमत हैं कि गुरु का वध राजनीतिक अपराधी होने के कारण किया गया।
4. Give a critical review of the causes and effects of the martyidom of Guru Arjan.
   गुरु अर्जुन देव के बलिदान के कारणों एव प्रभावो की विवेचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. What was the importance of the work of Guru Arjan Dev for the organisational development of the Sikhs.
   गुरु अर्जुन देव ने सिक्खो के सगठन के विकास के लिए जो काम किया, उसका क्या महत्त्व था ?
6. How and when was the Adi Granth compiled ? Study carefully its language and the nature of its contents.
   आदि ग्रन्थ का सकलन कैसे और कब हुआ ? इसकी विषय-वस्तु के स्वरूप और भाषा का अध्ययन कीजिए।

8

गुरु हरगोबिन्द (1606—1645)

सशस्त्र विद्रोह का आरम्भ

गुरु अर्जुन देव के आदेशानुसार 11 वर्षीय गुरु हरगोबिन्द ने गुरु पद सम्भालते समय भाई बुढ्ढा से कहा था कि अब वह "सैली" (ऊन की बनी हुई माला) के स्थान पर तलवार धारण करेंगे और कलगी से सजी हुई पगडी। इसी बात को सिद्ध करने के लिए उन्होने उसी समय से दो तलवारे एक अपने दाये और एक बाये धारण करनी आरम्भ कर दी थी। एक तलवार "पीरी" अर्थात् उनकी धार्मिक पदवी की प्रतीक थी और दूसरी तलवार "मीरी" अर्थात् उनकी राजनीतिक पदवी को दर्शाने के लिए थी। इसी तरह से गुरु साहिब ने सिक्खो के धार्मिक तथा राजनीतिक नेता के रूप मे अपना काम आरम्भ किया। अपने नये कर्त्तव्यो को निभाने के लिए उन्होने उचित प्रबन्ध करने शुरू कर दिये। उन्होने अपने भक्तो को कहा कि वह उनको धन की बजाय शस्त्र, घोड़े आदि भेट करें। इन सब चीजों को भेट मे लेने का औचित्य उनकी सैनिक आवश्यकता की पूर्ति था। उन्होने अपने अनुयायियो को सैनिक जीवन के लिए तैयार रहने का भी आदेश दिया।

अकाल तख्त की स्थापना

अपने नये मिशन की पूर्ति के लिए गुरु हरगोबिन्द ने हरमन्दिर, जिस को श्रेष्ठ धार्मिक स्थान समझा जाता था, के इलावा अकाल तख्त की स्थापना की। यह स्थान हरमन्दिर के सामने थोडी दूरी पर बनाया गया। अकाल तख्त गुरु साहिब के राजनीतिक कामो अथवा गतिविधियो का केन्द्र था। इसका आकार भी एक ऊँचे तख्त जैसा था। इस स्थान पर बैठकर गुरु साहिब अपने साथियों की सैनिक ट्रेनिंग का निरीक्षण करते थे और राजनीतिक मामलों पर विचार करते थे। यहाँ पर बैठकर गुरु साहिब कुश्तियाँ और सैनिक प्रतियोगिताएँ भी देखते थे। इसी स्थान पर सैनिक सगीत, जो कि सिक्खों में सैनिक भावना और उत्साह पैदा करने के लिए जरूरी था, गाया-बजाया जाता था। प्रसिद्ध भाट और सगीतकार लोगों को वीरता के गीत सुनाकर उत्तेजित करते थे। यह भवन सन् 1609 मे तैयार हुआ था। इसी स्थान पर गुरु साहिब भक्तो और मसन्दो से भेंट स्वीकार करते और अपने निर्णय देते थे और भिन्न-भिन्न महत्त्वपूर्ण मामलो का अध्ययन करते। गुरु हरगोबिन्द इस स्थान पर एक प्रकार से राजसिंहासन पर विराज-मान होते थे और राजाओं की वेश-भूषा मे तलवार, कलगी और बाज से सुसज्जित

होकर छत्र के नीचे बैठते थे। इस स्थान को अमर समझ कर इसका नाम अकाल तख्त रखा गया था।

सैनिक तैयारियाँ

गुरु हरगोबिन्द ने अपने धर्म की रक्षा के लिए सैनिक प्रबन्ध करने शुरू कर दिये थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने आपको एक सैनिक लीडर के रूप मे सिद्ध करने के लिए काफी सख्या मे सैनिक नौकर रखे जिन मे काफी संख्या मुसलमान सैनिको की भी थी। कहा जाता है कि उनके पास 800 के लगभग घोडे थे। उन्होंने 300 घुडसवार और साठ बन्दूकधारी सैनिक अपने अग रक्षक के तौर पर रखे हुए थे। यह सख्या उन 500 स्वय सेवको के अलावा थी जिन को कोई तनख्वाह नही मिलती थी और वे सब गुरु के लगर मे भोजन खाते थे और हर प्रकार की सेवा के लिए हर समय तैयार रहते थे। गुरु साहिब ने उनके लिए घोडो और शस्त्रो का प्रबन्ध कर रखा था। वे अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। गुरु साहिब ने अपने कार्य-क्रम भी सैनिक तैयारियो के अनुरूप तबदील कर लिये थे। उनका रहन-सहन भी बिल्कुल बदल चुका था। वह हर समय सैनिक तैयारियो, कुश्तियो, शिकार और दूसरी खेलो मे लगे रहते थे। इसी कारण उन्होने अपने अनुयायियो को खान-पान की भी छूट दे दी थी और उनको मासाहार करने से नही रोका जाता था। इन सब बातो से ऐसा लगता है कि गुरु साहिब ने अपने धर्म को मानने वालो का स्वरूप ही बदल दिया था। उनको साधारण जीवन की बजाय अब सैनिक जीवन के लिए तैयार रहना था।

गुरु साहिब के सैनिक कामो की तरफ विशेष ध्यान देने के सम्भवत· विशेष कारण ये थे (1) अपने पिता की शहीदी का बदला लेना; (2) अपने धर्म को मानने वालो को मुगल अत्याचारो से बचाना, (3) अपने निकट सबधियों से अपनी जीवन रक्षा, और (4) उनका अपना स्वभाव व सैनिक रुचि।

रक्षा प्रबन्ध

सैनिक तैयारियो के साथ-साथ गुरु हरगोबिन्द ने रक्षा प्रबन्ध भी आरभ किये। अमृतसर के धार्मिक स्थान की सुरक्षा के लिए 'लोहगढ' नामक एक किले की स्थापना की। इसके साथ-साथ अमृतसर शहर के चारो ओर एक फसील बनाई गई। गुरु हरगोबिन्द ने अपने अग रक्षको के अलावा काफी सख्या मे पठान सैनिको को नौकर रखा ताकि किसी सकट की स्थिति मे उनकी सहायता ली जा सके। इस बात पर कई लोगों ने आक्षेप भी किया कि गुरु साहिब ने हर किस्म के लोगो को अपना नौकर रखकर धर्म का मान नही बढाया है। जो मुसलमान सैनिक उनके पास नौकर हुए थे वे आमतौर पर मुगल सेनाओ से भागकर आये थे और अच्छे आचार वाले भी नही समझे जाते थे।

गुरु साहिब के सर्वथा सैनिक कामो मे लग जाने के कारण उनके निकट सहयोगियो को भी इस बात का सदेह होने लगा था कि गुरु साहिब ने अपने धर्म कार्यो को बिल्कुल त्याग दिया है और सारा समय और शक्ति सैनिक कामो मे लगादी है। ऐसा विचार करने

वाले भाई बुढ्ढा, भाई गुरदास और उनकी माता भी थी। ये पुराने विचारो के लोग थे जो कि मुख्यत. धर्म प्रचार को ही गुरु का कर्त्तव्य मानते थे। उनको यह देखकर आश्चर्य होता था कि गुरु साहिब सारा समय सैनिक तैयारियो और शिकार आदि मे बिता रहे है। ऐसा अनुमान शायद उनको समय की आवश्यकता को न समझने के कारण पैदा हुआ था। वे लोग गुरु साहिब की सूझबूझ की पूरी तरह कदर नही कर सके थे। वास्तव मे स्थिति बिल्कुल भिन्न थी। डा० इन्दू भूषण बैनर्जी के इस बारे मे ये विचार द्रष्टव्य है बाहरी और भीतरी दोनो रूपो से स्थिति बदल रही थी और गुरु साहिब को भी अपनी नीति इसी के आधार पर बदलनी पडी थी .. गुरु अर्जुन अनुभव कर चुके थे और हरगोबिन्द भी स्पष्ट तौर पर देख रहे थे कि सिक्खो के लिए शस्त्र धारण किये बिना अपने धर्म और अपने सम्प्रदाय की रक्षा करना असम्भव होगा। जिस तरीके से गुरु हरगोबिन्द ने इस स्थिति का सामना किया उससे उनकी विशेप राजनीतिक सूझ-बूझ और योग्यता का प्रमाण मिलता है।"[1]

मुगल सम्राट् के साथ संबंध

गुरु हरगोबिन्द को सन् 1606 से लेकर सन् 1627 तक जहाँगीर सम्राट् से निपटना पडा था। जहाँगीर के गुरु अर्जुन देव जी के खिलाफ कठोर व्यवहार से यह स्पष्ट था कि वह सिक्ख धर्म का विरोधी हो गया था। अत नये गुरु को बडी सावधानी से काम लेना पडा। फिर भी मुगल सम्राट् के मन मे गुरु हरगोबिन्द के शाही ठाठ-बाठ की बाबत कई शकाएँ पैदा कर दी गई थी। इसलिए जहाँगीर ने उनके विरुद्ध भी सख्त कारवाई करने का विचार किया। गुरु हरगोबिन्द को उनके पिता के ऊपर किए गए जुर्माने को अदा करने के लिए कहा गया और उनके ऐसा न करने पर उनको राजनीतिक बंदी बनाकर ग्वालियर के किले मे भेज दिया। ऐसा कहा जाता है कि वह काफी समय वहाँ कैद रहे। कुछ इतिहासकार इस समय को 12 साल और कुछ 5 साल मानते है। गंडा सिंह, व तेजा सिह के अनुसार यह अवधि केवल दो साल की थी। इसका सबूत गुरु जी की सतान से मिलता है जो कि उस समय उत्पन्न हुई थी।

गुरु हरगोबिन्द को ग्वालियर के किले से छोडे जाने के समय कहा जाता है कि उन्होने मुगल सम्राट् से अपील की थी कि दूसरे राजनीतिक बन्दी भी छोड दिये जाएँ। उनकी यह प्रार्थना इस रूप मे स्वीकार कर ली गई कि उनके अंगरखे की 'कलिया' (जोड) पकड़ कर जितने आदमी आ सकते हो उनको छोड दिया जाएगा। कहा जाता है कि इस प्रकार 52 दूसरे कैदी भी छूट गये और गुरु हरगोबिन्द को इसी कारण "बन्दी छोड बाबा" भी कहा जाने लगा। गढानी (जिला लुधियाना) मे गुरु हरगोबिन्द का एक अगरखा पडा है। कहा जाता है कि यह उन्होंने ग्वालियर से लौटते समय वहाँ छोडा था। जब कि वह उस स्थान पर ठहरे थे। यह अंगरखा एक शीशे मे लगवाकर रखा गया है, जिसे देखा जा सकता है। ग्वालियर से लौटने के पश्चात् गुरु हरगोबिन्द ने बडी सोच-समझ कर अपनी फौजी तैयारियों जारी रखी। वह कई बार मुगल सम्राट् के

1. Evolution of the Khalsa by Indu Bhushan Banerjee, p.31.

पास भी जाते रहे और स्वय को उनका मित्र जाहिर करते रहे परन्तु अन्दर ही अन्दर उन्होंने अपनी फौजी शक्ति बढाली और अपनी सुरक्षा का उचित प्रबन्ध कर लिया।

सन् 1627 से 1634 तक गुरु हरगोबिन्द को शाहजहाँ से निपटना पडा। शाहजहाँ का सुपुत्र दाराशिकोह उदार विचारो वाला व्यक्ति था। गुरु हरगोबिन्द से उनके अच्छे सबध थे। परन्तु शाहजहाँ के साथ कुछ बातो पर गुरु जी का विरोध हो गया ·

1 लाहौर के काजी की सुपुत्री जिन का नाम कौला था और जिन के नाम पर अमृतसर मे कौलसर तालाब बनाया गया था, गुरु जी की बडी भक्त थी और उनके पास अमृतसर मे आकर रहने लगी थी। इस बात से नाराज होकर काजी ने गुरु के विरुद्ध मुगल सम्राट् से शिकायत की थी।

2 मुगल सम्राट् गुरु हरगोबिन्द से इस बात से भी नाखुश था कि उन्होंने बहुत से उन पठानो को अपनी सेना मे नौकर रख लिया था, जो मुगल सेना से भागकर आये थे। इनमे पैंडा खा का नाम प्रसिद्ध है।

3 शाहजहाँ ने एक हुक्म जारी किया था कि मुसलमानो को किसी और धर्म मे प्रवेश न लेने दिया जाये। इसका भाव सिक्ख धर्म को मुसलमानो मे फैलने से रोकना था।

4 गुरु जी के कुछ भक्तो ने एक बार एक बाज को जो कि शाहजहाँ का अपना बाज बताया जाता था पकड लिया था। इन को वापिस न देने पर उनमे और मुगलो मे झडप्प हो गई थी। इन सब घटनाओ से यह सिद्ध होता था कि गुरु हरगोबिन्द और मुगलो में शक्ति परीक्षा होने का समय अब निकट आ रहा था। इसका प्रमाण उनके समय मे हुए निम्नलिखित युद्धो से मिलता है

1. **अमृतसर की लड़ाई**, (सन् 1628) सिक्खो के शाही बाज को पकडने पर जो वादविवाद हुआ, वह एक छोटे से युद्ध का रूप धारण कर गया। मुगलो ने दण्ड के लिए मुखलिस खान के नेतृत्व मे काफी सख्या मे मुगल सेना ने अमृतसर पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने शहर को लूट लिया और गुरु हरगोबिन्द की सम्पत्ति नष्ट कर दी। परन्तु सिक्खो के काफी नुकसान होने पर भी मुगलो को स्पष्ट विजय प्राप्त न हो सकी। मुखलिस खान युद्ध मे मारा गया। गुरु साहिब अमृतसर से करतारपुर चले गये। यह युद्ध सिक्खों और मुगलो मे पहली खुली टक्कर थी और इसी कारण यह पहली शस्त्र परीक्षा कही जाती हैं।

2 **लैहरा का युद्ध** (सन् 1631) गुरु के लिये उसके मसन्दो द्वारा काबुल से भेजे हुए दो घोडे मुगल अधिकारियो ने लाहौर मे पकड लिये थे। इस घटना की सूचना मिलने पर गुरु के एक भक्त बिधी चन्द ने ये घोड़े लाहौर से छुडाकर लाने का साहस किया। वह मुगलो के पास घसियारे के तौर पर नौकर हो गया था और मौका पाकर घोड़े लेकर भाग आया। मुगलो ने गुरु के विरुद्ध कारवाई की जिससे यह युद्ध

हो गया। मुगलो की एक सेना कमरबेग को नेतृत्व मे गुरु को दण्ड देने के लिए बठिण्डा की ओर बढी। लैहरा के स्थान पर जो युद्ध हुआ उस मे कमरबेग मारा गया।

3. **करतारपुर का युद्ध** (सन् 1634) गुरु जी के मित्र पैंडा खाँ किसी कारण उनसे नाराज होकर मुगलो से जा मिला और उनको गुरु साहिब को दण्ड देने के लिए प्रेरित किया। फलस्वरूप मुखलिस खाँ के भाई काले खा काफी सेना लेकर करतारपुर के स्थान पर गुरु साहिब से जा भिडे। इस युद्ध मे गुरु साहिब के सुपुत्र बाबा गुरदित्ता और उनके एक परम भक्त भाई बिधी चन्द ने डटकर मुकाबला किया। इस युद्ध मे पैंडा खा जख्मी होकर घोडे से नीचे गिर पडा। गुरु साहिब ने अपनी ढाल से उसके मुँह पर साया किया और उसको मरने से पहले कलमा पढने को अवसर दिया ताकि वह एक अच्छे मुसलमान की मौत मर सके। इस घटना की याद मे करतारपुर मे एक ऊँचा चबूतरा बना हुआ है जिसको "दमदमा" कहते है। काले खाँ भी इस युद्ध मे मारा गया।

करतार पुर के युद्ध के बाद गुरु हरगोबिन्द अपनी सुरक्षा के लिए पहाड की ओर चले गये जहाँ अपनी आयु के बाकी दस साल उन्होने एक नये बसाये हुए कस्बे कीरतपुर मे गुजारे। उन्होने यह अनुभव किया कि अभी उनके पास इतने व्यापक साधन नही है, कि वह मुगल साम्राज्य का खुले तौर पर मुकाबला कर सके। उनके परिवार मे भी बहुत सी मौते हो चुकी थी। (भाई गुरदित्ता, अटलराय और अनीराम उनके तीन पुत्र मर चुके थे।) इस स्थिति मे उन्होने युद्ध के काम को त्याग कर बाकी दस साल सिक्ख धर्म के प्रचार मे लगाये। इसके परिणामस्वरूप सिक्ख धर्म हिमाचल मे फैलना शुरू हो गया था और जनजीवन पर इसका काफी प्रभाव पडा था।

गुरु जी का पोता धीर मल (सुपुत्र बाबा गुरदित्ता) उनसे नाराज़ होकर मुगलो से जा मिला था और आदि ग्रन्थ की बीड देने से उस ने इन्कार कर दिया था। इस बात से क्रोधित होकर गुरु हरगोबिन्द ने अपने दूसरे पोते हरि-राय को अगला गुरु नियुक्त किया।

मूल्यांकन

गुरु हरगोबिन्द को बहुत से लोगो ने गलत समझा था। उनके कुछ निकट सबधी भी उनकी भावना को अच्छी तरह से नही समझा सके थे। इसमे भाई गुरदास, भाई बुढ्ढा और उनके माता जी भी थे। उनको ऐसा विचार हो गया था कि गुरु जी ने धर्म प्रचार का काम बिल्कुल त्याग दिया है और वह अपना सारा समय और शक्ति युद्ध अथवा शिकार के कामो में लगा रहे है। इन विचारों की पुष्टि इस बात से होती थी कि उन्होंने बहुत से मुसलमान फ़ौजियों को नौकर रख लिया था और कुछ मुसलमानों को संरक्षण दिया था। परन्तु इन्दु भूषण के शब्दो मे गुरु जी की कारवाई उनकी दूर-दर्शिता का प्रमाण थी। वे आने वाले खतरों को अच्छी तरह समझते थे और उनसे

टक्कर लेने की तैयारी मे लग गये थे। उन्होने अपने असली मार्ग को नही छोडा था। यह तो समय की ललकार के अनुरूप कार्य था जिसे परिश्रमपूर्वक किया जाना बहुत जरूरी था।

गुरु हरगोबिन्द सर्वप्रिय थे जैसा कि ग्वालियर के किले से छूटने के समय दूसरे कैदियो ने उनको 'बन्दी छोड बाबा' कहा था। बहुत से दूसरे मित्र भी उनमे बहुत श्रद्धा रखते थे। कहा जाता है कि उनको चिता मे जलाते समय उनके दो भक्त चिता के बीच मे कूद पड़े थे। उस समय के मुसलमान सत मिया मीर उनकी बहुत इज्जत करते थे और कुछ प्रसिद्ध मसबदार—वजीर खा और यारखा उनके बडे मित्र थे। गुरु हरगोबिन्द ने अपनी सैनिक तैयारियो से सिक्खो मे नई भावना पैदा करने का बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया। परतु इससे यह नही समझ लेना चाहिए कि उन्होने अपने धार्मिक कर्त्तव्यों को भुला दिया था।

प्रश्न

1. Consider the attitude of the Mughal Government towards the Sikh movement during A.D. 1526-1627 (Babar to Jahangir).
   सन् 1526-1627 के दौरान (बाबर से ले कर जहागीर तक) मुगल सरकार ने सिक्ख धर्म के आन्दोलन के प्रति जो रवैया अपनाया, उसपर विचार करो।
2. Describe Guru Hargobind's relations with the Mughal Govt.
   मुगल सरकार के साथ गुरु हरगोबिंद जी के सबधो का वर्णन करो।
3. "Guru Hargobind appears to have been a much misunderstood man". (I.B. Banerjee) Explain
   "गुरु हरगोबिंद को इतिहासकारो ने बहुत गलत समझा है।" व्याख्या कीजिए।
4. Review relations of Guru Hargobind, Guru Hari Rai and Guru Tegh Bahadur with the Mughal Government.
   मुगल सरकार के साथ गुरु हरगोबिंद, गुरु हरि राय और गुरु तेग बहादुर के सबधो की समीक्षा कीजिए।
5. "The ministry of Guru Hargobind is the period of transition when Sikhism was being transformed from a brotherhood of pious devotees to an organisation of soldier saints". Explain & comment on the adoption of the new policy by the sixth Guru.
   गुरु हरगोबिंद का गुरुकाल एक प्रकार से सक्रमण काल है जिस के दौरान पवित्र-भक्तो के भाईचारे ने सन्त-सिपाहियो के सगठन का रूप ग्रहण कर लिया था।" इस कथन की सविस्तर व्याख्या कीजिए। छटे गुरु द्वारा अपनाई नई नीति पर टिप्पणी भी दे।
6. Examine relations of Guru Hargobind with Jahangir & Shah Jahan.

गुरु हरगोबिंद जी के जहाँगीर और शाहजहाँ के साथ संबंधों की व्याख्या करो।

7. Write an account of the battles of Guru Hargobind Singh against the Mughals.

   मुगलों के विरुद्ध गुरु हरगोबिंद जी के युद्धों का वर्णन करो।

8. Write an account of the relations of the Sikh Gurus with the Mughal Emperors from Babar to Jahangir (1526—1627).

   सिक्ख गुरुओं के बाबर से जहाँगीर तक (1526-1627) मुगल सम्राटों के साथ जो संबंध रहे, उन का वर्णन कीजिए।

9. Evaluate the work and achievements of Guru Hargobind.

   गुरु हरगोबिंद के कार्य तथा सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

10. What causes were responsible for the adoption of the policy of 'Miri and Piri' by Guru Hargobind ? What were its results ?

    गुरु हरगोबिंद द्वारा 'मीरी और पीरी' की नीति अपनाए जाने के कारणों का उल्लेख कीजिए।

9

शान्तिमय प्रगति (1645-1675)

गुरु हरिराय हरिकृष्ण और तेगबहादुर का गुरु काल सिक्ख धर्म के इतिहास मे शान्तिमय प्रगति का काल कहा जा सकता है। इस समय मे तीनो गुरुओ ने अपना ध्यान सिक्ख धर्म के प्रचार की तरफ लगाया और शान्तिमय साधनो मे उन को फैलाया।

गुरु हरराय (सन् 1645 से 1661)

गुरु हरगोबिन्द सिह की इच्छा यह थी कि उनके बाद ऐसा उत्तराधिकारी सिक्ख धर्म की अगवाई करे जो उस समय की आवश्यकता को अच्छी तरह पूरा कर सके। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र तेगबहादुर को गुरु नियुक्त नही किया क्योकि उनके विचार में तेगबहादुर सासारिक कामो मे रुचि नही रखते थे। परन्तु उनके दूसरे पुत्र गुरु हर-राय जो कि उनके बाद इस पद पर नियुक्त किये गये, स्वभाव की दृष्टि से अपने पिता के बिल्कुल उलट निकले। वह बहुत ही नम्र स्वभाव और तीव्र अनुभूति वाले व्यक्ति थे। उनके बारे मे प्रसिद्ध था, कि "वह पहाडो मे एकान्त जीवन और एकाग्र समाधि लगाने को शिकार और युद्ध की उत्तेजक कारवाइयो से अच्छा समझते थे।" वह इतने कोमल हृदय के थे कि फूल तोडने मे भी वह दुख का अनुभव करते थे और घायल पक्षियो और जानवरो को अपने पास लाकर उनकी देखभाल करते थे। ऐसे शान्तिमय स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए गुरु हरगोबिन्द की नीति पर चलना असम्भव था। इसलिए उन्होने शास्त्र नीति का त्याग करके अपना ध्यान शान्तिमय कामो मे लगाया। उन का मुख्य उद्देश्य सिक्ख धर्म का प्रचार करना था।

गुरु हरराय ने भक्त गिर नामी साधु को सिक्ख धर्म मे प्रवेश कराकर उनका नाम भक्त भगवान रखा और उनको अपना सदेश फैलाने के लिए पूर्वी भारत मे भेजा। ऐसा कथित है कि उनके इस शिष्य ने हिन्दुस्तान मे कई स्थानो पर अपने केन्द्र अथवा गद्दियाँ कायम की। इसी तरह भाई सगतिया को भाई फेरू का नया नाम देकर बारी दूवाब मे प्रचार के लिए भेजा। भाई गोण्डा को सिक्ख धर्म फैलाने के लिए काबुल मे भेजा गया।

धर्म यात्रा : गुरु हर-राय ने मालवा मे धर्म का प्रचार करने का प्रोग्राम बनाया। थाना के स्थान पर ठहर कर उन्होने इस इलाके मे सिक्ख धर्म का प्रचार किया और वहाँ के प्रसिद्ध परिवारो को सिक्ख धर्म मे प्रवेश कराया।

फूल और उसकी संतान का सिक्ख धर्म में प्रवेश · गुरु हरराय ने मालवा मे काला और कर्मचन्द से सम्पर्क बनाया। कहा जाता है कि एक बार काला अपने भतीजे

सदली और फूल को साथ लेकर उनको मिलने आया। भेंट के समय फूल, जो गूँगा था, ने पेट पर हाथ मारना आरम्भ किया। गुरु जी के पूछने पर उसने बताया कि इस बालक को भूख लगी है और यह बोल न सकने के कारण इस तरह से सकेत कर रहा है। उसको देखकर गुरु हरराय ने आशीर्वाद दिया, "एक दिन वह बहुत प्रसिद्ध और धनवान बनेगा। उसकी सतान के घोडे जमुना तक पहुँचकर पानी पियेंगे और राजभाग उसी मात्रा मे उनको प्राप्त होगा जिस मात्रा मे वह गुरु की सेवा करेंगे"। फूल घराने की उन्नति इसी आशीर्वाद का फल समझा जाता है। नाभा के निकट भाई परिवार को भी गुरु हरराय ने सिक्ख धर्म मे प्रवेश कराया था। इस परिवार के पूर्वज भाई भगतु गुरु जी के मित्र थे। आज तक भी इस बाँगडिया परिवार को सिक्खों मे गुरु हरराय के कारण बहुत सम्मानित माना जाता है।

दारा से मित्रता : शाहजहाँ के उदार धार्मिक विचारो वाले पुत्र दाराशिकोह गुरु हरराय के मित्र थे। ऐसा कथित है कि गुरु जी ने बीमारी के समय मे उसको दवाई भी दी थी जिससे वह स्वस्थ हो गया था। गुरु हरराय ने पराजय के समय, दारा की जब वह भागकर पजाब की ओर आया था, सहायता की थी। कहा जाता है कि उन्होने उसको कुछ धन और सिपाही भी दिये थे ताकि वह बचकर काबुल की ओर चला जाये। इसी कारण औरगजेब गुरु हरिराय से नाराज हो गया था और उनको अपने पास बुलाया था कि वह सिक्खो के धर्म ग्रन्थ मे मुसलमानो के विरुद्ध कुछ अनुचित बातो के लिए जवाब दे। इसपर गुरु हरराय ने अपने बडे पुत्र रामराय को देहली भेज दिया था। सिक्ख परम्परा के अनुसार रामराय ने अपनी चतुराई से उस आपत्तिजनक शब्द के स्थान "बे-ईमान" कहकर अपने आप को बचा लिया था।' "आसा दी वार" मे जो मुसलमान शब्द को बरता गया है उसे राम राय ने बे-ईमान बताया था। गुरु हरराय, रामराय की इस कारवाई से खुश नही हुए थे क्योकि इससे यह सिद्ध होता था कि रामराय का अपने सिद्धान्तों पर अडिग विश्वास नही था अथवा इसमे सत्य बोलने का साहस नही था। परिणामस्वरूप उन्होने उसको अपनी सम्पत्ति से वंचित कर दिया और अपने बाद अपने छोटे-से पाँच वर्षीय पुत्र हरकिशन को गुरु नियुक्त किया।

गुरु हरकिशन (सन् 1661 से 1664)

गुरु हरकिशन के गुरु बनने पर उनके बड़े भाई रामराय ने अपने अधिकार को मुगल सम्राट् के पास सिद्ध करने की कोशिश की। उन्होने औरगजेब के सामने साबित करना चाहा कि उनके साथ अन्याय हुआ है और एक बच्चे के गुरु बनाये जाने पर उनके पूर्वजो की बपौती नष्ट हो जाएगी और सिक्ख धर्म के मानने वाले कुछ स्वार्थी लोग काबू से बाहर हो जाएँगे और पंजाब मे गडवड पैदा करेंगे। रामराय ने कुछ प्रभावशाली मसन्दो को भी अपने साथ मिला लिया था। परन्तु सिक्खों की बहुसख्या ने उनको स्वीकार नही किया।

गुरु हरकिशन को दिल्ली बुलाया गया। वहाँ जाकर वह प्रसिद्ध राजपूत दरबारी मिरजा राजा जय सिंह के पास ठहरे। उस स्थान पर आजकल नई दिल्ली मे बगला

साहिब गुरुद्वारा बना हुआ है। औरगजेब के समक्ष उन्होने यह सिद्ध कर दिया कि वह ही गुरु गद्दी के सच्चे अधिकारी है। इसी काल मे गुरु जी को चेचक निकल आई। सख्त बीमार और मूर्छित अवस्था मे उन्होने "बाबा बकाला," के शब्द उच्चारण किये जिस का अर्थ यह लिया गया कि नये गुरु को बाबा बकाला जाकर स्थापित किया जाए। इस काम के लिए उन्होने 5 ताँबे के सिक्के और एक नारियल भेजा। उनका देहान्त होने पर सन् 1664 मे बाबा बकाला मे नये गुरु की स्थापना के लिए कारवाई की गई।

गुरु तेगबहादुर (1664 से 1675)

उनके गुरु बनाये जाने की बडी रोमाचकारी घटना है। गुरु हरकिशन के देहान्त के बाद बकाला स्थित बहुत से सोढियो ने अपने आपको गुरु माने जाने का दावा किया क्योकि किसी व्यक्ति को गुरु साहिब ने अपनी बीमारी के समय नाम से गुरु नियुक्त नही किया था। परन्तु गुरु तेगबहादुर ही सच्चे उत्तराधिकारी होने के कारण अपने आप को नौवें गुरु सिद्ध कर सके। उनको पाने के लिए एक अद्भुत घटना इस प्रकार घटी कि एक प्रसिद्ध सिक्ख व्यापारी मक्खन शाह ने गुरु को 500 मोहरे इस लिये भेट करनी थी कि उनकी दया से उनका जहाज तूफान मे डूबने से बच गया था। बाबा बकाला पहुँच कर उन्होने जो लोग अपने आप को गुरु कहते थे सबको दो-दो मोहरे भेट कर दी परन्तु गुरु तेगबहादुर को मोहरे भेट करते समय उन से यह प्रश्न किया गया, 'शेष 498 मोहरे भी उनको मिलनी चाहिये। उसने सकट के समम 500 मोहरे भेट करने का वचन जो दिया था।' इस पर मक्खन शाह ने प्रसन्न होकर घोषणा की कि "गुरु लाधो रे" अर्थात् सच्चे गुरु को उन्होने ढूँढ लिया है। गुरु तेगबहादुर के इस प्रकार नौवे गुरु सिद्ध होने के बावजूद उनके भतीजे धीरमल (जो कि गुरु हरगोबिन्द सिंह के सुपुत्र बाबा गुरदित्ता का पुत्र था) और कुछ मसन्दो ने उनका विरोध जारी रखा। उन्होने कुछ मूर्ख सिक्खो को अपने साथ मिलाकर गुरु तेगबहादुर को मारने की कोशिश भी की और उन पर हमला करके उनको जख्मी कर दिया। गुरु तेगबहादुर के अनुयायियों ने इस बात से नाराज होकर यह धीरमल को दण्ड देने का निर्णय किया और उनकी सम्पत्ति लूट ली। गुरु तेगबहादुर जो कि बडे दयालु स्वभाव के थे, इस बात से बहुत दुखी हुए, और अपने मानने वालो को आदेश दिया कि धीरमल और उनके साथियो की सम्पत्ति लौटा दे। गुरु तेगबहादुर "क्षमा को सबसे बडा गुण" समझते थे।

अमृतसर और वल्ला जाना : गुरु तेगबहादुर ने बाबा बकाला मे दूसरे सोढियों से दुखी होकर अमृतसर जाने का विचार किया परन्तु अमृतसर के भ्रष्ट मसन्दो ने यह समझा कि वह उन से हिसाब लेने के लिए आ रहे है। उन्होने गुरु तेगबहादुर को हर मन्दिर मे दाखिल नही होने दिया जिस कारण तेगबहादुर अमृतसर के निकट वल्ला गाँव मे कुछ देर ठहरे। अमृतसर के मसन्दो के दुर्व्यवहार के कारण गुरु तेगबहादुर ने उनके बारे मे कहा था कि "अमृतसरिये नही है परन्तु अन्दर सडिये है" अर्थात् उनका अन्त करण अपवित्र है। वल्ला से चलकर गुरु तेगबहादुर कीरतपुर मे आकर ठहरे। वहाँ पर भी उनके निकट सबधियो ने जो उनके साथ ईर्ष्या करते थे

और भ्रष्ट मसन्दो ने उन्हे चैन से न रहने दिया। इन बातो से दुखित होकर उन्होने धम प्रचार के लिए पजाब से बाहर जाने का प्रोग्राम बनाया।

पूर्व की दिशा में दौरा : गुरु तेगबहादुर अपनी धर्मपत्नी और माता के साथ पूर्व की दिशा मे चल पडे। रास्ते मे सगतो ने उनका हार्दिक स्वागत किया। दिल्ली के निकट रामराय ने, जो कि अभी तक औरगजेब के पास दिल्ली मे ठहरा हुआ था, उनको झूठे इल्जाम लगाकर पकडवा दिया। इल्जाम गलत सिद्ध होने पर उनको छोड दिया गया और गुरु साहिब को एक सिसोदिया राजपूत, जो कि आसाम (असम) और चटागॉव की तरफ एक सैनिक कारवाई के सबध मे जा रहा था, के साथ जाने दिया। रास्ते मे गुरु तेगबहादुर आगरा, इलाहाबाद, गया और बनारस मे ठहरे और धर्म प्राचर किया। पटना पहुँचकर उन्होने अपनी धर्मपत्नी के वहाँ ठहरने का अपने साले कृपाल चन्द के पास प्रबन्ध किया। चूँकि उनकी धर्म पत्नी गर्भवती थी, अत वह आगे अकेले ही ब्रह्म-पुत्र नदी पार करके सिलहट, चटगाँव, सौन्दीप (पूर्वी बगाल आदि) स्थानो पर गये।

ढाका में विशाल समागम : ढाका मे आपने बुलाको नामी प्रसिद्ध मसद द्वारा वहाँ एक विशाल समागम का प्रबन्ध किया। उस इलाके की सब सगतो को इकट्ठा करके धर्मोपदेश दिया। इसी समय मे उनको गुरुगोविन्द सिंह जी के पटना मे जन्म की शुभ सूचना मिली थी। इसी खुशी मे ढाका मे गुरु तेगबहादुर ने एक धर्मशाला स्थापित की थी।

असम की यात्रा : आगे चलकर गुरु तेगबहादुर असम पहुँचे। जहाँ पर उनके प्रभाव से दो विरोधी दलो मे, जिन के कारण राजपूत सरदार को आना पडा था, सुलह करादी। इसके उपलक्ष्य मे घुबरी के स्थान पर एक टीला बनाया गया था जो कि गुरु नानक टीले के नाम से प्रसिद्ध है। असम मे कोई तीन साल ठहरने के पश्चात् गरु तेगबहादुर अपने परिवार को मिलने के लिए पटना पहुँचे।

पंजाब मे वापसी गुरु जी जितना समय पजाब से बाहर रहे उनको पजाब के बारे मे चिन्ताजनक रिपोर्टे मिलती रही कि वहाँ पर स्थिति बहुत गम्भीर होती जा रही है। इसका प्रमुख कारण मुगल सम्राट् की दमननीति थी। औरगजेब के आदेशानुसार हिदुओ को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाने लगा था और कश्मीर के गवर्नर शेर-अफगान के बारे मे यह मशहूर हो गया था कि वह कश्मीरी पण्डितों को मुसलमान बनाने मे सबसे आगे है। गुरु साहिब ने ऐसी स्थिति मे पजाब लौटने का प्रोग्राम बनाया ताकि हिन्दुओ और सिक्खों मे साहस पैदा किया जाए जिससे कि वे अपने धर्म पर दृढ रह सके।

पंजाब में दोबारा आना, अपने मानने वालों को नया उपदेश गुरु तेगबहादुर ने पजाब मे दोबारा आकर विशाल दौरा आरभ किया। इस दौरे का उद्देश्य स्थान-स्थान पर जाकर लोगो मे यह प्रचार करना था कि वह डर कर अपना धर्म न छोडे। जब वह आनन्दपुर मे ठहरे हुए थे तो उन्होंने कश्मीरी पण्डितो के प्रतिनिधि मण्डल से अपनी एक भेट मे यह भविष्यवाणी की थी कि ऐसी गम्भीर स्थिति मे किसी

महान् व्यक्ति को बलिदान के लिए तैयार होना पडेगा और इसी समय बालक गोबिन्द राय ने भोलेपन से कहा था कि हिन्दुओं के तिलक और यज्ञोपवीत की रक्षा केलिए उनसे बढकर साहसी, धर्मात्मा और श्रेष्ठ व्यक्ति कौन होगा ? इन साधारण शब्दो से प्रेरित होकर ही गुरु तेगबहादुर ने कश्मीरी पण्डितो से कहा था कि वह औरंगजेब को जाकर कह दे "सिक्खो के नौवे गुरु तेगबहादुर आनन्दपुर साहिब मे गुरु नानक देव के तख्त पर बैठे है। वह हिन्दू धर्म के रक्षक है। पहले उनको मुसलमान बनाइये उसके बाद बाकी सब लोग, जिन मे वह पण्डित भी है, अपने-आप मुस्लिम धर्म मे प्रवेश करलेगे"। इस घोषणा के बाद गुरु जी को दिल्ली बुलाया गया। परन्तु उन्होने कहा कि वह अपने साथियो और अनुनायियो को मिलकर जल्दी ही अपने-आप दिल्ली पहुँच जाएँगे। गुरु साहिब दिल्ली जाने से पहले अधिकाधिक अनुयायियो को मिलकर उनको अपना नया सदेश देना चाहते थे। मुसलमानो को लेकर उनके प्रति कई सदेह पैदा किये गए और उनको न्याय विरोधी घोषित कर उनको पकडने के आदेश जारी कर दिये गये। गुरु साहिब को अपने कुछ साथियो समेत आगरा के निकट पकड कर काजी के सामने पेश किया गया जिसने उनको दिल्ली भेज दिया।

गुरु साहिब के विरुद्ध कारवाई के बारे मे भिन्न-भिन्न विचार

इतिहासकारो मे गुरु तेगबहादुर की इस कारवाई के बारे मे मतभेद है। ट्रम्प और कनिंघम ने मुहम्मद हुसैन, की "सैर-उल-मुताखरीन" के आधार पर यह विचार प्रकट किया है कि उनको उनके धर्म-प्रचार या धार्मिक विचार के लिए नही पकडा गया था बल्कि उनके विरुद्ध लूटमार करने या सरकारी लगान न देने का इल्जाम था। ऐसा कहा जाता था कि उन्होने एक मुस्लिम फकीर हाफिज आदम के साथ मिलकर लोगो को लगान न देने के लिए उकसाया था। इन्दूभूषण और दूसरे कई इतिहासकारो ने यह सिद्ध किया है कि गुरु साहिब को राजनीतिक अपराधी होने के लिए नही बल्कि उनके धार्मिक विचारो के किए दण्ड दिया गया था। इन लोगों की राय मे गुरु तेगबहादुर स्वभाव से ही शान्तिप्रिय व्यक्ति थे जिसके कारण उनको "तेगबहादुर" कहा जाता था। ऐसे शान्तिप्रिय व्यक्ति के लिए किसी किस्म के राजनीतिक अपराध का दोषी होना असम्भव था। इसीलिए मुसलमान इतिहासकारो ने उनको जानबूझ कर राजनीतिक अपराधी बनाने की कोशिश की है। यह बात बिल्कुल निराधार है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि जिस समय गुरु तेगबहादुर ने हिन्दुओ और सिक्खो मे अपना धर्म प्रचार का आन्दोलन आरम्भ किया उस समय उत्तर पश्चिमी भारत और पजाब की स्थिति गडबडाई हुई थी। इससे औरगजेब जैसे कट्टर मुसलमान को यह भय था कि उनके धर्म का मनोरथ राजनीतिक है या उनके इस आन्दोलन का परिणाम राजनीतिक विद्रोह को प्रोत्साहन देने का कारण हो सकता है।

उत्तर पश्चिमी भारत मे राजनीतिक स्थिति सन् 1667 से लेकर सन् 1675 तक बहुत गम्भीर हो गई थी। इस उत्तर पश्चिमी प्रदेश में सरहदी कबीले मुगल साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। यूसफजई कबीले ने अटक तक विद्रोह करके

वहाँ मुगल राज्य समाप्त कर दिया था। सन् 1672 मे काबुल के गवर्नर अमीन खाँ (जो मीर जुमला के पुत्र थे) अकमल खा की अगवाई मे अफरीदियो के विद्रोह को दबाने मे असफल रहे थे। अमीन खाँ काबुल से भाग कर अली मस्जिद चले आये थे। इसी समय पाठानो के प्रसिद्ध लीडर और राष्ट्रीय नेता खुशहाल खा खटन ने इस सारे इलाके मे स्वतन्त्रता आदोलन आरभ कर दिया था। उत्तर पश्चिमी इलाके मे इस विशाल गडबड के कारण औरगजेब को स्वय दक्षिण भारत से, जहाँपर वह युद्ध मे फँसा हुआ था, उत्तर भारत आना पडा था। उसने हसनअब्दाल (तक्षसिला) पहुँचकर कबाइलियो को काबू मे लाने के लिए की गई कारवाई की निगरानी की थी और वह बडी मुश्किल से सन् 1675 मे इस विद्रोह को दबा सका था। ऐसी स्थिति मे यह सम्भव है कि गुरु साहिब की निडरता और धर्म पर दृढ रहने की कारवाई को मुगल सम्राट् ने राजनीतिक आन्दोलन समझा हो और इसको दबाने मे इसको राजनीतिक रूप दे दिया हो।

इस बारे मे सारी बातो पर विचार करने के बाद बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि गुरु तेगबहादुर का अपराध राजनीतिक नही था भले ही उनको राजनीतिक अपराधी घोषित करके औरगजेब ने एक तीर से दो निशाने लगाने की कोशिश की थी।

गुरु तेगबहादुर की शहीदी

गुरु तेगबहादुर को बन्दी बनाकर दिल्ली मे कुछ समय रखने के पश्चात् उनको कहा गया कि या तो वह मुसलमान बन जाएँ या अपनी कोई करामत दिखाएँ जिससे सिद्ध हो कि वह वास्तव मे सच्चे गुरु है। गुरु साहिब ने उत्तर दिया कि उनके पास एक ऐसा मन्त्र है जिस के गले मे पहनने से उनके ऊपर किसी तलवार का वार निष्फल हो जायेगा। इस तरह तलवार से उनके सिर को धड़ से जुदा कर दिया गया और उनके गले मे डाले हुए उस कागज पर यह लिखा हुआ था "सिर दिया पर सिरड न दिया" अर्थात् सिर कटा दिया परन्तु असली भेद नही दिया। उनके सिर को बडी बहादुरी से दो सिक्खो के आनन्दपुर साहिब लाने पर उनका दाह-संस्कार किया गया परन्तु प्रसिद्ध स्मारक "गुरुद्वारा सीस गंज" चादनी चौक देहली मे बनाया गया। यह घटना 11 नवम्बर 1675 को घटी थी।

गुरु तेगबहादुर की शहीदी का महत्त्व

गुरु तेगहबादुर की बर्बरतापूर्ण शहीदी से पजाब मे सिक्खो और हिन्दुओ मे गुस्से की लहर दौड गई। उन्होने बहुत दुखी होकर मुगल साम्राज्य का फिर से मुलाबला करने का प्रण किया। उनको एक बार फिर यह अनुभव हो गया कि अपने धर्म की रक्षा के लिए हर किस्म की कुरबानी देने के लिए तैयार रहना होगा। इस घटना के फलस्वरूप सारा पजाब उत्तेजित हो उठा। लोग सोचने लगे कि उनके बलिदान का बदला लिया जाए। माझा के शक्तिशाली किसान एक बार फिर मुगल साम्राज्य से टक्कर लेने के लिए तैयार हो गये। अगर उन्हे किसी चीज की आवश्यकता थी तो वह एक योग्य लीडरी की जो उनको गुरु तेगबहादुर जी के सुपुत्र गुरु गोबिन्द सिंह में

प्राप्त हो गई । गुरु गोबिन्द सिंह जी ही वास्तव मे एक ऐसे नेता थे जो कि मुगल साम्राज्य से हिन्दुओ और सिक्खो को मुक्त कर सकते थे ।

गुरु तेगबहादुर की सिक्ख धर्म को देन

गुरु तेगबहादुर ने अपने गुरुकाल मे सिक्ख धर्म की भरसक सेवा की । वह उच्च कोटि के कवि थे और उनके कुछ शब्द गुरु ग्रन्थ साहिब मे शामिल किये गये थे । उनकी शिक्षा मे असाधारण क्षमता और दृढता थी । उनकी कविता मे बडे उच्च भाव पाये जाते है जिनसे आत्मा को शान्ति मिलती है । आज भी उनके शब्द श्रद्धा-पूर्वक गाये जाते हैं ।

प्रश्न

1 Review briefly the situation on the N W Frontiers (between Attock and Khyber) of the Mughal empire during 1672-75 and the activities of Guru Tegh Bahadur during the years 1673-75 (till the Guru's execution) Is there any tangible evidence to connect these events and endorse the view that the emperor (Aurangzeb) entertained serious apprehension that the Guru's gathering strength would be enough to prove a danger to the State ?

वर्ष 1672-75 के दौरान मुगल साम्राज्य की उत्तर पश्चिमी सीमाओ (खैबर और अटक की मध्यवर्ती) की स्थिति और वर्ष 1673-75 के दौरान (गुरु जी का वध किए जाने तक) गुरु तेगबहादुर की गतिविधियो का सक्षिप्त वर्णन कीजिए । क्या हमारे पास कोई ठोस साक्ष्य है जिस से हम सम्राट् (औरगजेब) के इस दृष्टिकोण की, कि गुरु तेगबहादुर जी के सशक्त होने से राज्य की सुरक्षा को गभीर खतरा पैदा हो जाएगा, पुष्टि कर सके और इन घटनाओ का सबध उसके साथ जोड सके ।

2 "The martyrdom of Guru Tegh Bahadur is a great landmark in the Sikh history" Explain clearly the causes and significance of the martyrdom

"गुरु तेग बहादुर का बलिदान सिक्ख इतिहास की एक महान् घटना है ।" उनके बलिदान के कारणों एव महत्ता का वर्णन कीजिए ।

3. Write a critical note on the causes and effects of the martyrdom of Guru Tegh Bahadur.

गुरु तेग बहादुर के बलिदान के कारणो और उसके प्रभावो पर विवेचनात्मक टिप्पणी लिखिए ।

4 Give a detailed account of the religious and political conditions prevailing in Northern India that led to the Martyrdom of Guru Tegh Bahadur

उत्तर भारत में विद्यमान जिन धार्मिक एव राजनीतिक परिस्थितियो के कारण गुरु तेग बहादुर का बलिदान हुआ, उनका सविस्तर वर्णन करो ।

10

शान्तिमय सिक्खों से सशस्त्र खालसा : गुरु गोबिंद सिंह (1675—1708)

गुरु तेगबहादुर के देहान्त पर स्थिति —खतरे और कठिनाइयां

आन्तरिक : गुरु तेगबहादुर के देहान्त के समय सिक्खो की स्थिति बहुत गम्भीर थी। नये गुरु गोबिन्द सिंह 9 साल के बच्चे थे। उनके पिता की शहीदी से सारी सिक्ख जनता भयभीत हो गई थी। सिक्खो मे आपस मे मतभेद थे। गुरु की कमजोरी अनुभव करते हुए लालची मसन्द शक्तिशाली हो गये थे। उन्होने लोगो को अपने साथ मिलाकर छोटे-छोटे दल बना लिये थे और गुरुयाई पद को प्राप्त करने वालो का विरोध और समर्थन करके यह समझने लगे थे कि गुरु केवल उनके हाथ की कठपुतली है। परिणाम-स्वरूप जो लोग किसी कारण से गुरु नही बन सके थे, गुरु के बालक होने के कारण अपना नया सम्प्रदाय बनाकर बालक गुरु को अपनी पदवी से हटा देना चाहते थे। जिन मे मोणे, धीरमलिये, और रामराइये प्रसिद्ध थे।

बाहरी सिक्ख धर्म के मानने वालो को बाहर से भी खतरा बढ गया था। तेगबहादुर की शहीदी इस बात का प्रमाण था कि मुगल सम्राट् औरगजेब सिक्खो का दमन करना चाहता था और यह उनकी उस नई नीति का सबूत था जो कि उन्होने लोगो को जबरदस्ती मुसलमान बनाने के लिए धारण की थी। उद्देश्य था कि भारत को "दारु-उल-इस्लाम" अर्थात् केवल इस्लाम के मानने वालो का देश बना दिया जाए। इस कारण गुरु तेगबहादुर का शायद यही अपराध था कि वह लोगो को अपना धर्म न छोड़ने की प्रेरणा देते थे और उनको अपने धर्म पर दृढ रहने का उपदेश देते थे।

गुरु गोबिन्द सिंह के गुरु बनते ही उनको अन्दर और बाहर से बड़े-बड़े खतरो का सामना करना था। इसमे सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि गुरु पद को अच्छी तरह स्थापित करके उसका प्रभाव और शक्ति बढाई जाये। सिक्खो के अन्दर भिन्न-भिन्न दलो और मतो का होना बहुत भारी खतरा था। उनकी एकता केवल गुरु के नियंत्रण से ही सुरक्षित रखी जा सकती थी। सिक्ख मत की स्थापना और उसकी सफलता का मुख्य कारण गुरु की पोजीशन ही थी, इसलिए गुरु गोबिन्द सिंह के सामने सबसे बडा सवाल गुरु पद की महानता को कायम करना था। यह बिल्कुल स्पष्ट था कि सिक्खों को इकट्ठा करने का एकमात्र सूत्र गुरु ही था। कई कारणो से गुरु हरगोबिन्द के बाद गुरु की पोजीशन काफी कमजोर हो चुकी थी। उत्तरवर्ती गुरुओ के शान्तिमय स्वभाव से विरोधी दल जोर पकड गये थे और सिक्ख धर्म को दोबारा सगठित करना नये गुरु की महानता और शक्ति पर ही निर्भर था।

गुरु गोबिन्द सिंह का जीवन

गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन को मुख्यत दो भागो मे बाँटा जा सकता है

I खालसा की स्थापना से पहले का काल, सन् 1675 से 1699 तक ।

II खालसा की स्थापना के बाद का काल, सन् 1699 से 1708 तक ।

गुरु गोबिन्द सिंह का जन्म 15 दिसम्बर, 1666 को पटना मे हुआ था । बाल्यावस्था मे गुरु बनने के पश्चात् गुरु गोबिन्द सिंह के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण काम अपने पिता की हत्या का बदला लेना और अपने अनुयायियो को मुगल साम्राज्य का मुकाबला करने अथवा उस दमनचक्र को, जोकि मुगलो ने उनके धर्म के विरुद्ध चलाया था, तोडने का था । इस महान कार्य के लिए सब स्थिति को हर प्रकार से ध्यान मे रखते हुए अपने आपको और अपने साथियो को तैयार करना था ।

I खालसा की स्थापना से पहले का काल

शिक्षा और आर्थिक तैयारियां नौ साल के गुरु की शिक्षा सबसे ज्यादा जरूरी थी । इसलिए उनके मामा कृपाल चन्द ने उनको आनन्दपुर की बजाय किसी सुरक्षित स्थान पर रखकर उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया । इस काम के लिए पौण्टा जो कि पुरानी नाहन रियासत और वर्तमान हिमाचल प्रदेश मे जमुना के निकट एक बहुत ही सुन्दर स्थान पर स्थित है, उचित समझा गया । इस स्थान पर शान्तिमय और प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ गुरु की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया गया । उनको सस्कृत, फारसी, ब्रजभाषा आदि की उच्च शिक्षा देने के लिए योग्य शिक्षको का प्रबन्ध किया गया । साथ साथ ही उनको अपने नये पद की जिम्मेदारी अच्छी तरह से पूरी करने का ज्ञान भी कराया गया । इस काम के लिए एक बडे प्रसिद्ध राजपूत शिक्षक का प्रबन्ध किया गया जिसने तलवार, बन्दूक, घुडसवारी, नेजाबाजी मे गुरु जी को बिल्कुल निपुण कर दिया । इन चीजो मे स्वाभाविक रुचि होने के कारण उन्होने विशेष योग्यता प्राप्त कर ली । इस तरह से गोबिन्द सिंह को अपने गुरु पद की महान् चुनौतियो का सामना करने के लिए तैयार किया गया । ऐसा करना उचित ही था क्योकि उनका गुरु काल सकटमय था ।

अपनी शिक्षा-दीक्षा को प्राप्त करने के पश्चात् गुरु गोबिन्द सिंह ने अपना जीवन लक्ष्य अच्छी तरह और स्पष्ट तौर पर समझ लिया । इसका वर्णन उन्होने अपनी प्रसिद्ध रचना "विचित्र नाटक" मे इस प्रकार किया है, "कि मै ससार मे इस कर्त्तव्य का पालन करने के लिए आया हूँ कि सत्य को स्थापित किया जाये और अन्याय और अधर्म का नाश किया जाए ।" यह नया उद्देश्य शान्तिमय उद्देश्य से बिल्कुल भिन्न था और गुरु के नये विचारों का प्रतीक था जो कि उन्होने अपने गुरु काल मे फैलाये और जिस काम के लिए उन्होंने सिक्खो को तैयार किया । उनका गुरु काल शान्तिमय नही रह सकता था और उसके स्थान पर उन्होने अपने आपको और अपने साथियो को सशस्त्र विद्रोह के लिए तैयार करने की तरफ अपनी सारी शक्ति और ध्यान लगाया ।

भगाणी का युद्ध (सन् 1686) : गुरु गोबिन्द सिंह के पौण्टा मे ठहरने के समय उनकी युद्ध की तैयारी को देखते हुए पहाडी राजाओ के दिल मे कई किस्म के सशय

पैदा हो गये । उनके ठाठ-बाठ देखकर उनके दिल मे ईर्ष्या पैदा होने लगी थी । इन कारणो से गुरु गोबिन्द सिंह और पहाडी राजाओ मे मतभेद पैदा होने आरम्भ हो गए थे । राजा भीमचन्द कैहलूर (बिलासपुर) नरेश सबसे पहले नाराज हुए । कारण यह बताया जाता है कि उन्होने गुरु गोबिन्द सिंह को दिये गये कुछ विशेष उपहार अपने लिये मागे । गुरु गोबिन्द सिह के भक्तो ने उनको एक हाथी, और एक बहुत सुन्दर शामियाना भेट किया था । भीमचन्द ने यह दोनो चीजे अपने लिये माँगी और गुरु गोबिन्द सिह के इन्कार करने पर उनसे क्रोधित हो गये । वास्तव मे ईर्ष्या का कारण यह था कि गुरु गोबिन्द सिंह का बढता हुआ ठाठ-बाठ और शक्ति उनके लिए खतरा बन रहे थे । साथ ही साथ गुरु साहिब का प्रचार जो कि जात-पात अथवा ऊँच-नीच के विरुद्ध था, हिन्दू राजाओ को नही भाता था । इससे उनके प्रभाव के खत्म होने का डर था ।

पहाडी राजाओ ने बिलासपुर नरेश के सुपुत्र की शादी, जो कि राजा फतेहशाह श्री नग्गर वाले की सुपुत्री के साथ हुई थी और जिस अवसर पर सब राजा इकट्ठे हुए थे, के मौके का फायदा उठाकर गुरु गोबिन्द सिंह के विरुद्ध मिलकर कारवाई करने का निर्णय किया । गुरु गोबिन्द सिह को भी इस बात का ज्ञान हो गया था कि फतेह-शाह की लडकी की शादी पर उनकी तरफ से भेजे गये उपहार अस्वीकार कर दिये गये थे और जो लोग उनको लेकर गये थे उन पर लौटते समय आक्रमण कर दिया था । इसलिए दोनो ओर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगी ।

यह युद्ध भगाणी के स्थान पर, जो पौण्टा से 6 मील के फासले पर है, हुआ था । इसमे गुरु गोबिन्द सिंह ने अपनी नई शक्ति और युद्ध कौशल का प्रमाण दिया । उन्होने अपने थोडे से साथियो की सहायता से पहाडी राजाओ की भारी गिनती की फौज को पराजित कर दिया । इय युद्ध के समय गुरु गोबिन्द सिंह को गम्भीर सकट का सामना करना पडा था । उस समय उनके 500 मुसलमान सिपाही जो कि सढौरा के मुसलमान पीर बुद्धशाह के कहने पर नौकर रखे थे, युद्ध से बिलकुल पहले उनके वेतन मे चार गुना वृद्धि के लालच मे आकर पहाडी राजाओ से जा मिले थे । साथ ही गुरु गोबिन्द सिंह के सहायक उदासी साधु भी एक दो के सिवाय युद्ध के समय उनका साथ छोड गये थे । गुरु गोबिन्द सिंह ने बडे साहस और गभीरता से इस स्थिति का मुकाबला किया और बडी वीरता से पहाडी राजाओ को पराजित कर दिया । इस युद्ध मे प्रसिद्ध पहाडी राजा हरिचन्द और पठानो का सरदार भीखन खाँ मारे गये । भगाणी के युद्ध का वर्णन गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने शब्दो मे विचित्र नाटक मे बहुत अच्छी तरह से किया है जिससे हमे उनकी वीरता और युद्ध नीति का ज्ञान होता है ।

भंगाणी के युद्ध का महत्त्व बीस साल के युवा गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन मे भंगाणी का युद्ध सबसे पहला युद्ध था और इसके बडे गंभीर परिणाम निकल सकते थे । अगर उनकी इस युद्ध मे हार हो जाती तो गुरु साहिब का सारा जीवन विफल हो जाता और जो उद्देश्य उन्होंने अपने सामने रखा था वह भंग हो जाता । इतना ही नहीं शायद उन्हे पहाडी इलाके के निकट रहना भी कठिन होता क्योंकि पहाड़ी राजा उनको इस

सारे प्रान्त मे टिकने न देते। नये गुरु के लिए यह सबसे पहली परीक्षा थी कि वह अपने गुरु बनने का अधिकार जमा सके और अपने साथियो मे विश्वास पैदा कर सके। भगाणी के युद्ध से गुरु गोबिन्द सिह का प्रभाव बहुत बढ गया था। उनके साथियो मे विश्वास हो गया कि गुरु गोबिन्द सिंह के लिए जीवन का उद्देश्य प्राप्त करने का द्वार खुल गया है।

भगाणी के युद्ध मे विजय प्राप्त करने के बाद गुरु गोबिन्द सिंह बडे सन्मान से पौण्टा से आनन्दपुर साहिब जा सके और उस स्थान को अपना केन्द्र बना सके।

नदौण का युद्ध (सन् 1687) · आनन्दपुर पहुँच कर गुरु गोबिन्द सिंह ने अपना रक्षा प्रबन्ध और मजबूत कर लिया। अपने निवास स्थान के चारो ओर चार छोटे-छोटे किले-आनन्दगढ, लोहगढ, केश गढ और फतेहगढ बनवाये। भगाणी के युद्ध के बाद उनके सबध बिलासपुर के राजा भीमचन्द के साथ अच्छे हो गये क्योकि वह इनकी शक्ति का सम्मान करने लगा और इसी कारण से उसने गुरु गोबिन्द सिंह से मुगलो के विरुद्ध युद्ध मे सहायता माँगी। पहाडी राजाओ ने कुछ समय से मुगलो को नज़राना देना बन्द कर दिया था। उनको ऐसा करने का साहस इसलिए हुआ था कि औरगजेब बहुत समय से दक्षिण मे युद्ध मे फँसा हुआ था और उत्तर भारत की तरफ पूरा ध्यान नही दे सकता था। पहाडी राजाओ के विरुद्ध लाहौर के मुगल सूबेदार ने अलिफ खाँ की कमान मे फौज भेजी। नदौण के स्थान पर, जो कि कागडा से 20 मील दक्षिण पूर्व की तरफ ब्यास के किनारे है, युद्ध हुआ। पहाडी राजाओ की विजय हुई और यह केवल इसलिए हो सका कि गुरु गोबिन्द सिंह ने इस युद्ध मे भगाणी की तरह बहुत वीरता और साहस का प्रमाण दिया था। परन्तु पहाडी राजाओं ने विजयी होते हुए भी मुगल साम्राज्य से सुलह कर ली और गुरु गोबिन्द सिह को अकेले ही मुगलो के साथ युद्ध करना पडा। गुरु गोबिन्द सिह ने बहुत वीरता से मुगलो को विफल कर दिया।

उत्तर भारत की स्थिति से चिन्ति हो कर मुगल सम्राट् औरगजेब ने अपने सुपुत्र शहजादा मुअज्जम (जो कि बाद मे बहादुरशाह के नाम से सम्राट् बना) को पहाडी राजाओ के विरुद्ध कारवाई करने के लिए भेजा। शहजादा ने लाहौर पहुँचकर मिर्ज़ा बेग को काफी फौज देकर पहाडी राजाओ के विरुद्ध कारवाई करने के लिए भेजा जिस के फलस्वरूप पहाडी राजाओ ने मुगल साम्राज्य की अधीनता मान ली। परन्तु गुरु गोबिन्द सिंह इसके लिए तैयार नही हुए। शहजादा ने उनके विरुद्ध कोई विशेष कारवाई नही की। इसका कारण यह समझा जाता है कि गुरु गोबिन्द सिंह के एक परम भक्त भाई नन्द लाल, जो फारसी के बडे प्रसिद्ध विद्वान थे, मुगल साम्राज्य मे शहजादो के शिक्षक रह चुके थे। इस प्रकार भगाणी के युद्ध से लेकर खालसा की स्थापना के समय तक गुरु गोबिन्द सिह को काफी अवकाश मिल गया और इस समय मे उन्होने बहुत अध्ययन करके अपने साथियो को अपने जीवन उद्देश्य की पूर्ति के लिए तैयारी मे लगाया। इस 12 साल के समय मे उन्होंने अपने साथियो का पुनर्गठन किया और उनमे नये जीवन की रूह फूँकी। ऐसा कहा जाता है कि उनके दरबार मे 52 विद्वान्

श्रौर कवि थे जिन को उन्होंने रामायण, महाभारत श्रौर दूसरे प्रसिद्ध ग्रन्थो के अनुवाद मे लगाया, जिन को पढकर सर्वसाधारण लाभ उठा सके श्रौर गुरु जी के नये मिशन की पूर्ति के लिए स्वय को तैयार कर सके। (उनके दरबार के एक कवि टैहकन द्वारा पजाबी मे रचित महाभारत की पाण्डुलिपि के कुछ अश, जो कि सचित्र है, पजाब राज्य पुरालेख विभाग, पटियाला मे सुरक्षित है)।

गुरुगोबिन्द सिह ने यह अनुभव कर लिया कि सिक्खो को सशस्त्र सघर्ष के लिए तैयार करना होगा परन्तु पहले उनमे फैली हुई कुरीतियो को दूर करना आवश्यक था। उन्होंने अपने साथियो मे नई जागृति के साथ-साथ उनको मुगल साम्राज्य के विरुद्ध सघर्ष के लिए भी उद्यत करने का परिश्रम किया।

खालसा की स्थापना (सन् 1699)

गुरु गोबिन्द सिंह ने बैसाखी के शुभ दिन पर आनन्दपुर मे केशगढ के स्थान पर एक बहुत बडे समागम का प्रबन्ध किया। पहले से ही दूर-दूर तक इस बात की सूचना भेज दी गई कि उनके अनुयायी भारी सख्या मे वहाँ एकत्र हो जाएँ क्योकि उस दिन वह एक विशेष घोषणा करेंगे। इस तरह विशाल जनसमूह के सामने उन्होंने अपने साथियो मे से एक ऐसे व्यक्ति को खडे होने के लिए कहा जो गुरु के लिए अपना शीर्ष देने को उद्यत हो। सारे उपस्थित लोगो मे एक तरह से सन्नाटा छा गया परन्तु एक वीर ने उठकर गुरु साहिब के लिये अपना शीर्ष देने का साहस किया। गुरु गोबिन्द सिह उसको साथ लगे हुए खेमे मे ले गये। कुछ देर बाद अपने हाथ मे एक नगी तलवार, जो कि खून मे डूबी हुई थी, लेकर आये। एक बार फिर उन्होंने एक और व्यक्ति का बलिदान माँगा। एक दूसरे साहसी पुरुष के खडे होने पर उसको भी खेमे मे ले जाकर उसी तरह खून से लथपथ तलवार लेकर लोगो से अपील की। इस तरह 5 सिक्खो को बलिदान के लिए तैयार हो जाने के पश्चात् गुरु साहिब उन सब को खेमो मे से जीवित बाहर लेकर आये और सब के सामने यह घोषणा की कि वह उनके सच्चे भक्त है और उनको पाँच प्यारों का सम्मान दिया। ये भाग्यवान व्यक्ति थे दयाराम, कर्मचन्द, मुहकम चन्द, साहिब चन्द और हिम्मतराय।

गुरु साहिब ने उनको नये नाम देकर खालसा के रूप में सबके सामने पेश किया। इस अनोखे और प्रभावशाली ढग से खालसा की स्थापना की गई। जिस का नया उद्देश्य और नया जीवन आदर्श उनके सामने रखा।

नई 'पाहुल' सबसे पहले उनको नये रूप मे 'पाहुल' देकर एक तरह से नये धर्म में प्रवेश कराया गया। वह 'पाहुल' का तरीका पुराने चरणामृत के ढंग से बिल्कुल जुदा था। एक स्वच्छ बर्तन मे पानी लेकर उसमे कुछ पतासे मिलाकर उसके अन्दर खण्डे को घुमा दिया जाता था। इस मीठे जल को नये खालसा बनने वाले व्यक्ति को पिला दिया जाता था और उस समय शब्द उच्चारण करके इस रस्म को पूरा किया जाता था। इस को साधारण रूप मे 'अमृत छकाणा' कहते है। पाँचों प्यारों को अमृत छकाणे के बाद गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने आपको भी उनसे पाहुल

लेकर 'खालसा' के रूप मे परिवर्तित किया। सब के नामो के साथ सिंह शब्द लगा कर अपने लिए भी नया नाम गोबिन्द सिंह धारण किया।

नये चिह्न : खालसा के लिए नये चिह्न—कडा, केश, कच्छा, कृपाण और कघा नियुक्त किये गए। उनको जीवन पर्यन्त ये चिह्न धारण किए रहने के लिए कहा गया।

नई शिक्षा जो गुरु के खालसा बने उनको एक दूसरे के साथ बराबर का व्यवहार करना, सब किस्म की जातपात के भेदभाव को मिटाना और केवल आपस मे ही शादी विवाह करने का आदेश दिया गया। उनके लिए धूम्र-पान करने और बाल कटाने का निषेध किया गया। उनको यह भी कहा गया कि जो लोग अपनी लडकियो को मार देते थे या पृथिया, धीरमल या रामराय के परिवार से सम्बन्ध रखते थे उन के साथ कोई मेल जोल अथवा लेनदेन न करे।

खालसा के लिए यह भी अनिवार्य था कि वे और सब काम धन्धे छोड कर केवल धर्म युद्ध के लिए उपस्थित रहे। सब कर्मकाण्ड और पारिवारिक कर्त्तव्यो से मुक्त हो कर गुरु की सेवा के लिए अपने आपको प्रस्तुत करे। खालसा को एक तरह से गुरु गोबिन्द सिंह का नया परिवार माना जाने लगा और सब अपने आपको गुरु की सन्तान कहने लगे।

खालसा के सामने गुरु साहिब ने जो नया आदर्श रखा वह यह था कि वे सदैव धर्म की रक्षा और युद्ध के लिए तैयार रहे।

II. खालसा की स्थापना के बाद का काल

सन् 1699 ई० मे खालसा की स्थापना के बाद आनन्दपुर साहिब मे शस्त्रधारी सिक्ख गुरु गोबिन्द सिंह के पास अधिक सख्या मे आने शुरू हो गये। आनन्दपुर साहिब एक रूप से खालसा का कैम्प बन गया। गुरु साहिब के नए आदेश ने सिक्खो मे नये जीवन का सचार किया और उनके नेतृत्व मे सघर्ष करने के लिए चारो ओर जो सिक्ख खालसा बनना चाहते थे उमड आये। खालसा की स्थापना ने एक तरह से सिक्खो पर जादू का असर किया। तेजा सिंह और गडा सिंह के शब्दो मे, 'वे लोग जोकि हिन्दू समाज मे दलित समझे जाते थे, खालसा बनने के पश्चात् बिल्कुल बदल गये थे। भगी, नाई और हलवाई, जिन्होने कभी तलवार को हाथ भी नही लगाया था और जो पीढियो से उच्च जातियों के गुलाम बने रहे थे एकदम गुरु साहिब की अगवाई मे वीर सैनिक बन गये थे। उनके नये मन्त्र से वह अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार हो गए। वे मौत के मुँह मे जाने से भी नही डरते थे।"[1]

कनिंघम ने भी इस बात की इस प्रकार पुष्टि की है · "खालसा की स्थापना से गुरु गोबिन्द सिंह ने एक तरह से एक पराजित दल की गुप्त शक्ति को पुनर्जन्म दिया और उनके सामने धार्मिक स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय उन्नति का ऊचा आदर्श रखा।" सर जदुनाथ सरकार इससे सहमत नही है। उनका विचार है कि 'गुरु गोबिन्द सिंह

"ए शार्ट हिस्टरी आफ दी सिक्खज" पृष्ठ 72, लेखक गंडा सिंह तेजा सिंह

ने सिक्खो की शक्तियो को केवल एक ही दिशा मे सचार करके उनको पूर्ण रूप से आध्यात्मिक उन्नति नही करने दी। गुरु गोबिन्द सिह ने सिक्खो की धार्मिक एकता को राजनीतिक पूर्ति का एक सिद्धान्त बना लिया।" परन्तु इन्दूभूषण बैनर्जी जिन्होने सिक्ख इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन किया है इस विचार को नही मानते। वह गुरु गोबिन्द सिह की शिक्षा को गुरु नानक की शिक्षा के बिल्कुल अनुरूप मानते हुए केवल इतना अन्तर समझते है कि गुरु गोबिन्द सिह ने अपने साथियो को धर्म युद्ध के लिए तैयार किया। उस समय की स्थिति को समझते हुए ऐसा करना बिल्कुल ठीक था।

क्या गुरु गोबिन्द सिह ने सिक्ख धर्म मे कोई परिवर्तन किया ? ऊपर के वाद-विवाद से ऐसा भ्रम हो सकता है कि गुरु गोबिन्द सिह ने सिक्ख धर्म मे कई परिवर्तन किये या इसको अनुचित मोड दिया ? ये दोनो बाते निराधार है। गुरु गोबिन्दसिह ने सिक्ख धर्म मे किसी किस्म का परिवर्तन नही किया। वह इसके मूल सिद्धान्तो को बाकी गुरुओ की भाँति ही मानते थे। अन्तर सिर्फ इतना था कि सिक्खो की स्थिति को देखते हुए उन्होने उनकी रक्षा का एक नया उपक्रम दिया। उनका उपदेश ऐसा ही है जैसा कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता मे दिया था। गुरु गोबिन्द सिह ने भी धर्म युद्ध के लिए ऐसे ही साधन जुटाने का प्रयत्न किया। खालसा धर्म-युद्ध करने वाली सेना का ही रूप समझा जाना चाहिये। उनका ऐसा करना एक उचित व्यवस्था थी।

प्रभाव : खालसा की स्थापना का बडा महत्त्वपूर्ण और तात्कालिक प्रभाव पडा। सिक्ख धर्म के मानने वालो की इससे एक तरह से कायाकल्प हो गई। गुरु गोबिन्द सिह के अधिक अनुयायी माझा के जाट बने जिनको सशस्त्र विद्रोह करने मे खास रुचि थी और यह उनके स्वभाव के बिल्कुल अनुकूल बात थी। वह मुगल अन्याय और अत्याचारो का मुकाबला करने और धर्म की रक्षा के लिए खास तौर पर उद्यत थे। वह गुरु साहिब की अगवाई मे नये रूप मे खालसा बनकर सघर्ष करने के लिए कटिबद्ध हो गए। खालसा की स्थापना का एक सामाजिक परिणाम यह हुआ कि आगे के लिए सिक्खों के लीडर शहर के खत्रियो की बजाय माझा के जाट बन गये। खालसा की स्थापना के साथ-साथ जाटों की राजनीतिक शक्ति को बढावा मिला और समय आने पर उन्होने सत्ता अपने हाथ मे ले ली।

आनन्दपुर का पहला युद्ध (सन् 1701) खालसा की स्थापना के बाद पहाडी इलाकों मे सिक्खों का विशाल समूह और उनकी फौजी कारवाइया पहाडी राजाओ के लिए एक खतरा बन गई। उनको अपनी सत्ता और साथ ही मुगल साम्राज्य की ओर से कारवाई का भय हो गया। बिलासपुर के राजा भीमचन्द ने जो कि उनके बिल्कुल निकट थे गुरु साहब से आनन्दपुर की भूमि का कई सालो का किराया माँगा। किराया न देने पर भीमचन्द ने बाकी पहाडी राजाओ के साथ मिलकर उनके विरुद्ध फौजी कारवाई की। गोबिन्द सिह ने आनन्दपुर के किले मे अपने साथियो समेत

डटकर मुकाबला किया और आक्रमणकारियो को भगा दिया। पहाड़ी राजाओ ने गुरु साहिब के विरुद्ध अपनी कारवाई विफल होने पर बाहरी तौर पर उनसे सुलह कर ली परन्तु साथ ही साथ उनके विरुद्ध मुगल सम्राट् औरगजेब के पास यह रिपोर्ट कर दी कि गुरु साहिब फौजी तैयारियो मे लगे हुए है और उन्होने अपनी शक्ति बहुत बढा ली है। परिणामस्वरूप सरहिन्द और लाहौर के सूबेदारो को हुकम दिया गया कि वह पहाडी राजाओ के साथ मिलकर गुरु गोविन्द सिंह के विरुद्ध कडी कारवाई करे। मुगल सम्राट की सहायता के साथ भी पहाडी राजा गुरु गोविन्द सिंह को पराजित न कर सके। तब उन्होने उनके साथ सन्धि कर ली।

गुरु गोबिन्द सिह अपनी सुरक्षा के लिए आनन्दपुर से हटकर निर्मोह चले गये। वहा से चलकर उन्होने बसौली के स्थान पर रहना शुरू कर दिया। अतत पहाडी राजाओ ने गुरु साहब से सुलह करके उनको आनन्दपुर लौट आने के लिए प्रेरित किया।

आनन्दपुर की दूसरी लड़ाई (सन् 1705) बाहरी तौर पर सुलह करने के बावजूद पहाडी राजा गुरु गोबिन्द सिंह के विरुद्ध षड्यन्त्र रचते रहे। उन्होने मुगल सम्राट औरगजेब जो कि उस समय दक्षिण मे था, के पास यह शिकायत भेजी कि गुरु साहिब का आनन्दपुर मे रहना पहाडी राजाओ और मुगल साम्राज्य के लिए खतरा है। वास्तव मे जो खालसा गुरु साहब के पास आनन्दपुर मे आ गए थे उनको अपने लिए रसद इत्यादि पहाडी इलाको से प्राप्त करनी पडती थी। इसीलिए इस इलाके मे आतक फैल गया था।

पहाडी राजाओ और लाहौर और सरहिन्द के मुगल सूबेदारो को बिलासपुर के राजा की सहायता के लिए सम्राट ने आदेश दिया और बडी सख्या मे फौजो ने आनन्दपुर को घेर लिया। किले के अन्दर रसद खत्म हो गई और गुरु साहब के साथियों की बाहर निकलने की कोशिश निष्फल रही। ऐसी स्थिति मे गुरु साहब के साथियों के लिए आनन्दपुर मे ठहरना कठिन हो गया। गुरु गोबिन्द सिंह आनन्दपुर छोडना नही चाहते थे। उनके 40 साथियो ने एक पत्र पर हस्ताक्षर करके उनसे प्रार्थना की कि वह आनन्दपुर छोडना चाहते है, चाहे उनको अपना धर्म भी छोडना पडे। उनके कहने पर गुरु गोबिन्द सिंह ने उनसे ऐसा पत्र लेकर उन्हे जाने दिया।

जब और ज्यादा मुकाबला करना असम्भव हो गया तो गुरु साहिब ने आनन्दपुर को इस आश्वासन पर छोडना मान लिया कि उनको वहा से सकुशल जाने दिया जाएगा। इस समझौते के आधार पर आनन्दपुर को छोडने की तैयारी की गई। सब कीमती वस्तुए बॉट दी गई और बाकियो को आग लगा दी गई। उनके किला खाली करने के बाद मुगलों और पहाडी राजाओ ने अपने वचन का पालन नही किया। अभी वे आनन्दपुर से कुछ मील ही गए थे कि सिरसा नदी पार करते समय उनपर आक्रमण कर दिया गया। इस भगदड मे गुरु गोबिन्दसिंह की माता उनके दो छोटे साहिबजादों समेत उनसे बिछुड गईं। उनके परिवार के एक पुराने सेवक ने उन के दोनों सुपुत्रों फतेह सिंह और जोरावर सिंह को मोरिंडा के कोतवाल को सौप दिया जिस ने उनको सरहिन्द के गवर्नर वजीरखा के पास भेज दिया। दोनो साहिबजादों

को जैसा कि इतिहास मे वर्णित है सरहिन्द (जिस को अब फतेहगढ साहिब भी कहते है) मे जीवित दीवार मे चुन दिया गया। इस दुर्घटना के कारण माता गुजरी भी परलोक सिधार गई।

चमकौर का युद्ध (सन् 1705) गुरु साहिब बडी मुश्किल से अपने थोडे से साथियो के साथ चमकौर पहुँच सके। वहा जाकर उन्होने एक छोटे से किले मे जितनी देर हो सका दुश्मन का मुकाबला करने की कोशिश की। उनके साथी छोटी-छोटी टुकडियो मे बाहर आकर मुकाबला करते हुए मारे गये और उनके दोनो सुपुत्र अजीत सिह और जुझार सिह भी शहीद हो गये। अपनी शक्ति का ह्रास होते देखकर गुरु गोबिन्दसिह चमकौर से बडी मुश्किल से भेष बदलकर चले गये।

चमकौर के बाद गुरु गोबिन्द सिह सतलुज के किनारे जगलो मे होते हुए माछीवाडा पहुँचे। वहाँ उनको उनके भक्त गुलाबा और पजाबा ने पहचान लिया और उनको सरक्षण दिया। (जिस स्थान पर गुरु गोविन्द सिह को पहचाना गया था और जिस मकान मे वह ठहरे थे उनके स्थान पर आजकल गुरुद्वारा चरन कमल स्थापित है।) माछीवाडा से बचकर आगे जाने के लिए गुरु साहिब को एक मुसलमान पीर के नीले कपडे धारण करवा कर एक चारपाई पर बिठा कर उनके दो माछीवाडे के मुसलमान मित्र गनी खा, नबी खा की सहायता से निकालने का प्रबन्ध किया गया था। माछीवाडा से कुछ दूर जाकर मुगल फौजो के पहुचने पर उनसे पूछताछ की गई। परन्तु उनके पुराने मुसलमान गुरु कहने पर कि वह उच्चकोटि के प्रसिद्ध मुसलमान पीर है, जो कि उस इलाके मे दौरा कर रहे हे, उनको आगे जाने दिया गया।

माछीवाडा से बचकर रायकोट पहुचने पर उनको अपने दो छोटे लडको को सरहिन्द मे दीवार मे चुने जाने का शोक समाचार मिला। इसके बाद उन्होंने मुगलराज्य का अन्त करने का दृढ निश्चय कर लिया। रायकोट से चलकर दीना मे उन्होने अपने एक पुराने मसन्द के पुत्रो के पास विश्राम किया और यहा से ही मुगल सम्राट औरगजेब को वह प्रसिद्ध लम्बा पत्र लिखा जिस को "जफरनामा" कहते है। इस लम्बे पत्र मे उन्होंने मुगल अत्याचारो का विशेष वर्णन किया और अपने परिवार के विरुद्ध किये गये अत्याचारो का बडे स्पष्ट शब्दो मे वर्णन किया। दीना से आगे गुरु गोबिन्द सिह खिदराना पहुँचे।

खिदराना का युद्ध (सन् 1706) खिदराना के मरुस्थल मे पहुच कर गुरु साहिब ने अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया। इस स्थान पर उनके बहुत से साथी उनके पास पहुँच गये। सरहिन्द के सूबेदार वजीर खा ने उनके विरुद्ध सेना भेजी। इस युद्ध मे गुरु साहिब के वे 40 साथी जो कि उनको आनन्दपुर साहिब मे छोड गए थे, बडे उत्साह से लडे और शहीद हुए। गुरु साहिब ने उनको मुक्तो की उपाधि प्रदान की और इस स्थान का नाम इसी कारण मुक्तसर रखा गया और भादो के शुभ अवसर पर यहाँ हर साल मेला लगता है और विशाल सरोवर मे स्नान करने के लिये लोग दूर-दूर से आते हैं।

दीना से आगे चलकर गुरु साहिब तलबडी साबो, (दमदमा साहिब) जाकर ठहरे। यह स्थान अधिक सुरक्षित था। तलवडी मे उनको कुछ अवकाश मिला। उसका उन्होने काफी लाभ उठाया। एक साल के थोडे समय मे उन्होने अपना ध्यान साहित्यिक कामो की तरफ दिया और आदि ग्रन्थ को सम्पन्न किया जिसमे गुरु तेग-बहादर के कुछ शब्द भी शामिल किए और उन्होने अपनी प्रसिद्ध रचना "दशमपातशाह का ग्रन्थ" लिखा। गुरु साहिब की साहित्यिक रचनाओ के कारण ही दमदमा साहिब को "गुरु की काशी" भी कहा जाता है। इसी काल मे गुरु साहिब ने पजाब के दक्षिण पश्चिमी भाग मे सिक्ख धर्म का प्रचार किया। मालवा मे सिक्ख धर्म का प्रचार उन के इस इलाके मे कुछ मास ठहरने का परिणाम माना जाता है। इसी स्थान से गुरु गोबिन्द सिंह ने एक और पत्र औरगजेब को लिखा जिसमे उन के वजीर खा सूबेदार सरहिन्द के विरुद्ध कारवाई करने के लिए स्मरण कराया गया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि उनके दूसरे पत्र के मिलने पर मुगल सम्राट ने महसूस किया कि गुरु साहिब के साथ बडा अन्याय हुआ है। यद्यपि औरगजेब ने वजीर खा के विरुद्ध कोई कारवाई नही की तथापि उसने हुकम दिया कि उनके विरुद्ध और कोई कारवाई न की जाए और उनको मिलने के लिए बुलाया। गुरु गोबिन्द सिंह अभी राजपूताना तक ही पहुचे थे कि उनको 2 मई, 1907 को औरगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। औरगजेब के मरने के पश्चात् उनके बेटो मे गद्दी पर बैठने के लिए युद्ध आरम्भ हो गया। शहजादा मुअजज्म बहादुरशाह के नाम से नया मुगल सम्राट् बना। यह शहजादा गुरु साहिब के कट्टर विरोधियो मे नही था क्योकि वह भाई नन्दलाल का जो कि गुरु साहिब के भक्त थे, आदर करता था। गुरु साहिब मुगल सम्राट को आगरा के स्थान पर मिले। कहा जाता है कि सम्राट् ने उनका स्वागत किया और उनको काफी उपहार दिये। मुगल सम्राट् और किसी किस्म की कारवाई किये बगैर दक्षिण की ओर अपने भाई काम बख्श के विरुद्ध कारवाई करने के लिए चला गया। गुरु साहिब अपने कुछ साथियो समेत बहादुर शाह के साथ दक्षिण की ओर चल पडे। नानदेड के स्थान पर (जो कि आन्ध्र प्रदेश मे गोदावरी के किनारे स्थित है) वह अपने खेमे मे अकेले थे जब उन पर दो पठानो ने छुरे से वार करके उनको जख्मी कर दिया। कुछ दिन पश्चात् जख्म के खुल जाने और ज्यादा रक्त बहने के कारण अपने अन्तिम समय को निकट जानकर गुरु साहिब ने अपने साथियो को पास बुलाया और उनको आदेश दिया कि उनकी मृत्यु के पश्चात् वह केवल धर्म ग्रन्थ को ही गुरु माने और गुरु परम्परा आगे से बन्द समझी जाये। इस प्रकार 7 अक्तूबर, 1708 की रात को गुरु साहिब परलोक सिधार गये।

गुरु गोबिन्द सिंह के चरित्र और उपलब्धियों का मूल्यांकन :

गुरु गोबिन्द सिंह एक जन्मजात नेता और पंजाबियों के प्रेरक

गुरु गोबिन्द सिंह अपने विशेष गुणो के कारण जन्म से ही नेता थे। वास्तव मे वह पजाबियो के नेतृत्व के लिए एक आदर्श व्यक्ति थे क्योकि वे उनकी आकाक्षाओ

ग्रौर उमगो के प्रतीक थे। गुरु गोबिन्द सिह ऐसे महान व्यक्ति थे जो कि अपने जीवन काल मे ही लोगो के आदर्श बन गए। उनको लोग "नीले घोडे दा सवार", "चिट्टिया बाजा वाला" ग्रौर "कलगिया वाला" कह कर पुकारते थे। गुरु गोबिन्दसिह एक सच्चे योगी, वास्तविक नेता, एक सत, सिपाही ग्रौर नीतीवान थे। उनके विशेष कार्यो का वर्णन विशेष गुणो के आधार पर इस प्रकार किया जा सकता है ·

1 **संत :** गुरु गोबिन्द सिंह उतने राजनीतिक या फौजी लीडर नही थे, जितने कि एक सत ग्रौर धार्मिक नेता थे। उनके जीवन का उद्देश्य जैसा कि उन्होने खुद ही "विचित्र नाटक" मे स्पष्ट किया है अधर्म ग्रौर अन्याय का नाश करके धर्म की रक्षा करना था; अगर उन्होने अपने साथियो को सशस्त्र विद्रोह के लिए प्रेरित भी किया तो केवल इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए।

2 **विद्वान्** गुरु गोबिन्द सिह अपने समय के उच्च कोटि के विद्वान् थे। उन्होने अपने समय मे कितनी ही भाषाग्रो का ज्ञान प्राप्त किया था। वह सस्कृत, फारसी, ब्रज भाषा, ग्रौर पजाबी के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। उनकी इन सब भाषाग्रो मे रचनाग्रो से सिद्ध हो जाता है कि इन भाषाग्रो मे उनको विशेष गति प्राप्त थी। अपने आनन्दपुर काल मे उन्होने अपने दरबार को बडे-बडे विद्वानो से सुसज्जित किया। उनकी महानतम रचना "दशम पातशाह का ग्रन्थ", "विचित्र नाटक" ग्रौर फारसी मे "जफर नामा" उनकी विद्वत्ता के प्रमाण है।

3. **सगठनकर्ता** इन विशेषताग्रो के साथ-साथ गुरु गोबिन्द सिंह का सबसे बडा गुण यह था कि वह बडे महान सगठनकर्ता ग्रौर सयोजक थे। इन्दूभूषण बैनर्जी के शब्दो मे "गुरु गोबिन्द सिंह अपने समय के अद्वितीय निर्माता थे। उन्होने अपनी योग्यता से सिक्खो को पुनर्जन्म दिया ग्रौर खालसा की स्थापना से उनमे नये जीवन का सचार किया।" खालसा सस्था की स्थापना एक चकित कर देने वाली बात थी ग्रौर यह गुरु गोबिन्द सिह की महान सूझबूझ ग्रौर सगठन शक्ति का एक ज्वलत प्रमाण है।

4. **सिपाही के रूप मे** गुरु साहिब ने अपने आरम्भिक जीवन से ही सशस्त्र विद्रोह की तैयारी आरम्भ कर दी थी। शस्त्र विद्या का ज्ञान प्राप्त करके उन्होने कई युद्धो मे अपनी वीरता ग्रौर कौशल का परिचय दिया। उन्होने सशस्त्र विद्रोह अपने किसी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए नही किया बल्कि धर्म युद्ध के लिए किया था।

साधारण रूप मे भी गुरु गोबिन्द सिंह का स्थान बडा ऊंचा है। यदि उनको एक युग पुरुष कहा जाये तो अनुचित न होगा। उन्होने उस समय के सिक्खो की स्थिति का पूर्ण अध्ययन करके ऐसे सुधार किये जो कि बड़े दूरगामी ग्रौर महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए, जो सिक्खों मे एक तरह से कायाकल्प करने वाले थे। सबसे पहले उन्होने सिक्खों मे फूट के कारण मसन्द प्रथा, जो कि उस समय तक बडी भ्रष्ट हो चुकी थी ग्रौर जिस के कारण मसंद गुरु को दी गई भेंट खुद हडप्प कर लेते थे ग्रौर साथ

ही गुरु के विरोधियो की सहायता से सिक्खो मे फूट डालते थे, का सदा के लिए अन्त कर दिया और गुरु निमित्त सिक्खो को सीधे भेट करने का आदेश दिया।

इसी तरह गुरु प्रथा जो कि एक ही परिवार मे होने के कारण काफी वाद-विवाद पैदा करती थी का भी उन्होने अन्त कर दिया। गुरु साहिब ने अनुभव किया था कि जब भी नये गुरु बनते थे उसी समय उन्ही के परिवारो मे उन के विरोधी भी उत्पन्न हो जाते थे। अत उन्होने यह निर्णय बडी गम्भीर सोच विचार के बाद लिया और इस प्रकार सिक्खो मे फूट का एक बडा कारण दूर कर दिया गया।

गुरु गोबिन्द सिंह ने सिक्खो मे ऐसी शक्ति का सचार किया जो कि कभी समाप्त न होने वाली थी। सारे सिक्खो को खालसा का रूप देकर उन्होने उनको लगातार सघर्ष के लिए तैयार कर दिया। इस तरह उन्होने एक ऐसी शक्ति पैदा कर दी जो कि कभी समाप्त न होने वाली थी।

गुरु गोबिन्द सिह ने अपनी योग्यता से एक नये समाज की नीव रखी जो कि लोकतन्त्रीय थी और पजाबियो के जीवन के बिल्कुल अनुकूल थी।

गुरु गोबिन्द सिंह के गुरु बनने के समय जहा पर घोर निराशा और सकट का सामना था उनके चरित्र और उपलब्धियो से उनके जीवन मे ही यह स्पष्ट हो गया था कि उन्होने सिक्खो को एक ऐसा रूप दिया है और ऐसी शक्ति प्रदान की है जोकि उनकी रक्षा के लिए हमेशा जीवित रहेगी।

प्रश्न

1. "The greatest lever used by Guru Gobind Singh in uplifting his people was self-respect and human dignity."

   "गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने अनुयायियो को बताया कि मानव अपनी प्रतिष्ठा व आत्मसम्मान को बनाए रखकर ही ऊँचा उठ सकता है।" व्याख्या कीजिए।

2. Comment on Cunningham's statement "The last apostle of the Sikhs effectually roused the dormant energies of a Vanquished people and filled them with a lofty though fitful longing for social freedom and national ascendancy, the proper adjuncts of that purity of worship which had been preached by Nanak."

   "सिक्खो के अन्तिम गुरु ने दलित लोगो की प्रसुप्त कर्मशक्ति को पुन प्रभावपूर्ण ढग से जाग्रत किया और उनके मनो मे राष्ट्रीय प्रभुत्व और सामाजिक स्वतन्त्रता जैसी पवित्र एव आदर्श भावनाओ को भर दिया। एतदर्थ समुचित बात यही थी कि शुद्ध हृदय से (सतनाम की) उपासना की जाए जिसका कि गुरु नानक ने उपदेश दिया था।" कनिंघम के इस कथन पर टीका-टिप्पणी कीजिए।

3. "Whatever else he might have been, Guru Gobind Singh was

first and foremost a great religious leader " How far do you agree with the above estimate of Guru Gobind Singh
"वे और कुछ भी रहे हो, गुरु गोबिन्द सिंह एक महान धार्मिक नेता थे ।" गुरु गोबिन्द सिंह के सम्बन्ध मे इस मूल्याकन से आप कहा तक सहमत है ?

4. Was Guru Gobind Singh a superman ? What problems hovered round the horizon when he took charge of the Sikh affairs ? How far was he successful in his mission ?
क्या गुरु गोबिन्द सिह दैवी पुरुष थे ? जब उसने सिक्खो की बागडोर सम्भाली तो उन के सामने कौन-सी समस्याए उपस्थित थी ? वह अपने मिशन मे कहा तक सफल रहे ?

5. Estimate the historical importance of the battles of Bhangani, Nadaon, Chamkaur and Khidrana.
भगाणी, नदौन, चमकौर और खिदराना (मुक्तसर) के युद्धो का ऐतिहासिक महत्त्व बताइए ।

6. Review critically the significance of the creation of the Khalsa under Guru Gobind Singh.
गुरु गोबिन्द सिह द्वारा निर्मित खालसा की महत्ता क्या थी ? इस पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए ।

7. "With the organisation of the Khalsa, Guru Gobind Singh completed the evolution of Church Nation " Elucidate with particular reference to the socio-political ideal set before the fraternity.
"खालसा के निर्माण के साथ ही गुरु गोबिन्द सिंह ने सिक्ख पथ का विकास सम्पूर्ण कर लिया था ।" गुरु जी ने सिक्ख भाई-चारे के सम्मुख जो सामाजिक एव राजनीतिक आदर्श रखे, उनके सदर्भ मे इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

8. "Nanak's God loved his Saints; Gobinds' God destroyed his enemies Is it a correct appreciation of the twist given to the Sikh religion by Guru Gobind Singh ?
"नानक के भगवान को अपने सतजन प्रिय थे, गोबिन्द के भगवान ने उनके शत्रुओ का विनाश किया ।" गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा सिक्ख-धर्म को दिए गए मोड (दिशानिर्देश) का क्या यह सही मूल्याकन है ?

9 "And enough has been said to establish fully the Guru's (Guru Gobind Singh's) claim to be regarded as 'builder par excellence' (Indubhushan Banerjee) What are those claims ?
"गुरु गोबिन्द सिंह जी के "सर्वोत्कृष्ट निर्माता" होने के दावे को पूर्णतया सिद्ध करने के लिए बहुत कुछ कहा जा चुका है (इन्दुभूषण बैनर्जी) । ये दावे कौन-से हैं ?

10 "Be Kason ka yar—a friend of the helpless" Bring out the significance of the tribute paid by Bhai Nand Lal to Guru Gobind Singh with reference to career and teachings of the Guru

"निस्सहायो का सहायक" गुरु गोबिन्द सिंह के बारे मे भाई नन्द लाल जी के इस कथन की गुरु जी के जीवन-चरित्र और शिक्षाओ के सदर्भ मे व्याख्या कीजिए।

11 Give an account of the battles of Guru Gobind Singh upto 1699 (pre Khalsa period) and assess their historical importance.

गुरु गोविन्द सिंह जी द्वारा सन् 1699 तक (खालसा निर्मित करने से पूर्व) लडी गई लडाइयो का वर्णन कीजिए। इन का ऐतिहासिक महत्त्व भी बताइये।

12. Give briefly but clearly and precisely the account of the activities of Guru Gobind Singh during the first twenty years of his Pontificate.

गुरु गोबिन्द सिंह जी के गुरुकाल की प्रथम बीस वर्षों की गतिविधियो का वर्णन कीजिए। उत्तर सही, स्पष्ट किन्तु सक्षिप्त होना चाहिए।

13 Make a brief survey of the relations of Guru Gobind Singh with the Rajput hill chiefs

गुरु गोबिन्द सिंह जी के राजपूत पहाडी राजाओ के साथ सम्बन्धों का सक्षिप्त सिहावलोकन कीजिए।

14. What were the causes and effects of the creation of Khālsa by Guru Gobind Singh ?

गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा निर्मित 'खालसा' के कारणो एव प्रभावो का वर्णन कीजिए।

11

सिक्ख गुरुओं के मुगल सम्राटों के साथ संबंध

(सन् 1526 से 1708 तक)

गुरु नानक

सबसे पहले गुरु नानक देव को भारत मे मुगल सम्राट् बाबर से वास्ता पडा था। उस समय भारत का सम्राट् बनने के लिए वह पजाब को अपने अधिकार मे ले रहा था और इसके लिए उसने कई बार आक्रमण किए थे। वस्तुत वह अपनी इन विजयो को लोधी सुलतानो पर विजय पाने के लिए साधन बनाना चाहता था। दैवयोग से बाबर के पजाब पर चौथे आक्रमण के समय सन् 1524 मे गुरु नानक देव उस समय एमनाबाद पधारे हुए थे जबकि बाबर ने उसपर आक्रमण किया था। चूँकि वहा के लोगो ने बाबर का विरोध किया था, अत उस शहर को बाबर ने पूरी तरह से उजाड दिया था। गुरु नानक देव ने इस अत्याचार का दृश्य अपनी आँखो से देखा था। वह खुद भी बाबर के बन्दी के रूप मे दूसरे एमनाबाद निवासियों के साथ जेल मे डाल दिये गये थे। कहा जाता है कि सारे बन्दियो की तरह उनको भी चक्की पीसने की सजा दी गई थी। बाबर को सत महात्मा के कैदी बनाये जाने का पता लगने पर उनको बाबर के सामने लाया गया और उसने उनकी महानता से प्रभावित होकर उनको छोड दिया।

बाबर के अत्याचारो के कारण एमनाबाद की तबाही और लोगो की उनके हाथो दुर्दशा का वर्णन गुरु नानक देव ने बडे मार्मिक शब्दो मे किया है। साधारण लोगो के दुख का वर्णन करते हुए उन्होने लिखा था कि "पाप दी जज ले काबुलो धाया . "। इस अत्याचार से अनेक लोग बेघर हो गये थे और अनेक स्त्रियो की माँगों के सिंदूर मिट गये थे। उन्होंने लोगो की बेबसी का लोमहर्षक और प्रभावशाली वर्णन किया और लोधी सुलतानो को अच्छी तरह फटकारा। जहाँ बाबर की बर्बता को उन्होंने "पाप दी जंज" कहा है, वहाँ लोधी सुलतानों को "कुत्तो" की उपाधि भी प्रदान की है। पजाबियों की दुर्बलता को भेड़ों का एक रेवड कहते हुए बाबर को एक भयानक भेड़िया कहा गया है। पजाब की राजनीतिक अस्थिरता को उन्होंने "धन यौवन बैरी भये" शब्दो मे बड़ी अच्छी तरह से वर्णन किया है, क्योकि उस समय किसी की सम्पत्ति और स्त्री सुरक्षित नही थी।

इस तरह से गुरु नानक देव जी का प्रथम सम्पर्क भारत के प्रथम मुगल सम्राट् के साथ अमित्रतापूर्ण था । गुरु नानक देव जी का उद्देश्य उस समय निताल सामाजिक और धार्मिक था और उनके आन्दोलन का अभी कोई राजनीतिक स्वरूप नही था। इसलिए इस पहली दुखद मुलाकात के बाद बाबर अपने साम्राज्य की स्थापना मे और गुरु नानक देव अपने धर्म प्रचार मे लग गये और उनका एक दूसरे का कोई सम्पर्क या सघर्ष नही हुआ ।

बाबर के मरणोपरान्त उनके पुत्र हुमायूँ के समय मे भी गुरु नानकदेव को अपने धर्म प्रचार मे मुगलो की तरफ से किसी किस्म की कोई कठिनाई नही हुई । इसका सबसे बडा कारण यह था कि उनका आन्दोलन बिल्कुल शान्तिमय था और हुमायूँ अपने राज्य काल मे बहुत सी मुश्किलो मे फँसा रहा था ।

गुरु अंगद देव (सन् 1538-1552)

गुरु अगद देव के शान्तिमय आन्दोलन पर भी जो कि हुमायूँ के काल तक सीमित था, मुगलो की तरफ से कोई आपत्ति नही हुई। केवल एक घटना सम्राट् हुमायूँ के साथ सम्पर्क की उस समय हुई जब कि हुमायूँ शेरशाह सूरी से पराजित हो कर उत्तर पश्चिमी भारत से होकर ईरान जा रहा था । गोईदवाल के स्थान पर वह गुरु अगद को मिलने के लिए उत्सुक था परन्तु गुरु जी उस समय पूजापाठ मे लगे हुए थे । कहा जाता है कि हुमायूँ ने गुरु जी के मिलने मे देरी करने की वजह से उत्तेजित हो कर तलवार निकाल ली थी । गुरु जी को इसका ज्ञान हो गया और मुलाकात के समय उन्होने सम्राट् हुमायूँ को बडे तरीके से झाड डाली । "आपको अगर तलवार पर इतना ही मान था तो इसको शेरशाह सूरी के विरुद्ध क्यो नही बरता । सम्राट् को सतो के विरुद्ध तलवार खीचना शोभा नही देता । हुमायूँ के लज्जित होने पर और गुरु साहिब से आशीर्वाद मागने पर गुरु साहिब ने कहा जाता है, उनको दोबारा राज्य मिलने का आश्वासन दिया, परन्तु कुछ देर रुकने के बाद ।

गुरु अमरदास (सन् 1552 -1574)

गुरु अमरदास को सम्राट् अकबर से सम्पर्क का उस समय अवसर मिला था जब कि वह बाबा फरीद के मकबरे की यात्रा के लिए पाकपटन जा रहे थे । गुरु अमरदास की सादगी और भक्ति का उनपर बडा अच्छा प्रभाव पडा । कहा जाता है कि अकबर ने उनको लगर के लिए कुछ धन और जागीर देने की इच्छा व्यक्त की थी परन्तु गुरु साहिब के अस्वीकार करने पर ऐसा कथित है कि उनकी सुपुत्री के लिए अमृतसर के निकट कुछ गाँव जागीर के तौर पर दे दिये थे।

गुरु रामदास (सन् 1574-1581)

गुरु रामदास के सबध सम्राट् अकबर से और भी मैत्रीपूर्ण हो गये क्योकि उनको गुरु अमरदास के विरुद्ध गोईन्दवाल के हिंदुओ और मुसलमानो की तरफ से की गई शिकायत के सम्बन्ध मे सम्राट् अकबर से मिलना पडा था । मुगल सम्राट् उनके परोप-

कारी जीवन से बहुत प्रभावित हुए थे। इसलिए उन्होने गुरु रामदास को अमृतसर के सरोवर और शहर की स्थापना केलिए 500 बीघे भूमि बहुत सस्ते भाव पर दे दी थी। चूँकि मुगलो की सेना के बहुत देर लाहौर के निकट ठहरने पर लोगो को काफी नुकसान उठाना पडा था, अत गुरु रामदास के कहने पर सम्राट् अकबर ने एक साल का भू-राजस्व भी माफ कर दिया था। सम्राट् अकबर के साथ अच्छे सबध होने के कारण गुरु रामदास की प्रतिष्ठा बहुत बढ गई थी। इस कारण उनको अपने धर्म के प्रचार मे बहुत सहायता मिली और सफलता प्राप्त हुई थी।

गुरु अर्जुन देव (सन् 1581-1606)

पाँचवे गुरु के सबध सम्राट अकबर के समय मे (सन् 1556 से 1605 तक) अकबर से पहले की तरह ही बडे घनिष्ट और मित्रतापूर्ण रहे। परन्तु अकबर की मृत्यु और जहाँगीर के सम्राट् बनने पर (1606-1627) उनके सबध एकदम खराब हो गये। इसका कारण जहाँगीर का धर्म के मामले मे अनुदार होना और कुछेक दूसरी घटनाएँ थी जिन को राजनीतिक रूप दे दिया गया और परिणामस्वरूप गुरु अर्जुन देव को शहीदी प्राप्त हुई।

जहाँगीर के सम्राट् बनने पर मुल्ला पार्टी का प्रभाव बढ गया और इस्लाम का क्रूर रूप लोगो के सामने आने लगा। इसके साथ ही गुरु अर्जुन देव की बढती हुई शक्ति और उनके प्रभाव को भी मुगल सम्राट् के सम्मुख गलत रूप मे पेश किया गया। दुर्भाग्य से शहजादा खुसरो की बगावत गुरु साहिब के बारे मे मुगल सम्राट् के विचारो को बिगाडने का सबसे बडा कारण बनी। अपने पिता क विरुद्ध असफल होने पर खुसरो अपनी जान बचाने के लिए पजाब की तरफ से भागा था और गुरु अर्जुन देव की सेवा मे पहुँचने पर उन्होने उसको कुछ धन दिया था और उसके माथे पर तिलक भी लगाया था। गुरु साहिब के विरुद्ध उनके विरोधी पृथिया, मीण और उसके मुसलमान सहायक अफर सुलही ने काफी प्रचार कर रखा था। रही-सही कसर चन्दू शाह ने पूरी कर दी जिस की सुपुत्री का रिश्ता गुरु साहिब ने अपने पुत्र हरगोबिन्द के लिए अस्वीकार कर दिया था। सब कारणो से मुगल सम्राट् ने गुरु साहिब को दण्ड देने का निर्णय किया। जहाँगीर ने अपने ही शब्दो मे अपनी आत्मकथा मे इस विषय पर अपने विचार प्रकट किए है जिनका उल्लेख हम पहले ही कर चूके है (देखिए पृ० 10 तथा पृ०'53)। परिणामस्वरूप गुरुजी को पकड कर सम्राट् के पास लाया गया और उनको दो लाख रुपया दण्ड इस बात के लिए दिया गया कि उन्होने ग्रन्थ साहिब में इस्लाम के विरुद्ध अनुचित शब्द लिखे हैं। गुरुजी के इन्कार करने पर उनको बड़ी कठोर यातना के साथ मृत्यु दण्ड दिया गया।

गुरु अर्जुन देव की शहीदी ने सिक्ख गुरुओ और मुगल सम्राटो के संबध को एक नया मोड दिया। गुरु अर्जुन देव ने मरते समय अपने उत्तराधिकारी हरगोबिन्द को यह सदेश दिया, "अगर अपने धर्म की रक्षा करनी है तो उसको पूरी तरह शस्त्र धारण करके सिंहासन पर बैठना चाहिये।

गुरु हरगोबिन्द (सन् 1606-1645)

अपने पिता की शहीदी के बाद हरगोबिन्द को मुगल सम्राटो के साथ अपने सबधों मे बडी सूझ-बूझ से काम लेना पडा। एक ओर अपने पिता के आदेशानुसार उनको अपनी और अपने धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र धारण करना अनिवार्य था। दूसरी ओर मुगल साम्राज्य से चतुराई से बचाव भी करना था। हरगोबिन्द ने अपनी अच्छी नीति का परिचय इस रूप मे दिया कि वह ऊपर-ऊपर से अपने आपको मुगल सम्राटो का मित्र और उनकी आज्ञा मानने वाला बताते रहे और साथ ही साथ अपनी शक्ति बढाने और रक्षा प्रबन्ध मजबूत बनाने मे लगे रहे। 11 साल की उम्र मे गुरु बनने पर ऐसी कठिन स्थिति का अच्छी तरह से सामना करना उनकी योग्यता को सिद्ध करता है।

गुरु हरगोबिन्द को मुगल सम्राट् जहाँगीर की उनके पिता के प्रति कट्टर नीति का परिणाम भुगतना पडा। पिता की मृत्यु पर गुरु हरगोबिन्द को उनके ऊपर लगाये गये दण्ड का रुपया देने के लिए कहा गया और उनके न देने पर उनको ग्वालियर के किले मे राजनीतिक बन्दी बनाकर भेज दिया गया। वह कितने समय तक ग्वालियर जेल मे रहे इस बारे मे कुछ मतभेद है। कुछ इतिहासकार इस समय को दो साल और कुछ 9 साल कहते है, मोहसन फानी ने लिखा है कि गुरु हरगोबिन्द को 12 साल ग्वालियर के किले मे रखागया था और मुसलमान मत मिया मीर के कहने पर उनको और बहुत से दूसरे राजनीतिक बन्दियो को छोड दिया गया था। इसी कारण उनको "बन्दी छोड बाबा" भी कहा जाता है।

गुरु हरगोबिन्द ने जहाँगीर को और ज्यादा नाराज न करते हुए अपनी सैनिक शक्ति काफी बढा ली थी जिससे उनकी अपनी रक्षा निश्चित हो गई और उनके साथियो का साहस बढ गया था। यह सब उन्होने उस सकट का सामना करने के लिए किया था जिस का उन्हे विश्वास था कि मुगल सम्राट् के साथ उनके सबधों मे एक न एक दिन अवश्य पैदा होगा। वास्तव मे ऐसी स्थिति सम्राट् शाहजहाँ के समय (1627-1656) मे पैदा होगई। शाहजहा के कट्टर धार्मिक विचारो के कारण उनके सबध बिगडने शुरू हो गये थे। उस समय गुरु साहिब की बढती हुई सैनिक शक्ति, लाहौर के मुसलमान काजी की बेटी "कौला" के गुरु के पास जाने और शाहजहा के उस फर्मान जिस के द्वारा उन्होने मुसलमानो के किसी और धर्म मे प्रवेश के विरुद्ध जारी किया था, से स्पष्ट हो गया था कि मुगलो से एक न एक दिन सघर्ष अवश्य होगा।

ऐसे वातावरण मे छोटी-छोटी घटनाएँ गभीर रूप धारण कर गईं और गुरु हरगोबिन्द को मुगलो के विरुद्ध खुले तौर पर युद्ध करना पडा। इसका प्रमाण तीन विशेष लडाइयो से मिलता है जो गुरु हरगोबिन्द ने शाहजहाँ के काल मे अमृतसर, सन् 1628, लैहरा सन् 1631 और करतारपुर सन् 1634 मे लडी थी। चाहे गुरु साहिब को या मुगलो को पूरी तरह से विजय प्राप्त नही हो सकी थी परन्तु गुरु

हरगोबिन्द ने यह साबित कर दिया था कि उनकी सैनिक शक्ति इतनी हो गई है कि वह खुले तौर पर मुगल राज्य को चुनौती दे सकते है।

सन् 1634 के पश्चात् गुरु हरगोबिन्द ने अपनी पारिवारिक स्थिति और आयु अधिक हो जाने के कारण मुगल साम्राज्य के विरुद्ध सघर्ष त्याग दिया था और अपनी आयु के अन्तिम 10 साल कीरतपुर के स्थान पर शान्ति से धर्म प्रचार मे बिताये थे। उन्होने यह उचित समझा था कि मुगलो का अधिक विरोध करके उन को सिक्खो के दमन के लिए न उकसाया जाए।

गुरु हर राय (सन् 1645-1661)

गुरु हरगोबिन्द की इच्छा और आशा के बिल्कुल विपरीत गुरु हर राय बहुत ही शान्तिमय स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके गुरुकाल मे मुगलो के साथ सबध मित्रता-पूर्ण थे। उन्होंने अपनी सैनिक शक्ति को तो बनाये रखा पर किसी प्रकार के सघर्ष को मोल नही लिया। कहा जाता है कि शाहजहाँ के बडे पुत्र दारा के साथ उनके बहुत अच्छे सबध थे और दारा के बीमार होने पर गुरु हर राय ने उनके लिए दवाई भी भेजी थी जिससे वह स्वस्थ हो गया था। दारा के साथ अच्छे सबध होने का परिणाम यह हुआ कि औरगजेब के सम्राट् बनने पर उसने गुरु हर राय को दारा की सहायता के लिए दण्ड देना चाहा। औरगजेब ने गुरु हर राय से ग्रन्थ साहिब मे मुसलमानो के विरुद्ध उल्लिखित कुछ शब्दो की समीक्षा करने के लिए कहा। गुरु हर राय ने एतदर्थ अपने सुपुत्र रामराय को स्पष्टीकरण के लिए दिल्ली भेजा। रामराय ने अपनी चतुराई से यह व्याख्या की कि वास्तव मे मुसलमान शब्द की जगह "बे-ईमान" शब्द होना चाहिये था। जिस से मुगल सम्राट् को गुरु साहिब के विरुद्ध कारवाई करने का अवसर तो न मिल सका परन्तु गुरु हर राय ने रामराय की गलत व्याख्या का बहुत बुरा मनाया और यही कारण था कि गुरु हर राय ने उनके स्थान पर उनके छोटे भाई हरकिशन को गुरु नियुक्त कर दिया। गुरु हर राय ने रामराय की चतुराई को उनकी कायरता समझा और उनसे इस कारण नाखुश हो गये कि उनमे सच्चाई को बयान करने का साहस न होने के कारण उनको गुरु बनाना उचित नही होगा।

गुरु हरकिशन (सन्1661-1664)

गुरु हरकिशन रामराय द्वारा उनके विरुद्ध की गई शिकायत का जवाब देने के लिये स्वय औरगज़ेब को मिलने के लिए दिल्ली गये थे और वहाँ पर चेचक से ग्रस्त हो कर स्वर्गवास हो गये थे।

गुरु तेगबहदुर (सन् 1664-1675)

नौवें गुरु तेगबहादुर को कट्टर मुसलमान औरगजेब से वास्ता पडा था। साथ ही सिक्खो के आन्तरिक झगडो से गुरु पद का प्रभाव काफी कम हो गया था। गुरु घराने से ही उनके गुरु बनने का विरोध बढ गया था और गुरु कमजोर होने पर मसन्द लोग मनमानी कारवाई कर रहे थे। गुरु साहिब को ऐसी स्थिति मे ज्यादा समय पंजाब के बाहर बिताना पड़ा। इसी कारण वह धर्मप्रचार के लिए एक सिसोदिया

राजपूत सरदार के साथ असम चले गये थे। वहाँ से पटना लौटने पर जहा कि उनका परिवार ठहरा हुआ था और उनके सुपुत्र गोबिन्द राय का जन्म हुआ था, उनको पजाब से चिन्ता और शोकजनक समाचार मिले थे अत उन्होने फिर से पजाब लौटना उचित समझा।

मुगल सम्राट् औरगजेब के तख्त पर बैठने के बाद उसने अपने कट्टर धार्मिक नीति को लागू करने का कार्य आरम्भ किया था। उसका उद्देश्य यह था कि भारत को "दार-उल-इस्लाम" अर्थात् केवल इस्लाम को मानने वालो का देश बनाया जाए। इस उद्देश्य के अनुसार दूसरे धर्म के मानने वालो का इस्लाम मे जबरदस्ती प्रवेश कराने का यत्न भी किया गया। इसी नीति पर अमल करते हुए कश्मीर के उस समय के मुसलमान गवर्नर शेर अफगन ने धडा-धड वहा के हिन्दुओ को मुसलमान बनाना शूरू कर दिया था। ऐसी कठिन स्थिति मे कश्मीरी पण्डितो का एक प्रतिनिधिमण्डल (डैपुटेशन) आनन्दपुर के स्थान पर उनकी सेवा मे पहुँचा और उनसे सहायता के लिए प्रार्थना की। उनकी दुर्दशा से प्रभावित हो कर उन्होने कहा था कि ऐसी गम्भीर स्थिति का समाधान करने के लिए किसी महान व्यक्ति को अपना बलिदान देना होगा। इस पर नौ वर्षीय पुत्र गोबिन्द राय ने भोलेपन से यह कहकर उनको अपना बलिदान देने की प्रेरणा की थी कि "आपसे अधिक वीर, महान और साहसी पुरुष कौन हो सकता है ?"

गुरु तेगबहादुर के कश्मीरी पण्डितो को यह आश्वासन देने पर कि वह अपना बलिदान धर्म की रक्षा के लिए देने को तैयार होगे उन्होने औरगजेब को यह सदेश देने की आज्ञा दी थी कि अगर गुरु तेगबहादुर को मुसलमान बना लिया जाये तो वे सब लोग उनका अनुकरण करेगे। इस उच्च भावना के परिणामस्वरूप उनको शहीद होना पडा।

गुरु तेगबहादुर के विरुद्ध आरोपो को भी कुछ लोग राजनीतिक रूप देते है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उन्होने अपनी महान कुर्बानी धर्म की रक्षा के लिये ही दी थी। जो राजनीतिक कारण बताये जाते है वे केवल दैवयोग से उत्पन्न हो गये थे। शायद उनसे भी प्रभावित होकर मुगल सम्राट् ने उनको यह कठिन दण्ड देने का निश्चय किया था। उनकी शहीदी मौलिक रूप से धार्मिक ही थी।

गुरु गोबिन्द सिह (सन् 1675-1708)

गुरु हरगोबिन्द की तरह गुरु गोबिन्द सिह को भी बडी कठिन स्थिति का सामना करना पडा। उनको भी अपने पिता की शहीदी पर ऐसी नीति अपनानी पड़ी थी जिस से ऐसी घटनाएँ फिर न हो सके। उन्हे ऐसा प्रबन्ध भी करना था जिससे सिक्खो को धार्मिक अथवा राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके। इसलिए उन्होने बडे गम्भीर अध्ययन के पश्चात् अपने मिशन को निश्चित करके अपने साथियो के जीवन मे ऐसा परिवर्तन किया था जिससे यह सघर्ष अनत बन जाये और किसी किस्म की कमजोरी सिक्खों मे न आ सके और वह अपने धर्म की रक्षा के हित अपना तन-मन-धन न्यौछावर करने के लिए सदा उद्यत रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने मुगल सम्राटो

के प्रति सशस्त्र सघर्ष के लिए अपने सारे साथियो को तैयार किया और उनको खालसा का रूप दे कर उनके अन्दर ऐसी भावना और शक्ति का सचार किया जो कि कभी समाप्त न हो। मुगल अत्याचार और अन्याय का सामना करने के लिए उनको बडे दुख सहने पड थे और बडी महान कुर्बानी देनी पडी थी। परन्तु उन्होने औरगजेब जैसे कट्टर सम्राट् के सामने न झुक कर उसको भी अनुभव करा दिया कि गुरु साहिब सत्य पर है और उनके विरुद्ध अन्याय हुआ है। इसी बात के लिए योग्य कारवाई करने के लिए उन्होने औरंगजेब को अपना प्रसिद्ध पत्र "जफरनामा" लिखा था और खुद भी उनको मिलने के लिए तैयार हुए थे। औरगजेब की मृत्यु के बाद इसी सबध मे गुरु गोबिन्द सिंह बहादुरशाह, जो कि उसके बाद सम्राट् बना था, के पास गये थे। उन्होंने बहादुरशाह को उसके भाइयो के विरुद्ध सहायता भी की थी। परन्तु उनको यह आशा कि मुगल सम्राट् सरहिन्द के गवर्नर वजीर खा के विरुद्ध उनके किये हुए अत्याचारो के विरुद्ध कारवाई करेगा निष्फल रही। मुगल सम्राट् टालमटोल करता रहा और गुरु साहिब को अपने पास रख कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता रहा। वास्तव मे यह असम्भव था कि कोई मुसलमान सम्राट् वजीर खा के विरुद्ध उसकी धार्मिक कारवाई के लिए उसको दण्ड दे सके। गुरु गोबिन्द सिंह अपने सिद्धातो और विचारो के कारण मुगल सम्राट् की इस चाल को जल्दी न समझ सके थे। अन्त मे जाकर ही उन्होने सम्राट् से बिल्कुल निराश होकर बन्दा बैरागी को दक्षिण भारत से पजाब भेजने का फैसला किया था। जो काम मुगल सम्राट् करने के लिए तैयार नही हुए थे वह गुरु गोबिन्द सिंह ने बन्दा के जिम्मे लगाकर अपने विशेष साथियो और आदेश-पत्रो की सहायता से सिक्खो की अगवाई कर पूरा किया था।

सिक्ख गुरुओ के मुगल सम्राटो के साथ सबधो से सिद्ध हो जाता है कि समय बीतने पर और विशेष हालात पैदा होने के कारण उनके लिए सहयोग और सम्मान से जीना असम्भव हो गया था। इसीलिए उस आन्दोलन का स्वरूप जो पहले केवल धार्मिक स्वतत्रता और प्रचार का था कालातर मे राजनीतिक स्वतत्रता हो गया था। अब धार्मिक सहिष्णुता से आगे सघर्ष का युग शुरू हो गया था जो पूर्णतया सशस्त्र और निपट राजनीतिक था।

प्रश्न

1. Discuss the relation of the Mughal Emperors with the Sikh Gurus.
   सिक्ख गुरुओ के मुगल् सम्राटों के साथ सबधो का विवचन कीजिए।
2. Write a detailed note on the relations between the first four Sikh Gurus and the Mughal Emperors.
   प्रथम चार सिक्ख गुरुओ के मुगल सम्राटो के साथ संबंधों पर एक सविस्तर टिप्पणी लिखिए।

12

बन्दा बहादुर (सन् 1708-1716)

मुगल सम्राट् की ओर से गुरु गोबिन्द सिंह के निराश होने पर उन्होने दक्षिण भारत मे रह रहे एक बडे अद्‌भुत व्यक्ति के साथ सम्पर्क स्थापित किया और उसको पजाब मे अपने अधूरे काम को पूरा करने के लिए नियुक्त किया। यह महानुभाव थे उत्तर भारत के एक निवासी वैरागी माधोदास। गुरु गोबिन्द सिंह ने नानदेड के स्थान पर अपने प्रवास काल मे अनुभव कर लिया था कि बहादुर शाह अपने सूबेदार वजीरखा के विरुद्ध उसके अत्याचारो और अन्याय के बावजूद भी किसी किस्म की कारवाई नही करेगा और इसीलिए वह इस बारे मे टालमटोल कर रहा था। अपने ध्येय को पूरा करने के लिए उन्होने दूसरे साधन भी सोच लिये थे और इसी कारण उन्हो ने माधोदास को चुनकर पजाब की ओर भेजा था। .

बन्दा के साथ गुरु साहिब का मिलाप नाटकीय ढग से हुआ था। कहा जाता है कि गुरु गोबिंद सिंह माधोदास को मिलने उसके आश्रम मे गये जो कि गोदावरी के किनारे स्थित था। उस समय वैरागी वहाँ नही था। आश्रम लौटने पर माधोदास ने प्रश्न किया कि आप कौन है ? इस पर गुरु साहिब ने उनको कहा कि वही है जिनका कि वह इन्तजार कर रहा था। कुछ देर के बाद माधोदास ने पहचान लिया कि गुरु गोबिन्द सिंह है और कहा कि मैं आपका "बन्दा हूँ। इसके पश्चात् गुरु साहिब ने उसको अपना कार्य समझाकर पजाब मे आने के लिए प्रेरित किया।

माधोदास वैरागी एक राजपूत थे जिन का स्थान राजौरी, जम्मू और कश्मीर रियासत मे था। उसका जन्म सन् 1670 मे हुआ था। कहा जाता है कि एक दिन एक हिरनी का शिकार करने पर उनका पेट फाडने से दो जीवित बच्चे निकले। इस घटना से उनका मन विरक्त हो गया। उन्होने केवल शिकार और मासाहार ही नही बल्कि सारा ससार त्याग दिया और अपने पुराने नाम 'लछमन दास' को भी वैराग्य लेने पर माधोदास वैरागी का नाम दिया और उत्तर भारत से दक्षिण भारत में आकर अपना आश्रम स्थापित किया। वह तब अपनी आध्यात्मिक शक्ति के लिए बड़े प्रसिद्ध थे। गुरु साहिब ने भी उनको अपने विशेष गुणो के आधार पर ही, अपने पुराने सिक्खो की अपेक्षा, अपने काम को पूरा करने के लिए नियुक्त किया।

गुरु गोबिन्द सिंह से आदेश और उनके प्रसिद्ध साथियो को साथ लेकर गुरु साहिब का झण्डा और नगारा, पाँच तीर, तलवार और हुक्मनामे सहित बदा बहादुर

पजाब की तरफ चल पडा। दिल्ली के निकट पहुँचकर सोनीपत के स्थान पर उन्होने पंजाब मे रहने वाले सिक्खो को उनके साथ मिलने और मुगल सामाज्य के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए आमत्रित किया। गुरु गोविन्द सिंह के भेजे हुए विशेष व्यक्ति के रूप मे पजाब के सिक्खो ने उनके साथ सहयोग किया।

बंदा की फौजी सफलताएं (पहला दौरा)

मुगल सम्राट् के दक्षिण मे ठहरने का लाभ उठाकर बन्दा ने अचानक फौजी कारवाई आरम्भ कर दी। पजाब के सारे लोगो मे मुगलो के प्रति असतोष फैला हुआ था विशेष तौर पर सिक्खो के विरुद्ध अत्याचार के कारण। इस लिए बदा बहादुर को अद्भूत सफलता प्राप्त हुई। बदा का मुख्य उद्देश्य वजीर खा को दड देना और सरहिंद को बर्बाद करना था।

गुरु गोविन्द सिह के प्रसिद्ध साथी और सारे सिक्ख उनके नेतृत्व मे उत्साहपूर्वक और बहुसख्या मे उनके साथ शामिल हो गये। कुछ दूसरे लोग भी लूटमार के लालच मे उन के साथ मिल गये। इस ढग से उनके पास कई हजार की विशाल सेना इकट्ठी हो गई। उस समय प्रसिद्ध सरदारो मे फुलकिया वश के रामा और तिलोका और मालवा के दूसरे सिक्ख सरदार आली सिह, माली सिंह, एलौदी वाले और उस इलाके के अन्य सरदार उल्लेखनीय हैं।

बदा ने अपने विद्रोह का आरम्भ इलाके के जमीदारो को मुगलो के विरुद्ध असहयोग की प्रेरणा देकर किया। उन्होने उनको खुले तौर पर विद्रोह करने के लिए कहा और लालच दिया कि वह अपने आप को भूमि का मालिक समझे। अगर कोई उनको तग करे तो बदा के पास रिपोर्ट करे। ऐसी प्रेरणा से लोगो का साहस बढ गया और उनको मुगलों की दमन नीति से छुटकारा पाने की आशा मिल गई। सोनीपत से चल कर बन्दा ने कैथल और समाना पर हमला कर दिया। समाना मे बन्दा विशेष तौर पर जलालुद्दीन को, जिसके बारे मे कहा जाता है कि उसने गुरु तेगबहादुर को शहीद किया था और गुरु गोविन्द सिंह के छोटे साहिबजादो को कत्ल किया था, मार दिया। इसके अतिरिक्त कई हजार मुसलमानो को तलवार के घाट उतारा गया। इसी तरह से इलाके के दूसरे कस्बो गुढाम, ठसका, शाहबाद के मुसलमानों को दड दिया गया। सढौरा के स्थान पर मुसलमानो के विरुद्ध जमकर लडाई हुई। इस लडाई मे मुसलमानो की पराजय हुई और कई हज़ार मुसलमानो को प्राण दण्ड दिया गया। 'अब भी सढौरा के छोटे से कच्चे किले को 'कत्ल गढी' का नाम दिया जाता है। कहा जाता है कि इस जगह हज़ारो मुसलमान मार दिए गये थे। आगे चलकर मुखलिसपुर पर अधिकार करके बन्दा ने उस स्थान को सुरक्षित बनाकर उसका नाम लोहगढ रखा और उसे हैडक्वार्टर बनाया।

सरहिन्द की विजय और उसकी बर्बादी (सन् 1710 ईस्वी) : अपनी शक्ति और अपनी सत्ता को बढ़ाकर बन्दा अपने मुख्य उद्देश्य की पूर्ति अर्थात् सरहिन्द पर विजय प्राप्त करने और वहा के सूबेदार को दण्ड देने के लिए अग्रसर हुआ। सूबेदार वजीरखाँ को भी बन्दा की तैयारियो का ज्ञान हो गया था। इसलिए अपनी

रक्षा के लिए उसने प्रबन्ध करने आरम्भ कर दिये थे । अपनी सेना को बढाने, शस्त्र आदि एकत्र करने और दूसरी तैयारियो के साथ-साथ वजीर खाँ ने सारे इलाके की मुसलमान जनता को उनके साथ मिलकर सिक्खो क विरुद्ध "जहाद" करने का निमन्त्रण दिया । उसने मुस्लिम जनता को विशेषतौर पर ऐसा करने की प्रेरणा दी क्योकि उस समय तक की बन्दा की कारवाई से यह स्पष्ट हो गया था कि बन्दा के रहते कोई भी मुसलमान सुरक्षित नही रह सकेगा ।

बन्दा ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए माझा के मुझायल जाटो को भी सरहिन्द पर आक्रमण करने के लिए बुला भेजा । काफी सख्या मे मुझायल जाट गुरु गोबिन्द सिंह और उनके परिवार के विरुद्ध किये गये अत्याचारो का बदला लेने के लिये सरहिन्द की तरफ चल पडे । वजीरखा ने रोपड के स्थान पर उनको सतलुज पार करने से रोकने का प्रबन्ध किया परन्तु निष्फल रहा । बन्दा ने तमाम हिन्दू और सिक्ख जमीदारो को खुले तौर पर कह दिया कि वह अपने आप को भूमि का मालिक समझे और मुगलो को किसी किस्म का लगान न दे । केवल इतना ही नही उनको यह भी लालच दिया गया कि वे सरहिन्द की लूट मे शामिल होकर लाभ उठाये । इस तरह से पूरी तैयारी करके बन्दा ने वज़ीर खाँ के साथ टक्कर लेने का निश्चय किया ।

सरहिन्द से कोई 10 मील पूर्व की ओर बन्दा और वजीर खाँ की फौजो मे छप्पर-चिडी के स्थान पर युद्ध हुआ । मुसलमानो ने तोपो से हमला किया । परन्तु सिक्खो के अनन्त जोश ने उनको ठण्डा कर दिया । उन्होने आगे बढ कर तोपो पर कब्जा कर लिया और बडी घमसान की लडाई हुई । इस हाथापाई मे वजीरखाँ को बाज सिंह ने जख्मी कर दिया । वह जवाबी हमला करने वाला था कि फतेह सिंह ने तलवार के वार से उसको टुकडे-टुकडे कर दिया । वजीर खाँ की मृत्यू के पश्चात् मुसलमान फौजो के हौसले टूट गये । फलस्वरूप उनके पाँव उखड गये और मुसलमानो मे भगदड़ मच गई । बन्दा और उनके साथियो ने बढ कर सरहिन्द पर हमला करके उस पर कब्जा कर लिया । स्थानीय लोगों ने ज्यदा मुकाबला नही किया । सरहिन्द मे वजीर खा के हिन्दू दीवान सुच्चा नन्द को पकड लिया गया और उनको गुरु गोबिन्द सिंह के साहिबजादो को दीवार मे चिनवाये जाने की सलाह देने के कारण बडा कठोर दण्ड देकर मारा गया ।

सरहिन्द की विजय के बाद शहर को लूट लिया गया और वहाँ के सब मुसलमान निवासियो को लतीफ के शब्दों मे, "तलवार और नेजे से और फाँसी पर लटका कर मार दिया या गोली का निशाना बना दिया गया । वज़ीर खाँ के मृतक शरीर को एक दरख्त से लटका कर कव्वों और चीलो के खाने के लिए छोड दिया गया ।"

बन्दा का अपने अधीन इलाके का शासन प्रबन्ध वजीर खा की मृत्यु और सरहिन्द पर कब्जा करने के बाद सारे मालवा खण्ड पर बन्दा का राज्य हो गया । सतलुज और जमुना के बीच के इस इलाके से जहा से करीब 36 लाख रुपये वार्षिक का कर प्राप्त होता था अब बन्दा के अधिकार मे आ गया था । उसके राजनीतिक प्रभाव से बहुत से हिन्दू और मुसलमान भी सिक्ख बन गये और बन्दा

के साथ मिल गये । इस सारे इलाके के शासन प्रबन्ध के लिए बन्दा ने इसको बाँट कर प्रसिद्ध सिक्ख और हिन्दुओ के अधीन कर दिया । सरदार बाजू सिंह को सरहिन्द का गवर्नर और सरदार फतेह सिंह को समाना और उसके आस-पास के इलाके का शासक बना दिया गया । सरदार विनोद सिंह और सरदार राम सिंह को थानेश्वर दे दिया गया । सरहिन्द के परगनो के 28 मुसलमान अधिकारियो की जगह सिक्ख और हिन्दू अधिकारी नियुक्त कर दिये गये । बन्दा को लोग पातशाह के रूप मे समझने लगे और उसने अपने नाम का सिक्का और मोहर जारी की ।

जमीदारी का अन्त बदा ने अपनी राजनीतिक शक्ति बढाने और मुगलो के विरुद्ध लोगो को उकसाने का जो तरीका अपनाया था उसके कारण अब खुले तौर पर किसानो को भूमि का मालिक मान लिया गया था । यह चीज इस बात से सिद्ध होती है कि सढौरा के आसपास के किसानो का एक प्रतिनिधि मण्डल (डैपुटेशन) उनके पास आया और मुसलमान जमीदारो के अत्याचार के विरुद्ध उसने रक्षा माँगी । उत्तर मे बदा ने हुकम दिया कि उनके ऊपर गोली चला दी जाए । इसका कारण पूछने पर बन्दा ने उनको भीरु और कायर कहा, "क्या तुम इतने अधिक सख्या मे होते हुए भी मुट्ठी भर मुसलमानो के विरुद्ध अपनी रक्षा नही कर सकते । बन्दा के अनुसार ऐसे कायरो को ऐसा दण्ड मिलना ही चाहिये था । बन्दा का भाव यह था कि जमीदारी प्रथा समाप्त करके किसानो को भूमि का मालिक बना दिया जाए ।

सहारनपुर और उसके आस-पास के इलाके की लूटमार : बहादुर शाह के दक्षिण मे ठहरने का बन्दा ने पूरा-पूरा लाभ उठाया । क्योकि उसको ज्ञात था कि वर्षा ऋतु के अत से पहले मुगल सम्राट् का उत्तर भारत मे लौटकर आना बहुत कठिन होगा । इस समय बदा और उसके साथियो ने जमुना नदी, जोकि सर्दियो मे बहुत छोटी हो जाती है, पार करके उत्तर प्रदेश के इलाके मे अपना काम आरम्भ किया । सहारनपुर के आसपास के इलाके मे वहाँ के रहने वाले गूजरो के साथ मिलकर उसने लूट मार आरम्भ कर दी । गूजरो को मुगल नवाबो और बडे-बड़े जमीदारो के विरुद्ध उकसा दिया । उनमे से कुछ लोग सिक्ख धर्म मे प्रवेश करके अपनेआप को "नानक परस्त" कहने लगे । उस इलाके के फौजदार ने मुकाबला नही किया और भाग कर दिल्ली चला गया । उत्तर प्रदेश के काफी बडे इलाके मे गडबड फैल गई । कुछ समय के लिए अमीर लोगो को इतना भय हो गया कि वह मैदानी इलाको से भागकर या तो दूर पहाडो मे चले गये या पूर्व की ओर बढ गये ।

मानसून के आरम्भ होने पर दरिया को पार करने मे कठिनाई को देखते हुए बन्दा और उसके साथी पजाब लौट आये । इसी समय उनको जालन्धर द्वाब के किसानो के मुगल फौजदारो के विरुद्ध उठ खडे होने की सूचना मिली । उन्होने बन्दा को अपनी सहायता के लिए सदेश भेजा । इस मौके को अच्छा समझकर बदा ने अपना आन्दोलन सतलुज के पार के खण्ड मे आरम्भ कर दिया । उसके पजाब मे लौट आने से लोगों का जोश मुगलो के विरुद्ध और भी बढ गया । मुसलमान फौजदार

को राहो के स्थान पर हरा कर सारे इलाके को सन् 1710 की पतझड ऋतु तक मुगलो से स्वतन्त्र करा लिया गया।

मैदान से पहाड़ की ओर (दूसरा दौर)

बन्दा की देखादेखी सारे माझा के इलाके मे मुगल शासन का अन्त हो गया। सिक्खो ने अमृतसर, बटाला, कलानौर और पठानकोट पर अपना अधिकार जमा लिया और पहाडो की ओर बढने लगे। सारा सतलुज और रावी के मध्य का इलाका अब उन के अधीन था। एक इतिहासकार के शब्दो मे इस प्रकार" सारा पजाब स्वतत्र किसानो का ठाठे मारता हुआ सागर बन गया। केवल दो छोटे-छोटे द्वीप मुसलमानो के अधीन रह गये। लाहौर की राजधानी और अफगानो के अधीन कसूर।"

मुगलो का प्रतिरोध : स्थानीय अधिकारी जब इस महान आन्दोलन को न रोक सके तो उन्होने मुसलमानो की धार्मिक भावनाओ को उत्तेजित करने की कोशिश की। उन्होने सिक्खो के विरुद्ध 'जहाद' अथवा धर्म युद्ध करने का आह्वान् किया। परन्तु इसमे उन्हे अधिक सफलता न मिल सकी। क्योकि नये भरती किये हुए "गाजी" अपने पडौसी किसानो के विरुद्ध अधिक आन्दोलन न कर सके। उनको इस बात का अनुभव हो गया था कि अन्त मे उन्हे यहाँ के लोगो के साथ मिल-जुल कर रहना है।

बन्दा का अच्छे अवसर को खो देना : कुछ काल के लिए बन्दा सारे इलाके मे सर्वशक्तिमान बन गया था। बन्दा के सिवा किसी और का सम्मान नही होता था और किसी और के पास इतनी सत्ता भी नही थी। ऐसे अच्छे समय मे यह समझ मे नही आ सका कि बन्दा ने लाहौर या देहली जैसे केन्द्रीय शहरो पर अधिकार कर लेने का प्रयास क्यो नही किया। अगर इन महत्त्वपूर्ण शहरो पर भी बन्दा अपना अधिकार जमा लेता तो मुगल सम्राट् के लिए उसके विरुद्ध कारवाई करनी असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन हो जाती। परन्तु यह बात एक पहेली ही रह गई है। केवल यह ही कहा जा सकता है कि बन्दा ने अपनी शक्ति का गलत अन्दाजा लगाया और उचित समय पर ऐसी कारवाई न करके अपनी राजनीतिक भूल का सबूत दिया।

बहादुरशाह का बन्दा के विरुद्ध दमनचक्र दक्षिण भारत मे बहादुरशाह को उत्तरी भारत मे बन्दा की मनमानी कारवाइयो की खबरे निरन्तर मिलती रही थी। बहादुरशाह ने उत्तर भारत की गम्भीर स्थिति को सामने रखते हुए राजपूतो के विरुद्ध अपना आन्दोलन स्थगित कर दिया और जल्दी से जल्दी पजाब की ओर लौटने का प्रबन्ध किया। मौनसून का अन्त होते ही वह इस दिशा मे चल पडा और दिल्ली न ठहरते हुए पजाब पहुँच गया। उसने उत्तर प्रदेश और दिल्ली मे मुगल फौजों की लामबन्दी का हुकम दिया और बन्दा के विरुद्ध फिरोजखाँ के अधीन एक बडा लश्कर (फौज) भेजा। अपने चार पुत्रो को भी उसके साथ शामिल होने का आदेश दिया और बुन्देला राजपूतो को भी सहायता के लिए निमन्त्रण भेजा। इस कारवाई के फलस्वरूप एक महीने के अन्दर-अन्दर ही मुगलो ने थानेश्वर, करनाल और शाहबाद पर दोबारा अधिकार कर लिया। फलत दिसम्बर 1710 तक इस इलाके मे मुगलो का शासन फिर से स्थापित हो गया।

मैदानी इलाके मे मुकाबला न कर सकने के कारण बन्दा अपने लोहगढ के पहाडी किले मे चला गया। शाही फौज जिसमे मुगल, मेयो, पठान, अफगान और राजपूत शामिल थे, ने लोहगढ किले को घेर लिया। बन्दा को उस जगह से निकलने के लिए बडी कठिनाई हुई। वह अपने साथ थोडी सख्या मे अपने प्रसिद्ध तलवार चलाने वाले साथियो को लेकर रात के समय वहा से निकलने मे सफल हो गया। किले पर मुगलो का अधिकार हो गया और उन्होने गुरबख्श सिंह नामी एक सिक्ख को जिस की शक्ल बन्दा के साथ मिलती-जुलती थी, पकड लिया।

कुछ समय तक उन्होने यही समझा कि बन्दा को ही पकड लिया गया है। परन्तु यह गलत सिद्ध होने पर मुगलो को बडी निराशा हुई और "बाज तो उड गया और उल्लू को ही लेकर यह समझ कर खुशी मनाई गई"। इस पर मुगलो ने जो लोग कैद किये थे उन पर ही अपना गुस्सा निकाला और नाहन के राजा को, जिसके इलाके मे बन्दा भागकर चला गया था, भी दण्ड दिया। बन्दा के साथियो को चुन-चुन कर पकडने के यत्न मे मुगलो ने उन सब लोगो को जो कि अपने आपको सिक्ख नही समझते थे अपने बाल कटवाने का आदेश दिया। मैदानी इलाके से भागकर बन्दा ने पहाडो मे अपना आन्दोलन आरम्भ कर दिया। उसने उन सब हिन्दू राजाओ को जिन्होने गुरु गोबिन्द सिंह के विरुद्ध किसी किस्म की कारवाई की थी दण्ड दिया। मण्डी, कुल्लू और चम्बा रियासतो को उसने अपने अधीन कर लिया। बिलासपुर के राजा भीमचन्द को कडा दण्ड दिया गया। पहाडो से बन्दा ने मैदानो मे सिक्खो के पास हुकम-नामा भेजा कि वह अपना आन्दोलन जारी रखें और कीरतपुर पहुचकर उसके साथ शामिल हो जाएँ। बन्दा सारे पहाडी इलाके से अच्छी तरह वाकिफ था क्योकि उसका जन्म जम्मू के निकट पहाडो मे हुआ था। जम्मू से निकल कर उसने बटाला को लूटा। मुगल फौजो के उस तरफ पहुचने पर वह फिर पहाडों मे छुप गया। मुगल सम्राट ने वहा निरापराध जनता पर अपना गुस्सा निकाला। बहादुरशाह बन्दा की ओर से इतना भयभीत हो गया कि हर समय उसको बन्दा के हमलो का डर रहता। कुछ लोगो का विचार है कि उसका मानसिक सतुलन बिगड गया था। ऐसी स्थिति मे 28 फरवरी, 1712 को उसका देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों मे युद्ध आरम्भ हो गया। इस काल में बन्दा ने कोई विशेष कारवाई तो नही की परन्तु सढौरा पर अपना अधिकार कर लिया और अपने हुक्म जारी करने आरम्भ कर दिये।

बन्दा का अन्तिम मुकाबला, पकड़ा जाना और शहीदी (तीसरा दौर)

बहादुरशाह के उत्तराधिकारियों मे युद्ध के पश्चात् फर्रुखसियर सम्राट् बना। उसने अपने सुप्रसिद्ध जरनैल सुमद्दखा को बन्दा के विरुद्ध कारवाई करने के लिए भेजा। सुमद्दखा ने बन्दा को सढौरा और मुखलिसपुर छोडने पर मजबूर कर दिया और वह फिर पहाडों मे चला गया। इस तरह से मैदानी इलाके में किसान आन्दोलन का अन्त हो गया।

दो साल तक बन्दा पहाडो मे बैठा रहा। उसने एक छोटे से गॉव मे जिस का नाम डेरा बाबा बन्दा है, विश्राम किया। इस समय मे चम्बा के राजा की लडकी के साथ शादी करके वह गृहस्थी बन गया था और उसके एक लडका भी हुआ था। सन् 1715 मे बन्दा ने फिर आन्दोलन आरम्भ किया। इस समय उसने जम्मू के निकट गुरदासपुर नगल मे मुगलो का मुकाबला करने का यत्न किया। गुरदासपुर नगल मे एक छोटी सी गढी को अपनी सुरक्षा के लिए अभी वह मुकम्मल नही कर सका था कि मुगलो ने हमला कर दिया। उसने वीरता से मुकाबला किया और काफी बडी सख्या मे मुगल फौज को पीछे हटा दिया। अधिक मुगल फौज आने पर बन्दा को घेरे मे ले लिया गया और उसको बडी कठिनाई का सामना करना पडा। भूख प्यास से तग आकर, उसके कुछ साथियो ने जिनका नेता सरदार विनोद सिंह था, वहा से भाग निकलने का सुझाव दिया। बन्दा उनसे सहमत नही था और चाहता था कि मौनसून आरम्भ होने तक वही ठहरा जाये। परन्तु विनोद सिह और उसके साथियो ने बन्दा का साथ छोडने का फैसला किया। उनके चले जाने से बन्दा के बाकी साथियो पर बहुत बुरा असर पडा। आठ महीने के घेरे मे बन्दा के कोई आठ हजार साथी मारे गए और उन्होने आत्मसमर्पण कर दिया। बन्दा और उनके साथियो को जिन की सख्या कोई 750 थी बन्दी बना कर पहले लाहौर के बाजारो मे फिराया गया और फिर दिल्ली ले जाकर उनका जुलूस निकाला गया। वह इस लिए किया गया था कि मुसलमान जनता को मुगल साम्राज्य की शक्ति मे विश्वास हो जाए और सिक्खो मे आतक पैदा हो जाए।

दिल्ली मे बन्दा के साथियो को 100-100 के ग्रुपो मे एक विशेष स्थान पर ले जाकर सब लोगो के सामने शहीद किया गया। यह बात उल्लेखनीय है कि ऐसी गम्भीर स्थिति मे बन्दा के साथियो मे से किसी ने किसी किस्म की कायरता नही दिखाई। केवल एक नौजवान के बारे मे उसको माता ने यह कहकर उसको छुडाने का प्रयास किया कि वह सिक्ख नही है। उस नौजवान ने उसको अपना अपमान समझा और अपने आपको शहीदी के लिए पेश किया।

सबसे अन्त मे बन्दा को एक पिंजरे मे बन्द करके हाथी पर चढा कर दिल्ली के बाजारो मे लोगो को दिखाकर वध के लिए ले जाया गया। उसने लाल रग की वेशभूषा पहनी हुई थी और वह बडा तेजवान दिखाई देता था। बन्दा को मारने से पहले उसको आदेश दिया गया कि वह अपने चार साल के लडके को अपने हाथ से मारे। उसके इन्कार करने पर बच्चे को मार कर उस का तडपता हुआ दिल बन्दा के मुँह पर मारा गया। उसके बाद बन्दा को बडे भीषण ढग से मारा गया।

मूल्यांकन

बन्दा के संबंध मे दो परस्पर विरोधी विचार है। मुसलमान, इतिहासकार उसको एक खून पीने वाला धार्मिक और आतकवादी नेता समझते थे। परन्तु हिन्दू इतिहास-कारों के विचार मे बन्दा एक महान त्यागी, शूरवीर और धर्म का रक्षक था।

निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाए तो मानना पडेगा कि बन्दा एक अद्वितीय जरनैल और साहसी पुरुष था जिसने अपने वचन का पालन करते हुए महान सघर्ष किया और गुरु गोबिन्द सिंह की आज्ञा के अनुसार अपना बलिदान दिया।

बन्दा को केवल एक लूट मार करने वाला व्यक्ति कहना उसके साथ अन्याय करना होगा। उसके उच्च विचार और आचार से सिद्ध हो जाता है कि वह एक महान त्यागी और बहुत ही नरम दिल वाला व्यक्ति था। वास्तव मे उसके वैरागी होने की भी यही वजह थी। पजाब मे गुरु गोबिन्दसिह के आदेशानुसार उसके लौटकर आने और मुगलो के विरुद्ध इस कदर विशाल आन्दोलन करने का भी यही कारण था कि वह अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध हर तरह की कुर्बानी देने को तैयार था। यह कहना उचित होगा, "गुरु गोबिन्द सिंह ने बीज बोया था परन्तु बन्दा ने फसल को काटा था।" गुरु गोबिन्द सिंह ने खालसा की स्थापना करके सिक्खो को एक सशस्त्र आन्दोलन के लिए तैयार किया था परन्तु बन्दा ने उनका वास्तविक उपयोग किया था। वस्तुत बन्दा को एक आदर्शवादी कहा जाए तो अनुचित न होगा। उसने अपने आठ साल के आन्दोलन से सिद्ध कर दिया था कि वह कितनी लगन और साहस का मालिक था। बन्दा ने अपनी प्रशासनिक, सैनिक और राजनीतिक योग्यताओ से सिद्ध कर दिया था कि वह एक वैरागी होते हुए भी एक महान विजेता और नेता था।

बन्दा की असफलता के कारण :

बन्दा ने अपने आन्दोलन के आरम्भ मे आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की थी परन्तु यह ज्यादा देर तक टिकी नही रह सकी। उसकी असफलता के कुछ विशेष कारण निम्नलिखित है·

1. उसकी सीमित शक्ति,
2. मुगल प्रतिरोध का ठीक अन्दाजा न होना,
3. विशेष अवसर का फायदा न उठाना, और
4 एक वैरागी के नाते अपने शासन या अपने लिए किसी किस्म की सम्पत्ति के प्रति विमोह होना।

इसके साथ ही यह भी कहना पडेगा कि बन्दा ने जहां लोगों को मुगलों के विरुद्ध कारवाई करने के लिए आदेश दिया था, उसने इस आन्दोलन को स्थायी बनाने के लिए विशेष ध्यान नही दिया। मुगल साम्राज्य की शक्ति को भी वह ठीक-ठीक नही समझ सका। बन्दा को एक ज्वालामुखी का रूप ही कहा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह वजीर खा को दण्ड देने और सरहिन्द को बर्बाद करने के पश्चात् यह समझ कर निश्चिन्त हो गया था कि बाकी सब काम लोग अपने आप कर लेंगे।

इन सब बातो के होते हुए भी बन्दा का पजाब के इतिहास में बहुत ऊंचा स्थान है और उसका सिक्खों के लिए बहुत योगदान है।

प्रश्न

1. Sketch the career of Banda Bahadur (A. D 1708-1716) and estimate the value of his work in furtherance of cause entrusted to him by Guru Gobind Singh
बन्दा बहादुर (सन् 1708-1716) का जीवन चरित्र लिखिए और गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा जो दायित्व उसे सौंपा गया था उसे पूरा करने के निमित्त जो काम उसने किए, उनका मूल्याकन भी कीजिए ।

2 Would you agree with the view that Banda's career from 1708-1716 represents the first phase of Sikh struggle for independence ?
क्या आप इस विचार से सहमत है कि बन्दा के सन् 1708 से 1716 तक का जीवन चरित्र सिक्खो के स्वतन्त्रता के सघर्ष के प्रथम चरण का द्योतक है ?

3 "Guru Gobind Singh had sown the seed, Banda reaped the harvest. The Guru had enumerated principles, Banda put them into practice" Illustrate with reference to the career and achievements of Banda
"गुरु गोबिन्द सिंह जी ने बीज बोया, बन्दा ने फसल काटी । गुरु जी ने सिद्धात बनाए, बन्दा ने उन्हे कार्य-रूप प्रदान किया ।" बन्दा के जीवन चरित्र और सफलताओ के सन्दर्भ मे इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

4 "Banda was neither a monster nor a ruthless blood sucker; but an able and enterprising leader who led the Sikhs in the struggle for independence" Explain
"बन्दा एक खूनी अथवा निर्मम हत्यारा नही था, अपितु वह एक योग्य एव साहसी नेता था जिस ने स्वतन्त्रता सघर्ष मे सिक्खो की अगुआई की ।" इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

5. "He was the first man to deal a severe blow at the intolerant rule of the Mughals in the Punjab and to break the first sod in the conquest of that province by the Sikhs" Elaborate with reference to the career of Banda.
"वह पहला व्यक्ति था जिसने पजाब मे मुगलो के असहिष्णु शासन को सख्त चोट लगाई और सिक्खो द्वारा इस प्रान्त को विजित करने की दिशा मे पहला कदम उठाया," बन्दा के जीवन-चरित्र के सदर्भ मे इस कथन की सविस्तर व्याख्या कीजिए ।

6. Next to the Guru (i e Gobind Singh) Banda was the first person to place before the Sikhs practical demonstration of staunch nationalism." Comment
"गुरु गोबिन्द सिंह जी के बाद बन्दा प्रथम व्यक्ति था जिसने सिक्खो के

सम्मुख कट्टर राष्ट्रवाद का व्यावहारिक एवं सफल प्रदर्शन किया ।" व्याख्या कीजिए ।

7. "The idea of a national State, long dead, once again became a living inspiration and although suppressed for the time being by relentless persecution, it went on working underground like a smouldering fire and came out forty years later with a fuller effluence never to be suppressed again (Teja Singh and Ganda Singh). Discuss the above in relation to the lasting nature of the work of Banda Bahadur.

"नेशनल स्टेट का विचार जो कभी का मर चुका था, एक बार फिर जीवन्त अन्त: प्रेरणा का रूप धारण कर गया, और यद्यपि वह फिलहाल कठोर व निर्मम दमन की नीति के कारण दब-सा गया, परन्तु वह राख के नीचे दबी चिंगारी की तरह अन्दर ही अन्दर दहकता रहा और चालीस वर्ष बाद अपनी पूर्ण प्रदीप्ति के साथ प्रज्वलित हो उठा और फिर उसे कभी भी दबाया न जा सका" (तेजा सिंह तथा गंडा सिंह) । बन्दा बहादुर द्वारा सम्पन्न कार्य के स्थायी स्वरूप के दृष्टिगत उपर्युक्त कथन पर विचार करो ।

8. "Banda Bahadur is considered a great military leader". Do you agree ? Give illustrations to support your answer.

"बन्दा बहादुर को एक महान सेना नायक समझा जाता है ।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? उदाहरणों द्वारा अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए ।

9. Attempt an estimate of the character, work and achievements of Banda Bahadur.

बन्दा बहादुर के चरित्र, कार्य एवं सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए ।

13

सिक्खों का दमन और पुनर्गठन

बन्दा की मृत्यु के पश्चात् मुगलो ने सिक्खो के विरुद्ध पूरे जोरशोर से दमन चक्र चलाया। लाहौर के गवर्नर अब्दुल समद् खा को खास आदेश दिया गया कि जहाँ कही भी कोई सिक्ख मिले, उस को पकड कर इस्लाम मे प्रवेश करने से इकार करने पर मृत्यु दण्ड दे दे। इस कारण से ही अग्रेज यात्री फॉरैस्टर ने अपनी पुस्तक "जर्नी फ्राम बगाल टू इग्लैड" मे लिखा था "सिक्खो के विरुद्ध मुगलो ने इतना शक्तिशाली दमनचक्र चलाया कि उस समय किसी के लिए सारे मुगल राज्य मे सिक्ख शब्द का उच्चारण मात्र भी निषिद्ध था।" ऐसी कठिन स्थिति मे सिक्खो के लिए अपनी सुरक्षा का एक ही साधन था कि वे मुगलो के चगुल मे न फँसे। परिणामस्वरूप उनको गुप्त जीवन धारण करना पडा और जो इस कठिन परीक्षा मे नही पडना चाहते थे उन्होने सिक्खों के चिह्न त्याग कर अपने आपको सहजधारी घोषित कर दिया।

इस तरह बेघर जीवन व्यतीत करते हुए सिक्खो का मुगलो के विरुद्ध सघर्ष लूट-मार मे बदल गया और उनके लिए धन प्राप्त करने का साधन केवल सरकारी खजाने या अमीर लोगो के घरबार को लूटना ही था। इस तरह ये लोग पक्के सिपाही बन गए। वास्तव मे ये वे उजडे-पुजडे लोग थे जिन्होने अपना धर्म नही त्यागा और अपने घर बार से वचित होकर भी कठोर विरोध जारी रखा।

बन्दा के पतन के पश्चात् सिक्खो का कोई एक लीडर नही रहा। इस कारण अपनी रक्षा के लिए सिक्खो ने छोटे-छोटे ग्रुप बनाए और अलग-अलग लीडरो के अधीन सघर्ष को जारी रखा। ये लोग अपने साझे हितो के मामलो पर विचार करने के लिए साल मे दो बार बैसाखी और दीवाली के अवसर पर अपने धर्म स्थान अमृतसर मे इकट्ठे होकर फैसले करते थे। इस किस्म की मीटिंग को जिसमे सब सिक्ख शामिल होते थे "सरवत्त खालसा" कहते थे। जो प्रस्ताव इस सभा मे सर्वसम्मति से पास किये जाते थे और जिन का पालन करना सब के लिये अनिवार्य समझा जाता था उसे "गुरमत्ता" कहा जाता था। साधारण रूप मे ये लोग भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपने विशेष लीडरो के अधीन काम करते थे।

सिक्खो में विभाजन बन्दा के नेतृत्व मे सिक्खो मे एक दल ऐसा बन गया था जो कि उसके कुछ विशेष आदेशों का पालन करता था। ये लोग मासाहारी नही थे और आपस मे मिलते समय एक दूसरे को "वाहिगुरु की फतेह" की बजाय "फतेह धर्म" या

"फतेह दर्शन" कहते थे। नीले वस्त्रो की बजाय ये लोग लाल रग के वस्त्र पहनते थे। बन्दा के इन विशेष अनुयायियो को "बन्दई सिक्ख" कहते थे। पुरानी सिक्ख परम्परा के मानने वाले सिक्खो को "तत्खालसा" कहा जाने लगा। इन दोनो दलो के मतभेद मिटाने के लिए गुरु गोबिन्द सिह की धर्म पत्नी माता सुन्दरी ने गुरु गोबिन्द सिह के परमभक्त भाई मनी सिंह को सन् 1721 मे अमृतसर भेजा। उन्होने सिक्खो मे एकता लाने के लिए विशेष परिश्रम किये। दोनो दलो के लीडरो को अपने भेदभाव मिटाने के लिए प्रेरणा दी। बन्दई सिक्खो के लीडर बाबा काहन सिंह सुपुत्र बावा विनोद सिंह और खेमकरण वाले महन्त सिह ने पर्ची डालकर फैसला करने का सुझाव मान लिया। दो पर्चियो मे उन्होने "गुरु जी का खालसा" और "फतेह धर्म" लिखकर हरमन्दिर साहिब के सरोवर मे डाल दिया। वहाँ "गुरु जी की फतेह" वाली पर्ची के पानी के ऊपर आ जाने पर भी बन्दई सिक्खो ने इस निर्णय को स्वीकार नही किया। इसके पश्चात् दोनो दलो के प्रतिनिधि युद्ध करने के लिए आमन्त्रित किये गये। अकाल तख्त के सामने यह परीक्षा की गई थी। तत्खालसा की विजय होने पर बन्दइयो ने इस निर्णय को नही माना। उस समय वहाँ होने वाली गडबड मे बन्दइयो के नेता मसन्द सिंह मारे गये। बहुत से बन्दई तत्खालसा मे मिल गये और बाकियो को हरमन्दिर से बाहर निकाल दिया गया।

इस तरह सिक्खो मे एकता हो जाने के बाद उनकी शक्ति बढ गई और वह मुगल दमनचक्र का ज्यादा उत्साह से मुकाबला करने लगे। उन्ही दिनो सिक्खो ने लाहौर के गवर्नर की तरफ से अस्मल खा की कमान मे भेजे गये एक दल को पराजित कर दिया। जिससे उनके हौसले और भी बढ गये। इसी समय समद खा को मुलतान का गवर्नर बना दिया गया और उनकी जगह उनके सुपुत्र खान बहादुर जकरिया खा को लाहौर का गवर्नर बना दिया गया। जकरिया खा ने भी अपनी पिता वाली नीति को जारी रखा और सिक्खो को पकडने और इस्लाम मे प्रवेश न करने पर मृत्यु दण्ड देने का तरीका अपनाया। लाहौर मे एक पुराने अस्तबल (घोडो के तबेले) के स्थान पर सिक्ख कैदियो को शहीद किया जाता था जिस के कारण उस स्थान का नाम "शहीद गज" पड गया था।

जकरिया खां का सिक्खो से व्यवहार लाहौर के गवर्नर की दमननीति से बचने के लिए सिक्ख उत्तर की और पहाडी इलाके मे जा छुपे थे। वहाँ पर उन्होने अपनी शक्ति बढानी शुरू कर दी थी और आस पास के गाँव अपनी सुरक्षा मे ले लिये थे।

जकरिया खा ने मुसलमान जनता को सिक्खो के विरुद्ध "जहाद" अर्थात् धर्म युद्ध करने के लिये प्रेरित किया। उनको एक विशेष झण्डे के नीचे इकट्ठे होकर सिक्खों के विरुद्ध सारे इलाके मे जाकर उनको पकडने या मारने का आदेश दिया गया। यह नया "हैदरी झण्डा" लेकर मुसलमान बहुत संख्या मे सिक्खो के विरुद्ध चल पड़े। अपने धार्मिक जोश के बावजूद यह विशाल मुसलमान समूह भल्लोवाल के स्थान पर सिक्खों

से बुरी तरह पराजित हुआ। कहा जाता है कि "कुछ तुर्क जब कि वह भाग रहे थे मारे गये। कुछ दरख्तो से टकराये, कुछ अगहीन बन गये और कुछ अपने नेत्र खो बैठे। झण्डा उठाने वालो ने तग आकर हैदरी झण्डे को फाड दिया और इसको आग लगादी।"

अपनी दमन की नीति के निष्फल होने पर जकरिया खा ने सिक्खो को अपने साथ मिलाने का और उनका विरोध समाप्त करने का यत्न किया। उसने उनके लीडर को निमन्त्रण भेजा। कपूर सिंह के इस पदवी पर नियुक्त होने पर उसको 'नवाब' की उपाधि देकर सिक्खो को सन् 1733 मे एक लाख रुपये की कान्हा कच्छा (मिण्टगुमरी के पास) के स्थान पर जागीर प्रदान की। उनका विचार था कि इस जागीर को प्राप्त करने पर सिक्ख शान्ति से रहने लगेगे और अपना सघर्ष बन्द कर देगे।

सिक्खो ने जागीर प्राप्त करने पर भी अपना विरोध जारी रखा और अपने शस्त्र नही त्यागे। खान बहादुर जकरिया खा की इच्छा के विरुद्ध उन्होने इस मौके का लाभ उठाया और अपने आपको पुनर्गठित करके और भी शक्तिशाली बना लिया। उस समय लडाकू सिक्खो ने अपना एक नया समूह बना लिया जिसमे सब जत्थो की शक्ति इकट्ठी करके उसको "दल खालसा" का नाम दिया। दल खालसा का मुख्य उद्देश्य यह था कि उनके भिन्न-भिन्न जत्थे होते हुए भी उनकी सारी शक्ति को इकट्ठा करके इस रूप मे सघर्ष के लिए बरता जा सके। इस दल के दो भाग—"बुढ्ढा" दल, जिसमे बडी आयु के लोग शामिल थे और 'तरुण' दल, जिसमे युवा लोग शामिल थे बनाये गये थे। उन्होने अपने केन्द्रीय स्थान अमृतसर मे रखने का प्रबन्ध किया। उनके पॉच जत्थे अमृतसर मे पॉच भिन्न-भिन्न स्थानो पर, जिन के नाम रामसर, विवेक सर, लछमन सर, कौलसर और सतोख सर थे, स्थापित किये गये। तरुण दल को मालवा की ओर जाने का आदेश दिया गया, जहाँ पर उसने लोगो से सरकार को दिया जाने वाला मालिया खुद लेना आरम्भ कर दिया।

जकरिया खा ने सिक्खो को खुश करने की नीति के निष्फल होने पर जागीर-वापिस ले ली और दोबारा उनका दमन करना आरम्भ कर दिया। उसने दीवान लखपत-राय, जो कि उनके अधीन प्रसिद्ध हिन्दू अधिकारी था, को बुढ्ढा दल के विरुद्ध कारवाई करने का हुकम दिया। बुढ्ढा दल अमृतसर की ओर बढ रहा था कि दीवान लखपतराय ने उस पर हमला कर दिया। लाहौर के बहुत से अधिकारी इस मुठभेड मे मारे गये। जकरिया खा खुद सिक्खों के विरुद्ध मैदान मे आया और उसने अपनी सत्ता को कायम रखने के लिए बहुत कडी कारवाई की जिस के फलस्वरूप वह इस गडबड को दो साल तक दबा सका।

भाई मनी सिंह की शहीदी : जकरिया खा की कठोर नीति का परिणाम भाई मनी सिंह, जो कि हरमन्दिर साहिब के सबसे बडे ग्रन्थी थे, की शहीदी थी। भाई मनी सिंह ने लाहौर के गवर्नर से आज्ञा मॉगी कि दीवाली के त्योहार पर सिक्खो को खुले तौर पर अमृतसर मे इकट्ठा होने दिया जाये। उन्होने सरकार को 10 हजार रुपये

देने का भी वचन दिया। (खुशवन्त सिह के अनुसार यह राशि केवल पाँच हजार रुपये थी)। इस बात की सूचना मिलने पर मुगलो ने बडी सख्या मे फौज अमृतसर मे भेज दी। दीवाली पर इकट्ठे होने वाले सिक्खो को इस बात का भय हो गया कि उनको कैद कर लिया जाएगा या मार दिया जायेगा। इसलिए वे उस मौके पर वहाँ नही गये। भाई मनी सिंह के, जो रुपया उन्होने देने का वचन दिया था, न देने पर गवर्नर ने उनके विरुद्ध कारवाई की। उनके इस उत्तर को कि सिक्खों को दीवाली के मौके पर इकट्ठा नही होने दिया गया और इसलिए वह इस काम के लिए कोई राशि नही दे सकते, नही माना गया। उनको पकड कर कहा गया कि या तो वह इस्लाम मे प्रवेश करे या मृत्यु दण्ड के लिए तैयार हो जाएँ। भाई मनी सिंह के इन्कार करने पर उनको सन् 1738 मे, उनके अग-अग काट कर, शहीद कर दिया गया। सिक्खो मे इस बर्बरता से बहुत रोष फैल गया और उन्होने मुलतान के गवर्नर से बदला लेने का निश्चय किया। इसी समय नादिर शाह ने पजाब मे प्रवेश किया।

नादिरशाह का आक्रमण (सन् 1739)

नादिरशाह ने जब पजाब पर आक्रमण किया तो जकरिया खा ने उसकी प्रभुसत्ता मान ली। सिक्खो ने भी उस समय उसका विरोध नही किया और भागकर जगलो और पहाडो मे जा छुपे। लेकिन जब वह लौट रहा था, तो सिक्खो ने उसे और उसकी फौजो को लूटने की कोशिश की। नादिरशाह उनकी वीरता से बडा प्रभावित हुआ और लाहौर मे ठहरते समय जकरिया खा से पूछने लगा कि ये लोग कौन है और कहाँ रहते है? कहा जाता है कि जकरियाँ खा ने बताया कि वे राजद्रोही लोग छोटी-छोटी टुकडियो मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते है और अपने घोडो पर सवार हो कर लूटमार करते फिरते है। उनका रहने का कोई विशेष स्थान नही है, जीवन बहुत साधारण है और हर प्रकार की कठिनाइयाँ सह सकते है। यह जानकर नादिर शाह ने लाहौर के गवर्नर को चेतावनी दी "इन लोगों की तरफ से बचकर रहना, वह दिन दूर नही जब ये लोग पजाब के शासक बन जायेंगे"।

नादिर शाह के आक्रमण के महत्त्वपूर्ण परिणाम निकले। प्रथम तो पंजाब के गवर्नर को पराजित होना पडा। दूसरे मुगल शासन की दुर्बलता भी स्पष्ट हो गई क्योंकि उसको दिल्ली तक पहुँचने मे किसी प्रकार की बडी रुकावट पेश नही आई थी। बल्कि सब लोगो को ज्ञात हो गया कि एक विदेशी दिल्ली को पराजित कर भारत से बहुमूल्य चीजें यथा शाहजहाँ का रत्न जडित सिंहासन (तख्ते ताऊस) और हजारो लोगो को बन्दी बनाकर अपने साथ ले गया। राजनीतिक रूप मे यह बात मुगल साम्राज्य के पतन का प्रत्यक्ष प्रमाण थी। इससे सिक्खो को विशेष तौर पर और भी प्रोत्साहन मिला। क्योकि उनका सघर्ष मुख्य रूप से मुगल साम्राज्य के विरुद्ध था। पजाब में मुगल गवर्नर की शक्ति कम होने से सिक्खो को अपना आन्दोलन तेज़ करने का भी मौका मिल गया। गवर्नर जकरिया खा सिक्खो के विरुद्ध न तो इतनी जल्दी और न ही अधिक प्रभावशाली रूप में कारवाई कर सका। साथ ही साथ उसको आर्थिक

कठिनाइयो का भी सामना करना पडा । नादिर शाह के आक्रमण से पजाब की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई थी । अब सिक्खो को मौका मिल गया कि वह अपनी शक्ति बढा सकें और उन्होने नादिरशाह से काफी मात्रा मे दौलत लूटी । नादिर शाह के हमले के फलस्वरूप सिक्खो ने अपने आपको अधिक सगठित कर लिया और अमृतसर के निकट दल्लेवाल के स्थान पर एक छोटा सा किला भी बना लिया जिसमे वे अपनी सम्पत्ति रखते थे ।

जकरिया खां के सिक्खों को दमन करने के उपाय

नादिर शाह के आक्रमण के पश्चात् जकरिया खा ने अपनी सिक्खो के विरुद्ध दमन नीति और भी तेज कर दी । यह इसलिये भी आवश्यक हो गया था कि सिक्खो की शक्ति दिन प्रतिदिन बढती जा रही थी । अमृतसर के निकट उनका दल्लेवाल स्थित किला नष्ट कर दिया गया । जिन लोगो ने सिक्खो के विरुद्ध सहायता दी थी उनको इनाम दिया गया और सिक्खो को जीवित या मरणोपरान्त पकड कर लाने के लिए 50/- रुपये और उनकी सूचना देने वाले को 10/- रुपये प्रति व्यक्ति इनाम मुकर्रर किया गया ।

सिक्ख शहीद सिक्खो के विरुद्ध कडी कारवाई और उनको बिल्कुल मिटा देने का यत्न करने पर भी उन्होने साहस नही छोडा । उनमे से कुछ लोग ऐसे भी निडर थे कि उन्होने मुगलो के दमन का मुकाबला करते हुए अपनी जान तक देदी । इनमे से कुछ प्रसिद्ध नाम निम्नलिखित है

1. **महताब सिंह** मुसलमानो के एक लीडर मस्सा रगढ ने सिक्खो के धर्म स्थान हर मन्दिर साहिब को अपवित्र करने के लिए उसको घोडे बान्धने के लिए इस्तेमाल किया था । उसकी इस कारवाई से क्रोधित हो कर महताब सिंह ने भेष बदलकर वहाँ जाकर, जिस समय मस्सा रगढ़ मनोरजन कर रहा था, तलवार से उसका सिर काट दिया । परिणामस्वरूप महताब सिंह ने भी वीरगति प्राप्त की ।

2. **बोता सिंह सन्धु** . इस वीर जाट ने लाहौर और अमृतसर के बीच जरनैली सडक पर चौकी कायम कर ली और इस रास्ते से जाने वाले सामान पर महसूल लेना आरम्भ कर दिया । इस कारवाई का मतलब केवल मुगल राज्य को चेतावनी देना था जिससे यह सिद्ध हो सके कि सिक्ख मुगलो को वास्तविक शासक नही मानते । बोता सिंह को पकड कर मृत्यु दण्ड दिया दया ।

3 **भाई तरू सिंह** इस वीर सिक्ख को जण्डियाला के नारायणी सम्प्रदाय के लीडर ने जकरिया खा के सुपुर्द किया था । उसको कहा गया कि वह इस्लाम कबूल कर ले नही तो उसको मृत्यु दण्ड दिया जाएगा । उसके इन्कार करने पर उसकी खोपडी को छील कर बहुत दुख देकर उसको मारा गया । यह घटना लाहौर मे एक विशेष स्थान पर जिसको 'नखास' कहा जाता था हुई थी । बाद मे बहुत से सिक्खो की शहीदी होने के कारण इस स्थान को "शहीद गज" कहा जाने लगा ।

4. बाल हकीकत राय इस समय का एक बालक शहीद हकीकत राय था। स्कूल मे मुसलमान बच्चों के साथ पढते समय वादविवाद मे एक दूसरे के धर्म के बारे मे कुछ अनुचित शब्द कहने पर उसको पकड लिया गया। काजी के पास पेश करने पर और हकीकत राय के इस्लाम ग्रहण न करने पर उसको मृत्यु दण्ड दिया गया। इस दुर्घटना के बाद हकीकत राय के ससुर कृपाल सिंह उप्पल ने सिक्खो के पास फरियाद की। इस शहीदी का बदला लेने के लिए सिक्खो ने मौका मिलने पर स्यालकोट के सब काजी और मुल्ला मार दिये थे। यह घटना सन् 1742 की थी।

पजाब में राजनीतिक परिवर्तन और सिक्खो की स्थिति. खान बहादुर जकरिया खा के सन् 1745 मे देहान्त के पश्चात् उनका बडा लडका याहियाखा लाहौर का गवर्नर बना। परन्तु उसकी सिक्खो के प्रति नीति मे कोई परिवर्तन नही हुआ। सिक्खो की सख्या इस समय काफी बढ गई थी और उन्होने अपना पुनर्गठन कोई 25 जत्थो के रूप मे कर लिया था। इन सब जत्थो के कमाडर नवाब कपूर सिंह थे और ये जत्थे आगे जाकर मिसलो का रूप धारण कर गये थे। इस विशेष सगठन ने पजाब के स्वतत्रता संग्राम मे महत्त्वपूर्ण काम किया था। इन जत्थो ने किसानो को सरकार को भूमि कर न देने का मशवरा दिया। किसानो के साथ मुठभेड मे जसपतराय, जो कि लाहौर के दीवान लखपतराय का भाई था, मारा गया। दीवान लखपतराय ने इसका बदला लेने के लिए सिक्खो के विरुद्ध बहुत कडी कारवाई आरम्भ कर दी। उसने एलान किया कि वह पजाब मे सिक्खों का पूर्ण नाश करके दम लेगे। दीवान लखपतराय की कारवाई के बारे मे कहा जाता है कि लोगो के लिए 'गुर' (गुड) शब्द उच्चारण करना भी कठिन हो गया। अमृतसर मे धर्मस्थान हरमन्दिर को भर दिया गया और बहुत सख्या मे सिक्खो को पकड कर शहीद गज, लाहौर मे मृत्यु दण्ड दिया जाने लगा।

छोटा घल्लूघारा (सन् 1746) लखपतराय की दमन नीति का परिणाम नरसहार के रूप मे निकला। सात हजार के करीब सिक्खो को, जो कि जम्मू के निकट बसौली के स्थान पर जा रहे थे, घेर कर मार दिया गया। तीन हजार के लगभग सिक्ख बन्दी बना लिये गये और उनको भी मृत्यु दण्ड दिया गया। इस घटना को छोटा घल्लूघारा का नाम दिया गया था।

लाहौर में गृहयुद्ध खान बहादुर जकरिया खा के मरणोपरान्त याहिया खा के छोटे भाई शाहनवाज़ ने विद्रोह किया और अपने बडे भाई को बन्दी बनाकर अपने आपको लाहौर का गवर्नर घोषित कर दिया। याहिया खा के बाकी अधिकारियो को भी पकड लिया गया जिन मे उसका हिन्दू दीवान लखपतराय भी था।

शाहनवाज़ ने कौडामल को नया दीवान नियुक्त किया और अदीनाबेग को जालन्धर द्वाब का फौजदार रहने दिया। दिल्ली के मुख्यमत्री कमरुद्दीन ने जो कि उसके बडे भाई याहिया खा का समर्थक था उसे विधिवत् स्वीकृति देने से इन्कार कर दिया और उसे याहिया खां को छोड़ने का आदेश दिया। शाहनवाज़ ने ऐसा करने से

इन्कार कर दिया। परन्तु कुछ समय के बाद याहिया खा अपने छोटे भाई की कैद से भागने मे सफल हो गया। वह दिल्ली चला गया जहा उसने मुगल सम्राट् को अपनी दु:खभरी कहानी सुनाई। शाहनवाज को यह भय हो गया कि अब उसके विरुद्ध बडी सख्त कारवाई की जाएगी। उसने अपनी रक्षा के लिए अदीनाबेग के कहने पर अहमद-शाह अब्दाली को पंजाब पर हमला करने का निमंत्रण भेजा।

प्रश्न

1 Describe the condition of Sikhs in the Panjab after the death of Banda Bahadur How did the Sikhs set their house in order after Banda's execution.

बन्दा बहादुर की मृत्यु के पश्चात् पंजाब की दशा का वर्णन करो। बन्दा के वध के बाद सिक्खो ने किस प्रकार अपने सगठन को व्यवस्थित किया ?

2. Give an account of the plight of the Sikhs during the regime of the Turani Governors of Lahore namely Abdul Samad Khan and his son Zakaria Khan

लाहौर के तूरानी गवर्नरो अर्थात् अब्दुल समद खा और जकरिया खा के शासन काल मे सिक्खो की दशा का वर्णन करो।

3. Write notes on ·
(i) Bhai Mani Singh (ii) Bhai Taru Singh (iii) Bota Singh (iv) Haqiqat Rai (v) Small Ghallughara or the First Holocaust.

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए .
(i) भाई मनी सिंह (ii) भाई तरू सिंह (iii) बोता सिंह (iv) हकीकत राय (v) छोटा घल्लूघारा।

4 Describe briefly Nadir Shah's invasion. What effect did it produce on the history of Panjab ?

नादिर शाह के आक्रमण का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। पंजाब के इतिहास पर उसका क्या प्रभाव पडा ?

5. Explain clearly the disunity among the sikhs after the execution of Banda and their unity in 1721

बन्दा के वध के बाद सिक्को के मध्य पडी फूट का और सन् 1721 मे उनमे पुन: हुई एकता का विस्तारपूर्वक उल्लेख कीजिए।

14

अहमदशाह अब्दाली के पंजाब पर आक्रमण

अहमदशाह अब्दाली का पहला आक्रमण (सन् 1747 ईस्वी) अहमदशाह अब्दाली नादिरशाह की मृत्यु के पश्चात् सन् 1747 मे अफगानिस्तान का सम्राट् बन गया था'' वह शाहनवाज के निमत्रण पर पजाब पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गया। परन्तु शाहनवाज ने मुगल मुख्यमत्री कमरुद्दीन के साथ बातचीत करने के बाद अन्तिम समय पर अब्दाली के साथ मिलने से इन्कार कर दिया। लेकिन उसकी तैयारी पूरी न होने के कारण वह अहमदशाह अब्दाली का अच्छी तरह मुकाबला नही कर सका। अहमदशाह अब्दाली ने लाहौर मे प्रवेश किया और एक महीना वहाँ ठहरने और बडी मात्रा मे धन और गोलाबारूद प्राप्त करने के बाद वह दिल्ली की ओर आगे बढा।

अहमदशाह के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए मुगल सम्राट् ने अपने प्रसिद्ध वजीर कमरुद्दीन खा को एक बडी फौज देकर सतलुज की ओर भेजा। अब्दाली की सेना मे केवल 12 हजार के लगभग सैनिक थे। सरहिन्द के निकट मनुपुर के स्थान पर दोनो सेनाओ मे टक्कर हुई। मुगलो की भारी तोपों ने अफगान आक्रमणकारी को आगे बढने से रोक दिया। इस युद्ध मे एक गोला लगने से वजीर कमरुद्दीन का देहान्त हो गया। परन्तु उसके शूरवीर सुपुत्र मौयन्न-उल-मुल्क, जिस को मन्नू कहा जाता है, ने इस घटना के बाद बडे साहस से अब्दाली का मुकाबला किया और उसको पराजित होकर लौटना पडा।

अब्दाली के आक्रमण के विफल होने पर मीर मन्नू लाहौर पहुँच गया और उसने अपनी वीरता के कारण लाहौर का गवर्नर पद प्राप्त किया।

जब मीर मन्नू लाहौर पहुँचा तो शासन प्रबन्ध बहुत बुरी हालत मे था। खजाना खाली था और गृह युद्ध और सिक्खो के विरोध के कारण आम स्थिति बडी गम्भीर हो गई थी। उसने इस प्रान्त की दशा को ठीक करने का यत्न किया। उसने कौडामल को अपना दीवान और अदीना बेग को जालन्धर का फौजदार नियुक्त किया जिस का मुख्य उद्देश्य यह था कि वह सिक्खों को अपने काबू मे रखे।

अब्दाली के आक्रमण के समय पजाब मे गड़बड के कारण सिक्खो के हौसले और भी बढ गये थे और उनका अमृतसर मे आनाजाना काफी आसान हो गया था। उन्होंने अपने धर्म स्थान की रक्षा के लिए भी एक मिट्टी का किला जिसका नाम "राम रौणी" था बना लिया था। सिक्खों ने अपना संगठन दल खालसा के रूप में करके और

अपने प्रसिद्ध नेता जस्सा सिह अहलूवालिया की कमान मे मुगलो और अफगानो का विरोध और भी तेज कर दिया था। मीर मन्नू ने सिक्खो की गडबड को दबाने का कार्यक्रम आरम्भ किया। सबसे पहले उसने राम रौणी पर आक्रमण करके इस किले को नष्ट कर दिया। मीर मन्नू के प्रयत्नो के कारण सिक्ख जगलो और पहाडो मे जा कर छिप गये। फिर भी जो सिक्ख बन्दी बनाये गये उनको लाहौर मे लाकर बडी बेदर्दी से शहीद किया जाता था। मीर मन्नू के हुकम के बावजूद अदीनाबेग ने सिक्खो के साथ गुप्त सधि कर रखी थी और वह उनके साथ अपने सबध बनाये रखना चाहता था। इस लिये पूरे दिल से वह उनके विरुद्ध नही था। वह केवल मीर मन्नू को खुश करने के लिए कभी-कभी कुछ सिक्ख पकड कर लाहौर भेज देता था।

अहमदशाह अब्दाली का दूसरा आक्रमण (1748-49) अपने पहले आक्रमण के विफल होने पर अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण करने का विचार नही छोडा था। अत सन् 1748 मे उसने पजाब पर फिर आक्रमण किया। मीर मन्नू ने दिल्ली सरकार से सहायता माँगी। उस समय दिल्ली मे मुख्य मन्त्री सफदरजग मीर मन्नू का कट्टर विरोधी था। उसने मीर मन्नू की सहायता करने से साफ इन्कार कर दिया। ऐसी स्थिति मे मीर मन्नू ने अपने सीमित साधनोसे ही अहमदशाह अब्दाली का लाहौर से आगे बढ़कर दरियाये चिनाब के किनारे सोधरा के स्थान पर मुकाबला किया। परन्तु अपनी थोडी शक्ति को ध्यान मे रखते हुए उसने अब्दाली से सुलह की बातचीत भी छेड़ दी। निर्णय हुआ कि अब्दाली को 4 "महल्ल"—पसरूर, गुजरात, स्यालकोट और औरगाबाद जिन का भूमिकर 14 लाख रुपये था, देकर वापिस भेज दिया जाए। मीर मन्नू ने यह भी स्वीकार कर लिया कि वह अब्दाली के अधीन लाहौर का गवर्नर रहेगा। अब्दाली को इस तरह आगे बढने से रोक दिया गया। मीर मन्नूके साहसपूर्ण मुकाबले के बावजूद दिल्ली सरकार उसके प्रति अमित्रतापूर्ण रही। वजीर सफदरजग ने शाहनवाज को उस समय मुलतान का गवर्नर नियुक्त कर दिया और इस तरह से मीर मन्नू की शक्ति को कम करने का यत्न किय। मीर मन्नू ने शाहनवाज़ के विरुद्ध कौडामल को भेजा। कौडामल ने जो कि मन से सिक्खो का हितैषी था और जिस को एक तरह से सहजधारी सिक्ख भी कहा जा सकता था, इस समय सिक्खो की सहायता से शाहनवाज को हरा दिया और मुलतान पर अपना अधिकार कर लिया। इस बात से प्रसन्न होकर मीर मन्नू ने उसको राजा का खिताब दिया और उसे मुलतान का सूबेदार बना दिया।

मीर मन्नू ने ऐसी स्थिति मे अपने आप को पजाब का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया और अहमदशाह अब्दाली या दिल्ली की मुगल सरकार को किसी किस्म का नजराना देना बन्द कर दिया।

अहमदशाह अब्दाली का तीसरा आक्रमण (1751-52). अहमदशाह अब्दाली को मीर मन्नू की इस कारवाई से रोष हुआ और उसे आक्रमण करने का बहाना मिल गया। उसने अपने एलची को मीर मन्नू के पास भेजा कि उससे चार

महल्लो का बकाया भूमिकर वसूल करे। मीर मन्नू ने राजा कौडा मल, नाजिम मुलतान और अदीना बेग फौजदार जालन्धर को अपनी फौजो समेत लाहौर बुला लिया। अहमदशाह ने चिनाब पार करके लाहौर की तरफ बढना आरम्भ किया। मीर मन्नू ने अपने साथियो समेत शाहदरा से आगे मोर्चा सम्भाल लिया। काफी समय ऐसी स्थिति मे रहने के कारण मीर मन्नू को बहुत कठिनाई का सामना करना पडा क्योकि अहमदशाह अब्दाली और उसके साथी सारे इलाके मे अपने लिये रसद वगैरा प्राप्त कर सकते थे परन्तु लाहौर के सब सरफ से घिर जाने के कारण मन्नू और लाहौर की जनता को बाहर से किसी किस्म की सहायता मिलनी बन्द हो गई थी। ऐसी स्थिति मे अहमदशाह के विरुद्ध आगे बढकर मुकाबला करने का सुझाव अदीनाबेग ने दिया। परन्तु कौडामल का विचार था कि अफगान आक्रमणकारी भी अकाल की स्थिति का सामना कर रहा है। सब इलाके उजड गये है और विशेष तौर पर गर्मियो की ऋतु जल्दी आने वाली है। मीर मन्नू ने इस सुझाव को न माना और अफगानो के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। इस युद्ध के तीसरे दिन कौडा मल का देहान्त हो गया। ऐसा समझा जाता है कि उसको मरवाने मे अदीनाबेग का हाथ था। अदीना बेग कौडा मल से बहुत ईर्ष्या करता था और मीर मन्नू पर उसके प्रभाव को समाप्त करने का इच्छुक था। उसने कसूर के कुछ पठानो को लालच देकर कौडामल को पीछे से गोली से मरवाने का यत्न किया था। कौडामल के देहान्त के बाद मीर मन्नू की स्थिति गम्भीर हो गई और उसको पराजित होना पडा। इस समय अदीना बेग मीर मन्नू का साथ छोड कर जम्मू की ओर चला गया।

अहमदशाह अब्दाली मीर मन्नू को अपने अधीन पंजाब का वायसराय बनाकर और उससे 50 लाख रुपया और दूसरे पारितोषिक प्राप्त करने के पश्चात अफगानिस्तान को लौट गया और वापसी पर कश्मीर पर कब्जा करके वहा पर अपना गवर्नर नियुक्त कर गया।

अब्दाली के आक्रमण और मीर मन्नू को पराजय के बाद पजाब की स्थिति और भी खराब हो गई। सिक्खो ने अपनी शक्ति और बढाली और लाहौर सरकार का विरोध जोरशोर से आरम्भ कर दिया। मीर मन्नू ने अदीनाबेग को उसके विरुद्ध कारवाई करने का आदेश दिया। अदीनाबेग ने मीर मन्नू को खुश करने के लिए सिक्खो के विरुद्ध माखेवाल (आनन्दपुर साहिब) के स्थान पर होला मोहल्ला के त्योहार पर सक्रिय कारवाई करके उनको पराजित कर दिया। अदीनाबेग ने सिक्खों को आश्वासन दिया कि उनको पूर्णतया दमन करने का उसका कोई इरादा नही परन्तु वह चाहता है कि सिक्ख सरकार के प्रति अपनी विरोधी कारवाई को धीमी कर दें और उसके अकुश मे रहे। बहुत से सिक्खों को उसने अपने साथ मिला लिया। इन सिक्खो मे जस्सा सिंह रामगढिया भी था जो कि बाद में दल खालसा का प्रसिद्ध लीडर बना।

पंजाब के वायसराय के रूप मे मीर मन्नू अधिक समय काम नही कर सका। सन् 1753 में वह अपने घोड़े से गिर कर मर गया। उसके पश्चात् उसकी पत्नी मुराद बेगम ने जो कि मुगलानी बेगम के नाम से पंजाब के इतिहास मे प्रसिद्ध है, शासन की

बागडोर अपने हाथ मे ले ली मुगलानी बेगम ने अपने तीन साला लडके को मीर मन्नू का उत्त राधिकारी घोषित कर दिया और राजप्रबन्ध अपने पति के वेजीरो और दरबारियो की सहायता से चलाने लगी । मुगल सम्राट् ने अपने कमसिन लडके को लाहौर का गवर्नर बना दिया और मुगलानी बेगम के लडके को उसका नायक मुकर्रर किया । मीर मन्नू के सुपुत्र का देहान्त हो जाने पर मुगलानी बेगम ने राजप्रबन्ध अपने हाथ मे ले लिया और दिल्ली सरकार से दखल का विरोध करना शुरू कर दिया । साथ ही साथ मुगलानी बेगम के षड्यत्र का अन्त करने के लिए दिल्ली सरकार ने उसके विरुद्ध कारवाई की और उसको बदी बनाकर दिल्ली भेज दिया । दिल्ली से भी मुगलानी बेगम ने गुप्त रूप से अहमदशाह अब्दली के साथ पत्रव्यवहार जारी रखा और प्रेरणा दी कि उसके अगली बार भारत पर आक्रमण करने पर वह उसको दिल्ली मे रहने वाले बडे-बडे अमीरो-वजीरो की धन सम्पत्ति के बारे मे सूचना देगी ।

अब्दाली का चौथा आक्रमण (सन् 1756-57) अहमदशाह अब्दाली पजाब मे दिल्ली सरकार की सत्ता पूर्ण रूप से समाप्त करना चाहता था जिस की सूचना देने का मुगलानी बेगम ने वचन दिया था । अहमदशाह अब्दाली थोडे समय लाहौर ठहरने के पश्चात् 20 जनवरी, 1757 को दिल्ली पहुँच गया । कहा जाता है कि अहमदशाह अब्दाली ने अपने बेटे तैमूरशाह की शादी मुहम्मदशाह के बेटे अहमदशाह की लडकी के साथ कर दी और मुहम्मद शाह की बेटी हजरतबेगम को अपने हरम मे दाखिल कर लिया और दिल्ली से बेशुमार धन प्राप्त किया । दिल्ली से आगे मथुरा तक पहुँचकर उसने बहुत से हिन्दुओ को तलवार के घाट उतारा और मन्दिरो से बहुमूल्य चीजे लूटी । वह और भी आगे आगरा तक जाना चाहता था परन्तु उसकी सेना मे हैजा फैलने के कारण उसको वापस लौटना पडा ।

कहा जाता है कि यह धन और सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि अहमदशाह ने पजाब से जो हाथी घोडे, बैल, खच्चर और गधे आदि प्राप्त किए वे भी इसको ले जाने के लिए पर्याप्त नही हुए । यही नही, उसके 80 हजार घुडसवार अपने घोडों पर माल लादकर स्वय पैदल चलने लगे । इस लूट मार को ले जाते समय सिक्खो ने इस मौके का लाभ उठाया और जहाँ पर भी हो सका और जितना भी हो सका सका उन्होने अहमदशाह का बोझ हल्का करने मे उसकी सहायता की ।

लाहौर पहुँचकर अहमदशाह अब्दाली ने अपने सुपुत्र तैमूरशाह को पजाब का वायसराय नियुक्त किया और जहान खा को बहुत सख्या मे फौज देकर उसकी सहायता के लिए यहा छोड दिया । इस सारे प्रबन्ध मे मुगलानी बेगम को कुछ लाभ नही हुआ । उसकी अपनी चालो के फलस्वरूप हालात और भी खराब हो गये । अदीनाबेग खा को तैमूरशाह ने जालन्धर द्वाब का फौजदार बना रहने दिया हालांकि उसनें यह शर्त भी रखी थी कि उसको दरबार मे हाजिर होनेके लिए मजबूर न किया जाए । उसकी यह शर्त इस लिए माननी पडी क्योकि अदीनाबेग ही सिक्खों को काबूमे रख सकता था ।

तैमूरशाह और जहान खा ने पजाव मे अपनी शक्ति बढाने और सुव्यवस्था स्थापित

करने के लिए बडे प्रयत्न किए। परन्तु मीर मन्नू की मृत्यु और मुगलानी बेगम के समय मे सिक्खो की शक्ति बहुत बढ चुकी थी और कई स्थानो पर उन्होने अपना अधिकार जमा लिया था। सबसे पहले जहान खा को सिक्खो को दबाने के लिए अमृतसर की की ओर भेजा गया जहापर कि दीवाली के अवसर पर उनके बहुत सख्या मे इकट्ठा होने की आशा थी। साथ ही मुसलमान जनता को सिक्खो के विरुद्ध जहाद करने को प्रेरणा दी गई। सिक्खो की ओर से बाबा दीप सिंह को अमृतसर की रक्षा करने का कार्य दिया गया। तरन-तारण के निकट घमसान का युद्ध हुआ जिसमे पहले तो अफगानो को हार हुई परन्तु उसी समय और अफगान सेना के पहुँचने पर बाबा दीप सिंह घायल हो गये। कहा जाता है कि "बाबा दीप सिंह को घातक घाव लगने पर वीर सिक्ख ने अपने घायल सिर को दाहिने हाथ का सहारा देकर युद्ध जारी रखा और हरमन्दिर (दरबारसाहिब) की परिक्रमा मे जाकर प्राण छोडे, जहाँ उनके सम्मान मे अब स्मारक बना हुआ है"। बाबा दीप सिह की शहीदी पर सिक्खो मे बहुत रोष फैला। उन्होने अफगानो के विरुद्ध प्रबल कारवाई का निश्चय किया।

अदीनाबेग के लाहौर बुलाने पर इकार करने के पश्चात् तैमूरशाह ने उसको दण्ड देने के लिए फौज भेजी। अदीनाबेग ने सिक्खो की सहायता से लगभग 25 हजार सवारो की सेना से होशियारपुर जिले मे महिलपुर के स्थान पर अफगान सेनापति मुरादखा के विरुद्ध युद्ध मे विजय प्राप्त की। अफगानो की हार से सिक्खो के हौसले और भी बढ गये और इसके पश्चात् जो भी सेना सिक्खो के विरुद्ध भेजी गई सब सदा पराजित हुई। सिक्खो ने इस समय अपनी मार लाहौर तक करनी शुरू करदी। कहा जाता है कि सिक्खो के भय से अफगान शासक केवल लाहौर शहर तक ही सीमित हो गये। शाम को शहर के दरवाजे बन्द कर दिये जाते थे।

अदीनाबेग ने इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए एक और योजना सोची। उसने मराठा सरदार रघुनाथ राव, जो कि सन् 1757 के अन्त मे दिल्ली मे थे, को पजाब पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। अदीनाबेग ने वचन दिया कि वह मराठा सरदारो को पजाब आते समय जितने दिन वह चलकर आयेंगे एक लाख रुपया प्रति दिन और जितने दिन रास्ते मे विश्राम करेगे 50 हजार रुपये प्रति दिन देने तैयार होगा। मराठो ने यह निमंत्रण स्वीकार किया और पजाब पर आक्रमण की तैयारी की। अदीनाबेग ने बडी चतुराई से सिक्खों को भी मराठो की सहायता के लिए तैयार किया। इस प्रकार मार्च 1758 मे मराहठो ने सरहिन्द पर विजय प्राप्त कर ली और वे लाहौर की तरफ बढ़े। इस तरह अफगन के विरुद्ध तीन पक्षो ने (अदीनाबेग, मराठे और सिक्ख) मिलकर आक्रमण किया तैमूर शाह और जहान खा ने लाहौर छोड़कर काबुल का रास्ता लिया। वजीराबाद के पास चिनाब नदी को पार करते हुए जबकि अभी उसका कुछ सामान और सेना दरिया के पूर्वी किनारे पर थे, संयुक्त सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया। बहुत से अफगान मारे गये और कुछ

बदी बना लिये गये। सिक्खो ने उनको हरमन्दिर साहिब जो कि अफगानो ने भ्रष्ट कर दिया था की सफाई के काम पर लगाया।

अफगानो के पतन के पश्चात् पजाब मे मराठो का राज हो गया और उन्होने यह निश्चय किया कि वे पजाब पर सीधा राज्य स्थापित नही करेगे बल्कि इसके एवज मे अदीनाबेग को लाहौर का गवर्नर नियुक्त करके उससे 75 लाख रुपया सालाना नजराना प्राप्त करेगे। ऐसा शायद इसलिए उचित समझा गया कि मराठो को ज्ञात था कि सिक्खो की शक्ति इतनी बढ चुकी है कि यहाँ पूरे तौर पर उनका शासन स्थापित नही हो सकेगा। दूसरा कारण यह भी हो सकता है। कि अपने केन्द्र से इतने दूर रह कर वे शासनप्रबन्ध अच्छी तरह से नही चला सकते थे। तीसरा कारण यह भी कहा जाता है कि उस समय मराठो की आर्थिक स्थिति खराब थी। इन सब बातो को ध्यान मे रखते हुए मराठो ने अदीनाबेग को,जिस ने उन्हे आमन्त्रित किया था, पजाब का गवर्नर बनाना उचित समझा।

यहा यह बात उल्लेखनीय है कि मराठो के पजाब मे आने से यहा पर एक नई राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई थी और मराठो की वीरता के साथ अगर सिक्खो का सहयोग हो सकता तो पजाब का इतिहास बिल्कुल भिन्न होता। परन्तु जैसा कि सिन्हा ने विचार प्रकट किया है कि ऐसा होना सम्भव नही हो सका और सिक्खो ने भी मराठो के शासन को अपने हित मे नही समझा।

इस सारी कारवाई से अदीनाबेग को सर्वाधिक लाभ हुआ और उसकी पजाब का सूबेदार बनने की अपनी इच्छा पूर्ण हो गई। अब यह देखना बाकी था कि पजाब के सिक्ख उसको किस सीमा तक अपना स्वामी मानने के लिए तैयार थे ? अदीनाबेग को पहले ही सिक्ख विरोध का ज्ञान था और उसने सिक्खो के दमन के लिए विशाल प्रबन्ध करने आरम्भ कर दिए। उसने बहुत से नये फौजी भरती किये और अमृतसर के निकट सिक्खो के किले राम रौणी को घेरने का प्रबन्ध किया। साथ ही साथ अदीनाबेग ने कई हजार लकडहारो को नौकर रखा जो कि उन जगलो को काटने के काम पर लगाए जाने थे जिन मे कि सिक्ख लोग जाकर छिप जाते थे। यह सब तैयारी अभी पूरी तरह नही हुई थी कि 15 सितम्बर, 1758 मे अदीनाबेग का देहान्त हो गया और होशियारपुर के निकट खानपुर गॉव मे उसको दफना दिया गया।

अदीनाबेग, इतिहासकार एन०के०सिन्हा के शब्दो मे, एक अद्भुत व्यक्ति था जिस ने पजाब के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। केवल वह ही एक ऐसा राजनीतिज्ञ था जिसने पजाब मे मुगलो, अफगानो, सिक्खो और मराठो से बराबर लाभ उठाया। उस समय के सब प्रभावशाली शासको को उसकी आवश्यकता थी और वह हर एक से अपने स्वार्थ को सर्वोपरि रखकर सौदा करता था।"

अदीनाबेग की मृत्यु के बाद पंजाब की स्थिति · अदीनाबेग के देहान्त के बाद मुगल, अफगान और मराठे सब अपना-अपना अधिकार पजाब पर मानते थे। परन्तु वास्तव मे पजाब के मालिक केवल सिक्ख थे। उसी साल दीवाली के उत्सव पर अमृतसर

मे सरवत्त खालसा की सभा मे यह प्रस्ताव रखा गया कि सिक्खो को लाहौर पर कब्जा कर लेना चाहिए। लेकिन उसी समय उन्हे समाचार मिला कि मराठो ने साहूजी सिन्धिया के नेतृत्व मे पजाब की ओर सेना भेजी है और उत्तर की ओर से जहानखा भी अफगान सेना लेकर सिन्ध पार करके आ रहा है। साहूजी ने सिक्खो की सहायता से जहानखा को परजित किया।

अब्दाली का पाँचवाँ आक्रमण (सन् 1755) **और पानीपत की तीसरी लड़ाई** (सन् 1761) पतझड के मौसम मे अब्दाली ने विशाल सेना इकट्ठी करके पजाब पर पाचवी बार आक्रमण किया। उसके लिए यह आवश्यक हो गया था क्योकि वह अपने सुपुत्र तैमूरशाह को पजाब मे से निकाल देने का बदला लेना चाहता था और मराठो की उत्तर पश्चिमी भारत मे बढती हुई शक्ति को भी समाप्त कर देना चाहता था। दिल्ली मे अहमदशाह अब्दाली के नियुक्त हुए प्रतिनिधि नजीब-उल-दौला को भी मराठो ने निकाल दिया था और दिल्ली के आसपास बहुत से मुसलमान शासको ने भी अब्दाली को इस बात की प्रेरणा दी थी कि वह मराठो के विरुद्ध कारवाई करे।

चाहे सिक्खो का मराठो से कोई प्रेम नही था परन्तु अब्दाली के विरुद्ध वे उनके साथ मिलकर कारवाई करने के लिए उद्यत थे। अपने आप और अकेले वह अब्दाली का विरोध नही करना चाहते थे और उन्होने अपनी पुरानी गुरिल्ला नीति को ही अपनाया। मराठो के प्रतिनिधि साहू जी ने लाहौर की रक्षा का कोई विशेष प्रबन्ध नही किया और वहाँ से दिल्ली की ओर चला गया। अब्दाली को भी दिल्ली की तरफ बढने मे कोई विशेष कठिनाई नही हुई। वह अकालगढ पहुँच गया जहाँ पर उसको सूचना मिली कि मराठो की एक बडी फौज अब्दाली से युद्ध करने के लिए उत्तर भारत की तरफ आ रही है। अब्दाली ने उनके साथ युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। इस प्रदेश के मुसलमान शासकों ने अब्दाली का साथ दिया। सिक्खो ने अफगान मराठा सघर्ष का लाभ उठाने का निश्चय किया। उनकी इच्छा थी कि अपनी सारी शक्ति सगठित करके लाहौर पर अधिकार कर लिया जाए। इस बारे में उन्होनें कारवाई आरम्भ कर दी। जस्सा सिंह अहलूवालिया को लीडर चुना गया और चडतसिंह शुक्रचकिया, जय सिंह कन्हैया और हरि सिंह भगी उसके सहायक बने। लाहौर के अफगान गवर्नर ने उन को 30 हजार रुपये भेट किये ताकि वे लाहौर पर आक्रमण न करें सिक्खो ने ये रुपये स्वीकार करलिए और वापिस लौट गये। क्योंकि उनका विचार था कि लाहौर पर कब्जा करने से पहले यह निर्णय हो जाये कि अफगान या मराठे इन दोनो मे से पजाब का मालिक कौन बनेगा ?

पानीपत का तीसरा युद्ध (सन् 1761)

अब्दाली ने भारत मे कोई सवा साल से अधिक तैयारी करके मराठो के विरुद्ध कारवाई के लिए पानीपत के स्थान पर समुचित मोर्चाबन्दी कर ली और अपने अनुकूल समय पर युद्ध आरम्भ कर दिया। पानीपत के इर्दगिर्द मराठो की स्थिति कमजोर होती जा रही थी उनके लिए खाद्य सामग्री प्राप्त करनी बहुत कठिन हो गई

थी और विवश होकर उनको अफगानो के विरुद्ध युद्ध करना पडा। मराठों के तोपखाने का अब्दाली के घुडसवारो ने डटकर मुकाबला किया और अब्दाली की कुशल युद्ध नीति ने मराठो को पराजित कर दिया। इस युद्ध मे मराठों को बहुतभारी क्षति उठनी पडी। दोनों प्रसिद्ध नेता सदाशिव राव भाओ और रघुनाथ राव मारे गये। बाकी मरने वालो की सख्या कितनी थी इस का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि पानीपत मे मराठो की पराजय के फलस्वरूप कहा जाता था कि महाराष्ट्र का कोई कुनबा ऐसा नही था जिसका कोई सदस्य मारा न गया हो।

पानीपत के युद्ध का महत्त्व अफगान मराठा सघर्ष का असली लाभ सिक्खो को हुआ, उनके इस सघर्ष मे शामिल न होने की नीति सफल रही क्योकि दोनो विरोधी आपस मे लडकर अपनी शक्ति खो बैठे। अहमदशाह अब्दाली विजेता होते हुए भी वास्तव मे सिक्खो के विरुद्ध कारवाई करने की शक्ति खो बैठा था। इसलिए जहाँ तक पजाब पर आक्रमण करने का सबध है असली विजय सिक्खो की ही समझनी चाहिए।

पानीपत के तीसरे युद्ध के बाद अहमदशाह अब्दाली के लिए सिक्खो का दमन करना एक प्रकार से असम्भव हो गया। सिक्खो का उत्साह बढ गया और अब उनको विश्वास हो गया कि वह पजाब मे अपनी सत्ता जमा सकेगे इसका सकेत इस बात से मिलता है कि अब्दाली के पानीपत से स्वदेश लौटते समय सिक्खो ने ब्यास नदी के पास उसको तग करन शुरू कर दिया। उसके पास जो सम्पत्ति थी उसका कुछ भाग लूट भी लिया और दो हजार के लगभग बदी औरतो को छुडाकर उनके परिवारो के पास पहुँचा दिया।

अहमदशाह अब्दाली ने अफगानिस्तान लौटने पर उत्तर पश्चिमी भारत का शासन प्रबन्ध नये ढग से किया। मुलतान के सूबे का गवर्नर सर बुलन्द खा को बनाया गया। लाहौर ख्वाजा औबेद के अधीन और सरहिन्द जैन खाँ के सुपुर्द किया गया। तीनो गवर्नरो को आदेश दिया गया कि वे पजाब मे सिक्खों के विरुद्ध सख्त कारवाई करे। परन्तु वास्तव मे ऐसा करना कितना कठिन था यह इस बात से सिद्ध होता है कि सिक्खो ने खुद अब्दाली को सिंध नदी तक इतना परेशान किया कि सुरक्षा के लिये उस के शिविर के चारो ओर कच्ची फसील बनाना आवश्यक हो गया। ऐसा प्रबन्ध करने पर भी 20-20, 30-30 सिक्ख जत्थे एकदम कही से निकल कर अफगानो पर आक्रमण करते और जो कुछ हाथ लगता ले जाते थे।

अब्दाली के पजाब से चले जाने पर सिक्ख हर स्थान मे उठ खडे हुए और उन्होने सब प्रसिद्ध शहरो के फौजदारो के विरुद्ध कारवाई आरम्भ कर दी। इस समय शुक्रचकिया मिसल के सरदार चडत सिंह ने अफगानो के विरुद्ध कारवाई मे बहुत ख्याति पाई। लाहौर के सूबेदार ख्वाजा औबेद ने चडत सिंह के विरुद्ध कारवाई करने के लिये 10 हजार सेना लेकर उसके हैडक्वार्टर गुजरावाला पर आक्रमण कर दिया। ऐसी स्थिति मे सिक्ख मिसलो के सरदारो ने जिन मे जस्सा सिंह अहलूवालिया, हरि सिंह

भगी और जय सिंह कन्हैया थे, उसकी मदद करके अफगान गवर्नर को पराजित कर दिया और उसको लाहौर लौटना पडा। सन् 1761 मे दीवाली के दिवस पर सिक्खो ने अमृतसर मे इकट्ठे होकर सरवत्त खालसा की मीटिंग की और एक बार फिर सिक्खो ने प्रस्ताव पास किया कि विदेशियो को भगाकर लाहौर पर कब्जा कर लिया जाए। इस काम के लिए जस्सा सिंह अहलूवालिया को फिर नियुक्त किया गया और उसको सुलतान-उल-कौम की उपाधि दी गई। जस्सा सिंह अहलूवालिया ने लाहौर मे प्रवेश करके अपना सिक्का उसी तरह से जारी किया जिस तरह से 51 साल पहले बन्दा बहादुर ने जारी किया था।

साथ ही साथ सिक्खो ने बडे पैमाने पर अफगान अधिकारियो के विरुद्ध और उन लोगो को, जो उनके सहायक माने जाते थे, दड देने के लिए कारवाई आरम्भ कर दी। इस कारवाई के लिए सिक्खो ने जण्डियाला के निरजनी अखाडे के लीडर आकिलखाँ और कागडा के कटोच वश के राजा घमण्डचन्द को चुना क्योकि उन्होने अब्दाली को पजाब आने का निमत्रण दिया था।

अब्दाली का छटा आक्रमण (सन् 1762) और वड्डा (बड़ा) घल्लूघारा (5 फरवरी, 1762)

पजाब मे स्थिति को अधिक खराब होने ने रोकने और विशेष तौर पर सिक्खो का दमन करने के लिए अब्दाली ने छटी बार पजाब पर आक्रमण किया। यह खबर मिलते ही जस्सा सिंह अहलूवालिया लाहौर से चला गया और उसने अपने साथियो को भी सलाह दी कि वह जण्डियाला का घेरा समाप्त करके अपने साथियो और बच्चो को लेकर हरियाणा के मरुथल की ओर चले आएँ। अब्दाली ने लाहौर पहुँचकर उन सिक्खो का पीछा किया जो कि पजाब के दक्षिण की ओर जा रहे थे और जिन मे अधिकतर युद्ध न करने वाले लोग थे। उसकी सूचना प्राप्त होने पर कि सिक्खो का एक समूह कुप्प रहिरा (मलेरकोटला से कोई 6 मील उत्तर की तरफ) पहुँच गया है उसने 150 मील केवल दो दिन मे तय करके उनको अचानक घेर लिया। उस समय वे लोग अपने भारी समान के बगैर थे जो कि कुछ मील पीछे आ रहा था। ऐसी स्थिति मे अब्दाली ने उनको घेर लिया और कई हजार सिक्ख जो कि तकरीबन निहत्थे थे और पुराना गुरिल्ला युद्ध नही कर सकते थे, अब्दाली के विरुद्ध बिल्कुल बेबस थे। उन्होने स्त्रियो और बच्चो को बीच में रखकर और चारो ओर पुरुषो की पक्तियाँ बनाकर दुर्ग के रूप मे आगे की तरफ बढ़ना आरम्भ किया। परन्तु अब्दाली और उसके साथी सिपाहियों ने उनका बुरी तरह से सफाया कर दिया। अनुमान लगाया जाता है कि उस स्थान पर 20-30 हजार सिक्ख मारे गये। साथ मे आदि ग्रन्थ की वह पोथी भी नष्ट हो गई जो कि दसवे गुरु गोबिन्द सिंह ने तलवडी साबो के स्थान पर सन् 1707 मे प्राप्त की थी। इस नरसहार को वड्डा घल्लूघारा के नाम से पुकारा जाता है और यह घटना 5 फरवरी, 1762 के दिन हुई थी। (इस महत्त्वपूर्ण स्थान पर आजकल एक छोटा सा गुरुद्वारा है और उस उँचे टीले पर जिसके चारों ओर पानी जमा रहता था

एक मुसलमान की कब्र है जहाँ कुछ लोग यात्रा के लिये मलेरकोटला से आते है) ।

अहमदशाह अब्दाली अपनी इस महान विजय के पश्चात् बरनाला, जो कि आला सिंह का उस समय हैडक्वाटर था, की ओर बढा । आला सिंह ने बगैर किसी विद्रोह के उसका अधिकार मान लिया और पाँच लाख रुपया उसको भेट किया । इस के अलावा कहा जाता है कि एक लाख 25 हजार रुपया उसने अपने केशो को शहीद होने से बचाने के लिये भी दिया । आला सिंह के अहमदशाह अब्दाली को स्वामी मान लेने पर उसको जागीर लौटा दी गई और उसकी पदवी रहने दी गई । इस तरह अहमदशाह अब्दाली ने अपनी उस नई नीति का प्रमाण दिया जिस के अनुसार "अगर किसी देश के खरगोश को पकडना हो तो उसे पकडने के लिए उसी देश के कुत्ते को प्रयुक्त करना ज्यादा उचित होगा ।"

अपनी सिक्खो के विरुद्ध सफल कारवाई के पश्चात् अहमदशाह अब्दाली सरहिन्द के रास्ते लाहौर लौट आया । वापसी पर भी उसने बहुत से सिक्ख मारे । कहा जाता है कि सरहिन्द से लाहौर जाते हुए उसके साथ 50 छकडे सिक्खो के सिरो से भरे हुए थे । बहुत से सिक्खो को वह बन्दी बनाकर भी ले गया । फॉरैस्टर के शब्दो मे, "अहमदशाह अब्दाली ने उन मस्जिदो की दीवारे जिन को सिक्खो ने भ्रष्ट कर दिया था सिक्खों के रक्त से धुलवाई और यह इसलिए किया गया कि इस्लाम को फिर से पवित्र बनाया जा सके' । इसके साथ ही अब्दाली ने अमृतसर पर चढाई करके हरमन्दिर साहिब को नष्ट कर दिया और पवित्र सरोवर को गन्दगी से भरवा दिया ।

प्रश्न

1 Give an account of the battle known as the great 'Ghallughara' How did the Khalsa react to such a disastrous defeat
"वड्डा घल्लूघारा" नामक युद्ध का वृत्तान्त लिखिए । ऐसी भयानक एव विनाशकारी पराजय के प्रति सिक्खो की क्या प्रतिक्रिया हुई ?

2. Analyse briefly the Circumstances leading to the great Ghallughara of 1762 and show how the Sikhs retrieved their prestige in the battle of Amritsar (October 1762).
उन परिस्थितियो का सक्षिप्त उल्लेख कीजिए जो 1762 के 'वड्डे घल्लू-घारे" का कारण बनी और यह भी बताइये कि अक्तूबर 1762 मे अमृत-सर के युद्ध मे सिक्खो ने किस प्रकार अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुन स्थापित की ?

3. Describe battle of Panipat. What was its importance ?
पानीपत के युद्ध का वर्णन करो । इस का क्या महत्त्व था ?

4. Describe Adina Beg's career. What role did he play in Panjab History?
अदीना बेग का जीवन चरित्र लिखिए । उसने पजाब के इतिहास मे क्या रोल अदा किया ?

15

अहमदशाह अब्दाली का उत्तर पश्चिमी भारत पर अधिकार और राजप्रबन्ध की व्यवस्था

अब्दाली का पंजाब को शांत रखने का प्रबन्ध

मार्च से लेकर दिसम्बर 1762 तक अब्दाली लाहौर मे रहा। (गर्मियो का कुछ समय उसने बटाला के निकट कलानौर के ठण्डे स्थान पर गुजारा) इतने समय तक उस के पजाब मे बने रहने का उद्देश्य यह था कि यहा पर ऐसा प्रबन्ध किया जाए जिस से उसका शासन स्थायी बन सके। उसने मुगल सम्राट शाहआलम को दिल्ली का सम्राट पक्का कर दिया। जम्मू के राजपूत राजा की सहायता से कश्मीर पर दोबारा अधिकार कर लिया क्योकि वहा का उसका ही पुराना गवर्नर स्वतत्र बन बैठा था। उसने सआदतखा को जालन्धर दुवाब का हाकिम बना दिया। भिक्खन खा को मलेरकोटला मे रहने दिया और सरहिन्द जैनखा को दे दिया। काबुलीमल को उस समय लाहौर का गवर्नर नियुक्त किया गया। अब्दाली ने सिक्खो के साथ नर्मी न बरतने का निर्णय किया और उत्तर मे सिक्खो ने भी उसको चैन से नही बैठने दिया।

अमृतसर का युद्ध (अक्तूबर 1762)

घल्लूघारा की दुर्घटना होने पर भी सिक्खो का साहस कम नही हुआ। उन्होने अमृतसर मे इकट्ठे होकर अब्दाली के विरुद्ध सघर्ष करने का फैसला किया। कहते है कि दीवाली के शुभ अवसर पर साठ हजार के लगभग सिक्ख इकट्ठे हुए और उन्होने अब्दाली के विरुद्ध लडने की शपथ ली। अब्दाली स्वय अमृतसर पर आक्रमण करने आया जिस के परिणामस्वरूप भयकर युद्ध हुआ। सयोग से युद्ध वाले दिन सूर्य ग्रहण था। दिन के अन्धेरे मे वह गम्भीर युद्ध अब्दाली की संध्या का प्रतीक बन गया। युद्ध का कोई निर्णय नही हो सका। शाम पडने पर अब्दाली भागकर लाहौर चला गया और सिक्ख लक्खी नामी घने जगल की ओर चले गये। इस तरह अमृतसर के युद्ध मे सिद्ध हो गया कि मराठो का विजेता अब्दाली सिक्खो के विरुद्ध बिल्कुल असफल होकर रह गया है।

अफगानिस्तान को वापसी

अफगानिस्तान से गडबड़ की खबरे मिलने पर अब्दाली पंजाब से वापिस चला गया। उसकी गैर हाजरी मे नया प्रबन्ध निष्फल हो गया। सिक्खों ने उसके नियुक्त किये हुए अधिकारियो को तंग करना शुरू कर दिया। सिक्खों का बुढ्ढा दल जस्सासिंह

अहलूवालिया के नेतृत्व मे जालन्धर द्वाब और मालवा मे फैल गया। हरिसिंह भगी और चडत सिंह शुकचक्किया की अगवाई मे तरुण दल बारी द्वाब और रचना द्वाब के इलाके पर छा गया। उनकी शक्ति फिर इतनी बढ गई कि उन्होने पटियाला वाले आला सिंह के साथ मिलकर जनवरी 1764 मे सरहिन्द पर आक्रमण किया। जैन खा को मार दिया और वहा पर गुरु गोबिन्द सिंह के साहिबजादो की याद मे स्मारक बनाया जो फतेहगढ के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ सप्ताह बाद सिक्खो ने लाहौर पर आक्रमण किया और काबुली मल को अपनी शर्तें मानने पर मजबूर किया। इस तरह अहमदशाह अब्दाली द्वारा नियुक्त शासक अपने शिविरो तक ही सीमित होकर रह गये। जमुना से लेकर सिन्ध तक और जम्मू से मुलतान तक सब इलाका सिक्खो के अधीन हो गया। सिक्ख अपनी विशाल सफलता की खुशी मे अमृतसर जाकर दीवाली मनाना चाहते थे कि सूचना मिली कि अब्दाली फिर पजाब आ रहा है।

अब्दाली का सातवां आक्रमण (सन् 1764)

अहमदशाह 18 हजार अफगानो को लेकर पजाब मे आया। सिन्ध नदी के पार आकर बलोच सरदार नासिर खा के अधीन 12 हजार सैनिक और उसके साथ मिल गये। इस बार दोनो ने मिलकर "जहाद" अर्थात् धर्म युद्ध के रूप मे सिक्खो के विरुद्ध सघर्ष छेडा। लाहौर के गवर्नर काबुली मल ने उनका स्वागत किया। विदेशी आक्रमणकारियो के पजाब मे पहुँचने पर सिक्ख जगलो और पहाडो मे चले गये और कुछ उनको तग करने की ताक मे लगे रहे। इस आक्रमण के समय अहमदशाह के साथ एक विद्वान काजी नूर मुहम्मद भी आया था। उन्होने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "जगनामा" मे इस युद्ध का आँखो देखा वर्णन किया है। काजी नूर मुहम्मद ने सिक्खो के बारे मे बडे अपशब्दो का प्रयोग किया है। लेकिन उसने यह भी माना है कि सिक्ख शूरवीर थे। काजी नूर मुहम्मद ने लिखा है, "सिक्ख चोरो की तरह छुप-छुप कर हमला करते थे और भेडियो की तरह लडते थे।"

अब्दाली ने एक बार फिर सिक्खो के धर्म स्थान अमृतसर पर आक्रमण करने का निर्णय किया। परन्तु उसकी शक्ति कितनी शिथिल हो गई थी अथवा सिक्खो मे उसका विरोध करने का साहस कितना बढ गया था उसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि लाहौर और अमृतसर के बीच केवल 35 मील का फासला तय करने मे उसे चार दिन लगे। यह वही अब्दाली था जिस ने दो साल पहले घल्लूघारा की घटना के समय 150 मील का सफर दो दिन मे पूरा कर लिया था। उसके अमृतसर पहुँचने पर मुट्ठी भर सिक्खो ने जिस की सख्या केवल 30 थी और जिन का नेता खेमकरण वाला गुरबख्शसिंह था बहुत डटकर मुकाबला किया। सब के सब लडते हुए शहीद हो गये। हरमन्दिर साहिब को बारूद से उडा दिया गया और सरोवर को मरी हुई गऊओ से भर दिया गया। अब्दाली को अमृतसर से किसी किस्म की और सम्पत्ति प्राप्त नही हुई। अब्दाली ने सिक्खो को घेर कर मारने का यत्न किया। उसने सिक्खो के विरुद्ध जालन्धर द्वाब, मालवा और प्रसिद्ध शहरो के पास के इलाकों मे छोटे-छोटे दल भेजे। उसने स्वयं बटाला को लूटा और बड़े आराम से

शिकार खेलता हुआ जालन्धर की ओर जा रहा था जब कि उसको मौसम की तबदीली का अनुभव हुआ। इस का अर्थ यह था कि गर्मी आ रही है। यह इस बात की चेतावनी थी कि उसे अफगानिस्तान लौटने के लिए तैयार होना चाहिए। फिर भी उसने सन् 1765 मे स्वदेश लौटते समय नासिरखा के सुझाव अनुसार पजाब का प्रबन्ध स्थानीय नेताओ के सुपुर्द करना उचित समझा। वह आला सिह के इलाके मे जाकर उसको और जागीर और "तबलो-अलम" अथवा झण्डा और नगारा देकर लौट आया। आला सिंह ने उसको साढे तीन लाख रुपए देने का वचन दिया। आला सिंह के इलावा अब्दाली ने अपने भारतीय समर्थक पहाडी राजपूत, रोहेले और जाटो पर निर्भर करने की नीति अपनाई।

अफगानिस्तान की तरफ जाते हुए सिक्खो ने उसको "गुरिल्ला युद्ध" के तरीके से तग करना शुरू कर दिया। अब्दाली ने तग आकर कहा था "वाह! मेरे ही अपने राज्य मे मेरी पालकी भी सिक्खो के भय से कापती है"। इस कार्य मे सब प्रसिद्ध मिसलो ने जिन मे अहलूवालिया, भगी, शुक्रचक्किया, रामगढिया और कन्हैया मिसलो के लोग थे, भाग लिया। अब्दाली को स्वय यह समझ नही आ रहा था कि वह ऐसे शत्रु के साथ किस तरह से निपटे जो कि न तो सामने आता है और न ही खुलकर युद्ध करता है। काजी नूर मुहम्मद जिन्होने इस आक्रमण का वर्णन हमारे लिए छोडा है, यह मानने पर मजबूर हो गये कि "सिक्ख शेर की तरह लडते है और उनकी सहनशीलता अद्वितीय है।"

अब्दाली ने फिर पजाब छोडते समय अपने समर्थको को खूब अच्छी तरह आदेश दिये जो वे बड़ी खामोशी से सुनते रहे परन्तु वे मन ही मन जानते थे कि उन पर अमल करना असम्भव है। पजाब के असली स्वामी अब सिक्ख थे।

अब्दाली के पजाब से सातवी बार चले जाने पर सन् 1765 की बैसाखी के दिन सिक्खों ने अमृतसर मे "सरवत्त खालसा" समागम के समय सारी स्थिति का अध्ययन किया। हरिमन्दिर को फिर से साफ किया गया। इमारत दोबारा बनाई गई और 12 मे से 6 मिसलों को इस धर्म स्थान की सुरक्षा का काम सौंपा गया। फलस्वरूप धार्मिक सम्मेलन अधिक होने लगे। गुरु का लगर पहले से भी विशाल रूप मे प्रचलित किया गया और सरवत्त खालसा ने सुझाव दिया कि सिक्खो को लाहौर पर कब्जा कर लेना चाहिए। क्योकि उस समय कौडा मल जम्मू की ओर डोगरा राजपूतो को अपनी फौज में भरती करने के लिए गया हुआ था।

इस आदेशानुसार तीन प्रसिद्ध सिक्ख सरदारों ने जिन का नाम शोभा सिंह, लैहणा सिंह और गुज्जर सिंह थे लाहौर पर कब्जा कर लिया। उन्होने इस शहर को लूटा नही बल्कि वहा के रहने वालों को सुरक्षा का यकीन दिलाया। इन सरदारों मे गुज्जर सिंह विशेष तौर पर बहुत अच्छा शासक सिद्ध हुआ। उसके बारे मे कहा जाता है कि उसने लाहौर की मुसलमान जनता को अपने अच्छे स्लूक से पराजित किया। वह उनके त्योहारो में शामिल होता और उनके पवित्र स्थानो पर भी जाता था।
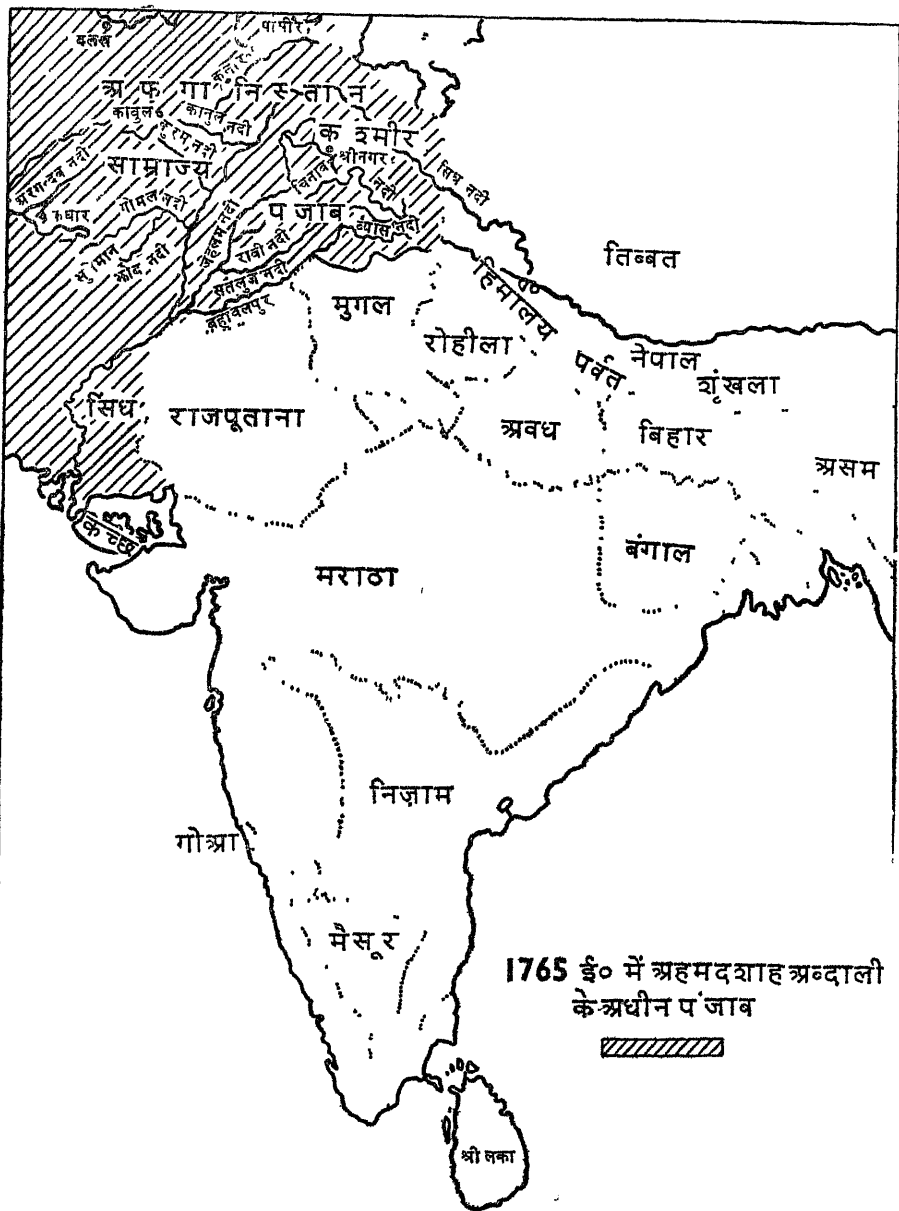
1765 ई० में अहमदशाह अब्दाली के अधीन पंजाब

उसने मुसलमान जनता को यह अनुभव कराया कि वे भी अन्य पजाबियो की तरह अपने शासक के वफादार रहते हुए सब नागरिक अधिकार प्राप्त कर सकते है।

सिक्खों ने अब्दाली की शक्ति को कम होते देख कर और इलाका अपने अधीन लेना आरम्भ कर दिया। उनके हौसले इतने बढ गए कि वह जमुना के पार उत्तर प्रदेश मे जाकर भी लूटमार करने लगे। रोहेलो के साथ उनकी टक्कर हुई और भरतपुर के जाटो के साथ मिलकर उन्होने राजस्थान की ओर भी आक्रमण किया। जब वे उस तरफ से बहुत सा माल असबाब लेकर आ रहे थे कि दिल्ली के मुख्य मत्री नजीबुद्दौला ने उनको रोका और उनको अपनी लूटमार का कुछ हिस्सा हाथ से खोना पडा। इसी तरह भगियो ने दक्षिण पश्चिम की ओर बढना शुरू कर दिया। उन्होने पाकपटन को अपने अधीन कर लिया और मुलतान तक चले गये। इसी समय यह सूचना मिली कि अब्दाली एक बार फिर पजाब की ओर आ रहा है। तब सिक्ख मिसलो ने यह काम बन्द करके एक जगह इकट्ठे होकर उसका मुकाबला करने का प्रबन्ध किया।

अब्दाली का आठवां और अन्तिम आक्रमण (सन् 1766)

अब्दाली के पंजाब मे पहुँचने पर तीनो सिक्ख सरदार जिन्होने लाहौर पर कब्जा कर रखा था वहा से चले गये। इसी घटना को उस समय के लोगो के अनुभव के अनुसार एक कवि ने इस तरह वर्णित किया है—

"सोभे दी सोभा गई, गुज्जर दा गया माल,
लैहणे नू देना पिया, तीनो होए कगाल।"

अर्थात् लोगो ने उनकी इस नीति को अच्छा नही समझा कि वह अब्दाली के आने पर उनको उसके रहमोकरम पर छोडकर वहा से चले जाये।

अब्दाली को लाहौर पहुंचकर यह भी पता लगा कि इन तीनो सरदारों मे लैहणा सिंह बहुत लोकप्रिय था और उनका व्यवहार मुसलमानो के प्रति भी बहुत अच्छा था। अब्दाली ने लैहणा सिंह को अपना मित्र बनाने की चेष्टा की और उसको अफ-गानिस्तान के प्रसिद्ध खुश्क मेवे उपहार के रूप मे भेजे। परन्तु लैहणा सिंह ने ये सब वस्तुए उसके दूत को वापिस ले जाने के लिए कहा और अपनी तरफ से कुछ भुने हुए सत्तुओ का गुड मे मिला हुआ आटा उपहार मे भेज दिया। साथ ही यह सदेश भेजा कि काबुल के मेवे अमीर लोगो के खाने योग्य है और उस जैसे गरीब किसान लोग पजाब मे सत्तुओ का आटा गुड मे मिलाकर खाकर खुश रहते है। अब्दाली को इस बात से निराशा हुई। अब्दाली ने सरहिन्द की ओर बढने का यत्न किया। मगर वह थोडी दूर ही गया था कि उसको लौटना पडा क्योंकि लाहौर शहर को सिक्खों से खतरा उत्पन्न हो गया था। अब्दाली ने अपने जरनैल जहानखां को अमृतसर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। परन्तु इस समय सिक्ख इतने शक्तिशाली हो गये थे और इतनी सख्या मे इलट्ठे हो गये थे कि उन्होने उसको बुरी तरह पछाड़ दिया।

[illegible]

अब्दाली ने अमृतसर पर कब्जा कर लिया परन्तु इस बार शहर को किसी किस्म की हानि नही पहुचाई। अब वह जालन्धर द्वाब, जो कि सबसे उपजाऊ भाग था, की ओर बढा। उसने इस समय अनुभव किया कि इस इलाके मे सारी जनता अफगानो के विरुद्ध है और अन्दर ही अन्दर से सिक्खो के पक्ष मे है। अब्दाली आगे बढ कर मालवा मे चला गया जहा उसने आला सिंह के पौत्र महाराजा अमर सिह से भेट की। उसने उसको अपना सहायक बनाने के लिए "राजा-ए-राजगान" की उपाधि दी और उसके पश्चात् अपने विशेष प्रतिनिधि नजीबुद्दौला से भी मुलाकात करके राजनीतिक स्थिति पर विचार किया। अब्दाली को भी यह बात स्पष्ट हो गई कि थी सिक्खो के विरुद्ध उसकी सारी कोशिशे निष्फल रही है और उसके सारे प्रयत्न विफल हो गए है। बिल्कुल निराश होने पर और गर्मी का मौसम आरभ होने पर वह अफगानिस्तान लौट गया। अभी उसने सिन्ध नदी को पार भी नही किया था कि वह तीनो सिक्ख सरदार जो लाहौर छोड गए थे वहा पर वापिस आ गए। लाहौर की हिन्दू और मुसलमान जनता ने उनका बडा स्वागत किया।

सन् 1767 तक सिक्खो ने लगभग सारे पजाब पर अपना अधिकार जमा लिया था। जो इलाके उनके सीधे शासन प्रबन्ध मे नही थे, उनको वे एक विशेष किस्म का कर जिसको 'राखी' बोलते है प्राप्त करके अपना सरक्षण देने लगे। उन इलाको को सिक्खो की "पट्टिया' अथवा सरक्षणाधीन इलाका कहा जाता था। उन्होने अपना कार्यक्षेत्र बढाकर फिर से उत्तरप्रदेश मे आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। नजीबुद्दौला उसको रोकने मे असफल रहा। उसको यह स्वीकार करना पडा कि "सिक्ख एक टिट्डी दल की भाति बढते थे और उनका विरोध करना असम्भव था।" परिणामस्वरूप फसल काटने के समय सिक्खो के सरदार इलाको मे जाकर उन लोगो से अपना हिस्सा, जिस को "ब्लैक मेल" कहा जा सकता है, प्राप्त करते थे। इसलिए इसको "कम्बली" या कम्बल का धन भी कहा जाता था। साधारणतया दो या तीन घुडसवार इस कार्य के लिए इलाके मे जाते थे। उनका लोगो मे इतना आतक था कि वह चुपचाप उनको फसल का हिस्सा दे देते थे। उनको अच्छी तरह पता था कि अगर ऐसा नही किया गया तो फौरन ही कई हजारो की सख्या मे सिक्ख वहाँ पहुँच जाएगे और उनकी सब सम्पत्ति नष्ट हो जाएगी।

सन् 1769 मे अन्तिम बार अब्दाली ने पंजाब मे आने का उपक्रम किया। मगर यह आक्रमण नाममात्र का ही समझना चाहिए। वह नासूर के रोग से बिल्कुल शिथिल हो चुका था और जेहलम दरिया से आगे नही जा सका था। कुछ समय पश्चात् 23 अक्तूबर, 1772 को इस महान विजेता का देहान्त हो गया। उसके स्मारक पर यह अकित है "उसने इतनी विजयें प्राप्त की कि उनकी घोषणा से उसके शत्रुओं के कान बहरे हो गए।" मानना पडेगा कि सिक्ख उसके सब से बडे शत्रु थे और इस नाते उनको भी अब्दाली की विजयो की घोषणा सुनाई दी थी। परन्तु यह भी सत्य है कि उन्होंने उसकी शक्ति की परवाह न करते हुए इस घोषणा को बहरे कानों से

अनसुना कर दिया। अर्थात् सिक्खो के ऊपर उसका प्रभाव शून्य के बराबर था और अन्त मे उसको पीछा छुडा कर भागना पडा।

इस विशाल और लम्बे सघर्ष का परिणाम स्पष्ट था कि सिक्खो ने अपनी लगातार कोशिशो से अब्दाली की मुट्ठी से उस प्रान्त को प्राप्त कर लिया जिस को महान मुगल साम्राज्य अब्दाली से सुरक्षित नही रख सका था हालाकि उनकी शक्ति बहुत सीमित थी और शायद बहुत लोगो ने उनका नाम भी नही सुना था।

अब्दाली के आक्रमणों का पंजाब के जनजीवन पर प्रभाव

अहमदशाह अब्दाली के लगातार आक्रमणो का पजाब वासियो के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पडा।

(क) विशेष तौर पर सिक्खो के लिए उसके आक्रमण लाभकारी सिद्ध हुए। उनके धार्मिक सघर्ष ने राजनीतिक रूप धारण कर लिया और बेशुमार कठिनाइयाँ और कुर्बानियाँ सहने के पश्चात् उन्होने राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर ली। इस काम मे अब्दाली के आक्रमण उनके लिए विशेष तौर पर लाभदायक सिद्ध हुए। अब्दाली ने मुगलो और मराठो की शक्ति को समाप्त करके सिक्खो के लिए रास्ता साफ किया। अन्त मे उसकी पराजय होने पर सिक्खो को राजनीतिक सत्ता आसानी से प्राप्त हो गई।

(ख) अब्दाली के बार-बार आक्रमणो से पजाब की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक हालत अस्तव्यस्त हो गई। साधारण लोगो को जीवन बिताना बडा कठिन हो गया क्योकि उनको यह भय लगा रहता था कि न मालूम किस समय फिर पजाब पर आक्रमण हो जाए और परिणामस्वरूप उनको कष्ट उठाने पड जाएँ। साधारण जीवन इस कदर अस्थिर हो गया था कि आम लोगो मे यह विश्वास हो गया कि धन-सम्पित्त इकट्ठा करना बिल्कुल निरर्थक है क्योंकि वह सब कुछ आक्रमणकारी लूट कर ले जाएँगे। इसी कारण पंजाबियो का स्वभाव हो गया कि जो कुछ अपने पास है वह खर्च करना ही अच्छा होगा। क्योंकि जमा रखने से वह सब कुछ दूसरो के पास चला जाएगा। इसी समय से पंजाबियो के जीवन के बारे मे यह मशहूर हो गया कि "खादा पीता लाहे दा, बाकी अहमद शाहे दा" अर्थात् जो कुछ हम खा पी कर समाप्त कर देंगे वही अपना धन समझना चाहिये क्योकि जो कुछ बाकी रहेगा वह अहमदशाह लूट कर ले जाएगा। यह स्वभाव पजाबियो की एक विशेषता बन गई। इसी कारण वह आमतौर पर बडे शाह खर्च और आनन्दी जीव समझे जाते है।

(ग) पजाब मे अब्दाली ने धार्मिक मतभेद को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए बरतने का प्रयत्न किया। अत उसने मुसलमानो और गैर मुसलमानों मे घृणा फैलाने की कोशिश की और कई बार तो अपने आक्रमणो को गैर मुसलमानो के विरुद्ध 'जहाद' का नाम भी दिया। इससे जनता मे काफी कटुता और असहनशीलता उत्पन्न हो गई। फलस्वरूप कई बार एक धर्मवाले लोगों ने अन्य धर्म वालो का दमन करने की चेष्टा की।

(घ) अब्दाली से 20 साल के निरतर सघर्ष से सिक्खो को यह स्पष्ट हो गया कि उनके धर्म की रक्षा शस्त्रो से ही हो सकती है। इसलिए उनका जीवन एक फौजी जीवन बन गया जिस के लिए शस्त्र धारण करना और युद्ध के लिए तैयार रहना आवश्यक हो गया। सिक्खो को इस कारण आत्म-विश्वास और अपने धर्म के लिए कुर्बानियाँ करने की बहुत प्रेरणा मिली ।

उपर्युक्त बातो से सिद्ध हो गया कि पजाबियो के जनजीवन पर अब्दाली का बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा है।

अब्दाली की असफलता के कारण

1 **सिक्खों की गुरिल्ला युद्ध नीति** अहमदशाह को बहुत शक्तिशाली और कुशल सेनापति समझते हुए सिक्खो ने उसके विरुद्ध सघर्ष मे "गुरिल्ला" युद्ध नीति अपनाई। इस नीति से जिस का उद्देश्य अपनी शक्ति को नष्ट होने से बचाना और दुश्मन को अधिक से अधिक हानि पहुँचाना था। इससे सिक्खो को अहमदशाह अब्दाली को पजाब से निकालने मे विशेष सहायता मिली । उन्होने छोटे-छोटे दल बनाकर चारो ओर से दुश्मन पर गुप्त हमला करके उसको हानि पहुँचाई और अपनी शक्ति उसके साधनो से बढाई। बार-बार आक्रमण करने के बावजूद अब्दाली को न तो सिक्खो के विरुद्ध एक स्थान पर लडने का मौका मिला और न ही वह उनका पूर्ण रूप से दमन कर सका। उसको यह स्वीकार करना पडा कि सिक्ख ऐसी युद्ध नीति अपना रहे थे जिस के विरुद्ध उसकी शक्ति निष्फल थी।

2. **जनसाधरण को सिक्खो के प्रति सहानुभूति और सहायता** सिक्ख थोडी सख्या मे होते हुए भी अब्दाली के विरुद्ध अपना सघर्ष इसलिए जारी रख सके कि उनको पजाब से गैर-मुसलमानों की परोक्ष रूप से सहायता प्राप्त होती थी। यह सत्य है कि साधारण गैर मुस्लिम जनता मे इतना साहस नही था कि वह खुले तौर पर अब्दाली के विरुद्ध हो सकती। परन्तु वह लोग दिल से यह मानते थे कि सिक्ख एक तरह से उन्ही के लिए लड रहे हैं और इसलिए उनकी राष्ट्र भक्ति की सराहना करते थे। सिक्खों ने अपना संघर्ष मुख्यत विदेशी आक्रमणकारी या उनके सहायको के विरुद्ध किया था। उन्होने सारी जनता को अपने साथ मिला रखा था। इसका प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि सिक्खों के गुप्त स्थानो के आसपास के गाँवो के लोग उनको यथासम्भव सहायता देते रहे और उनके सघर्ष को अच्छी नजर से देखते रहे। लोगो को उस समय मे यह विश्वास था "आये ने निहग, बुहा खोल दो निशंग" अर्थात् लोगों मे सिक्खों के प्रति ऐसी भावना थी कि वह रात्रि के समय घरो के दरवाजे खुले रखते थे ताकि अगर कोई निहग या लडाका सिक्ख घर मे दाखिल हो जाए तो वह जो कुछ खाने-पीने को वहाँ पडा हो प्राप्त कर सके। वास्तव मे यह एक अचम्बे की बात है। सिक्खों ने किसी किस्म के प्रत्यक्ष साधनों के अभाव मे बडे समय तक गुप्त जीवन व्यतीत किया और संघर्ष को इतने सालो तक चलाए रखा। यह तभी सम्भव हो सका जब कि उनको जनसाधारण की सहायता या सहानुभूति प्राप्त थी।

3 **अब्दाली का ध्यान दो ओर बँटा रहना :** अफगानिस्तान राजनीतिक रूप से एक ज्वालामुखी था। वहाँ सदैव गडबड का खतरा रहता था। इसलिये अहमदशाह पजाब मे आकर भी अफगानिस्तान की राजनीतिक स्थिति से सदैव चितत रहता था। ऐसी हालत मे वह एक तरह से दो घोडो का सवार था। इसलिए वह पूरी शक्ति और सामर्थ्य से न तो पजाब की तरफ और न अफगानिस्तान की तरफ ही ध्यान दे सका।

4 **अयोग्य अधिकारी** अहमदशाह अब्दाली की बडी कठिनाई यह भी थी कि जिन अधिकारियो को उसने पजाब का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किया था वे सब अयोग्य सिद्ध हुए। तैमूर शाह, जहान खा या दूसरे प्रसिद्ध अधिकारी इस स्थिति को काबू मे न ला सके परिणामस्वरूप उसके पजाब से चले जाने पर वहाँ सिक्खो की शक्ति फिर बढ जाती थी। इन अधिकारियो को एक दूसरे पर शक करने और एक दूसरे से सहयोग न करने को अहमदशाह अब्दाली की असफलता का एक बडा कारण मानना चाहिए। जहान खा ने अदीनाबेग को नाराज कर लिया था और सर-हिन्द का सूबेदार जैनखा बडा स्वार्थी और बेईमान था। ऐसी स्थिति मे जो मुख्य अधिकारी थे उनमे भी आपस मे मतभेद था।

5. अहमदशाह अब्दाली पजाब के शासक बन जाने पर भी यहाँ पर कोई ऐसा अपना राजनीतिक ग्रुप नही बना सका जो सदैव उसका साथ दे। उसका मुख्य काम यहाँ बार-बार हमले करना और आतक फैलाना ही था। उसका यह अनुमान गलत था कि वह लोगो को भयभीत करके या दण्ड देकर अपने अधीन कर सकेगा। वास्तव मे उसकी अपनी ही दमन नीति ने यहाँ के रहने वाले मुसलमानो को भी उससे अलग कर दिया। वे समझने लगे कि अब्दाली की तरफ मिलने से उनको कोई लाभ नही होगा क्योकि उसके यहाँ से चले जाने पर उनको दूसरे पजाबियो के साथ बरतना पडेगा।

6. **दीर्घ काल के लिए पंजाब मे न ठहरना** अब्दाली के आक्रमण आमतौर पर पजाब मे कुछ महीनो के लिए ही होते थे। यह इसलिए भी जरूरी था कि गर्मियो की ऋतु मे सर्द मुल्क के रहने वाले अफगानो के लिए पजाब मे ठहरना बहुत कठिन था। इस तरह अब्दाली को पजाब का अच्छी तरह प्रबन्ध करने का न तो पूरा समय मिलता था और न ही उसके साधन इतने विशाल थे कि वह लम्बे समय की योजना बना कर सिक्खो को अपनी जगह से निकाल कर पकड़ सकता।

7. **"फूट डालो और राज्य करो की नीति .** यह नीति जो कि सारधणतया विदेशी आक्रमणकारी किसी देश को अपने अधीन रखने के लिये बरतते है अब्दाली ने बहुत देर से आरम्भ की। उसने अपनी शक्ति का गलत अन्दाजा लगाते हुए यह समझा कि शायद इस तरह फूट डालने की उसको आवश्यकता ही न पड़े। अपनी असफलता के कारण उसने सिक्खों में फूट डालने, माझा और मालवा मे मतभेद पैदा करने, और कुछ देर स्थानीय लोगो को अपने साथ मिलाने की नीति उस समय आरम्भ की जब कि लोगो के विचार उसके विरुद्ध पक्के हो चुके थे। आला सिंह या उसके अधिकारियो ने

केवल दिखावे के लिए ही उसका साथ दिया और उससे अपना उल्लू ही सीधा किया। इसी तरह राजपूत पहाडी राजाओ ने भी ऊपर-ऊपर से अब्दाली का साथ दिया और केवल लाभ प्राप्त करके उसको खुश किया। उनकी अपनी शक्ति भी कुछ अधिक नही थी। जनमत जो कि अब्दाली के विरुद्ध बल पकड गया था का मुकाबला करने के लिए वह असमर्थ थे।

अब्दाली के विरुद्ध सिक्खों की सफलता के कारण

इतनी थोडी सख्या मे होने एव इतने सीमित साधन होते हुए भी सिक्खो का अब्दाली को पराजित करना एक आश्चर्यजनक बात थी। इसके कुछ विशेष कारण है

1 **सिक्खो का एक दल के रूप में सगठन** गुरु गोबिन्द सिह ने सिक्खो मे नवजीवन सचार कर उनको खालसा रूपी सगठन मे बदल दिया था और अब वह सगठन एक सशस्त्र दल बनकर अब्दाली के विरुद्ध सघर्ष मे जुट गया था। सिक्खो के अपने छोटे-छोटे दल होने के बावजूद भी वह विदेशी आक्रमण के समय एक होकर लडते रहे। उनमे धार्मिक एकता इतनी पक्की थी कि अब्दाली उन मे फूट डालने मे असफल रहा। उनके बारे मे एक इतिहासकार ने ठीक ही कहा है, "अब्दाली के विरुद्ध सिक्खो ने एक सशस्त्र दल के रूप मे जो कि धर्म के आधार पर एकता के सूत्र मे बधा हुआ था, काम किया। परिणामस्वरूप उनमे असीम आत्मबल पैदा हो गया।" इस लम्बे सघर्ष मे उनमे योग्य सिपाहियो के ये दो गुण "अपनी पराजय मे भी आशावादी रहना और सकट के समय धीरज न छोडना" पर्याप्त मात्रा मे पाये जाते थे और वही उनकी सफलता का सबसे बडा कारण था।

2. **'गुरिल्ला ढग की लड़ाई'** सिक्खो ने उस विशेष स्थिति मे जिसमे कि उनको थोडी सख्या मे और बहुत थोडे साधनो के साथ अब्दाली के साथ लडना पडा गुरिल्ला नीति का बहुत सफलता से प्रयोग किया। इस ढग से युद्ध मे एक तो उनके दमन का डर नही रहता था और दूसरे वे शत्रु को अधिक से अधिक हानि पहुँचाने मे सफल हो जाते थे। इस का परिणाम यह हुआ कि अन्त मे अब्दाली ने सिक्खों के विरुद्ध अपनी हार मानकर यहाँ से चला जाना ही उचित समझा। गुरिल्ला नीति के फलस्वरूप सिक्खो ने अदभुत सफलता प्राप्त की।

3. **सगठन :** गुरिल्ला युद्ध के साथ-साथ दल खालसा का सगठन भी सिक्खो की सफलता का बडा कारण था। इस नीति से सिक्खो ने अब्दाली के विरुद्ध अपने मतभेद भुलाकर एक लीडर के अधीन एक नीति पर चलकर एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए काम किया। यह सगठन न केवल अब्दाली के विरुद्ध उनकी सफलता का कारण बना बल्कि इसी सगठन की बदौलत सिक्खो को पंजाब मे राजनीतिक सत्ता भी प्राप्त हुई।

4. **सिक्खों के संघर्ष का उच्च आध्यात्मिक आधार** अफगानों के विरुद्ध इस दीर्घ सघर्ष मे अपने धर्म की रक्षा की प्रबल इच्छा सिक्खो की सबसे बड़ी प्रेरणा थी।

यह समझना अनुचित है कि सिक्ख केवल लूट मार के लिए युद्ध करते थे । इतना लम्बा और कठोर सघर्ष केवल लूट मार के लिए कभी नही किया जा सकता । वास्तव मे यह उनकी धर्म युद्ध की भावना ही थी जिसने उनको सब कठिनाइयाँ झेलने की शक्ति दी और वे अत मे सफल हुए ।

5. **सिक्खो के योग्य नेता** सिक्खो का यह सौभाग्य था कि विशेष रूप से इस सकट के समय मे उनको बहुत ही योग्य और उच्च आचार-विचार वाले लीडर मिले । उनमे सर्वप्रथम स्थान नवाब कपूर सिंह का है जिस ने सबसे पहले सिक्खो को इस सकट का मुकाबला करने के लिए सगठित किया । उसके बाद उनके ही नियुक्त किये हुए लीडर जस्सा सिंह अहलूवालिया थे जिस ने सिक्खो की बहुत अच्छी अगवाई की । ये लीडर बडे उदार, साहसी और धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे । उनकी प्रेरणा से ही सिक्ख एक होकर यह सघर्ष इतने सालो तक चलाते रहे और अन्त मे सफल हुए ।

6. **अब्दाली के कुछ समर्थको की दोहरी नीति** सिक्खो के सकट के समय अब्दाली के कुछ बडे अधिकारियो ने भी उनकी काफी सहायता की, चाहे यह सहायता परोक्ष ही थी । दीवान कौड़ा मल जो कि लाहौर के गवर्नर के बडे उच्च अधिकारी थे, दिल से सिक्खो के साथ थे और कुछ लोग तो उनको "सहजधारी सिक्ख" भी मानते थे । उन्होंने मीर मन्नू के समय सिक्खो को दमन से बचाया था । इसी तरह जालन्धर द्वाब का फौजदार अदीनाबेग खा गुप्त रूप से सिक्खो के साथ मिला हुआ था । बेशक वह ऊपर से यह दिखावा करता था कि वह सिक्खो के दमन करने मे लगा रहता है परन्तु अदर से उसने सिक्खो के साथ समझौता किया हुआ था और वह अपना स्वार्थ भी सिक्खो की सहायता से सिद्ध करना चाहता था । उसको यह मालूम था कि लाहौर के गवर्नर के साथ मतभेद होने पर वह सिक्खो के साथ मिलकर अपने हितो की रक्षा कर सकता है । ऐसे अधिकारियो की दोहरी नीति से सिक्खो को बहुत हानि नही हुई और वह दमन से बच सके ।

प्रश्न

1 Analyse the cause of Sikh success against Ahmad Shah Abdali.
अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध सिक्खो की सफलता के कारणो का विश्लेषण कीजिए ।

2. In what way did Ahmad Shah Abdali's invasions affect the temperament and way of living of the people of the Panjab ?
अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणो ने पजाब के लोगो के स्वभाव और उनके रहन-सहन के ढग को किस प्रकार प्रभावित किया ?

3. Give an estimate of the part played by the Sikhs in the disappearance of the Durrani menace during the period 1761—1769.
सन् 1761—1769 की अवधि के दौरान दुर्रानी खतरे को हटाने मे सिक्खो द्वारा दिए गए योगदान का मूल्याकन कीजिए ।

4. Examine carefully the effects of the invasions of Ahmad Shah Abdali on the history of the Panjab.
   अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणो के पजाब के इतिहास पर जो प्रभाव पडे, उनका सूक्ष्म विवेचन कीजिए ।
5. Analyse carefully the struggle between the Afghans and the Sikhs during the period 1761—66 and account for the success of the later in it.
   सन् 1761—1766 की अवधि के दौरान अफगानो और सिक्खो के मध्य सघर्ष का सूक्ष्म विवेचन कीजिए । इसमे सिक्खो की सफलता के कारणों का उल्लेख भी कीजिए ।
6. How did the Afghan Mughal conflict during 1747—69 affect fortunes of the Sikhs in the Panjab.
   सन् 1747—69 के दौरान हुए अफगान-मुगल सघर्ष का सिक्खो पर क्या प्रभाव पडा ?
7. Give a brief account of the Sikh struggle against Ahmad Shah Abdali. Why did the Sikhs come out victorious ?
   अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध सिक्खो के सघर्ष का सक्षिप्त वर्णन कीजिए । सिक्ख इस सघर्ष मे क्यो सफल रहे ?
8. Write an account of the relations of the Sikhs with the Marhathas during the 18th century
   18वी शताब्दी के दौरान सिक्खों के मराठो के साथ सबधो का विवरण दीजिए ।

16

सिक्ख मिसलें

उत्पत्ति : बदा बहादुर की शहीदी के पश्चात् सिक्खो का कोई एक लीडर नही रह गया था । ऐसी स्थिति मे अपनी सुरक्षा के लिए सिक्खो के छोटे-छोटे गुट बन गये थे जो गुप्त रूप से छुपकर अपना जीवन बिताने पर मजबूर हो गये थे । सन् 1739 मे नादिर शाह के आक्रमण के समय मुगल शासन की शक्ति कम हो जाने के कारण सिक्खो के छोटे-छोटे दल ज्यादा शक्तिशाली बन गये और उनकी गतिविधियाँ अधिक तेज़ हो गई थी । इस समय जो व्यक्ति इन गुटो मे ज्यादा योग्य अथवा शक्तिशाली थे वह उनके लीडर बन गये । इस ढग से सिक्ख मिसलो की नीव पडो ।

अर्थ मिसल शब्द का अर्थ "एक जैसा" अथवा बराबर है । हो सकता है कि यह शब्द इस लिए प्रयोग मे आया हो कि इस जत्थेबन्दी के सब सदस्य सिक्ख होने के नाते अपने आपको हर तरह से अर्थात् सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक दृष्टि से एक दूसरे के बराबर समझते थे । गुरु गोबिन्द सिंह के खालसा को जन्म देने पर उनका उद्देश्य एक ऐसा सगठन बनाना ही था जिस के सभी सदस्य बिना किसी ऊँच-नीच या भेदभाव के अपने आपको बराबर समझे और हर मामले मे जिन के अधिकार एक जैसे हों ।

चाहे शुद्ध शाब्दिक रूप से यह परिभाषा ठीक नजर आती हो परन्तु मिसल शब्द का वास्तविक उपयोग शायद इस तरह से होता था कि जिस समय सिक्खो के जत्थे पजाब मे मुगलो/अफगानो की सत्ता कमजोर होने पर जुदा-जुदा इलाको को अपने अधीन करते थे वे अकाल तख्त मे अपने-अपने नाम का खाता खोल देते थे । जब कभी सब सरदारो की गुरमत्ता करने के लिए सभा होती थी तो वे अपना-अपना हिसाब भी लिखवा देते थे और एक दूसरे को समझा देते थे कि फला-फला इलाका फला-फला मिसल के अधीन हो गया है । यह व्यवस्था शायद इसलिए भी की गई थी कि सिक्ख जत्थो मे एक दूसरे के विरुद्ध कोई शक पैदा न हो और जो इलाके पहले ही सिक्खो के अधिकार मे आ चुके थे, उन के अलावा दूसरे इलाको को अपने अधीन लाने की तरफ अधिक ध्यान दिया जाए । ऐसा हिसाब रखना इस तरह से उचित था ताकि अलग-अलग सरदारो के नाम अलग-अलग "मिसल" अथवा फाइल खोल दी जाए जिसमे उनके अधीन इलाके दर्ज कर दिए जाएँ । इस तरह की जत्थेबदी के आधार पर ही मिसलो को अलग-अलग नाम दिए गए । यह स्पष्टीकरण ज्यादा वास्तविक मालूम होता है क्योकि आज भी दफ्तरो मे रिकार्ड रखने की प्रथा "मिसल" के रूप मे चली आती है जैसे कि फला मुकदमे की या फला व्यक्ति की मिसल ।

सगठन : जैसा कि साधारणतया होता है कि अधिक गुणवान और योग्य व्यक्ति ही नेता पद को सम्भालते है, सिक्ख जत्थो मे भी जो उनमे सब से योग्य सिद्ध हुए वे नेता बन गये और भिन्न-भिन्न जत्थो के रूप मे अपना कार्य करने लगे । इन जत्थो को अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करना बहुत जरूरी था और इसका मुख्य उद्देश्य था अपनी धार्मिक स्वतत्रता कायम रखना । इस लिए यह फौजी जत्थे जो कि धर्म के आधार पर कायम किये गये थे एक ही समय मे पूरी तरह आरम्भ नही हुए थे । जैसे-जैसे समय बीता और जैसा-जैसा अवसर आया उनकी सख्या मे वैसी-वैसी ही वृद्धि होता रही था । इस सगठन का सदस्य बनने के लिए कोई विशेष योग्यता निर्धारित नही थी हर एक सिक्ख जिस के पास एक घोडा या दूसरे शस्त्र होते थे वह अपने किसी भी जत्थे मे शामिल होकर उसका सदस्य बन जाता था । इसके लिए सरदार को सदस्यो को कोई वेतन आदि नही देना पडता था । सदस्य केवल लूटी हुई सम्पत्ति का भाग लेने के अधिकारी थे जो कि सब मिल कर प्राप्त करते थे । इस सगठन के अधीन आरम्भ मे ही उनके जत्थे बन गये थे । बडी-बडी मिसलो के सगठन से पहले 65 ऐसे अलग जत्थे पजाब मे अपने-अपने नेताओं के अधीन काम कर रहे थे जिनके नाम हमे प्राप्त है । परन्तु इतनी बडी सख्या मे जत्थो का होना सिक्खो के लिए लाभदायक नही था । इनके सरदार नेताओ ने इनको कम करके अब्दाली के आक्रमणो के समय इनकी सख्या केवल 11 निश्चित कर दी । जिसमे 11 मिसले अधिकतर सतलुज के पश्चिम मे थी और मालव के इलाके मे एक ही प्रमुख मिसल थी ।

मिसलो के सगठन मे कई बार ऐसा होता था कि एक योग्य व्यक्ति को जो कि पहले दूसरे बडे सरदार के अधीन काम करता था अपनी योग्यता और सफलता के आधार पर अपनी जुदा मिसल भी बना लेता था और उसके नाम से मिसल प्रसिद्ध हो जाती थी । उदाहरणार्थ, जस्सा सिंह अहलूवालिया और चडत सिंह शुकरचक्किया पहले नवाब कपूर सिंह के अधीन उसकी मिसल के सदस्य थे परन्तु बाद मे उन्होने अपनी योग्यता से अलग-अलग मिसले कायम कर ली थी ।

स्वरूप और विशेषता मिसलों के स्वरूप का इतिहासकारो ने अलग वर्णन किया है । कनिंघम के कथनानुसार मिसले धर्म और भूमि के आधार पर बनाये गये सघ थे । यह तो ठीक ही है कि मिसलो की जत्थेबन्दी सिक्ख धर्म मे विश्वास रखने वालो की थी परन्तु यह कहना उचित प्रतीत नही होता कि वे धार्मिक सगठन थे । कारण यह है कि मिसलें एक धर्म के मानने वालो का सगठन तो जरूर थी परन्तु उनका काम धर्म के आधार पर न तो होता था न ही उसमे धार्मिक नेताओं को उच्च स्थान दिया जाता था । उनको भूमि के आधार पर बनाये गये "फ्यूडल" किस्म के सघ भी नही कहा जा सकता । क्योकि मिसल के सदस्य किसी किस्म की "फ्यूडल' सेवा के लिए बाध्य नही थे । वे तो केवल अपना हिस्सा लेने का अधिकार रखते थे और अपने नेता के अधीन या साथ केवल युद्ध के समय मे ही होते थे । वास्तव मे मिसलों के सदस्य अपनी इच्छा से एक नेता को छोडकर दूसरे नेता के अधीन हो सकते थे । इस लिए इंदुभूषण बैनर्जी का

विचार है कि सिक्ख मिसलो का स्वरूप गणतान्त्रिक सघ था जिस के सदस्य एक ही धर्म को मानने वाले थे और इस कारण ये सगठन बहुत पक्के थे। इब्ट्सन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "कास्टस एण्ड ट्राइबज़ इन दी पजाब" मे इस विचार का समर्थन करता है। उसके विचारानुसार सिक्ख मिसले "धर्म के आधार पर बने हुए गणतन्त्र और ताना-शाही सिद्धान्तो का अद्भुत मिश्रण थे। "इस तरह सिक्ख लोग धर्म के नाम पर इकट्ठे हो कर बराबरी का दर्जा रखते हुए मिसलो मे शामिल होते थे। परन्तु नेता या सरदार को पूर्ण अधिकार प्राप्त थे और उसके विरुद्ध कोई कारवाई नही की जा सकती थी।

विशेषताएँ सिक्ख मिसलो के नाम उनकी किसी खास विशेषता या नेता के नाम पर पड जाते थे। जैस कि भगी मिसल का नाम उसके सदस्यो के "भग" का सेवन करने के कारण पड गया था। निशानवाला मिसल का नाम सिक्खों का झण्डा उनके नेता के सुपुर्द रहने के कारण पड गया था। इसी तरह शहीद मिसल बाबा दीप सिंह के शहीद होने के कारण मशहूर हुई। रामगढिया मिसल का नाम इसके सदस्यो द्वारा "राम रौणी" के किले की सुरक्षा करने के कारण दिया गया था। नकई मिसल का नाम उस इलाके के कारण पड गया था जिस के रहने वाले इसके सदस्य थे। इसी तरह से कन्हैया मिसल का नाम भी इलाके के नाम पर पड गया था। शुक्रचक्किया मिसल दल्लेवालिया मिसल अथवा फैजलपुरिया और पजगढिया मिसलो का नाम अपने-अपने इलाके के नामो पर पडा था। फुलकिया मिसल इस मिसल के पूर्वज फूल के नाम से प्रसिद्ध हुई थी।

मिसलो के बन जाने पर एक तरह से पजाब मे अलग-अलग स्वतन्त्र गणतत्र राज्य बन गये। उनके अन्दर स्वार्थ की भावना उसी रूप मे बढती गई जिस रूप मे कि उनके विरुद्ध बाहरी खतरा कम होता गया। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणो का अन्त हो जाने पर मिसलो का आपसी सहयोग बिल्कुल समाप्त हो गया और उन्होने उन सारी सस्थाओ को, जो उनको साझे शत्रु के विरुद्ध मुकाबला करने के लिए आवश्यक थी, भुला दिया। मिसलो पर किसी किस्म का अकुश न रहने के कारण उनको अपनी शक्ति और राजनीतिक सत्ता बढाने की खुली छुट्टी मिल गई।

दल खालसा दल खालसा सिक्खों के सामूहिक संगठन का नाम था जिस के अधीन सब मिसले मिलकर अपनी शक्ति को अपने साझे शत्रुके विरुद्ध इकट्ठा करती थी। उस समय उनका एक नेता माना जाता था। दल खालस का संगठन उस समय आरम्भ हुआ जब कि सिक्खो को अपने धर्म की रक्षा के लिए मुसलमानों के विरुद्धसंघर्ष करना पडा। उन्होने अनुभव किया कि छोटे-छोटे जत्थो के रूप मे वे सफलतापूर्वक अपनी और धर्म की रक्षा नही कर सकेगे। इसलिए चारो तरफ से दुश्मनो से घिर जाने के कारण उनके दूरदर्शी नेताओं ने ऐसे सुझाव दिए कि वे सकट के समय अपनी सारी शक्ति इकट्ठी करे और एक नेता के अधीन होकर एक नीति के अनुसार एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अच्छे ढंग से काम करे। एक नीति के अधीन यह भी सुझाव दिया गया

कि सिक्खो के 65 जत्थे होने के बजाय उनके केवल 12 सगठन ही बना दिये जाएँ ताकि वे अच्छी तरह से सहयोग कर सके। सौभग्य से इस समय सिक्खो को नवाब कपूर सिंह और जस्सा सिंह अहलूवालिया जैसे बडे योग्य और नीतिवान लीडर प्राप्त थे। सब सिक्ख उनका सम्मान करते थे और उनके उच्च आचार की सराहना भी करते थे। सन् 1748 मे अमृतसर के स्थान पर बैसाखी के उत्सव पर नवाब कपूर सिंह ने सिक्खो की जनरल मीटिंग मे, जिसको सरवत्त खालसा कहा जाता है, सब को पथ की एकता के लिए ऐसा सगठन बनाने की प्रेरण की। उसने यह स्पष्ट किया कि छोटे-छोटे दलो मे रहते हुए भी वे सकट के समय अपनी सारी शक्ति को दुश्मन के विरुद्ध बरत सकते है। इस प्रकार उन्होने सिक्ख जत्थो को जो कि 65 सरदारो के अधीन छोटे-छोटे दलो मे बँटे हुए थे मिलाकर 11 बडे जत्थो अथवा मिसलो का रूप दिया। इस प्रकार सिक्खो की सामूहिक शक्ति को एकत्र करके जो दल बना उसका नाम "दल खालसा" रखा गया था। 11 जत्थे अथवा मिसलो को जो कि भिन्न-भिन्न सरदारो के अधीन थी, "दल खालसा" के रूप मे एक सरदार के अधीन काम करना पडता था। बारहवी मिसल फुलकिया थी जो दल खालसा मे शामिल नही थी। दल खालसा के नेता के रूप मे सरदार जस्सा सिंह अहलूवालिया, जो कि अहलूवालिया जत्थे के लीडर थे, को नियुक्त किया गया। वह बडे योग्य नेता थे और नवाब कपूर सिंह के अधीन रह चुके थे।

दल खालसा का सम्मिलित रूप

1. **अहलूवालिया मिसल** दल खालसा मे सम्मिलित जत्थो मे अहलूवालिया मिसल का नाम सब से ऊपर आता है। इस मिसल का नेता सरदार जस्सा सिंह अहलूवालिया था। साथ ही वह दलखालसा का भी सर्वोच्च सेनापति नियुक्त हुआ था।

2. **फैजलपुरिया मिसल** यह मिसल सुप्रसिद्ध सरदार नवाब कपूर सिंह के अधीन थी।

3. **शुकचक्किया मिसल**. इस मिसल का नाम शुक्रचक्क (गुजरावाला के निकट स्थान) के कारण पड गया था। यह मिसल सरदार नोध सिंह के अधीन थी।

4 **निशानवाला मिसल**. यह मिसल सरदार दसौधा सिंह के अधीन थी। उसको युद्ध के समय सिक्खो का निशान या झण्डा उठाने का काम दिया हुआ था। इसी कारण यह "निशानवाला" मिसल कहलाने लगी।

5. **भंगी मिसल**. इस मिसल का सरदार हरि सिंह भगी था। भग का सेवन करने के कारण इस मिसल के सदस्यों को "भगी" नाम दिया गया।

6. **कन्हैया मिसल** : यह मिसल जय सिंह के अधीन थी। इसका नाम लाहौर के निकट कान्हा गाँव के कारण ऐसा पड़ गया था।

7. **नकई मिसल** : यह मिसल सरदार हीरा सिंह के अधीन थी जो कि चूनिया तहसील के इसी नाम वाले गाव के रहने वाले थे।

8. **दल्लेवालिया मिसल** : यह मिसल गुलाब सिंह दल्लेवाल के अधीन थी जो

कि डेरा बाबा नानक के पास इसी नाम वाले गाँव के रहने वाले थे ।

9 **शहीदी मिसल** इस मिसल का नेता प्रसिद्ध शहीद बाबा दीप सिंह था । इस कारण ही इस मिसल का नाम शहीदी मिसल हुआ ।

10 **करोड़ सिंधिया मिसल** यह मिसल सरदार करोड सिंह पजगढ वाले के अधीन थी ।

11. **रामगढ़िया मिसल** यह मिसल जस्सा सिंह रामगढिया के अधीन थी और इस मिसल के सदस्यो को रामगढ या रामरौणी (अमृतसर के सरक्षण के लिए बनाये हुए मिट्टी के किले)का सरक्षण सौपा.गया था जिसके कारण इन्हे रामगढिया कहा जाने लगा ।

12 बाहरवी मिसल का नाम फुलकिया मिसल था जो कि फूल वश के साथ सबध रखती थी । यह मिसल सतलुज के पार मालवा के इलाके मे थी और दल खालसा के अधीन नही थी और न ही इसका नेता दल खालसा के साथ मिलकर कोई विशेष काम करता था ।

संविधान दल खालसा का कोई स्पष्ट अथवा स्थायी सविधान नही था । वास्तव मे यह अनपढ किसानों का सम्मलेन था जिस को उन्होने अपने धर्म की रक्षा के लिए इकट्ठे होकर साझे शत्रु का मुकाबला करने के लिए बनाया था । इसका उद्देश्य बहुत सीमित था और उनके लिए किसी किस्म की विशेष नियमावली की आवश्यकता नही थी । इसका आधार केवल इस बात पर था कि सब मिसलो के सरदार विशेष स्तिथि मे एक लीडर के अधीन अपने धर्म की रक्षा के लिए काम करे । दल खालसा का मूल आधार उनका साझा उद्देश्य और उसके लिए हर किस्म की कुर्बानी देने की इच्छा था ।

इस तरह हर सिक्ख जो कि अपने धर्म पर दृढ था, अपने आपको दल खालसा का सदस्य समझता था और इस कारण धर्म की रक्षा के लिए दुश्मन के विरुद्ध लडना उसका कर्त्तव्य बन जाता था । इस समय वह अपने आपको किसी विशेष दल का सदस्य न समझते हुए दूसरो के साथ मिलकर काम करता था । किसी व्यक्ति की इस काम के लिए सम्मनि आवश्यक नही थी । दल के सदस्य के तौर पर उसको अपने लिए एक घोडा और शस्त्र जिन को वह चलाना जानता हो, प्राप्त करने आवश्यक थे ।

दल खालसा के सब सदस्य सुप्रीम कमाडर के मातहत समझे जाते थे और बाकी दस मिसलो के सरदार उसके साथ उसकी सहायता के लिए युद्ध परिषद् के सदस्य समझे जाते थे ।

दल खालसा की एकता को 'सरवत्त खालसा'' जो कि सारे सिक्खो के सम्मलेन का नाम था, से और अधिक शक्ति मिलती थी । दीवाली और बैसाखी के अवसर पर होने वाले ''सरवत्त'' खालसा के सम्मलेन दल खालसा को विशेष आदेश दे सकते थे या उसकी कारवाई का अनुमोदन कर सकते थे । दल खालसा के सुप्रसिद्ध नेता और उसकी दस मिसलो के साथी सरदार मिलकर ऐसे अवसर पर अमृतसर मे परिषद् का विशेष अधिवेशन

बुलाते थे। इस परिषद् के पास किये हुए प्रस्तावो का विशेष महत्त्व था और इसी कारण इसको सब सिक्खो के लिए उतना ही अनिवार्य समझा जाता था जितना कि गुरु का अपना हुकम। इसी प्रकार ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव जो कि सारे पथ के हित के लिए पास किए जाते थे "गुरमत्ता" कहलाते थे।

दलखालसा का स्वरूप दल खालसा एक प्रकार की एक सघीय सस्था अथवा सेना थी जो कि विशेष काम के लिए एक नेता के अधीन काम करती थी। किसी किस्म का सकट न होने पर इसके सदस्य जुदा-जुदा मिसलो अथवा जत्थो के सदस्य के तौर पर अपने सारे कार्य करते थे। दल खालसा सिक्खो का सकटकालीन स्थिति के मुकाबले के लिए सगठन का नाम था। दल खालसा के अधीन की गई कारवाई के फलस्वरूप जो कुछ प्राप्त होता था वह सब जत्थो अथवा मिसलो के सरदारो मे जो कि उसमे सम्मिलित होते थे बराबर बाँटा जाता था और उसके पश्चात् हर एक सरदार अपने-अपने साथियों की सख्या के अनुसार हिस्सा देता था। दल खालसा एक धार्मिक सघ के रूप मे बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ क्योकि इससे सिक्खो की सारी लडाकू शक्ति को एक जगह करके साझे शत्रु के विरुद्ध बरता जा सकता था। दल खालसा मे रहते हुए एक साधारण सिपाही और सरदार एक ही लगन मे लग जाते थे और अपने धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार हो जाते थे। उनके निकट इससे ज्यादा पुण्य का और कोई काम नही था।

महत्त्व · सिक्खो के मुगलो और अफगानो के विरुद्ध महान् और लम्बे सघर्ष में दल खालसा बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। वास्तव मे इस सस्था के कारण सिक्ख धर्म का सरक्षण हो सका नही तो सभव था कि छोटे-छोटे दलो मे बँटे हुए सिक्खो को मुगल और अफगान बिल्कुल कुचल देते। दल खालसा का सगठन उन सब को इकट्ठा रखने मे सफल हुआ जिस कारण एक नेता के अधीन एक ही लक्ष्य की पूर्ति के लिए सब मिलकर काम कर सकते थे। अगर देखा जाए तो दल खालसा वह सूत्र था जिसमे पिरोए जाने पर सिक्ख सगठन शक्तिशाली हो गया। सिक्खो की राजनीतिक महत्वाकाक्षा दल खालसा के कारण ही पूरी हुई थी।

गुरमत्ता यह सस्था भी दल खालसा के साथ ही स्थापित हुई थी। मिसलो के काल मे यह सस्था एक केन्द्रीय परिषद् के तौर पर काम करती थी। इस परिषद् मे सारी मिसलों के सरदार सम्मिलित होते थे और सारे पथ के हित मे बडे महत्त्वपूर्ण निर्णय करते थे।

नाम गुरमत्ता दो शब्दो गुरु और मत्ता से मिलकर बना था। "गुर" सक्षेप में गुरु के लिए और मत्ता शब्द निर्णय का सूचक माना जाता है। पूरे शब्द का मतलब वह निर्णय है जो कि गुरु आदेश के तुल्य माननीय और अनिवार्य हो। सिक्ख परम्परा मे 5 सिक्खों के निर्णय को गुरु का निर्णय समझा जाता था क्यो कि गुरु ने ऐसा संकेत किया था कि जहाँ 5 सिक्ख होंगे वहाँ गुरु विद्यमान होंगे। इसलिए इस किस्म के निर्णय को जो कि सिक्खों के अपने नेता आपस मे इकट्ठे होकर, *विचारविमर्श करके*

सर्वसम्मति से किया करते थे, सिक्ख उनको गुरु का अपना निर्णय समझ कर शिरोधार्य करते थे।

आरम्भ यह स्पष्ट तौर से ज्ञात नही है कि गुरमत्ता सस्था का प्रादुर्भाव कब हुआ। सबसे पहले गुरमत्ता का सम्मेलन लाहौर के गवर्नर जकरिया खा की मृत्यु के पश्चात् 14 अक्तूबर,1745 को अमृतसर के स्थान पर हुआ था। उस समय सिक्ख जत्थो के सरदारो ने मिलकर यह सस्था बनाई थी जिसमे उच्च स्तर पर महत्त्वपूर्ण निर्णय करने का प्रबन्ध था।

गुरमत्ता के काम गुरमत्ता के काम मुख्यत राजनीतिक लक्ष्य निर्धारित करना, विचारविमर्श करना और न्याय के फैसले देना था। राजनीतिक रूप मे सर्वप्रथम काम यह था कि सुप्रसिद्ध नेता नियुक्त किए जाते थे जो कि सारे खालसा दल का नेतृत्व करे और सैनिक कारवाई के लिए तैयारी करके आवश्यक आदेश दे। इसके साथ-साथ ही गुरमत्ता के सम्मेलन मे सिक्ख सरदारो के आपसी हितो के मामलो पर विचार किया जा सकता था। गुरमत्ता का काम आवश्यकता पडने पर सरदारो के आपसी झगडो का निर्णय करना भी था। इस रूप मे गुरमत्ता को सिक्खो की सर्वोच्च सघीय परिषद् समझना चाहिए।

कार्यविधि गुरमत्ता का कोई सविधान नही था। सिक्खो की दूसरी सस्था के अनुसार यह भी गणतत्रीय सस्था थी जिसमे सब सदस्य एक बराबर समझे जाते थे। गुरमत्ता के फैसलो को सारे पथ के हित मे समझा जाता था और सब नेता इसकी पालना करते थे। सर्वोच्च नेता के अधिकार युद्धकाल मे सब सरदारो से अधिक माने जाते थे। उसको विशेष तौर पर सैनिक नीति का निर्धारण करने और उसको पूरा करने के लिए जरूरी कदम उठाने का अधिकार था। इस तरह से गुरमत्ता सिक्खो के सगठन का प्रतीक था और शायद इसलिए ऐसी संस्था बनाने की जरूरत पडी थी। गुरमत्ता का महत्त्व भी विशेषतया यही था कि यह सारे सिक्खो के धार्मिक सघ की रक्षा के लिए था। मैलकम साहिब ने गुरमत्ता के सम्मेलन का बडा सुन्दर वर्णन किया है जो इस प्रकार, "सिक्खो के सुप्रसिद्ध धर्म स्थान अमृतसर मे बैसाखी और दीवाली के शुभ अवसर पर गुरमत्ता के सम्मेलन के लिए सब सरदार इकट्ठे होते थे। इस महत्त्वपूर्ण धार्मिक जमाव के समय सब सरदार पारस्परिक बैरभाव को भुला कर सब लोगो के भले के लिए अपने स्वार्थ से ऊपर उठ कर काम करते थे। इस समय सब के साझे हितो की भावना प्रबल होती थी और सब के मन मे पथ की भलाई की इच्छा होती थी। सब को अच्छी तरह से मालूम था कि यह सम्मेलन विशेष तौर पर पथ के हित के लिए है।

"जब सब सरदार अकाल तख्त के स्थान पर बैठ जाते थे तो उनके सामने आदि ग्रन्थ और दशम पातशाही के ग्रन्थ को रख दिया जाता था। एकत्रित जनसमूह शीश नवा कर धर्म पुस्तक को प्रणाम करते और ऊँचे शब्दो मे "वाहि गुरु जी का खालसा वाहि गुरु जी की फतेह" का उच्चारण करते थे। "अरदास" की जाती थी और कढाह प्रसाद बाँटा जाता था और सभी लोग उसको सहर्ष स्वीकार करते थे। इससे यह सिद्ध

होता था कि एक सांझे उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी मिलकर काम करेंगे। इसके पश्चात् अकाली अर्थात् ग्रन्थी ऊँचे स्वर से घोषणा करते थे कि यह सम्मेलन गुरमत्ता के सम्बन्ध में हो रहा है। विशेष प्रस्ताव जो विचाराधीन होते थे उनको पढ़कर सुनाया जाता था और सबको सावधान किया जाता था कि अपने धर्म ग्रन्थ के सामने सब अपने निजी झगड़े भुलाकर पूर्ण एकता से सब के हित के लिए कोई निर्णय करें। उसके बाद सदस्य एक दूसरे के निकट होकर विचारविमर्श करते थे। अपने धर्म में निष्ठा और सेवा तथा पंथ के हित को ध्यान में रखने की प्रेरणा से ये निर्णय सर्वसम्मति से करते थे। उनको यह बिल्कुल स्पष्ट था कि सारे पंथ के लिए संकट दूर करने के लिए सब के लिए मिलकर काम करना उचित होगा। जो भी वह निर्णय कर पाते थे उनका पूर्ण रूप से पालन करना सबका कर्त्तव्य समझा जाता था। "इसलिए इस सम्मेलन के निर्णय को "गुरमत्ता" का नाम दिया जाता था। जो कुछ गुरमत्ता के अधीन प्राप्त किया जाता था वह सब सरदारों में बराबर बाँटा जाता था।

मूल्यांकन : गुरमत्ता की संस्था जिसका बिल्कुल साधारण संविधान था और जिसमें आमतौर पर सारे सिक्ख नेता सम्मिलित होते थे तब तक सफलतापूर्वक चलती रही जब तक कि सिक्खों को बाहरी शत्रु या संकट का मुकाबला करना पड़ा। इस तरह से इस महान् कष्ट के समय सिक्ख अपने धार्मिक संघ को सुरक्षित रख सके और अपनी सारी शक्ति को शत्रु के विरुद्ध बरत सके।

बाहरी खतरों के कम हो जाने पर गुरमत्ता का महत्त्व बड़ा जल्दी समाप्त हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अहमदशाह अब्दाली के अन्तिम आक्रमण के बाद अर्थात् सन् 1768 के पश्चात् गुरुमत्ता की कोई मीटिंग नहीं हुई या आवश्यक नहीं समझी गई। यह भी स्पष्ट है कि जमानशाह के हमले के समय सन् 1798 में गुरमत्ता की कोई मीटिंग बुलाई ही नहीं गई थी। इस प्रकार सन् 1768 से 1805 तक गुरमत्ता का कोई भी सम्मेलन नहीं हुआ। सन् 1805 में महाराजा रणजीत सिंह ने जो कि पंजाब में सर्वप्रसिद्ध सरदार बन गए थे और जिन्होंने काफ़ी इलाके अपने अधीन कर लिये थे, जसवन्त राव होल्कर के पंजाब में प्रवेश करने के समय और उसके पीछे-पीछे अंग्रेज जनरल लार्ड लेक के पंजाब में प्रवेश के खतरे के समय गुरमत्ता की अंतिम मीटिंग बुलाई थी परन्तु तब तक गुरमत्ता का प्रभाव इतना कम हो चुका था या इसका कोई महत्त्व नहीं रह गया था क्योंकि बाकी सरदारों ने उनके निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया था। महाराजा रणजीत सिंह उसके पश्चात् पंजाब के एक मात्र महाराजा बन गए थे और गुरमत्ता का स्थान महाराजा के निर्णयों ने ले लिया था।

गुरमत्ता का अधिकार : गुरमत्ता के निर्णयों को लागू करने के लिए विशेष मशीनरी कायम नहीं की गई थी हालांकि इसका आधार केवल यह था कि गुरमत्ता सभी सिक्खों का अपना निर्णय होता था और इसको धार्मिक रूप में मान्यता प्राप्त थी। सब सरदारों का यह अपना कर्त्तव्य हो जाता था कि गुरमत्ता का किसी तरह से

उल्लंघन न करे चाहे वह कितना भी बडा क्यों न हो क्योंकि ऐसी कारवाई को सिक्ख पथ के हित मे नही समझा जाता था।

संघीय सस्था की सफलता के कारण गुरमत्ता जैसी सघीय सस्था सिक्ख पथ पर सकट के समय बहुत हितकारी सिद्ध हुई थी। इससे न केवल सिक्खो का सगठन कायम रह सका था बल्कि गुरमत्ता के द्वारा सिक्ख राजनीतिक अधिकार भी प्राप्त कर सके। ऐसी सस्था शायद गुरु गोबिन्द सिंह जी के आदेशानुसार या उनके विचार के अनुरूप थी। गुरमत्ता की स्थापना के समय यह स्पष्ट था कि सब सिक्ख अपने आपको बराबर समझते हुए एक गणतत्र के रूप मे सगठित होगे। यह भी आवश्यक था कि सिक्ख सरदार आपस मे मिलकर काम करने के लिए कोई ऐसी सस्था बनावे।

सिक्खो की उपर्युक्त राजनीतिक व्यवस्था से यह सकेत मिलता है कि गुरु गोबिन्द सिंह ने सिक्खो के सामने एक गणतन्त्र का आदर्श रखा था। यह सम्भव भी हो जाता यदि सिक्ख सरदार आपसी भेदभाव मिटा कर काम करते और उस एकता को, जो बाहरी शत्रु से सघर्ष करते समय उनमे थी, कायम रखते। यह दुख की बात है कि इतनी राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के पश्चात् न तो गुरमत्ता के आदर्श को अच्छी तरह समझा गया और न ही सिक्खो के सगठन की तरफ ध्यान दिया गया। सिक्ख सरदार केवल एक दूसरे को नीचा दिखाने या एक दूसरे के विरुद्ध षड्यत्र करने मे ही लगे रहे। गुरमत्ता को उन्होने बिल्कुल भुला दिया। ऐसी राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर, जैसा कि प्रसिद्ध अग्रेज यात्री फौरैस्टर ने सन् 1782 मे लिखा था "मिसल काल राजनीतिक दृष्टिकोण से सकेत देता है कि बडी जल्दी ही पजाब मे कोई प्रसिद्ध नेता उठ सकता है जो कि अपनी योग्यता और शक्ति से दूसरो का दमन करके सारे इलाके मे अपना राज्य कायम कर लेगा।" वह व्यक्ति रणजीत सिंह था जो कि साधारण मिसलदार से उठकर पजाब का एक छत्र महाराजा बना और जिसने गुरमत्ता की सस्था का अत कर दिया।

प्रश्न

1 State clearly the circumstances which led to the formation of the Sikh Misls and the Dal Khalsa. What was its importance in the history of Sikhs?
सिक्ख मिसलो की उत्पत्ति और दल खालसा का जन्म किन परिस्थितियो मे हुआ? सिक्खो के इतिहास मे इसका क्या महत्त्व था?

2 Ahmad Shah Abdali made his first invasion of India in 1748. The Sikhs, too, organised the Dal Khalsa about the same time. The two continued to wage almost incessant war for a decade and a half. Write a note explaining how all this came about.
अहमदशाह अब्दाली ने सन् 1748 मे भारत पर पहली बार आक्रमण किया। सिक्खो ने भी लगभग उसी समय दल-खालसा का सगठन किया था। ये दोनों

ही लगभग डेढ दशक तक निरतर लडते रहे । एक व्याख्यात्मक टिप्पणी लिखो कि ये सब घटनाएँ कैसे घटी ?

3. Analyse carefully the origin and functions of the Gurmatta.
गुरमत्ता के सगठन और उसके कार्य का सूक्ष्म विवेचन कीजिए ।

4 Account for the rise of the Sikh power during the second half of the 18th Century
18वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे सिक्खो के उत्थान के कारणो का उल्लेख कीजिए ।

5 Discuss the part played by the Dal Khalsa in building up the power of the Sikhs in the Panjab during the 18th Century
अठारहवी शताब्दी के दौरान पजाब मे सिक्खो की शक्ति का निर्माण करने मे दल खालसा द्वारा दिए गए योगदान का वर्णन कीजिए ।

6. Write a comprehensive note on the Misl organisation. What were its main Characteristics ?
मिसलो के सगठन पर एक सविस्तर टिप्पणी लिखिए । इस की मुख्य विशेषताएँ क्या थी ?

17

मिसलदारी पद्धति अर्थात् मिसल काल में राज-प्रबन्ध

भूमिका · पजाब मे अफगानो के शासन का अन्त होने पर सिक्खो ने स्थायी रूप से सत्ता प्राप्त कर ली और अपना राज-प्रबन्ध चालू किया। यह बात उनके अपने नाम से लगातार मुद्रा जारी करने से सिद्ध होती है। इस तरह सन् 1767 से 1773 तक सिक्खो का राज्य उत्तर पश्चिमी भारत मे सहारनपुर से लेकर कटक तक और जम्मू से लेकर मुलतान तक फैल गया था। इस समय मे और इसके पश्चात् महाराजा रणजीत सिंह के सारे पजाब मे अपना राज्य स्थापित कर लेने तक इस इलाके मे मिसलदारी किस्म का राज-प्रबन्ध चलता रहा था।

सिक्खो के राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के बारे मे प्रसिद्ध फ्रासीसी नीतिकार बूसे ने सन् 1684 मे पाण्डेचरी से लिखा था, "दिल्ली से लेकर ईरान के साम्राज्य तक सारे उत्तर पश्चिमी भारत मे सिक्खो का राज है। उन्होने एक प्रकार का गणतन्त्र स्थापित किया हुआ है जिस के सविधान का कुछ ज्ञान नही है" (पत्र नं० 423, पाण्डेचरी कैटेलॉग 3-3-1784)।

मिसलदारी शासन मे सरदार का स्थान मिसलदारी शासन प्रबन्ध मे सरदार को सर्वोच्च पदवी प्राप्त थी। वह एक तरह से सैनिक शासक था। इस रूप मे उसको सब अधिकार प्राप्त थे। आन्तरिक मामलो मे भी उसको सर्वोच्च समझा जाता था। हालाकि साधारण तौर पर वह अपने साथियो के दैनदिक जीवन मे बहुत कम दखल देता था। इस तरह आम लोगो को कामकाज करने मे काफी सुविधा प्राप्त थी और सरदार किसी कारवाई से उनको नही रोकता था जब तक कि वह मिसल के हित के विरुद्ध न हो। सर लैपल ग्रीफन के कथनानुसार यह प्रबन्ध बहुत सादा था और "सिक्ख सरदार उन दिनो अपने अनुयायी से केवल एक घोडा और एक बन्दूक माँगता था। इसके बदले मे उसके अनुयायी उसका सरक्षण और उसकी आज्ञा चाहते थे कि वह सरदार के झण्डे तले गुरु और प्रभु के नाम पर लूटमार कर सके। उनके लिए किसी किस्म का वेतन लेने का सवाल ही पैदा नही होता था।" मिसल काल के एक प्रसिद्ध विदेशी नेता जार्ज टॉमस ने सरदार के विषय मे लिखा है, "अपने इलाके मे हर एक सरदार पूर्णतया स्वतन्त्र है। वह अपने अनुयायियो पर पूर्ण अधिकार रखता है और उनको जीवन-मरण हर प्रकार का दण्ड दे सकता है। परन्तु अपने

अनुयायियो की सख्या बढाने के लिए सरदार बाहर से आने वालो को प्रसन्नता से सरक्षण देते है और उनके प्रति सेवा भाव रखते है। वेशक मिसलो का राजप्रबन्ध तानाशाही है फिर भी वास्तविक रूप मे लोगो पर किसी किस्म की सख्ती नही की जाती अथवा अडौस-पडौस के राज्यो से उनका प्रबध अच्छा होता है ।" (मिमोरीज पृ० 76)।

स्थानीय शासन—पंचायत राज मिसल काल मे अधिकतर राजप्रबन्ध परम्परागत पचायत पद्धति के अधीन था। यह प्रबध ग्रामीण लोगो के लिए विशेष तौर पर उचित था। पचायत पद्धति के अधीन हर एक ग्राम की अपनी पचायत थी। पचायत का अर्थ "बडे-बूढो की परिषद्" था। वास्तव मे यह एक न्यायालय के रूप मे ही कार्य नही करती थी अपितु आवश्यकता पडने पर एक ट्राईब्यूनल का रूप भी ले लेती थी जिसमे लोग अपने निजी मामले आवश्यकता अनुसार पेश कर सकते थे। पचायत के प्रति लोगो की बडी श्रद्धा थी और पचायत का ग्रामीण लोगो पर बडा प्रभाव था। साधारण लोग "पचो मे परमेश्वर" कथन के अनुसार पचायत का बहुत सम्मान करते थे। पचायत गाँव मे कानून और व्यवस्था को ही कायम नही रखती थी बल्कि पडौस के गाँवो मे रहने वाले लोगो से झगडो का निपटारा भी करती थी। पचायत का सामाजिक तौर पर लोगो मे काफी दबाव था। इसीलिये, पचायत के निर्णयो का बडा कम विरोध किया जाता था। लोगो को भय था कि ऐसा करने पर उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाएगा और गाँव मे रहना कठिन हो जायेगा। पचायत अपना कार्य नम्बरदार, पटवारी और चौकीदार द्वार करती थी। इस तरह के स्थानीय शासन मे गाँव को अपने आन्तरिक कामो मे काफी स्वतत्रता प्राप्त थी। बाहर से किसी किस्म का दखल उस समय तक नही होता था जब तक कि सरदार को गाँव से प्राप्त होने वाला राजस्व बाकायदा मिलता रहता था। इस किस्म के स्थानीय प्रबध की बहुत से अग्रेज लेखको और यात्रियो ने बडी प्रशसा की है। वे इसकी कार्यकुशलता और ईमानदारी से वडे प्रभावित थे।

वित्तीय शासन—राजस्व मिसल पद्धति (सिस्टम) के अधीन भूमिकर सरदार की आमदनी का मुख्य साधन था। इस किस्म का कर—(1) उन गाँवो से प्राप्त किया जाता था जो कि सीधे तौर पर सरदार के अधीन होते थे और जिन का राजप्रबध वे खुद करते थे। (2) उन गाँवो से राखी के रूप मे कर लिया जाता था जिनको सरदार का सरक्षण प्राप्त था चाहे उनका शासन सरदार के अधीन नही था। ऐसी स्थिति मे सरदार की जिम्मेदारी उनके प्रति यह होती थी कि वह किसी दूसरे से उन गाँवो के लोगों को कोई हानि नही पहुचने देगा।

भूमिकर आमतौर पर 1/5 से लेकर 1/4 तक भूमि की किस्म के अनुसार फसल तैयार होने के समय लिया जाता था। 'राखी' कर भी इसी तरह से फसल पकने के समय 'हाडी' और 'सावनी' के मौके पर प्राप्त किया जाता था।

दूसरे साधन: उपर्युक्त साधनो के अलावा मिसलों के सरदार हर समय अपनी दौलत बढाने के लिए उत्सुक थे। वह अकेले-अकेले, दो-दो या तीन-तीन के

गुट बनाकर बाहर के इलाको मे लूटमार करके धन प्राप्त करते रहते थे। वास्तव मे यह उनकी आमदनी का मुख्य साधन था। सरदार घोडो के व्यापार से भी काफी धन प्राप्त करते थे।

न्याय प्रबंध मिसल काल मे कोई विकसित या सवैधानिक न्याय प्रबध नहीं था। मुख्यत निर्णय पुरानी रस्मो और रिवाजो के अनुसार होते थे। अक्सर निर्णय जुदा-जुदा धर्मो के मानने वाले लोगो के धर्म शास्त्रो के अनुसार किये जाते थे। न्यायाधीश बहुधा अपने विचार से निर्णय करते थे। न्याय भी उस समय सरदार को आमदनी का एक साधन था जिसे 'नजराना' कहते थे अर्थात् वह रकम जो मुकदमा पेश करते हुए जज को दी जाती थी। 'जुर्माना' वह राशि थी जो किसी के विरुद्ध फैसला होने पर उससे दण्ड के रूप मे प्राप्त की जाती थी और 'शुकराना' वह रकम थी जो जज को जिस के हित मे फैसला हो, उस की ओर से धन्यवाद के रूप मे दी जाती थी। साधारण तौर पर ग्रामीण लोगो के मुकदमे पचायतो मे ही पेश होते थे क्योकि इस काम के लिए उनको कोई विशेष प्रयत्न और खर्च नही करना पडता था। खास-खास झगड़े सरदार के सामने आते थे और उसको अन्तिम अदालत समझा जाता था।

दण्ड इस किस्म के न्याय प्रबध के अधीन दण्ड जुर्माना, जेल या शरीर का अग काट देने के रूप मे होता था। चोरी की सजा कई बार हाथ काटने के रूप मे दी जाती थी और गम्भीर नैतिक अपराध के समय नाक और कान भी काट दिये जाते थे। बडे-बडे परिवारो के झगडो मे कत्ल वगैरा के समय दण्ड देने का एक तरीका यह भी था कि जिस ने अपराध किया हो उस के विरुद्ध दूसरी पार्टी को भी वैसी ही कारवाई करने का अधिकार दिया जाए। इस दण्ड के तरीके को 'गाहा' कहा जाता था और यह बहुत ही क्रूर था।

सैनिक प्रबध मिसल काल मे सरदारो की शक्ति भिन्न-भिन्न थी। सब मिसलो की सेना का अन्दाजा 75 हजार से एक लाख तक लगाया गया है। इस मे से कुछ मिसले जैसा कि भगी मिसल बहुत बडी शक्ति की मालिक थी। उसके पास 25 से 30 हजार तक सैनिक थे और इसके मुकाबले मे कुछ मिसलें केवल 3 से 5 हज़ार सैनिक रखती थी। उस समय लगभग सारे सैनिक घुडसवार और बन्दूकधारी थे। सिक्खो की सफलता का विशेष कारण उनकी घुडसवार सेना और उनके द्वारा छापा-मार युद्ध को अपनाना था। सिक्खो के पास तोपखाना नाममात्र को ही था। वह भी अफगानो की तोपे थी जो कि युद्धो मे प्राप्त की गई थी (1800 ईस्वी मे फ्रेंकलिन के अनुमान के अनुसार सारे मिसलदारो के पास केवल 40 तोपे थी)।

सिक्ख सैनिकों को किसी किस्म की ट्रेनिंग, ड्रिल और अनुशासन की आवश्यकता नही थी। वास्तव मे हर एक सैनिक अपने आपको जन्म से ही सिपाही समझता था और आमतौर पर शस्त्रो का उपयोग जानता था क्योकि ग्रामीण जनता को अपनी रक्षा के लिए ऐसे प्रबध सदा ही करने पडते थे। सिक्ख सैनिक जत्थो के रूप मे घोड़ों पर इधर-उधर जाते थे।

शस्त्र मिसल काल मे साधारण शस्त्र तलवार, नेजा, खजर और बन्दूक होते थे। लडने का ढग छापामार या 'गुरिल्ला' था। सिक्ख आमतौर पर किसी एक स्थान पर डटकर युद्ध नही करते थे और दुश्मन से बचकर रहते हुए भी उसको अधिक से अधिक हानि पहुँचाने की कोशिश करते थे। इस किस्म की सेना अपने पास छोटे और आसानी के साथ ले जाने वाले शस्त्र रखती थी। इसलिए सिक्ख सेना तोपखाने की आवश्यकता नही समझती थी और न ही उसको तोपे बनाने के साधन प्राप्त थे।

मिसलदारी पद्धति के पतन के कारण मिसल काल मे शासन प्रबध इस किस्म का था कि उसका असफल होना निश्चित था। उसके निम्नलिखित कारण थे

1 **बाहरी शत्रु द्वारा आक्रमण का भय समाप्त हो जाना** मिसल काल मे, जो सघीय एकता थी और जिस के कारण सब मिसले कुछ समय तक मिलकर कार्य करती रही, पूर्ण रूप से सगठित नही थी। वास्तव मे उनके मिलकर काम करते रहने के कोई साझे उद्देश्य नही थे। वे केवल उसी समय तक इकट्ठे रहते जब तक कि उनका सामना किसी बाहर के शत्रु से हो। लेकिन जब बाहर से उन्हे कोई खतरा न रहा तो वे झाड़ू के तिनको की तरह बिखर गये और एक दूसरे के विरुद्ध ही कारवाई करने लगे। इस का प्रमाण इस बात से मिलता है कि सन् 1767 मे अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के समाप्त होने पर मिसलो मे जो कुछ भी एकता थी वह एकदम समाप्त हो गई और आपाधापी का युग आरम्भ हो गया।

2. **मिसलो में आपसी ईर्ष्या और द्वेष** आपसी द्वेष उनको सगठित रखने मे सबसे बडी बाधा थी। जाटो की आपस मे दुश्मनी और सरीकापन उनको इकट्ठे नही होने देता था। मिसलो मे एक दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने और एक दूसरे की शक्ति कम करने की कोशिश करते रहने की प्रथा देर से चली आ रही थी। यह प्रथा किसी बाहरी खतरे के समय ऊपर से देखने को शान्त हो जाती थी। परिणाम स्वरूप भगियो की कन्हैयो के विरुद्ध या शुक्रचक्कियो की भगियो के विरुद्ध और माझा के सिक्खो की मालवा के सिक्खो के विरुद्ध आपस मे दुश्मनी बहुत पुरानी थी। इसी के कारण उनकी आपस मे एकता असम्भव-सी नजर आती थी।

3. **केन्द्रीय संस्था का अभाव :** सिक्ख मिसलो मे कोई केन्द्रीय सस्था इतनी प्रबल नही थी जो सब को अपने अधीन रख सके और उनमे एकता कायम कर सके। गुरमत्ता जो कि एक सकटकालीन सस्था थी और जिस का पथ के सरक्षण के लिये सब मिसले सम्मान करती थी अधिक समय तक न चल सकी। बाहरी खतरा दूर होने पर गुरमत्ता का प्रभाव भी कम हो गया और जैसा कि प्रसिद्ध है अब्दाली के हमलों का अन्त होने पर गुरमत्ता बुलाने की आवश्यकता ही नही समझी गई। मिसाल के तौर पर 1805 ईस्वी मे महाराजा रणजीत सिंह के गुरमत्ता बुलाने पर किसी सरदार ने भी उसका निमन्त्रण स्वीकार नही किया था। इस तरह किसी केन्द्रीय सस्था का अभाव मिसल पद्धति के पतन का एक प्रमुख कारण था।

4 **सभी मिसलों द्वारा सर्वशक्तिमान बनने की चेष्टा करना :** सभी मिसलों के सरदारों मे अन्य मिसलो की अपेक्षा सर्वशक्तिमान बनने की उत्कट भावना

विद्यमान थी। किसी मिसल का सरदार दूसरी मिसल को अपने बराबर नही समझता था और हर कोई सारी सत्ता अपने हाथ मे लेने की भरसक कोशिश मे लगा रहता था। किसी इतिहासकार ने बिल्कुल ठीक ही कहा है कि मिसल काल मे जो सिक्ख सरदार "अपनी स्वतन्त्रता के लिए सब कुछ न्यौछावर करने वाले सेनानी थे और राष्ट्रीय हित के लिए जान देने को तत्पर थे, बाद मे स्वार्थी और एक दूसरे को कुचलने वाले सरदार बन गये थे"। धार्मिक श्रद्धा के स्थान पर राजनीतिक लालसा प्रबल हो गई थी।

5. **राजनीतिक सत्ता मिलने पर सिक्ख सरदारों द्वारा आलसी व आराम का जीवन व्यतीत करना** राजनीतिक सत्ता प्राप्त होने पर सुख और आराम का जीवन प्रमुख रूप से उनका उद्देश्य हो गया था। सरदार बहुत सी निजी और सामाजिक बुराइयो का शिकार हो गये थे। धर्म के लिए कार्य करने के स्थान पर अब वे धन-सम्पत्ति को बटोरने के काम मे लग गये थे। ऐसी अवस्था मे जैसा कि एक पजाबी कवि, श्री गणेश दास बढेरा ने रणजीत सिंह के काल मे लिखा था, यह सकेत मिलता था कि मिसलो का इस तरह छोटे-छोटे दलो मे एक दूसरे के विरुद्ध लडते रहना देश के हित मे नही था। ऐसी राजनीतिक अवस्था मे यह उचित ही था कि प्रसिद्ध व्यक्ति सबको अपने अधीन करके उनको एक शक्तिशाली साम्राज्य के सूत्र मे बाध दे। बढेरा ने कविता मे यह बात बड़े सुन्दर रूप मे कही है

"आपन आप करे मिल राड,
मलेच्छन सग न जग मचावे।
तब ही गुरु आप विचार कियो,
सब सिंघन को पति एक बनावे।
रणजीत मृगद भयो तब,
ताही छत्र दियो करतार सो भावे।"[1]

ऐसा ही विचार एक प्रसिद्ध अग्रेज यात्री फौरैस्टर ने सन् 1783 मे व्यक्त किया था जब कि उस ने उत्तर भारत की यात्रा की थी। वह लिखता है "हम देखेगे कि कोई साहसी सरदार अपनी योग्यता और सफलता के आधार पर अपने साथियों को अपने अधीन बनाकर मिसलदारी पद्धति के स्थान पर अपने आपको पजाब का राजा बना लेगा।"[2]

यह भविष्यवाणी महाराजा रणजीत सिंह के सारे पजाब के एक छत्र महाराजा के रूप मे सही साबित हुई। एक छोटे से मिसलदार से उसने अपने आपको सारे पजाब का महाराजा बनाया और सब मिसलो और छोटे-छोटे राज्यो को अपने राज्य मे शामिल कर लिया।

इन सब बातो के होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि मिसलदार पद्धति एक खास स्थिति मे जब कि सिक्ख पथ को लगातार बाहरी सकटो का सामना करना

[1]गणेश दास बढेरा कृत फतेह नामा गुरु खालसा जी, पृष्ठ 59
[2]Forester Journey from England to Bengal. (1783).

पड रहा था बहुत उपयोगी सिद्ध हुई थी। अपने धर्म की रक्षा की प्रेरणा से जो शानदार काम सिक्खो ने मिलकर किया उसकी मिसाल दुनिया के इतिहास मे बहुत कम मिलती है। चाहे उनकी एकता दीर्घकालीन नही थी फिर भी थोडे समय मे ही उन्होने ऐसी सफलता प्राप्त की जिस से कि उस समय के एशिया के सबसे बडे जरनैल अहमदशाह अब्दाली को भी उनसे हार माननी पडी। उसके पौत्र को जब यह प्रेरणा दी गई कि वह भी पजाब पर आक्रमण करे तो उसने बिल्कुल सत्य कहा था कि मेरे दादा ने पजाब पर इतने आक्रमण करके क्या प्राप्त कर लिया ? इस लिए यह सर्वथा उचित नही कि हम मिसलदारी काल को बिल्कुल निकम्मा समझ कर छोड दे। मिसल पद्धति जैसा प्रबध केवल थोडे समय के लिये ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है। जब बाहरी सकट समाप्त हुआ तो इस पद्धति मे कोई भी ऐसी विशेषता नही थी जो कि इसे आगे ले चलती। इसका पतन अवश्यम्भावी था।

प्रश्न

1. What impressions do you gather in regard to the character of the Sikhs while studying the Panjab history of the 18th century ?

   18वी शताब्दी के पजाब के इतिहास के दृष्टिगत सिक्खो के चरित्र के सबध मे आप अपने विचार प्रकट करे।

2. What were the characteristics of the organisation of a Sikh Misl ? What do you know about its judicial and military system ?

   सिक्ख मिसल के सगठन की मुख्य विशेषताएँ क्या थी ? इसके न्यायिक और सैनिक प्रबन्ध के बारे मे तुम क्या जानते हो ?

3. Describe the military organisation of the Sikhs in the Misl period. What were the points of strength and weakness of Misl polity ?

   मिसलकालीन सिक्खो के सैनिक सगठन का वर्णन कीजिए। मिसल राजतत्र/राज व्यवस्था के गुण तथा दोष क्या थे ?

4. "Lack of cohesion and mutual conflicts were maily responsible for the failure of the Misldari system " Comment.

   "तालमेल का अभाव और पारस्परिक सघर्ष मिसलदारी प्रथा के असफल होने के मुख्य कारण है।" टिप्पणी कीजिए।

5. Describe the polity, economy and military organisation of the Sikhs under the Misls.

   मिसलों के अधीन सिक्खों की राज व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था और सैनिक संगठन का वर्णन कीजिए।

18

प्रमुख मिसलों का राजनीतिक इतिहास

पजाब से अफगानों के प्रस्थान के पश्चात् सिक्ख मिसलो ने भिन्न-भिन्न भागों मे अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित कर ली थी और पजाब मिसलो के जुदा-जुदा राज्यों मे बँट गया था। हर एक सरदार अपने आप को पूर्णरूप मे स्वतंत्र समझता था। इस तरह से स्थापित छोटे-छोटे राज्य उस समय तक चलते रहे जब तक कि रणजीत सिंह ने उन सब को हड़प करके अपना एक विशाल राज्य नही बना लिया। मिसल राज्य मे कुछ प्रमुख मिसलो का वर्णन यहाँ अभीष्ट है।

फैजलपुरिया अथवा सिहपुरिया मिसल

इसको सिक्खो के प्रसिद्ध नेता नवाब कपूर सिह ने स्थापित किया था। यह मिसल सबसे पुरानी थी और नेता के गॉव के नाम पर इसको सिंहपुरिया अथवा फैजलपुरिया कहते थे। फैजल उस गॉव का नाम था जो नवाब कपूर सिंह ने सबसे पहले अपने अधीन किया था और जिस का नाम बदल कर सिहपुर रख दिया गया था। नवाब कपूर सिह एक जाट किसान दलीप सिंह के पुत्र थे। उन्होने प्रसिद्ध धार्मिक नेता और गुरु गोबिन्द सिह के अनुयायी भाई मनी सिह से "पाहुल" ली थी। सिक्खो मे नवाब कपूर सिह का बहुत ऊँचा स्थान था और सब उनका आदर करते थे। अपनी सूझ-बूझ और सेवाभाव के कारण नवाब कपूर सिंह को खालसा का प्रतिनिधि चुना गया था और नवाब जकरिया ख़ाँ से जागीर प्राप्त करने के बाद उनको नवाब की उपाधि दी गई थी। सन् 1734 से 1748 तक नवाब कपूर सिंह धार्मिक और राजनीतिक मामलो मे सिक्खो के सर्वप्रसिद्ध नेता रहे। सिक्ख धर्म के प्रति उनकी निष्ठा और प्रेरणा की सब लोग सराहना करते थे। सिक्ख धर्म के प्रचार और उसकी सुरक्षा के लिए नवाब कपूर सिंह ने बहुत सेवा की थी। बन्दा बहादुर के बाद नवाब कपूर सिंह सिक्खो के एकमात्र नेता माने जाते थे। मुगलो और अफगानो के विरुद्ध सिक्खो के सघर्ष मे नवाब कपूर सिंह का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होने ही 'दल खालसा' का सगठन करके सब सिक्खो को इकट्ठा होकर बाहरी शत्रु का सामना करने के लिए प्रेरित किया था। उनके जीवन काल मे सब सिक्खो ने उनके नेतृत्व मे काम किया। सन् 1753 मे उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके भतीजे खुशहाल सिंह इस मिसल के सरदार बन गये। उन्होने इस मिसल के अधीन इलाके सतलुज के दोनों किनारो पर बढ़ा लिये थे। खुशहाल सिंह की मृत्यु सन् 1796 मे हुई और तब उनके बडे पुत्र बुद्ध सिंह उनके उत्तराधिकारी बने। सिंहपुरिया मिसल का सारा इलाका रणजीत सिंह

ने अपने राज्य मे सन् 1816 मे शामिल किया था। यह मिसल थोडी सख्या मे होते हुए भी प्रसिद्ध मानी जाती है क्योकि इसके नेता का सब सिक्ख बहुत सम्मान करते थे।

अहलुवालिया मिसल

जस्सा सिंह अहलूवालिया ने यह मिसल स्थापित की थी। इसका नाम लाहौर के निकट आहलू नाम के ग्राम के कारण अहलूवालिया पड गया था। जस्सा सिंह के पूर्वज "कलाल" कहलाते थे और शराब बनाने का काम करते थे। इस मिसल का सरदार अपने काल मे सिक्खो मे बहुत प्रसिद्ध नेता हुआ है। पाँच साल की आयु में उसके पिता का देहान्त होने पर उसकी माता ने दिल्ली मे माता सुन्दरी (धर्मपत्नी गुरु गोबिन्द सिंह) की शुभ कामना से उसका पालनपोषण किया था। चूँकि पजाब लौटने पर भी वह हिन्दी बोलते थे इसलिए उनको "हमको–तुमको" सरदार कहा जाता था। सबसे पहले पजाब लौट कर एक धार्मिक सभा मे माता ने उनका परिचय सिक्खो के प्रसिद्ध नेता नवाब कपूर सिंह के साथ कराया था। जस्सा सिंह के प्रति उनका इतना प्रेम हो गया था कि कहा जाता है कि नवाब कपूर सिंह ने उन को अपना बेटा मान लिया था। नवाब कपूर सिंह ने जस्सा सिंह को "दल खालसा" के नेता के रूप मे ट्रेनिंग दी। जस्सा सिंह अहलूवालिया सन् 1738 मे नादिर शाह के आक्रमण से लेकर सिक्खो के सघर्ष मे विशेष भाग लेते रहे। उन्होने मुसलमानो के विरुद्ध बहुत से सैनिक अभियान किये जिन मे अपनी योग्यता, साहस और वीरता का प्रमाण दिया जिस के कारण नवाब कपूर सिंह ने उनको "दल खालसा" का नेता नियुक्त किया और गुरु गोबिन्द सिंह जी की लोहे की गदा उनको प्रदान की। 35 साल की आयु मे उनको "सुलतान-उल-कौम" का खिताब दिया गया था। सिक्खो की अफगानो के विरुद्ध लगभग सब लडाइयों मे उन्होने भाग लिया। सन् 1761 में उन्होने लाहौर के गवर्नर ख्वाजा उब्बैद के विरुद्ध चड़त सिंह शुक्रचक्किया की सहायता की और "गुरमत्ता" के अनुसार लाहौर के ऊपर इसी साल अपनी सत्ता जमा ली और अपने नाम का सिक्का चलाया।

सन् 1762 के बड़े घल्लूघारा के समय जस्सा सिंह की लीडरी को काफी धक्का लगा। मगर उन्होंने अगले साल ही सरहिन्द पर हमला करके अब्दाली के नियुक्त किये गवर्नर जैन खा को मार दिया। अब्दाली के आक्रमणो का अन्त होने पर जस्सा सिंह ने बहुत से इलाके अपने अधीन कर लिये। रायकोट कपूरथला जैसा स्थान भी उन्होंने मुसलमानों से प्राप्त कर लिया। भगी, कन्हैया और शुक्रचक्किया मिसलो के साथ मिलकर उन्होंने रामगढ़ियों के विरुद्ध कारवाई की और जस्सा सिंह रामगढ़िया को पंजाब छोडकर हांसी चले जाने के लिए मजबूर किया। जस्सा सिंह का देहान्त सन् 1783 मे अमृतसर मे हुआ। वह सिक्खो के प्रसिद्ध नेता समझे जाते थे और इतिहास में उनका बडा ऊँचा स्थान है। मिसलदारो मे सिक्खों के संगठन के लिए उन्होंने काम किया और अपनी वीरता और योग्यता से संकट के समय सिक्ख धर्म का

बडी योग्यता से नेतृत्व किया। वह उदार विचारों वाले और बडे सहनशील शासक थे। अपने अधीन मुसलमानों को उन्होंने अपने धर्म की पालना की पूरी स्वतन्त्रता दी हुई थी। उन्होंने हर मन्दिर साहिब को दुबारा बनाने और उसकी भव्यता के लिए उनका योगदान विशेष है। उनका अपना पुत्र न होने पर उनके भतीजे भाग सिंह को उनका उत्तराधिकारी और मिसल का सरदार माना गया। उसकी मृत्यु पर सन् 1801 मे फतेह सिंह मिसल का सरदार बना। जस्सा सिंह की तरह ही वह भी एक बडे प्रसिद्ध सिक्ख सरदार थे। अपने राज्य के आरभ मे ही रणजीत सिंह ने फतेह सिंह को अपना "पगडी पलटा भाई" बना लिया था। उनके प्रति फतेह सिंह को भी अपार श्रद्धा थी और उसने रणजीत सिंह के राज्य की स्थापना के लिये पूर्ण सहयोग दिया था। रणजीत सिंह की प्रसिद्ध लडाइयो मे फतेह सिंह अहलूवालिया शामिल होते रहे और रणजीत सिंह के उत्तर पश्चिमी सीमा की तरफ बढने के समय लाहौर मे रहकर देखभाल भी करते रहे। सन् 1837 मे फतेह सिंह की मृत्यु पर उनके पुत्र निहाल सिंह को राजगद्दी पर बिठाया गया। रणजीत सिंह के अधीन रहते हुए इस मिसल का विस्तार तो न हो सका परन्तु जो इलाके आरम्भ मे फतेह सिंह के अधीन थे वे उनके पास रहने दिये गये। लाहौर दरबार का अन्त होने पर भी कूरथला का अहलूवालिया घराना अग्रेजो के राज्य मे भी चलता रहा और सन् 1948 मे, भारत की स्वतत्रता के पश्चात्, पजाब के पुनर्गठन के समय पैप्सू मे शामिल कर लिया गया। उस समय कपूरथला के राजा जगत जीत सिह को पैप्सू का उप-राजप्रमुख नियुक्त किया गया था।

भंगी मिसल

कहा जाता है कि भगी मिसल की स्थापना पजवार (अमृतसर के निकट एक गाँव) के छज्जा सिह ने की थी। यह भी कहा जाता है कि छज्जासिह ने बन्दा बहादुर से "पाहुल" ग्रहण की थी और वह सिक्ख धर्म के प्रसिद्ध नेताओं के आदेशानुसार चलते थे। उन्होने माझा के हृष्टपुष्ट जाटो का एक दल सगठित किया था और उनके नेता बन गए थे। इस मिसल ने, छज्जा सिंह के एक प्रसिद्ध साथी भीम सिंह, जिस को छज्जा सिंह ने सिक्ख धर्म मे प्रवेश करवाया था, के अधीन बहुत प्रगति की थी। भीम सिंह पहले हर मन्दिर साहिब मे भग घोटने का काम करता था जिस के कारण इस मिसल का नाम ही 'भगी' अथवा भंग का सेवन करने वालो की मिसल प्रसिद्ध हो गया। भीम सिंह एक महान् सस्थापक और सचालक थे। उन्होने सन् 1739 मे नादिर शाह के पजाब पर आक्रमण का लाभ उठाया और इस मिसल की जन शक्ति और सम्पत्ति को काफी बढा लिया। उनका भतीजा हरी सिंह, जो भूप सिंह का बेटा था और जो वादनी के निकट पटोह गाँव का रहने वाला था, उनका उत्तराधिकारी बना। वह एक बहुत प्रसिद्ध सिपाही था और उसकी कमान मे भगी मिसल बहुत विशाल और प्रभावशाली बन गई। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि उस समय भंगी मिसल मे 20 हजार के लगभग सिपाही शामिल थे। उनके शक्तिशाली लीडर ने स्यालकोट, नारोवाल, चिन्यौट अथवा झग अपने अधीन कर लिये थे। सन् 1762 में उसने लाहौर के

गवर्नर खान उबैद से गुजरॉवाला पर आक्रमण के समय उससे बहुत सारा गोला-बारूद छीन लिया था। सिंध नदी के पार डेराजात (डेरा इस्माइल खा और डेरा गाजी खां) पर पहुँच कर भगियो ने वहाँ के मुसलमान सरदार को दण्ड दिया। हरि सिंह के एक सहयोगी मिलखा सिंह ने रावलपिंडी पर भी अधिकार कर लिया। इस तरह पश्चिमी और मध्य पजाब मे विशाल क्षेत्र भगियो के अधीन हो गया। उन्होंने जम्मू पर भी अपनी सत्ता जमा कर वहाँ के महाराजा रणजीत देव को अपने अधीन कर लिया। हरि सिंह भगी ने कन्हैया और रामगढिया मिसलो के साथ मिलकर मुसलमानो के राज्य कसूर पर भी आक्रमण किया और उस पर विजय प्राप्त की। हरि सिह के सबसे बडे पुत्र झण्डा सिंह ने भगी मिसल को इसके शक्ति के शिखर पर पहुँचाया। सन् 1766 मे उसने मुलतान और बहावलपुर पर आक्रमण करके उनको अपने अधीन कर लिया और अपनी सीमा पाकपटन तक बढा ली। सन् 1767 ईस्वी मे उसने अमृतसर मे नून मडी के पीछे एक कच्चे किले की नीव रखी जो कि भगियो के नाम से प्रसिद्ध हो गया। सन् 1771 ईस्वी मे उसने फिर मुलतान पर आक्रमण किया परन्तु इस बार भगी मुलतान और बहावलपुर की सयुक्त सेना से पराजित हो गये। सन् 1772 मे मुलतान के असतुष्ट गवर्नर शरीफ खा को अपने साथ मिलाकर भगियो ने मुलतान को अपने अधिकार मे कर लिया। अपनी बढी हुई शक्ति से उन्होने गुजरॉवाला के निकट रामनगर, जो कि चट्ठा मुसलमानो की राजधानी थी, पर आक्रमण करके वहाँ से प्रसिद्ध तोप "जमा-जमा" प्राप्त की। इस तोप को आमतौर पर भगियों वाली तोप भी कहा जाता था। सन् 1772 मे भंगियो ने जम्मू जाकर वहा के राजा रणजीत देव की उसके पुत्र के विरुद्ध झगडे मे सहायता की। उसका सुपुत्र बृजराजदेव अपने पिता का विरोध करता था और उसने सक्खो की कई मिसलो यथा नकई, कन्हैया और शुकचक्किया से भी सहायता प्राप्त की थी। इस समय मे झण्डा सिंह को एक महजबी द्वारा कन्हैयाओ ने सन् 1774 मे मरवा दिया। झण्डा सिंह के बाद उसके छोटे भाई गण्डा सिंह मिसल के सरदार बने। उसने अमृतसर किले को और सुदृढ किया। पठानकोट पर कब्जा करने के लिए गण्डा सिंह को कन्हैयो से युद्ध करना पडा क्योंकि इस स्थान को उन्होंने अपनी मिसल के एक प्रसिद्ध सदस्य तारा सिंह को दहेज मे दिया हुआ था। दीनानगर के स्थान पर लडाई हुई परन्तु गण्डा सिंह बीमार हो गया और उसका देहान्त हो गया। अपने नेता की मृत्यु पर भगीयो के हौसले टूट गये और उन्होने पठानकोट कन्हैयो के पास रहने दिया।

सन् 1773 मे भगी मिसल का शासन लाहौर और अमृतसर से लेकर मुलतान तक फैला हुआ था। लाहौर पर तीन भंगी सरदार लैहणा सिंह, गुजर सिंह और सोभा सिंह राज्य करते थे। भगी सरदारों में गुजर सिंह अधिक साहसी था और उसने द्वाबा चज और सिंध सागर के बहुत से भागों पर कब्जा कर लिया। भगी मिसल के महान् नेता छज्जा सिंह, हरि सिह, झण्डा सिंह और गण्डा सिंह के अधीन यह मिसल इतनी शक्तिशाली बन गई थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि सारे पजाब पर उसका

राज्य हो जाएगा। परन्तु कुछ लीडरो की अक्स्मात् और एक-साथ मौतो ने उनका प्रभाव बहुत कम कर दिया और उनके विरोधी शुक्रचक्किया और दूसरी मिसलो के सरदारो ने उसके पतन के लिए काफी जोड-तोड किये। चडत सिंह और महा सिंह को, जो शुक्रचक्किया मिसल के नेता थे, भगियो से विशेष ईर्ष्या थी। उन्होने इस मिसल के नेताओ को एक दूसरे के विरुद्ध लडा कर इसकी शक्ति को कम करने मे कोई कसर नही उठा रखी थी। रणजीत सिंह को भी भगी मिसल से ही सबसे ज्यादा खतरा था और उसने सबसे पहले भगियो को अपने रास्ते का रोडा समझ कर अपने अधीन करने की कोशिश की। सन् 1799 मे रणजीत सिंह ने भगी नेता चेत सिंह को, जिस का लाहौर के किले पर कब्जा था, जागीर देकर किला छोडने पर मना लिया था। सन् 1805 मे रणजीत सिंह ने बडी चतुराई से अमृतसर पर अधिकार करके वहाँ से भगियो को चले जाने पर राजी कर लिया था। उसने उस समय के नाबालिग भगी सरदार गुरदित्त सिंह और उसकी माता बीबी सुखा को जागीर देकर अमृतसर से बाहर भेज दिया था।

भगी मिसल के पतन के बहुत से कारण हैं जिनका जिक्र यहा अभीष्ट है —

1. भगी सरदारो की बहुत सी शाखाएँ बन गई थी जो कि पजाब के भिन्न-भिन्न भागो मे फैली हुई थी और एक तरह से बिल्कुल स्वतत्र हो गई थी। आपस मे उनका कोई सहयोग नही रह गया था। इसलिए उनकी शक्ति कई भागों मे बँट गई थी।

2 उनका शासन बहुत विशाल और दूर-दूर तक बिखरा हुआ था। अपने अधीन इलाको की सुरक्षा का योग्य प्रबन्ध उनके लिए कठिन हो गया था।

3 सिक्खो मे आपसी ईर्ष्या के कारण स्थिति और भी बिगड गई थी।

4 भगी मिसल का कोई भी इतना प्रसिद्ध और प्रभावशाली नेता नही था जो सब सिक्खो को अपने अधीन रखकर सभी मिसलों की शक्ति को काम मे ला सकता।

5. भंगी मिसल के इलाके एक दूसरे से जुडे हुए नही थे और उस समय यातायात के अच्छे साधन न होने से भी एक दूसरे से सहयोग करना बडा कठिन हो गया था।

6 भंगी मिसल के विरोधी हर समय उनके पतन के इच्छुक थे और उन्होने भगी सरदारो मे फूट डलवाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए लगातार प्रयत्न किये। उनके पतन मे शुक्रचक्किया मिसल सबसे प्रमुख थी।

फुलकिया मिसल

इस मिसल का नाम फूल, जो कि एक सधु जाट था, के नाम पर प्रचलित हुआ। फूल नाभा, पटियाला और जीन्द रियासतों के पूर्वज थे। ऐसा कथित है कि फूल को सिक्खो के सातवें गुरु हर राय (सन् 1645 से 1661) ने आशीर्वाद दिया था और उनके बारे मे यह भविष्यवाणी की थी, "इस वंश के सदस्य बहुत महान, प्रसिद्ध और समृद्ध बनेंगे। उनके उत्तराधिकारियो के घोडे जमुना से पानी पीयेंगे। उनको कई पीढ़ियो तक राज्य प्राप्त होगा और जितनी-जितनी वह गुरु की सेवा करेंगे उतना ही उनको सम्मान प्राप्त होगा।" इस परिवार को गुरु गोबिन्द सिंह ने भी आशीर्वाद

दिया था। उन्होने इस वश के प्रसिद्ध नेताओ और फूल के उत्तराधिकारी रामा और तिलोका को एक विशेष पत्र लिखा था। इस पत्र में जिस की तिथि 2 अगस्त, 1696 है, गुरु गोबिन्द सिंह ने भाई रामा को अपने बहुत निकट मानते हुए आदेश दिया था कि वह अपने घुडसवार साथियो समेत उनकी सहायता को चला आए। इसी पत्र मे गुरु गोबिन्द सिंह ने पटियाला घराने के बारे मे लिखा था "तेरा घर सो मेरा आसे"। ये विशेष शब्द फूल वस के लिए बहुत सम्मानजनक समझे जाते है। (गुरुगोबिन्द सिंह का यह ऐतिहासिक हुकमनामा अभी तक पटियाला नरेश के पास है और वहाँ के किले मे प्रसिद्ध बुजुर्ग बाबा आला सिंह की गुरु से सबधित दूसरी वस्तुओ के साथ रखा हुआ है)।

फूल वश के प्रसिद्ध नेता बाबा आला सिंह (सन् 1691 से 1765) हुए है। उन्होने अपने जीवन काल मे मालवा खड मे अपनी शक्ति को बढाकर बहुत से इलाके अपने अधीन कर लिये थे। वह फूल मिसल के सचालक के रूप मे काम करते रहे। परन्तु मालवा मे स्थित होने के कारण वह अपनी स्वतत्र नीति पर चलते रहे। उनका सहयोग दूसरी मिसलों के साथ बहुत कम रहा। वह दल खालसा के सदस्य भी नही माने जाते थे और न ही उसके अधीन थे।

आला सिंह ने सिक्खो के मुगलो और अफगानो के विरुद्ध संघर्ष मे भाग लिया था और उस समय की गडबड वाली स्थिति से लाभ उठाकर अपने आपको और अधिक शक्तिशाली और समृद्ध बना लिया था। सन् 1757 मे उन्होने अब्दाली के सुपुत्र तैमूरशाह, जो कि दिल्ली से बहुत सी धन-सम्पत्ति लूट कर लाहौर ले जा रहा था, को सनौर के स्थान पर लूटा था। आला सिंह ने सरहिन्द के सूबेदार अब्दुल समुद्ध खा को मलहार राव मराठा के सन् 1758 मे पजाब मे आने पर अपने से सहायता लेने पर मजबूर किया था। आला सिंह ने मराठो की खाद्य और चारा से सहायता की थी जब कि वे सन् 1761 मे पानीपत की पहली लडाई के समय दिल्ली के आसपास के इलाके मे ठहरे हुए थे। अब्दाली के विजयी होने पर आला सिंह ने अफगानो को चार लाख रुपये नजराना दिया था और वह अहमदशाह अब्दाली को पानीपत से लौटते हुए सरहिन्द मे मिला था। अहमदशाह अब्दाली ने आला सिंह को सम्मानित करके उनको एक स्वतत्र राजा मान लिया था। यह उसकी सिक्खों को फाडने की एक चाल थी। दल खालसा ने आला सिंह के इस सहयोग को पसद नही किया था। परन्तु जस्सा सिंह अहलूवालिया जो कि दल खालसा के सर्व संचालक थे, आला सिंह के मित्र थे और उन्होने बीच मे पडकर आपस मे सुलह करा दी। सन् 1762 मे बड़ा घल्लूघारा (कुप रहीरा के स्थान पर) के समय आला सिंह ने सिक्खो की कोई सहायता नही की थी और वह बरनाला से चला गया था जहाँपर कि अहमदशाह अब्दाली ने अधिकार कर लिया था। आला सिंह के ऐसा करने पर सिक्खो मे उसके विरुद्ध बहुत रोष पैदा हो गया था। अब्दाली के मन मे भी आला सिंह के बारे में कुछ ऐसी बातें डाल दी गईं कि वह मन से उसका हितैषी नही है। इस काम में नवाब मलेरकोटला, रायकोट के मुसलमान सरदार और सरहिन्द के गवर्नर का भी हाथ

था। ऐसी स्थिति मे आला सिंह को बन्दी बना लिया गया और ऐसा कहा जाता है कि उनको अपने केश शहीद कराने का हुकम दिया गया। परन्तु उन्होंने उसके बदले मे एक लाख 25 हजार रुपये देकर अपने केश बचा लिये और पाँच लाख रुपये नजराना मालवा के इलाके के लिये देना मान लिया। आला सिंह ने बाकी सिक्ख सरदारो के साथ सन् 1764 मे सरहिन्द पर आक्रमण के समय भाग लिया था और वहाँ के गवर्नर जैन खा को पराजित करके मार दिया था।

अफगानो की पजाब मे शक्ति कम होने पर आला सिंह ने अपने आपको और भी समृद्ध बना लिया और दक्षिण पश्चिम की ओर से उत्तर की तरफ बढ कर पटियाला मे एक नये किले की नीव रख कर एक नये शहर का निर्माण किया। किला और शहर का निर्माण उसके देहान्त से कुछ ही समय बाद सम्पन्न हुआ था। आला सिंह ने अपनी आयु मे ही पटियाला राज्य को काफी विशाल और शक्तिशाली बना दिया था। वह बहुत लोकप्रिय शासक था और सत स्वभाव और उदार प्रवृत्ति के लिए बहुत प्रसिद्ध था। अब भी बरनाला मे उनके किले मे उनके चूल्हे ऐतिहासिक माने जाते हैं। कहते है कि वहाँ पर सर्वसाधारण को लगर प्राप्त होता था।

आला सिंह की मृत्यु पर उनके पौत्र अमर सिंह (सन् 1765 से 1782) पटियाला की गद्दी पर बैठे। उन्होंने पटियाला के इलाके को मनीमाजरा, कोटकपूरा, सैफाबाद और भटिंडा की ओर बढाया। अहमदशाह अब्दाली ने अपनी पुरानी नीति के अनुसार उनको भी राजा-ए-राजगान की उपाधि दी थी और अपने नाम पर सिक्का चलाने की आज्ञा भी। अमर सिंह के बाद उनके सात साल के पुत्र साहिब सिंह को गद्दी पर बिठाया गया। वह बहुत कमजोर शासक सिद्ध हुआ और अपनी रानी आस-कौर के साथ झगडे मे सन् 1806 मे महाराजा रणजीत सिंह को पटियाला के मामलो मे हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया। परन्तु अग्रेजो के विरोध के कारण रणजीत सिंह को मालवा का इलाका छोडना पडा और सन् 1809 मे अमृतसर की सधि के अनुसार सतलुज को महाराजा रणजीत सिह और अग्रेजों की सीमा बना दिया गया। इस प्रकार फुलकियाँ रियासते सुरक्षित होकर अग्रेजो के अधीन सन् 1947 तक चलती रही। भारत को स्वतत्रता मिलने के बाद सन् 1948 मे उनका पुनर्गठन करके उनके क्षेत्र पैप्सू राज्य मे शामिल कर दिए गए।

शुक्रचक्किया मिसल

इस मिसल का नाम गुजरावाला के निकट डेढ कोस के फासले पर एक छोटे-से ग्राम शुक्रचक्क के नाम पर पडा था। इस मिसल के सबसे प्रसिद्ध नेता का नाम बुढा था जिस को सिक्ख धर्म मे पाहुल लेकर प्रवेश करने पर बुद्ध सिंह का नाम दिया गया था। वह बंदा बहादुर के पतन के बाद सिक्खो के जत्थों के सरदारो मे प्रसिद्ध माना जाता था। उसके दो पुत्र नोध सिंह और चदा सिंह थे। नोध सिंह की शाखा रणजीत सिंह से सबध रखती है और चदा सिंह के उत्तराधिकारी सधावालिया कहलाने लगे थे। इस मिसल के सरदार की बाबत कहा जाता है कि पहले उसने फैजलपुरिया मिसल के सरदार कपूर सिंह के अधीन काम किया था और अहमदशाह

अब्दाली के आक्रमण के समय से उनके साथ ही रहा था। सन् 1752 मे नोध सिह की मृत्यु के उपरान्त उसके बडे लडके चडत सिंह मिसल के सरदार बने। उसके बारे मे यह मशहूर था, "वह बहुत साहसी जाट सरदार था जिस ने सिक्खो के अफगानो के विरुद्ध सघर्ष के आरम्भ मे बहुत अच्छा काम किया था।" चडत सिंह ने फैजलपुरिया मिसल से अलग होकर शुक्रचक्किया मिसल का विस्तार किया। उसकी शादी एक प्रसिद्ध पडौसी सरदार अमीर सिंह की सुपुत्री से होने पर उसको काफी धन और सम्पत्ति मिले। उसने अकेले ही मुसलमानो के विरुद्ध सफलतापूर्वक सघर्ष किया और सन् 1761 मे एमनाबाद के मुसलमान फौजदार से काफी लूट प्राप्त की और उससे अगले साल (सन् 1762 मे) गवर्नर लाहौर ख्वाजा उबैद के गुजराँवाले पर आक्रमण के समय उसको पराजित करने मे बढचढकर हिस्सा लिया। चडत सिंह ने अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण से भी बहुत धन लूट मार के तौर पर प्राप्त किया था। सन् 1774 मे चडत सिंह जम्मू पहुँचा जहाँ पर उसने बृजराज देव की उसके पिता रणजीत देव के विरुद्ध घरेलू लडाई मे सहायता की। रणजीत देव ने भगी सरदार झण्डा सिंह को अपनी सहायता के लिये बुलाया हुआ था। इसी साल सरदार चडत सिंह की अपने हाथ मे पकडी बन्दूक की नाली फट जाने से मृत्यु हो गई और उसके 10 साल के सुपुत्र महा सिंह उसके उत्तराधिकारी बने। छोटी आयु मे महासिंह का कामकाज उसकी माता देसा करती थी। उनके बारे मे भी ऐसा प्रसिद्ध है, "वह बहुत चतुर और कार्यकुशल सरदारनी थी।" महा सिंह ने गुजराँवाला मे अपने किले को, जो कि अब्दाली ने गिरा दिया था, दोबारा बनवाया। महासिंह की शादी जींद नरेश गजपत सिंह की सुपुत्री बीबी राजकौर से (जिनको उनके मैके मालवा मे होने के कारण माई मलवैण भी कहा जाता था) से हुई थी। उनकी कोख से सन् 1780 मे रणजीत सिंह का जन्म हुआ था। कई लोगो का कथन है कि रणजीत सिंह का जन्म उनके ननिहाल मे बडरूखा के स्थान पर हुआ था। यह सम्भवत ठीक नही है क्योकि काफी खोज के बाद यह अब प्रमाणित माना जाता है कि रणजीत सिंह का जन्म गुजराँवाला मे ही हुआ था।

महा सिंह ने अपने जीवन काल मे अपने राज्य का काफी विस्तार किया। उन्होने रसूल नगर पर अधिकार कर लिया जो कि पहले चट्ठा मुसलमानो के अधीन था और उसका नाम रामनगर रख दिया। इसी तरह से एक और स्थान अलीपुर पर अधिकार करके उसका नया नाम अकालगढ रख दिया। महासिंह ने भगी मिसल के अधीन पिण्डी भट्टियाँ और सादीवाल के इलाके से काफी लूट का माल प्राप्त किया। महासिंह ने स्यालकोट के निकट कोटली लुहारां को अपने अधीन कर लिया। यह स्थान शस्त्र बनाने के लिए प्रसिद्ध था। महासिंह ने इस इलाके के सरदारों को विचार-विनिमय के लिए बुलाया और उनको बदी बना लिया।

महासिंह ने जम्मू में चल रहे घरेलू झगडे से भी फायदा उठाया। उन्होने अपने विरुद्ध कन्हैया और भगी मिसलों से भी बदला लेना चाहा। इसलिये वह बृजराज-

देव की सहायता के लिए वहाँ गये थे। कुछ काल बाद महासिंह के सुपुत्र रणजीत सिंह की सगाई माई सदाकौर की सुपुत्री बीबी महताब कौर से हुई। माई सदाकौर सरदार गुरबख्श सिंह कन्हैया की विधवा थी।

इस रिश्ते से जो सन् 1785 ई० मे हुआ दोनो मिसलों के मेल हो जाने पर महासिंह को अपना प्रभाव और इलाके बढाने मे काफी सहायता मिली। उसने गुजरात के भगी सरदारो के विरुद्ध कारवाई की। सन् 1792 मे महा सिंह ने गुजरात को घेर लिया परन्तु वह वहाँ सख्त बीमार हो गया और गुजराँवाला पहुँचने पर उसका इसी साल देहान्त हो गया।

रणजीत सिंह 12 वर्ष की आयु मे शुक्रचक्किया मिसल का सरदार बन गया। बेशक शुक्रचक्किया मिसल अपेक्षाकृत छोटी थी परन्तु इसके नेताओ ने अपनी विशेष योग्यता का प्रमाण दिया जिस कारण बाकी सरदारो मे उनका काफी सम्मान था। रणजीत सिह मे ऐसे कई गुण थे जिनके कारण वह अपने पूर्वजो से भी ज्यादा योग्य साबित हुआ। उसने बाल्यकाल से ही अपनी महानता का प्रमाण दिया और युद्ध कौशल और अपने निजी गुणो से बहुत जल्दी सबसे प्रसिद्ध सरदार बन गया। उसने लिखने-पढने की अपेक्षा अपना सारा समय युद्ध के कामो मे ट्रेनिंग लेने मे लगाया। अपने पिता की मृत्यु पर छोटी उम्र मे भी वह एक बहुत योग्य नेता सिद्ध हुआ। कन्हैया मिसल से अपना रिश्ता होने के कारण माई सदा कौर की उसको बहुत सहायता मिली और उसने अपनी योग्यता से बहुत थोडे काल मे ही अपने आप को एक छोटे-से मिसल के सरदार से आरम्भ करके सारे पजाब का महाराजा बना लिया। सन् 1799 मे उसने लाहौर पर, जो कि प्राचीन काल से ही पजाब का राजनीतिक केन्द्र था, अधिकार कर लिया।

प्रश्न

1, Trace the fortunes of the Bhangı Mısl under Sardar Harı Sıngh and Jhanda Sıngh

   भगी मिसल ने सरदार हरि सिंह और झण्डा सिंह के समय मे जो उन्नति की उसका वर्णन कीजिए।

2 Wrıte a note on the career and achıevements of Raja Ala Sıngh of Patıala.

   पटियाला के राजा आला सिंह के जीवन-चरित्र और सफलताओ पर एक टिप्पणी लिखिए।

3 Sketch the hıstory of the Bhangı Mısl upto 1799.

   भगी मिसल का सन् 1799 तक का इतिहास लिखिए।

4. Write an analytical biographical note on any one of the Sıkh Sardars of the 18th Century (i) Nawab Kapur Singh, (ıı) Jassa Sıngh Ahluwalia, (iii) Maharaja Ala Singh.

18वी शताब्दी के इन सिक्ख सरदारो मे से किसी एक की जीवनी पर विश्लेषणात्मक टिप्पणी लिखिए (1) नवाब कपूर सिंह, (ii) जस्सा सिह अहलूवालिया, (iii) महाराजा आला सिंह ।

5. Write a short account of the political history of the Bhangi Misl in the Panjab during the later half of the 18th Century.

   पजाब मे भगी मिसल के 18वी शताब्दी के उत्तरार्ध के राजनीतिक इतिहास का सक्षिप्त विवरण दीजिए ।

6. Sketch briefly the career of Jassa Singh Ramgarhia.

   जस्सा सिंह रामगढिया का सक्षिप्त जीवन-चरित्र लिखिए ।

7. Describe briefly the political history of Shukerchakia Misl in the Panjab during tne period 1752—1793

   पजाब मे वर्ष 1752–93 की अवधि के दौरान शुकचक्किया मिसल के राजनीतिक इतिहास का वर्णन कीजिए ।

8. Trace the rise and fall of the Bhangi Misl.

   भगी मिसल के उत्थान और पतन के कारणों का वर्णन कीजिए ।

9. Write a detailed note on the work and achievements of Jassa Singh Ahluwalia.

   जस्सा सिंह अहलूवालिया के कार्यो और सफलताओं पर एक सविस्तर टिप्पणी लिखिए ।

19

रणजीत सिंह के अधीन पंजाब का एकीकरण

पहला चरण (सन् 1806 ई० तक) : रणजीतसिंह के सत्ता प्राप्त करने से पूर्व पंजाब की राजनीतिक स्थिति, मिसलों को अपने राज्य में मिलाना एवं दूसरे राज्यों पर विजय प्राप्त करना।

18 वी शताब्दी के मध्य से पंजाब मे मुगल साम्राज्य के पतन और सिक्खो के अफगानों के विरुद्ध लगातार सघर्ष के कारण पजाब के भिन्न-भिन्न भागों मे छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य बन थे। सिक्खो की 11 मिसलों जो सतलुज के पश्चिम मे थी और बाहरवी सतलुज के पूर्व मे, ने पजाब के अधिकाश भागो पर अपना राज्य स्थापित करने मे सफलता प्राप्त की। पजाब के पश्चिम और दक्षिण की ओर छोटे और बडे मुसलमान राज्यो की दो पक्तिया थी, एक भीतरी, दूसरी बाहरी। भीतरी पक्ति जो कि लाहौर के निकट थी मे झग, पाकपटन, शाहपुर, जेहलम, साहीवाल (मिण्टगुमरी) और कसूर के छोटे-छोटे मुसलमान राज्य थे जो कि पजाब मे रहने वाले पठानो ने स्थापित किए थे।

मुसलमान राज्यो की दूसरी ओर बाहरी पक्ति में कश्मीर, हजारा, पेशावर, डेरा इस्माइलखा, डेरा गाजी खा और मुलतान शामिल थे। छोटी-छोटी रियासतो (राज्यो) मे पजाब की बाँट 1739 मे नादिर शाह के आक्रमण के पश्चात् और अहमदशाह अब्दाली के 9 आक्रमणो के कारण हुई थी। आरम्भ मे ये राज्य (रियासते) अब्दाली या उसके उत्तराधिकारियो के अधीन थे। परन्तु ये राज्य अफगानो का पजाब पर अधिकार का अन्त होने पर स्वतत्र बन गये थे।

सिक्ख मिसलों ने मुगलो और अफगानो के विरुद्ध घोर सघर्ष के उपरात राज-नीतिक सत्ता प्राप्त की थी और भिन्न-भिन्न भागो पर अपना राज्य कायम कर लिया था। इस तरह से पजाब मे अनेक निरकुश राज्य स्थापित हो गये थे जो कि किसी केन्द्रीय शक्ति के अधीन नही थे और न ही वे किसी किस्म की सघीय व्यवस्था कायम कर सके थे। इस स्थिति की तुलना हम इग्लैड की नारमन आक्रमण से पहले 'हैप्टारकी' से कर सकते है। या इसको "जिगसा पज़ल" अर्थात् भूल-भुलियाँ भी कह सकते है। रणजीत सिंह के पजाब के प्रमुख शासक बनने से पहले उसको इस प्रदेश के छोटे-छोटे मुस्लिम और गैर मुस्लिम राज्यो मे बँटे हुए होने से बडा लाभ हुआ। ये सब राज्य आपस मे किसी किस्म का सहयोग नही रखते थे और इनका कोई अच्छा संगठन नही था। इसके अतिरिक्त इन मे आपस मे ईर्ष्या और द्वेष इतने ज्यादा थे कि उनके लिए किसी भी कारवाई के लिए एकमत होना बहुत कठिन था। रणजीत सिंह के लिए यह बहुत अच्छा मौका था। उसने अपनी कूटनीति से एक-एक करके उन सब को

अपने अधीन करने की योजना बनाई । धीरे-धीरे उसने मिसलो को हडप करने के बाद बडी चतुराई से मुसलमान राज्यो के विरुद्ध कारवाई करके उनका धीरे-धीरे अन्त कर दिया। पजाब मे आने वाले एक यात्री फौरैस्टर ने ठीक ही कहा था कि उस समय के पजाब की राजनीतिक अवस्था "किसी शक्तिशाली नेता के उभरने के लिए बहुत उपयुक्त थी जोकि पजाब मे एक दूसरे के विरुद्ध काम कर रहे राज्यो को अपने अधीन करके वहा पर अपनी ध्वजा फहरा सके "।

रणजीत सिंह का उत्थान · रणजीत सिंह के पिता महा सिंह की मृत्यु 27 साल की आयु मे हुई थी। इस तरह रणजीत सिह की आयु उस समय केवल 12 वर्ष की थी। जब उसने शुक्रचक्किया मिसल की बागडोर सम्भाली तभीसे उसने उस समय की राजनीतिक स्थिति से लाभ उठाकर सारे पजाब को अपने अधीन करने का महान कार्य शुरू कर लिया था। अहमदशाह अब्दाली के पौत्र जमानशाह ने सन् 1798 मे पजाब पर आक्रमण किया परन्तु काबुल मे गडबड होने के कारण उसको तत्काल स्वदेश लौटना पडा। जल्दी मे काबुल की तरफ लौटते हुए जेहलम पार करते समय जमानशाह की कुछ तोपे दरिया मे बाढ के कारण वहा रह गई थी। रणजीत सिंह ने इन तोपो को निकलवा कर जमानशाह के पास भेज दिया। जमानशाह ने प्रसन्न होकर इस सेवा के बदले रणजीत सिंह को लाहौर का राज्य प्राप्त करने का अधिकार लिख कर दे दिया । बाकी सरदारो के मुकाबले मे यह बाल रणजीत सिंह के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध हुई क्योकि इस पत्र के आधार पर उसने लाहौर पर राज्य करने का नैतिक अधिकार प्राप्त कर लिया था।

रणजीत सिंह का लाहौर पर कब्जा (सन् 1799) लाहौर के नागरिक उस समय लाहौर के भगी शासक से असतुष्ट थे। उन्होने गुप्त रूप से रणजीत सिंह को शहर पर अधिकार करने के लिए निमत्रण भेजा। यह बात उल्लेखनीय है कि रणजीत सिंह को निमत्रण लाहौर के प्रसिद्ध मुसलमान चौधरियो की ओर से भेजा गया था। इसमे मुहम्मद आशिक, मोहम्मद सावरी, मैहर मोहकमदीन से प्रसिद्ध नागरिक शामिल थे । उन्होने लाला हाकिम राय हकीम द्वारा एक पत्र रणजीत सिंह की सेवा मे भेजो था। लाहौर शहर की अधिक अवधि उस समय के मुसलमान नागरिको की थी। इसलिए ऐसा उचित ही था कि उसको लाहौर पर कब्जा करने के लिए मुसलमानो से निमत्रण मिलता ।

रणजीत सिंह रामनगर से सिपाही लेकर मजीठा की ओर चला। उसका मन्तव्य यह था कि भगी सरदारो को मालूम न हो सके कि वह लाहौर पर चढाई करना चाहता है। मजीठा से रणजीत सिंह शाहबलावत पहुँचकर मस्जिद वजीरखां और अनारकली की तरफ चल पडा। उसने ऐसा भी दिखावे के लिए किया कि वह रावी को किश्तियों से पार करके आना चाहता था। इस प्रकार लुहारी गेट की दिशा मे जाते हुए वह दिल्ली दरवाजे से शहर मे प्रवेश करने में सफल हो गया जो कि पूर्व की दिशा मे था। शहर के चौधरियों ने, जैसा कि रणजीत सिंह के साथ पहले ही निश्चित हो चुका था, रात को नगर के दरवाजे खोल दिए। किले मे स्थित भंगी

सरदार चेत सिंह ने रणजीत सिंह का असफल विरोध करने की चेष्टा की । 8 जुलाई, 1799 को रणजीत सिंह अपनी सेना, बीबी सदाकौर और दीवान धनपतराय समेत लाहौर मे दाखिल हो गया । उन्होने नागरिको को किसी किस्म का कोई कष्ट नही होने दिया बल्कि चेत सिंह को भी प्रेरित किया कि वह जागीर के बदले शहर को छोडकर चला जाए । इस प्रकार रणजीत सिंह का लाहौर पर नैतिक और वास्तविक अधिकार हो गया । रणजीत सिंह ने अपनी योग्यता से यह सिद्ध कर दिया कि वह बहुत लोकप्रिय शासक है और हिन्दू-मुसलमान नागरिक उससे प्रसन्न है । लाहौर पर अधिकार का स्पष्ट अर्थ यह था कि रणजीत सिंह न केवल पजाब के प्रमुख शहर बल्कि पजाब के परम्परागत राजनीतिक केन्द्र पर अधिकार करने मे सफल हो गया था । इस तरह उसके उत्थान का प्रारभ हुआ और यह स्पष्ट हो गया कि पजाब मे अपना राज्य स्थापित करने मे उसको सब से अधिक अधिकार प्राप्त हो गया ।

भसीन की लड़ाई (सन् 1800) . रणजीत सिंह का लाहौर पर अधिकार पजाब मे दूसरे सिक्ख और मुसलमान शासको के लिए चेतावनी था । सब ने अपने लिए खतरा महसूस किया और उस समय के चार सुप्रसिद्ध शासक अर्थात् गुजरात का साहब सिंह भगी, जस्सा सिह रामगढिया, वजीराबाद के जोध सिंह और कसूर के शासक निजामुद्दीन ने मिलकर रणजीतसिंह के विरुद्ध एक सघ बना लिया । अमृतसर वाले गुलाब सिंह भगी उन सब के नेता माने गए । दोनो ओर की सेनाए अमृतसर से आठ कोस के फासले पर भसीन के स्थान पर एक दूसरे के मुकाबले पर दो मास तक पडी रही परन्तु कोई निर्णायिक युद्ध न हो सका और इस बीच केवल छोटी-मोटी भिडन्ते ही होती रही । इतने मे रणजीत सिह के विरोधी सरदारो मे ईर्ष्या के कारण फूट पड़ गई । उन सब के सरदार गुलाब सिंह की अधिक शराब पीने से मृत्यु हो गई । इस तरह अपने आप ही विरोधी दल छिन्न-भिन्न हो गया । रणजीत सिंह के लिए यह समय बहुत चिन्ता का था क्योकि अभी तक उसकी शक्ति बहुत सीमित थी और उसको सहायता के लिए भी कोई विशेष सहारा नही था । उसका भरोसा केवल अपनी चतुराई पर ही था जिसका उसने सघ तोडने के लिए इस्तेमाल किया । इससे न केवल रणजीत सिंह मे बहुत आत्मबल पैदा हो गया अपितु उसका लाहौर पर अधिकार पक्का हो गया और उसको पजाब का होने वाला नेता मान लिया गया ।

राजतिलक . भसीन की विजय के बाद रणजीत सिह ने लाहौर लौट कर अपने साथियो को इनाम दिया और अपने राज्याभिषेक का प्रबन्ध किया । राजतिलक प्राप्त करने पर उसने अपने लिए 'सरकार' की साधारण सी उपाधि स्वीकार की जिस का भाव यह था कि वह केवल अपने आपको सर्वोच्च शासक समझते थे और उन्होने मुगलों की भाँति अपने लिए बडे-बड़े खिताब ग्रहण नही किये । उन्होने अपनी मुद्रा पर भी अपने नाम के स्थान पर नानक और गोबिन्द सिंह का आशीर्वाद अकित करवाया ।

छोटे-छोटे राज्यों का दमन . रणजीत सिंह का राजतिलक सन् 1801 मे सम्पन्न हुआ और उसके उपरांत उसने आसपास के छोटे-छोटे राज्यों के विरुद्ध

कारवाई आरम्भ की। सब से पहले उसने जम्मू पर अपना अधिकार स्थापित किया। वहा से लौटते समय नारोवाल और मीरोवाल पर अधिकार किया और अकालगढ के सरदार दल सिंह को, जिसने गुजरात के साहिब सिंह की सहायता की थी, पराजित किया।

गुजरात के साहिब सिंह और कसूर के निजामुद्दीन के विरुद्ध कारवाई रणजीत सिंह बहुत उत्सुक था कि वह प्रसिद्ध विद्रोहियो और प्रतिद्वन्द्वियो को उचित दण्ड देने मे समर्थ हो। इसलिए उसने उनकी शक्ति कम करने के लिए प्रयत्न शुरू किये। निजामुद्दीन के विरुद्ध सरदार फतेह सिंह कालेयावाला को काफी सेना देकर भेजा। इस पर उसने अपने भाई को जमानत के रूप मे रणजीत सिह के दरबार मे भेजकर सुलह कर ली और जहा तक साहिब सिंह का सबध है, वह गुजरात से भाग गया।

फतेहसिंह अहलुवालिया से मित्रता कपूरथला के फतेह सिंह अहलूवालिया को रणजीत सिंह ने बडी चतुराई से अपना मित्र बना लिया। सन् 1802 मे वह उसको मिलने के लिए फतेहाबाद गया। अहलूवालिया सरदार उस समय वहा नही था। लेकिन उसकी माता ने रणजीत सिंह को बुलवा भेजा। इस के परिणामस्वरूप दोनों ने एक दूसरे के साथ मित्रता रखने का वचन दिया और एक दूसरे से पगडी बदली अर्थात् वे अनन्य मित्र और भाई बन गए। आगे चल कर इस मित्रता से रणजीत सिंह को बहुत लाभ हुआ। कहा जाता है कि

1 दोनो ने गुरु ग्रन्थ साहिब के सामने मित्रता की शपथ ली और परस्पर आश्वासन दिया कि एक दूसरे के साथ मित्रता और शिष्टाचार का व्यवहार करेगे।

2. एक का शत्रु दूसरे का भी शत्रु समझा जाएगा।

3. एक दूसरे के इलाके मे वे बगैर रोकटोक जा सकेंगे।

4 जो अन्य इलाके अधीन किये जाएँगे, उनमें से एक दूसरे को उचित हिस्सा देंगे।

अहलूवालिया सरदार की मित्रता से रणजीत सिंह न केवल एक तरह से निश्चिन्त हो गया बल्कि उसको एक ऐसे व्यक्ति की सेवाएँ भी प्राप्त हो गईं जो कि सिक्खो मे अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध था। इसके परिणामस्वरूप ही रणजीत सिंह सारे पजाब को अधीन करने का प्रोग्राम अधिक जोर से चला सका। दोनों ने अपने साधन इकट्ठे किये और इस तरह पंजाब मे शुक्रचकिया, कन्हैया और अहलूवालिया मिसलों की एकता स्थापित हो गई।

डसका, चिन्यौट आदि की विजय : रणजीत सिह ने उत्तर पश्चिम की दिशा में फतेहसिंह अहलूवालिया के साथ मिलकर आक्रमण किया। डस्का को थोड़े से विरोध के बाद जीत लिया गया और वहा पर नया थाना बिठा दिया गया। इसी तरह चिन्यौट जिस पर जस्सा सिंह के सुपुत्र कर्मसिंह का राज्य था को भी जीत लिया गया। इस नये इलाके मे से भट्टिया और ढाना फतेहसिंह अहलूवालिया को जागीर के तौर पर उसके हिस्से मे दिये गये।

कसूर पर आक्रमण. रणजीत सिंह कसूर को, जो कि लाहौर से केवल 20

मील दूर था और जिसका शासक उसके विरुद्ध कारवाई कर चुका था, अपने लिए खतरा समझता था। आपसी सुलह होते हुए भी रणजीत सिंह ने वहा के पठान शासक पर इल्जाम लगाया कि उसने शुक्रचक्किया ऊँटो पर कब्जा कर लिया था। कसूर ने बडी रकम नजराने के रूप मे देकर अपनी जान छुडाई।

लाहौर के आसपास के इलाके को अपने अधीन करने के बाद रणजीत सिंह ने जालधर द्वाब की ओर बढना शुरू किया। इस इलाके मे उसका जाने का उद्देश्य वहा से धन प्राप्त करना और इसको अपने अधीन करना था। कारण कि यह पजाब मे सबसे उपजाऊ इलाका माना जाता था। जालन्धर द्वाब पर अधिकार करके उस मे से फगवाडा का स्थान फतेह सिंह अहलूवालिया को दे दिया गया। साहीवाल और झंग पर रणजीत सिंह ने आक्रमण करके उनको अपने अधीन कर लिया। वहाँ के मुसलमान शासक अभी तक अपने आपको काबुल के अधीन ही मानते थे और उन्हो ने अहमदशाह के आक्रमणो मे अफगानो की विशेष सहायता की थी।

उपर्युक्त इलाके पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद रणजीत सिंह रावलपिण्डी की ओर पोठोहार प्रदेश की तरफ बढा। उसने जेहलम, चिनाब और रावी के बीच के इलाके जिनको "बार" कहा जाता था अपने अधीन कर लिए।

संसारचन्द कटोच के विरुद्ध कारवाई . रणजीत सिंह की सास सदाकौर के कुछ इलाके कॉंगडा के साथ लगते थे। ससारचन्द और नूरपूर के राजा ने मिलकर सदाकौर के विरुद्ध कारवाई करके उसको पराजित कर दिया। रणजीत सिंह अपनी सास की सहायता के लिए पहाड की तरफ गया और उसने ससारचन्द से बजवाडा प्राप्त कर लिया।

अग्रेजों के दूत यूसफअली का रणजीतसिंह को मिलना . इसी समय अग्रेजों ने कुछ उपहार देकर अपने दूत यूसफअली को रणजीत सिंह के पास भेजा। दोनो की भेंट हुई और एक दूसरे को उपहार देकर शुभकामनाएं दी गईं। इससे अधिक कोई राजनीतिक सबध उनके बीच उस समय स्थापित नही हुआ। अग्रेजो का उद्देश्य उस समय केवल पजाब की तात्कालिक स्थिति को जानना था और यहा के प्रसिद्ध नेता रणजीत सिंह से मित्रतापूर्ण सबध स्थापित करना था।

मुलतान पर आक्रमण (सन् 1803) : पूर्व और पश्चिम मे सुरक्षा प्रबन्ध करने के पश्चात् रणजीत सिंह ने पजाब मे मुसलमानो के सब से बडे राज्य मुलतान की ओर ध्यान दिया। उसने अपनी शक्ति भी इतनी बढा ली थी कि उसका साहस हो सका कि वह मुलतान के नवाब मुजफ्फरखा से लोहा ले सके। रणजीत सिह को यह ज्ञान था कि वह एक ही आक्रमण मे मुलतान जैसे बड़े राज्य को अपने अधीन नही कर सकेगा। इसलिए उसने यह नीति अपनाई कि उसको धीरे-धीरे कमजोर कर दिया जाए और वहा से धन प्राप्त करके अपनी शक्ति बढा ली जाए। आरम्भ मे उसने यह उचित समझा कि नवाब को अपनी प्रभुसत्ता मानने पर राजी कर लिया जाए। रणजीत सिंह ने प्रथम अभियान मे धन प्राप्त करने के सिवाए न तो ज्यादा देर

ठहरना उचित समझा न ही अपनी शक्ति को इस कार्य मे लगाया । वह यह भी नही चाहता था कि सब मुसलमान राज्य उसके विरुद्ध हो जाए ।

अमृतसर पर अधिकार (सन् 1805) अमृतसर सिक्खो के लिए बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है । यह उनके धर्म का केन्द्र माना जाता था । इस के इलावा अमृतसर को सिक्ख गुरुओ ने व्यापार का केन्द्र भी बनाया था , परन्तु अमृतसर की विशेष स्थिति यह भी थी कि इस धर्म स्थान पर बहुत सी मिसलो का साझा अधिकार समझा जाता था । इसके कई भाग जुदा-जुदा सरदारो के अधीन थे और उनको कर भी वैसे ही देते थे । रणजीत सिंह ने अमृतसर को अपने अधीन करने के लिए बड़ी चतुराई से कारवाई की । वह नही चाहता था कि सब सरदारो को अपने अधीन कर लिया जाए । इसलिए अमृतसर को अपने अधीन करने मे उसने जल्दी नही की थी । कुछ इतिहासकारो ने लिखा है कि रणजीत सिह ने अमृतसर को सन् 1802 मे प्राप्त कर लिया था पर यह वास्तविकता नही है ।

उस समय मुख्यत: अमृतसर पर भगी मिसल का अधिकार था और गुलाबसिंह भगी की मृत्यु के बाद उसके छोटी आयु के लडके गुरदित्त सिंह के अधीन समझा जाता था । परन्तु उसका प्रबन्ध गुलाब सिंह की विधवा माई सोखा चलाती थी । रणजीत सिंह ने उसके कुछ कर्मचारियो मे फूट डलवाकर अपने लिये निमत्रण प्राप्त किया । कहा जाता है कि भगियो के कार्यकर्ता कमालुद्दीन और सतोख सिंह मे मतभेद हो गया था । उसी समय सराफ अरूढमल जो कि भगियो के कटडे मे रहता था ने अधिक कर न देने के कारण अपना निवास स्थान कन्हैयाओ के कटडे में बदल लिया और शेख कमरूद्दीन के द्वारा रणजीत सिंह को निमत्रण दिया । अरूढमल महाराजा को मिलने के लिए लाहौर आया और उन्होने अमृतसर पर अधिकार करने की योजना बनाई । माई सोखा और गुरदित्त सिह भगियो के किले मे चले गये और पजतीर्था बाग के निकट लाहौरी गेट की तरफ अपनी फौज खडी कर दी । रणजीत सिंह ने अमृतसर मे लोहगढ की तरफ से जो कि सरदार फतेहसिंह अहलूवालिया के अधीन था प्रवेश किया । उसने फतेह सिंह को आदेश दिया कि वह भगियों के किले को घेर ले । भगियो के प्रसिद्ध अधिकारी कमालुद्दीन ने किले के पास एक चौकी रणजीत सिंह के अधीन कर दी जिस के कारण भगियो को किला छोडना पडा । रणजीत सिंह ने जोध सिंह रामगढिये के द्वारा माई सीखा को प्रेरित किया कि वह जागीर प्राप्त करके अमृतसर छोड दे । अमृतसर को अपने अधीन करने से रणजीतसिंह का शहर और किले पर अधिकार हो गया । रणजीत सिंह ने वह प्रसिद्ध तोप जिस को "भंगियो की तोप" कहा जाता था भी प्राप्त की । अमृतसर की विजय के बाद रणजीत सिंह को प्रसिद्ध निहग अकाली फूला सिंह का समर्थन भी प्राप्त हुआ । अपनी विजय के बाद रणजीत सिंह ने हाथी पर चढ़ कर शहर मे प्रवेश किया और सोने और चान्दी की वर्षा की । नागरिकों ने उसका हर्षोल्लास से स्वागत किया । तत्पश्चात् रणजीत सिंह ने दरबार साहिब के सरोवर में स्नान किया और अपने समर्थकी को इनाम बाँटे ।

रणजीत सिंह का मुलतान की ओर जाने का इरादा : अमृतसर को अपने अधीन करके रणजीत सिंह ने मुलतान पर आक्रमण करने का विचार किया। वह वहाँ से धन प्राप्त करना चाहता था। पर रास्ते मे ही उसको सूचना मिली कि मराठा सरदार जसवन्त राव होल्कर अमृतसर आया है और अग्रेज सेनापात लार्ड लेक, अपनी फौज सहित उनके पीछे-पीछे है। रणजीत सिंह तेज़ी से लौटकर अमृतसर आ गया ताकि इस सकट की स्थिति का सामना किया जाए। रणजीत सिंह ने इसी साल सन् 1805 मे गुरमत्ता समागम भी बुलाया जिस का अर्थ यह था कि पथ पर आये सकट का मुकावला करने के लिए सब सरदारो से परामर्श किया जाए। परन्तु "गुरमत्ता" की प्रथा इतनी पुरानी हो चुकी थी कि किसी सरदार ने रणजीत सिंह से सहयोग करना उचित नही समझा और उसके निमत्रण का कोई उत्तर नही दिया। रणजीत सिंह ने इसी समय भेष बदलकर लार्ड लेक की फौजो मे भ्रमण किया और उसकी सैनिक शक्ति का अनुमान लगाया।

होल्कर ने अनुरोध किया था कि रणजीत सिंह उसके साथ मिलकर अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध करे पर रणजीत सिंह ने इसे उचित नही समझा। उसमे होल्कर के सहयोग न करने का कारण यह बताया कि सिक्खो मे प्रथा है कि किसी महान निर्णय को करने से पहले ग्र थ साहिब के सामने दो पर्चिया (हा और ना) वाली डालकर आदेश प्राप्त किया जाता है और इस विषय मे ग्र थ साहिब से अनुमति प्राप्त नही हुई। वास्तव मे रणजीत सिंह अग्रेजो की शक्ति से प्रभावित होकर उनके विरुद्ध कोई कारवाई नही करना चाहता था। वह यह भी जानता था कि उसका अपना राज्य पूरी तरह स्थापित नही हुआ है और किसी किस्म के सघर्ष मे पडने से सब सरदार उसके विरुद्ध उठ खडे होगे। होल्कर ने उनको बहुत ताने भी दिये लेकिन फिर भी रणजीत सिंह ने उसको पजाब से चले जाने के लिए मजबूर किया। परन्तु होल्कर के पजाब आने से रणजीत सिंह ने उससे कुछ लाभदायक बाते ग्रहण की। होल्कर के कहने पर रणजीत सिंह ने अपने राज्य प्रबन्ध और विशेष तौर पर खजाने का इन्तजाम अच्छी तरह से करना आरम्भ किया। अग्रेजो के विरुद्ध होल्कर की निर्बलता से रणजीत सिंह ने यह भी अनुभव किया कि अग्रेजो के विरुद्ध कारवाई करने के लिए अपनी सेना का आधुनिक रूप मे पुनर्गठन आवश्यक है। इस तरह से बडी सूझबूझ के कारण रणजीत सिंह ने एक सकट टाल दिया।

अग्रेजो से पहली मित्रता की सन्धि (सन् 1806) जरनल लेक के पजाब से लौटते समय अग्रेजो और सरदार रणजीत सिंह और सरदार फतेह सिंह अहलूवालिया मे सबसे पहली सन्धि हुई जिसमे एक दूसरे को आश्वासन दिया गया कि वह एक दूसरे के इलाके मे हस्तक्षेप नही करेगे और एक दूसरे के मित्र बन कर रहेगे। दोनो के इलाके आदि का कोई वर्णन नही किया गया क्योकि लार्ड लेक को किसी किस्म की कोई राजनीतिक सधि करने का आदेश नही था। (इस सधि की प्रति जो कि फारसी मे है और जिस पर लार्ड लेक के हस्ताक्षर हे और रणतीत सिंह की गुरमुखी मे मोहर और फतेह सिंह की उर्दू मे मोहर लगी हुई है राज्य पुरालेख कार्यालय पटियाला में है)।

रणजीत सिंह के उत्थान के पहले चरण का मूल्यांकन : उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि रणजीत सिंह को अपने राज्य के विस्तार की योजना मे काफी सफलता मिली। सन् 1799 से लेकर 1805 तक उसने मध्य पजाब, जिस को "माझा" भी कहते है, अपने अधीन कर लिया था और अपने आपको काफी शक्तिशाली और सुरक्षित बना लिया था। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि सबसे पहले उसने पजाब की परम्परागत राजधानी लाहौर और उसके आसपास के स्वतन्त्र हिन्दू और मुसलमान राज्यो को खत्म कर दिया। कुछ प्रसिद्ध मिसलो के साथ अपने अच्छे सबध बनाकर उनकी सहायता से अपने राज्य को और समृद्ध बनाया। उसकी कन्हैया मिसल मे शादी और अहलूवालिया मिसल के साथ मित्रता से उसको काफी सहायता मिली। न केवल उसका इन मिसलो की तरफ से विरोध कम हो गया बल्कि माई सदाकौर जो उसकी सास थी और सरदार फतेहसिंह अहलूवालिया की मित्रता रणजीत सिंह के लिए विशेष लाभकारी सिद्ध हुई। इस 6 साल के काल मे ही रणजीत सिंह ने यह सिद्ध कर दिया कि सिक्ख सरदारो मे वह ही "शेर और पजाब का पति" बनने का अधिकारी है। अब उसकी पदवी मिसलो मे बराबर की नही समझी जा सकती थी। फौरैस्टर के कथनानुसार वह ही आगे बढने वाला ऐसा व्यक्ति था जो कि अपनी इच्छाशक्ति और साहस के आधार पर सारे पजाब को अपने अधीन करने मे सफल हो सकता था। रणजीत सिंह ने पजाब का महाराजा बनने की दिशा मे पहला कदम बडी सफलता से उठाया था और अब यह स्पष्ट था कि रणजीत सिह ही सारे पजाब का राजा बनेगा।

प्रश्न

1. What were the political and social conditions of the Panjab when Ranjit Singh came to power ?
   जब रणजीत सिंह ने सत्ता प्राप्त की तो पजाब की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या थी ?
2. Give critical account of the occupation of Lahore by Ranjit Singh in 1799 and also study its significance ?
   सन् 1799 मे रणजीत सिंह द्वारा लाहौर पर किए कब्जे का समीक्षात्मक वृत्तात दीजिए। इस का महत्त्व भी बताइए।
3. How did Ranjit Singh occupy Amritsar ? What was its importance ?
   रणजीत सिंह ने अमृतसर पर किस प्रकार कब्जा किया ? इस का क्या महत्त्व था ?
5. Describe how Ranjit Singh established his supremacy over the Sikh Misldars
   रणजीत सिंह ने किस प्रकार सिक्ख मिसलदारो को अपने अधीन किया ? वर्णन कीजिए।

20

रणजीत सिंह के अधीन पंजाब का एकीकरण

दूसरा चरण (सन् 1806 से 1809) **रणजीत सिंह की सतलुज के पार चढ़ाई**

अपनी पहली सफलता से प्रोत्साहित होकर रणजीत सिंह ने सतलुज के पार सिक्ख राजाओ को अपने अधीन करने के लिए कारवाई आरभ की। इस काम के लिए उसने नीति का सहारा लिया। उसकी अभिलाषा सारे सिक्ख पथ को अर्थात् सब सिक्ख सरदारो को अपने अधीन करके समूचे पथ का नेता बनने की थी जिससे कि गुरु गोविन्द सिह की भविष्यवाणी "राज करेगा खालसा आकी रहे न कोय" को पूरा कर सके।

इस कार्य की सफलता के लिए उसने मालवा के इलाके मे हस्तक्षेप करने का मौका तलाश किया। उस समय मालवा का अधिकाश भाग फुलकिया वश के राजाओ के अधीन था जिस के केन्द्र पटियाला, नाभा और जीन्द थे। पटियाला ने एक गॉव पर जो कि नाभा का था अधिकार कर लिया। नाभा नरेश और जीन्द के राजा भाग सिंह ने जो कि रणजीत सिंह का रिश्तेदार था, रणजीत सिह की सहायता माँगी। रणजीत सिह इस काम के लिए पहले ही उत्सुक था। उसने फतेहसिह अहलुवालिया और लाडवा के राजा के साथ 20 हजार सैनिक भेजकर दोलादी पर कब्जा कर लिया और पटियाला के राजा साहिब सिंह से बहुत बडा नजराना प्राप्त किया। इसके इलावा नाभा से भी अपनी सेवाओ के लिए उसने काफी रुपया प्राप्त किया। मालवा से लौटते हुए रणजीत सिंह ने लुधियाना, दाखा, रायकोट, जगरावॉ और गधराण के स्थानों पर कब्जा कर के उनको अपने साथियो और सहायको मे बाँट दिया। यह उसकी एक चाल थी ताकि उन लोगो को, जिन को ये स्थान प्राप्त होगे, हमेशा के लिए अपने समर्थक बनाया जा सके।

सतलुज के पार दूसरा आक्रमण (सन् 1807) इस वार पटियाला के राजा साहिब सिंह और उसकी धर्मपत्नी रानी आसकौर मे झगडा होने के कारण रानी ने रण्जीत सिह को यह लालच देकर निमत्रण दिया कि अगर वह रानी के पुत्र कर्म सिंह को वह जागीर दिलाएगा, जो कि साहिब सिंह उसे देने के लिए तैयार नही था, तो रानी रणजीत सिंह को बहुमूल्य मोतियो की एक माला और पटियाला की प्रसिद्ध कडा खा वाली तोप प्रदान करेगी। रणजीत सिंह के लिए हस्तक्षेप का यह बहुत अच्छा मौका था। वह अपने प्रसिद्ध जरनैल मोहकम चन्द और सरदार फतेहसिह अहलूवालिया के साथ काफी सेना लेकर पटियाला पहुँच गया। बगैर किसी विरोध के राजा ने रानी

ग्रासकौर के पुत्र को 50 हजार की जागीर देनी मान ली ग्रौर दोनो मे सुलह-सफाई हो गई। तब रणजीत सिह ग्रपनी सेवाग्रो का मूल्य लेकर लाहौर लौटने की ग्रपेक्षा मालवा मे ग्रपने राज्य का ग्रौर विस्तार करने मे लग गया। उसका पटियाला जाने का उद्देश्य भी यही था। उसने ग्रम्बाला पहुँच कर वहाँ के राजा से नजराना कबूल किया, नालागढ पर कब्जा कर लिया ग्रौर कैथल के भाई लालसिंह, कलसिया के जोधसिह ग्रौर इलाके के दूसरे सरदारों से भी नजराने वसूल किए। वापसी पर उसने वधनी, जीरा ग्रौर कोटकपूरा पर भी ग्रपना ग्रधिकार कर लिया। रणजीत सिह के इस ग्राक्रमण का मालवा पर बहुत भारी प्रभाव पडा। मालवा के सरदारो मे ग्रातक छा गया ग्रौर सब को ऐसा ग्रनुभव हुग्रा कि रणजीत सिंह उनके राज्यो को हडप लेगा। इसलिए सिक्ख सरदारो का एक शिष्टमडल ग्रग्रेज् के दिल्ली स्थित रेजीडेन्ट सीटन साहिब से मिला ग्रौर उनसे सहायता की प्रार्थना की परन्तु ग्रग्रेजो का उस समय इस प्रान्त मे कोई राजनीतिक उद्देश्य नही था ग्रौर वह कोई हस्तक्षेप उचित नही समझते थे। सीटन ने सरदारो को टालमटोल जवाब देकर टाल दिया। ग्रग्रेजो के इस व्यवहार से ग्रसतुष्ट होकर मालवा के सरदारो ने रणजीत सिंह को ग्रपना स्वामी समझना ग्रारम्भ कर दिया ग्रौर पटियाला के राजा ने तो रणजीत सिंह से मित्रता स्थापित करने के लिए उसके साथ ग्रपनी पगडी भी बदली थी।

मालवा के इलाके मे ग्रपनी सफलता को स्थायी बनाने के लिए रणजीत सिंह ने सतलुज के पश्चिम की ग्रोर का इलाका ग्रपने ग्रधीन कर लिया। यह इलाका राहो के ग्रासपास था ग्रौर दल्लेवाली मिसल के ग्रधीन था। उस समय उस पर तारा सिंह घेबा राज्य करता था। उसकी मृत्यु के दिन रणजीत सिंह ने राहो पर ग्राक्रमण कर दिया। तारा सिंह की विधवा ने उसका विरोध किया परन्तु रणजीत सिह के मुकाबले मे न ठहर सकी। राहो का इलाका कुछ देर बाद रणजीत सिह के ग्रधीन हो गया ग्रौर वहाँ से उसे काफी धन सम्पत्ति प्राप्त हुई। राहो पर ग्राक्रमण रणजीत सिंह की गूढ नीति का एक उदाहरण माना जाता है। उसने चतुराई से उस समय वहाँ पर ग्राक्रमण किया जब कि सरदार का मृतक शरीर चिता पर जल रहा था। रणजीत सिंह को ऐसा ज्ञान था कि उस समय उसका ग्रधिक प्रतिरोध नही हो सकेगा। इस प्रकार दल्लेवालिया मिसल का भी दूसरी मिसलो की तरह ग्रन्त हो गया।

मैटकाफ का मिशन, (सन् 1808). इसी समय ग्रन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति मे कुछ ऐसे परिवर्तन हुए कि ग्रग्रेजो के लिए यह ग्रावश्यक हो गया कि वह ग्रपने रक्षा प्रबन्ध उत्तर पश्चिम भारत मे ग्रौर ग्रच्छे बनाए। दरग्रसल सन् 1807 मे टिलसिट के स्थान पर नैपोलियन ग्रौर रूस मे जो सधि हुई थी उससे ग्रग्रेजो को भय हो गया था कि संभवत. नैपोलियन भारत मे ग्रंग्रेजी साम्राज्य पर जमीन के रास्ते ग्राक्रमण करेगा। कहते है कि उसने ग्रफगानिस्तान ग्रौर पजाब की ग्रोर भारत पर हमले करने की योजना भी बनाई थी। इस तरह ग्रग्रेजो की सतलुज के पूर्व के इलाके मे रुचि बढ गई ग्रौर उन्होने निर्णय किया कि सुरक्षा के लिए इस प्रदेश को ग्रपने ग्रधीन रखना उचित

होगा। इस नीति के अनुसार अग्रेजो ने सतलुज और जमुना के बीच के इलाके को हथियाने का पक्का फैसला कर लिया परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति को देखते हुए वे फ्रासीसी प्रकोप को भी नही उकसाना चाहते थे। इसलिए उन्होने सैनिक कारवाई नही की बल्कि इस काम के लिए अपने प्रसिद्ध अधिकारी सी० टी० मैटकाफ के अधीन एक राजनीतिक मिशन रणजीत सिंह को अपने साथ मिलाने के लिए भेजने का निर्णय किया। इस मिशन का उद्देश्य गवर्नर जनरल के अपने शब्दो मे, यह था कि "रणजीत सिंह को अपना मित्र बनाने की कोशिश की जाए ताकि वह अग्रेजो के साथ मयुक्त सुरक्षा सधि करले। परन्तु उसे सतलुज के पूर्व की ओर इलाके पर अधिकार न करने दिया जाए।"

मैटकाफ की सबसे पहले रणजीत सिंह से मीटिंग कसूर के निकट खेमकरण के स्थान पर 12 अगस्त, 1808 को हुई। रणजीत सिंह ने अग्रेज राजदूत से अपना उद्देश्य स्पष्ट बता देने के लिए कहा जो कि इस प्रकार था :

1 फ्रास के विरुद्ध इकट्ठा सुरक्षा प्रबन्ध।

2 एक दूसरे के इलाके मे फ्रास के विरुद्ध युद्ध होने पर आने-जाने की सुविधा और

3 अग्रेजों के दूतो को सुरक्षा का आश्वासन।

इसके बदले मे रणजीत सिंह ने अपनी माँगे इस प्रकार रखी कि

1 अंग्रेज उसको सब सिक्खो का राजा माने।

2 काबुल के अमीर के साथ रणजीत सिंह के झगडे की सूरत मे अग्रेज निष्पक्ष रहे और काबुल के अमीर के साथ किसी किस्म का मित्रता का सबध न रखे।

मैटकाफ ने इन सब बातो का जवाब देने के लिए अपनी असमर्थता जाहिर की। रणजीत सिंह ने समझ लिया कि अग्रेज उसकी मित्रता प्राप्त करने की कीमत उसे नही देना चाहते। उस ने मैटकाफ से उसके साथ आगे चलने के लिए कहा। उस बीच रणजीत सिंह ने मालेरकोटला, फरीदकोट, थानेश्वर आदि स्थानो से नजराना प्राप्त कर उनको अपने अधीन कर लिया। सोहनलाल सुरी के कथनानुसार रणजीत सिंह की इस कारवाई से "सतलुज और जमुना के बीच के इलाके मे एक तरह से भूकम्प आ गया।"

मैटकाफ ने थोडे सयय मे ही यह महसूस कर लिया कि रणजीत सिंह इन स्थानो पर अधिकार प्राप्त करने केलिए उसको अपने साथ ले जाकर गवाह बनाना चाहता है और इस तरह से गवाह बनाकर उसकी उपस्थिति का अनुचित लाभ उठाना चाहता है। मैटकाफ उसके इस तरह से खिलवाड करने पर क्रुद्ध हो गया और उसने रगजीत सिंह से कहा कि वह उसके साथ-साथ चलने के लिए तैयार नही है। अत रणजीत सिंह उसके साथ बात-चीत करने के लिए समय और स्थान निश्चित करदे। उस समय रणजीत सिंह अम्बाला की ओर बढ रहा था।

फ्रांसीसी खतरे का टल जाना और अंग्रेजों के रणजीत सिंह के प्रति रवैये में परिवर्तन. इसी समय यूरोप में पुर्तगाल और स्पेन मे उपमहाद्वीपीय युद्ध छिड जाने पर नैपोलियन के उद्देश्यो मे बहुत बड़ी बाधा खडी हो गई और अग्रेजों के भारतीय

साम्राज्य पर उसका आक्रमण असभव हो गया। इस राजनीतिक स्थिति का अग्रेजो ने लाभ उठाना उचित समझा और उनको रणजीत सिंह की मित्रता की कोई आवश्यकता नही रही। उन्होने रणजीत सिह को स्पष्ट शब्दो मे चेतावनी दी कि वह जमुना और सतलुज के बीच के इलाके पर अपना अधिकार समाप्त कर दे और जो स्थान उसने मैटकाफ के आने के पश्चात् अपने अधीन किए थे सब को त्याग दे और सतलुज के पूर्व की ओर राजनीतिक मामलो मे किसी तरह का हस्तक्षेप न करे। रणजीत सिह को अपने प्रति अग्रेजो का यह रूखा व्यवहार बहुत आश्चर्यजनक लगा। वास्तव मे उसको यूरोप मे राजनीतिक स्थिति का कोई ज्ञान नही था और न ही यह स्पष्ट था कि अग्रेज किस कारण उसकी मित्रता के इच्छुक थे और अब उनको उसके साथ सधि की क्यो कोई आवश्यकता नही रही थी। रणजीत सिह अपने आपको सब सिक्खो का एक मात्र राजा बनाने के लिये अपने राज्य को पूर्व की ओर विस्तार करने की अभिलाषा हर हालत मे पूरी करना चाहता था। उसने अग्रेजो की नई चालो को अनुचित समझते हुए अपनी कारवाई जारी रखी और ऐसा जाहिर किया कि वह अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध के लिए भी तैयार होगा। जब अग्रेजो पर इस नीति का अनुकूल प्रभाव न पडा तो रणजीत सिह गम्भीरता से सोचने लगा कि अग्रेजो के साथ किस तरह से निपटा जाये।

अग्रेजो ने अपनी माँगो के समर्थन मे कर्नल औक्टर लोनी के अधीन सेना की एक बडी टुकडी दिल्ली से लुधियाना की ओर भेज दी। इसका मतव्य यह था कि अगर आवश्यक हुआ तो शक्ति से रणजीत सिंह को सतलुज और जमुना के बीच का इलाका खाली करने के लिए मजबूर किया जाए। जब टालमटोल से काम न चला तो रणजीत सिंह ने अपनी स्थिति को अग्रेजो के मुकाबिले मे उत्साहजनक न समझ कर यही उचित समझा कि अग्रेजो से सीमित मित्रता की सधि ही कर ली जाए। रणजीत सिह के साथियो ने उनको काफी प्रेरणा की कि अग्रेजो के साथ युद्ध करने से भी नही डरना चाहिये, परन्तु रणजीत सिह अपनी सूझबूझ को काम मे लाकर इस किस्म का खतरनाक कदम उठाने के लिए तैयार नही हुआ। उसको यह ज्ञान था कि उसके साथी सरदार यह चाहते थे कि अग्रेजो के साथ लडाकर उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया जाये।

इस सारी खीचातानी का परिणाम यह हुआ कि अग्रेजों ने भी किसी विशेष सघर्ष के बगैर सधि द्वारा रणजीत सिंह के अधिकार को समाप्त करना उचित समझा।

अमृतसर की संधि (सन् 1809) रणजीत सिह के सतलुज के पार के इलाके से लौट कर अमृतसर पहुँचने पर काफी समय के विचारविनिमय के बाद 25 अप्रैल, 1809 को दोनो सरकारो में सधि हुई जिस को अमृतसर की संधि कहा जाता है। इसके अधीन—

1 दोनो हकूमतो ने आपसी मित्रता के सबध रखने का निर्णय किया।

2 अग्रेजो ने माना कि वे सतलुज से उत्तर पश्चिम की दिशा मे किसी इलाके के साथ सबध नही रखेगे।

3 रणजीत सिंह को एक स्वतन्त्र राजा मान लिया गया।

4 रणजीत सिंह सतलुज के पूर्व की ओर केवल उन स्थानो पर अधिकार रखेगा जोकि मैटकाफ के आने से पूर्व उसके अधीन थे या उसकी अपनी जागीर माने जाते थे।

5 सतलुज के पूर्व मे स्थित स्थानो पर जरूरत से ज्यादा सैनिक नही रखे जाएँगे।

6 सधि की किसी धारा का उल्लघन सारी सधि का उल्लघन माना जाएगा।

इस तरह से अग्रेजो ने रणजीत सिह को अपनी शर्ते मानने के लिए मजबूर किया। साधारणतया यह कहा जाता है कि रणजीत सिह को अग्रेजो के मुकाबले मे अपनी असमर्थता और सीमित शक्ति का अनुभव हो गया था।

मूल्यांकन

1 अमृतसर की सधि को रणजीत सिंह के लिए राजनीतिक असफलता कहा जाता है। डा० सिन्हा के कथनानुसार "रणजीत सिह की मूँछ नीची हो गई और उसको अपनी हार माननी पडी"।

2. रणजीत सिंह की सब सिक्खो के लीडर बनने की अभिलाषा सदैव के लिए समाप्त हो गई।

3 रणजीत सिंह को अंग्रेजो की शक्ति के सामने झुकना पडा। यह इस बात से भी स्पष्ट था कि सतलुज और जमुना के बीच के इलाके के सिक्ख सरदारो का रणजीत सिह से घनिष्ट सबध था। कारण कि इन इलाको पर अब्दाली न की मराठो का अधिकार था जिसके कारण रणजीत सिंह का अब्दाली का उत्तराधिकारी होने के कारण उस पर कब्जा अधिक औचित्यपूर्ण था। इसके अलावा भौगोलिक, धार्मिक और सास्कृतिक कारणो से भी इस इलाके को रणजीत सिंह के अधीन होना चाहिए था। रणजीत सिंह की कारवाई राष्ट्रीयता की भावना से भी प्रेरित मानी जा सकती थी ताकि वह सिक्खो का एक बडा राष्ट्र बनाए। मर अग्रेजो ने इन तर्को को नही माना।

साराश कि अग्रेजो ने अपने राजनीतिक हित तथा अपनी प्रबल शक्ति और साधनो के दृष्टिगत उसको यह इलाका छोडने पर मजबूर कर दिया। इसके विपरीत अमृतसर की सधि का दूसरा पक्ष ऐसा भी है जिसे लाभकारी कहा जा सकता है। इसके समर्थन मे ये तर्क है।

1. इस बात से इकार नही किया जा सकता कि इस सधि से रणजीत सिंह ने अग्रेजो के साथ बराबरी के स्तर पर मित्रता स्थापित की थी और यह अपने आप मे एक बहुत बडी उपलब्धि थी। इसके पश्चात् न केवल उसको पजाब का स्वतत्र शासक मान लिया गया था बल्कि वह सिक्ख सरदारो के मुकाबले मे श्रेष्ठतम बन गया था। अब उसका स्थान सिक्खो मे मृगेन्द्र का था।

2 अमृतसर की सधि और सतलुज को दोनों हकूमतो की सीमा मानने से अग्रेज़ी साम्राज्य का उत्तर पश्चिम की ओर बढना बन्द हो गया और सतलुज के

पश्चिम की ओर रणजीत सिंह को अपना राज्य और शक्ति बढाने की खुली छुट्टी मिल गई।

3 रणजीत सिंह की अग्रेजो के साथ मित्रता स्थापित होने के परिणामस्वरूप रणजीत सिह पूर्वी सीमा पर अपनी सुरक्षा के लिए प्रवन्ध करने से मुक्त हो गया। इस सधि के फलस्वरूप और एक दूसरे की मित्रता होने के कारण अग्रेजो और रणजीत सिंह दोनो को ही अपनी इस सीमा पर न अधिक फौज भेजने की और न ही अधिक चिन्ता करने की जरूरत पडी।

अत मे रणजीत सिंह के पक्ष मे यह बात भी कही जाती हे कि अपने विशाल राज्य की स्थापना के इस नाजुक समय मे उसने अग्रेजो के साथ सधि करके, थोडे समय के लिए ही सही, अपने आपको एक महान सकट से बचा लिया। अब उसके राज्य का विस्तार उत्तर पश्चिम की दिशा मे ही हो सका और इस काम मे वह पूरी शक्ति लगा सका। इस बात के दृष्टिगत यह कहना सर्वथा उचित नही जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासकार एन० के० सिन्हा ने कहा है कि "रणजीत सिंह अग्रेजो के साथ अपने सबधो मे हर समय घुटने टेकता रहा"। अगर गूढ दृष्टि से देखा जाये तो वास्तव मे रणजीत सिंह के लिए सधि बहुत लाभदायक थी क्योंकि उस समय अभी राज्य की स्थापना का उसका काम आरम्भ ही हुआ था। उसने अपने सिक्ख सरदारो को अभी पूरी तरह अपने अधीन नही किया था। इसके अलावा अभी भी पजाब मे बहुत शक्ति-शाली मुसलमान राज्य बचे हुए थे। इसके अतिरिक्त अफगानों की तरफ से खतरा पहले की तरह जू का तूँ था। ऐसी स्थिति मे रणजीत सिंह की अग्रेजो के साथ अमृतसर की सधि करना एक बहुत अच्छी बात थी और ऐसा करके उसने अपनी राजनीतिक सूझबूझ का प्रमाण दिया। ऐसे कठिन समय मे रणजीत सिंह अग्रेजो के साथ सघर्ष मे पड़ कर अपना सर्वनाश कर सकता था। परन्तु जहाँ उसके और गुणो का वर्णन किया जाता है, वहाँ इस गुण का भी जिक्र होना चाहिए कि वह यह जानता था कि वह स्वय कितना शक्तिशाली है और उसको दूसरे के साथ व्यवहार मे कहाँ तक आगे बढना चाहिये। वास्तव मे रणजीत सिंह ने अग्रेजो के साथ यह सधि करके जोश को काबू मे रखकर बहुत होश से काम लिया। उसके बारे मे एक प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक और नीतिवान औसबार्न (Osborne) ने बिल्कुल ठीक ही लिखा था कि "यह अपनी शक्ति को जोश मे आकर व्यर्थ के कामों मे गंवाना नही चाहता था। हमेशा वह महत्वाकांक्षा को उचित सीमा के अन्दर रखकर वास्तविक दृष्टिकोण से काम करता था"। इसलिये अमृतसर की संधि को रणजीत सिंह के लिए बिल्कुल घाटे का सौदा ही नही समझना चाहिए अपितु जैसा कि उपर्युक्त तथ्यों से सिद्ध होता है इसको रणजीत सिंह की एक उल्लेखनीय सफलता भी मानना चाहिए। स्पष्ट है कि इससे रणजीत सिंह को अपने राज्य का विस्तार करने का अच्छा मौका मिला और वह अपने अधीन एक विशाल राजतंत्र स्थापित करने मे सफल हो सका।

प्रश्न

1. Examine Critically the importance of Treaty of Amritsar
अमृतसर की सन्धि की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
2. Briefly discuss the circumstances leading to Metcalf's mission. Why did Ranjit Singh sign the treaty of Amritsar ?
किन परिस्थितियो के अधीन मैटकाफ-मिशन भेजा गया ? सक्षिप्त वर्णन कीजिए। रणजीत सिह ने अमृतसर की सन्धि पर क्यो हस्ताक्षर किए ?
3. Describe briefly Ranjit Singh's campaigns of Malwa area of the Panjab.
रणजीत सिंह की पजाब के मालवा क्षेत्र की मुहिमो का सक्षिप्त वर्णन कीजिए।

21

रणजीत सिंह के अधीन पंजाब का एकीकरण

तीसरा चरण (सन् 1809 से 1823)

पूर्व की ओर बढने मे रोक लगने पर रणजीत सिह ने अपनी सारी शक्ति और ध्यान उत्तर पश्चिम की ओर बढने में लगा दिया। अमृतसर की सधि का तत्कालीन प्रभाव यह भी हुआ कि रणजीत सिंह ने यह अनुभव किया कि उसको अपनी आकाक्षा को पूरा करने के लिए बहुत जल्दी करनी चाहिये क्योकि यह स्पष्ट ही था कि उसके मन मे अग्रेजो के बारे मे काफी शकाएँ पैदा हो गई थी। इसलिए वह इस मौके का अधिकाधिक लाभ उठाना चाहता था।

रणजीत सिंह ने अग्रेजो के साथ लगने वाली सीमा की दिशा मे अपनी सुरक्षा के प्रबन्ध और भी मजबूत कर लिये। फिल्लोर के स्थान पर जहा पर पहले एक सराय होती थी एक किले का निर्माण किया गया जो कि अब तक भी वहाँ किले के रूप मे ही मौजूद है और जहाँ आजकल पुलिस ट्रेनिंग स्कूल चलाया जा रहा है। इससे आगे अमृतसर के स्थान पर पुराने भगियो के किले का नव निर्माण करके उसका नाम उसने गोबिन्दगढ रख दिया।

कांगड़ा के किले को प्राप्त करना और गोरखों को निकालना (सन् 1809) : इसी समय कागडा नरेश ससार चन्द कटोच गोरखो के विरुद्ध अपने सघर्ष मे बहुत सकट मे पड़ गया था। उसने अग्रेजो से सहायता माँगी परन्तु उन्होने सतलुज के पार किसी किस्म का दखल देने से इन्कार कर दिया। उसके पश्चात् ससारचन्द ने रणजीत सिंह से अपील की कि वह गोरखो को कागडा के इलाके से निकालने मे उसकी सहायता करे। इस कार्य के लिए दोनो ने ज्वालामुखी मदिर पर देवी की जोत के समाने एक दूसरे को आश्वासन दिया कि गोरखो को पीछे धकेलने पर रणजीत सिह को कागडा का किला दे दिया जायेगा।

गोरखो ने भी इस समय कोशिश की कि वे रणजीत सिंह को अपने साथ मिला ले। उन्होने रणजीत सिंह को काफी धन देने का आश्वासन दिया और उसके साथ सारे कागडा को जीतने की भी योजना रखी। रणजीत सिह ने कोई सी बात स्वीकार नही की और गोरखों को कागडा छोडकर चले जाने के लिए कहा। दरबार की सेना ने गोरखो के विरुद्ध कारवाई करके उनकी सप्लाई लाइन काट दी। गोरखे फिर भी बड़े साहस के साथ लड़ते रहे। रणजीत सिंह इस समय खुद कागडा पहुँच गया और उसने

गोरखो को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया । गणेश घाटी के स्थान पर गोरखों के साथ छोटी-सी लडाई हुई जिसमे वे हार गये और कागडा से चले गये ।

रणजीत सिंह ने इसके बदले मे कोट कागडा प्राप्त करने की माँग की जिस को ससारचन्द ने टालने की कोशिश की । रणजीत सिंह इस किस्म की चालो को अच्छी तरह समझता था । उसने ससारचन्द के लडके अनिरुद्ध चन्द को अपने कब्जे मे ले लिया और ससारचन्द के अधिकारियो को किला छोडने पर मजबूर किया । 24 अगस्त, 1809 को रणजीत सिंह ने नगरकोट मे प्रवेश किया ।

कागडा की प्राप्ति और गोरखो को इस इलाके से निकालने का रणजीत सिंह को विशेष लाभ हुआ । कागडा वास्तव मे सारे पहाडी इलाके का केन्द्र माना जाता है और यह कथन प्रसिद्ध है कि "नगरकोट का पति कागडा का पति होता है ।" दूसरे, गोरखो को इस इलाके से चले जाने पर रणजीत सिंह को कागडा प्रदेश पर अधिकार करने का मौका मिल गया और गोरखो-से लडाके और शक्तिशाली विरोधियो से छुटकारा भी ।

कागडा की विजय को रणजीत सिंह ने अपनी महान् उपलब्धि घोषित किया और उस समय कागडा के स्थान पर एक विशाल दरबार किया जिसमे कागडा, चम्बा, नूरपुर, कोटला, जस्रोटा, बसौली, भानकोट, मडी मुकेत, कुल्लू दातारपुर के पहाडी राजा शमिल हुए । इसके पश्चात् रणजीत सिंह ने सरदार देस्सा सिंह मजीठिया को पहाडी इलाके का सूबेदार नियुक्त किया और इस विजय के वाद अमृतसर लौटकर हरमन्दिर साहिब मे अरदास की और जशन मनाये । रणजीत सिंह का भाव यह था कि वह अपनी अग्रेजो के विरुद्ध हार को किसी हद तक कम कर सके और अपने सम्मान को लोगो मे पुन. स्थापित कर सके ।

छोटे-छोटे राज्यों का अन्त करना कागडा की विजय के पश्चात् रणजीत सिंह ने छोटे-छोटे राज्यो पर विजय प्राप्त करने का काम और तेज कर दिया ।

गुजरात गुजरात साहिब सिंह भगी के अधीन था । उसकी अपने सुपुत्र से अनबन हो गई । रणजीत सिह ने इस मौके को अपने लिए उचित समझा और गुजरात पर आक्रमण कर दिया । भगियो की आपस मे बँटी हुई फौजे मुकाबला नही कर सकी । बूढा सरदार साहिब सिंह भगी भागकर पहाडो को चला गया और बेटे को रणजीत सिंह ने जागीर देकर गुजरात छोडने पर राजी कर लिया । गुजारत और दूसरे किलो पर अधिकार करने के लिए फकीर नूरुद्दीन को नियुक्त किया गया ।

2 शाहपुर, मियानी और भेरा को भी जो कि बलोच शासको के अधीन थे रणजीत सिंह ने अपने अधीन कर लिया । कुछ सरदारो को सन् 1810 मे जागीर देकर उनको अपने इलाके छोडने पर राजी कर लिया ।

रणजीत सिंह ने अपने जरनैल मोहकम चन्द और बुद्ध सिंह को जालन्धर द्वाब मे भेज कर इतने इलाके प्राप्त कर लिये जिस का मालिया 3 लाख रुपये था । हुकम सिंह चिमनी के साथ मिलकर रणजीत सिंह ने ख्योडा की नमक की खानो पर अधिकार

प्राप्त कर लिया। पहाड मे देस्सा सिंह मजीठिया ने मडी और सुकेत पर अधिकार जमा लिया। नूरुद्दीन ने वजीराबाद को अपने अधीन किया। इस तरह से थोडे से काल मे रणजीत सिंह ने पजाब के प्रसिद्ध शहर डस्का, हल्लावाल और भगला उत्तर मे पहाडो के निकट और चूनिया, शीपालपुर, शरक पुर और कोट कतालिया नकई इलाके अपने अधीन कर लिये। काहन सिंह नकई को 20 हजार रुपये सालाना की जागीर दे दी। इस चरण मे रणजीत सिह ने लाहौर के आस-पास सब छोटे-छोटे राज्यो को अपने अधीन कर लिया। अब वह ऐसी स्थिति मे था और उसकी शक्ति इतनी हो गई थी कि वह बाहर की ओर बडे-बडे मुसलमान राज्यो के विरुद्ध कारवाई कर सकता था। बाहरी मुसलमान राज्यो की कतार के बारे मे उसने ऐसी नीति अपनाई कि उनको धीरे-धीरे कमजोर करके उनकी शक्ति समाप्त कर दी जाए और उनको इस बात के लिए मजबूर कर दिया जाये कि वह काबुल से हर प्रकार के सबध तोड दे और जितनी जल्दी हो सके उन सब इलाको को पजाब मे मिलाकर अपने अधीन कर लिया जाये। ऐसा करने से पहले उसने भारी नजराने प्राप्त कर इन शक्तिशाली मुसलमान राज्यो को अपना आधिपत्य मानने के लिए प्रेरित किया।

मुलतान की विजय : अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणो के कारण मुलतान मुगल शासन से मुक्त हो गया था और सन् 1752 के पश्चात् काबुल के साम्राज्य का अग बन गया था। काबुल के राजवश का एक सदस्य जिस को सदुजाई कहते थे मुलतान का शासक बना दिया गया था। सन् 1758 मे मराठो के उत्तर भारत मे आने के फलस्वरूप सदुजाई शासन के स्थान पर एक नया मुसलमान गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। परन्तु अहमदशाह अब्दाली के सन् 1760 मे आक्रमण के बाद उस गवर्नर को भी बदल दिया गया। सन् 1771 से 1779 तक भगी सरदारो ने शुजाबाद को छोड कर मुलतान के सारे इलाके पर अधिकार कर लिया था। शुजाबाद शुजाखा के अधीन सन् 1766 मे उसकी मृत्यु तक रहा। तत्पश्चात् उसके बेटे मुजफ्फर खा ने सारे इलाके से भगियो को अहमदशाह अब्दाली के बेटे तैमूर शाह की सहायता से निकाल दिया और स्वतत्र रूप से मुलतान पर सन् 1779 से 1810 तक राज्य करता रहा।

रणजीत सिंह का मुलतान पर सबसे पहला आक्रमण शुकचक्किया मिसल के नेता रणजीत सिंह ने अपने राज्य के उत्थान के आरंभ मे ही सन् 1802 मे मुलतान पर चढाई की थी। उसका उद्देश्य इस शक्तिशाली राज्य से धन प्राप्त करना और उसको धीरे-धीरे कमजोर करना था क्योकि रणजीत सिंह अच्छी तरह समझता था कि मुलतान की विजय के लिए न तो यह समय उचित था और न ही उसके पास आवश्यक साधन थे।

सन् 1805 मे रणजीत सिंह ने फिर मुलतान पर चढाई का विचार किया परन्तु उस समय जसवन्त राव होल्कर और उसके पीछे-पीछे लार्ड लेक पजाब में आने के कारण वह रास्ते से ही लौट आया। सन् 1807 मे रणजीत सिंह ने मुलतान के नवाब के विरुद्ध इसी कारण कारवाई की कि उसने सयाल झग के शासक अहमद खां को

शरण दी थी। इस बार मुलतान के पठानो ने किले से मुकाबला करने का विचार किया। चूँकि रणजीत सिंह के पास किले को घेरने के लिए अधिक तोपे नही थी इसलिए उसने वहाँ से नजराना प्राप्त करना ही उचित समझा। चौथी बार रणजीत सिंह ने सन् 1810 मे इस आधार पर मुलतान पर आक्रमण किया कि नवाब ने नजराने की बकाया रकम अदा नही की थी। शहर पर कब्जा कर लिया गया और किले को घेर लिया गया। तीन महीने घेरा डालने के बावजूद किला नही जीता जा सका और रणजीत सिंह को मन मार कर वापिस लौटना पडा। सन् 1812 मे सिक्ख फौजो ने मुलतान पर चढाई की और नवाब से बकाया वसूल करके लौट आये। सन् 1816 मे छटी बार महाराजा ने फूला सिह अकाली को मुलतान के नवाब के विरुद्ध भेजा जिसने नवाब से 80 हजार रुपये नजराना वसूल किया। इसी तरह सन् 1817 मे सातवी बार दीवान भवानी दास के अधीन मुलतान पर आक्रमण किया गया और किले को घेर लिया गया। परन्तु मुसलमानो के प्रतिरोध के कारण उसको भी वापिस लौटना पडा।

सन् 1818 मे अन्तिम और आठवी बार महाराजा ने मुलतान पर आक्रमण किया। इस बार वह पूरी तैयारी से मुलतान को पूरी तरह से अपने अधीन करना चाहता था। अपनी विजय को निश्चित बनाने के लिए उसने अच्छी तरह से तैयारी की। जागीरदारो और कारदारो को आदेश दिया गया कि वह काफी सख्या मे आदमी भर्ती करें और काफी मात्रा मे गोलाबारूद और अनाज भेजे। हर किस्म के सामान वगैरा को मुलतान भेजने के लिये भी उचित प्रबन्ध किये गये। रावी, चिनाब और जेहलम नदियो के रास्ते किश्तियो पर लादकर सामान ले जाने का प्रबन्ध किया गया। इस सारी तैयारी का निरीक्षण करने के किए उसने अपनी रानी माई नकैन को, जो इसी इलाके के रहने वाली और शहजादा खडग सिह की माता थी, कोट कमालिया भेजा। 25 हजार घुडसवार और पैदल सिपाही तोपो सहित, जिन मे मशहूर भगियोवाली तोप भी थी, मुलतान भेजे गये। इस अभियान का सेनापति मिसर दीवान चन्द को बनाया गया।

नवाब ने भी मुकाबला करने के लिये पूरी तैयारी कर ली थी। साथ ही मुसल-मानो को सिक्खो के विरुद्ध "जहाद" या धर्म युद्ध करने की प्ररेणा दी। पर इस किस्म की कोशिश को रणजीत सिह ने अपनी नीति से विफल कर दिया। नवाब ने अग्रेजो से भी मदद माँगी जिस का उन्होने नम्रता से जवाब दे दिया। अत नवाब को अपने ही साधनो से रणजीत सिंह का मुकाबला करना पडा खासकर तब जबकि वह ऐसी स्थिति मे कमजोर हो चुका था।

जनवरी 1818 मे शहर पर कब्जा कर लिया गया परन्तु नवाब अपने दो हजार विशेष सैनिकों के साथ किले के अन्दर चला गया और उसने अन्त तक मुकाबला करने का निश्चय किया। कई हफ्ते तक लाहौर की फौजे किले पर गोले बरसाती रही। मशहूर तोप जमजमा का भी कई बार उपयोग किया गया। बहुत कोशिश के बाद किले की दीवार मे दराड डाली गई। परन्तु नवाब ने फिर भी बडी वीरता से

मुकाबला किया। उस समय उसके साथियों की संख्या 500 थी। किले के अन्दर पठानों ने मिट्टी के मोर्चे बना लिए थे। साधु सिंह अकाली ने बड़े साहस से खिजरी दरवाजे में से प्रवेश करके आक्रमण किया। उसकी सहायता के लिए दूसरी फौजें भी वहाँ पहुँच गईं। वृद्ध नवाब अपने आठ बेटों के साथ हरे रंग की पोशाकें पहने लड़ने-मरने के लिए तैयार हो गया। बड़ी वीरता से लड़ते हुए नवाब मुजफ्फर खां और उसके 6 बेटे मारे गये। सिक्ख फौजों को इस कठिन मुकाबले से कुछ पीछे हटना पड़ा ताकि वे बन्दूकों से गोलियाँ बरसा सकें। पठानों ने उनको चैलेन्ज किया "आओ आदमियों की तरह हमारे साथ युद्ध करके देखो"। इस तरह बड़े कठिन परिश्रम के बाद किला जीता गया और विजयी सैनिकों ने लूट मार मचा दी। मुलतान की विजय की खबर सुनकर लाहौर में महाराजा रणजीत सिंह को बहुत प्रसन्नता हुई। बड़ी खुशियां मनाई गईं। शहर में सोने और चान्दी के सिक्के न्यौछावर करता हुआ महाराजा जुलूस में गुजरा। रात को शहर में दीपमाला की गई। वाहिगुरु का धन्यवाद करने के लिए हर मन्दिर साहिब अमृतसर और दूसरे धार्मिक स्थानों को भेंट चढ़ाई गई।

शांति और व्यवस्था स्थापित होने पर शहजादा खड़क सिंह को मुलतान भेजा गया जिसने पूरे राजकीय सम्मान से शहर में प्रवेश किया। फौज के अफसरों और सिपाहियों को लाहौर लौटने पर इनाम दिया गया। मुलतान के विजेता मिसर दीवान चन्द को "जफ़र जंग" का खिताब दिया गया। मुलतान के नवाब के जीवित बेटे सरफराज खां को पैंशन देकर दरबार के अधीन कर लिया गया।

इस महान विजय के पश्चात् मुलतान को लाहौर के राजतंत्र का महत्त्वपूर्ण प्रदेश बना दिया गया और बाकी राज्य की तरह वहाँ का शासन प्रबन्ध किया गया। मुलतान की विजय से स्वतंत्र मुसलमान राज्यों का उत्तर पश्चिम में बाहरी ब्लाक टूट गया। मुलतान की विजय के फलस्वरूप बहावलपुर और डेराजात के मुसलमान शासकों ने भी रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह महाराजा रणजीत सिंह के लिए सिंध की तरफ आगे बढ़ने का रास्ता खुल गया और उसके मालिये में सात लाख रुपये अधिक प्राप्त होने लगे। इस तरह मुलतान की विजय का विशेष सैनिक और राजनीतिक महत्त्व है।

अटक, कश्मीर और डेराजात की विजय : कश्मीर की सुन्दर घाटी बाहरी आक्रमणकारियों के लिए विशेष आकर्षण से पूर्ण है। इसी कारण अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब पर अपने हमलों के आरम्भ में ही कश्मीर को अपने अधिकार में कर लिया था और सन् 1752 के पश्चात् वहाँ पर अपने अधीन अफगान गवर्नर मुकर्रर कर दिया था। अहमदशाह अब्दाली की मृत्यु के बाद उसके बेटों शाहज़मान, शाहमहमूद और शाहशुजा के बीच कश्मीर के बारे में भी संघर्ष चलता रहा। शाहज़मान ने पंजाब पर चार आक्रमण किये परन्तु उसे विशेष सफलता नहीं मिली। उसके भाई शाहमहमूद ने उसे तख्त से उतार कर आँखों से अंधा कर दिया। शाहमहमूद को शाहशुजा ने भगा दिया। परन्तु शाहमहमूद अपने बरकज़ई वज़ीर की सहायता से शाहशुजा को हरा कर फिर तख्त पर बैठ गया। शाहशुजा ने पंजाब आकर रणजीत सिंह की सहायता से

अपना राज्य प्राप्त करने की कोशिश की । परन्तु शाहशुजा ने अनुचित माँग की जिसके कारण दोनो मे समझौता नही हो सका । निराश होकर शाहशुजा ने अटक के गवर्नर जहाँदाद की शरण ली जिसने शाहशुजा को बदी बनाकर कश्मीर के गवर्नर अता मुहम्मद के पास भेज दिया । जहाँदाद बरकजई वजीर फतेहखा का कट्टर विरोधी था । वज़ीर फतेहखा ने सन् 1812 मे कश्मीर पर अधिकार करने के लिए रणजीत सिंह के साथ मिलकर आक्रमण करने की योजना बनाई। वजीर फतेहखाँ के दूत गूदडमल को महाराजा रणजीत सिह के दरबार मे भेजा गया । आरम्भिक बातचीत सफल होने के बाद दोनो नेताओ मे रोहतास के स्थान पर भेंट हुई और कश्मीर पर सयुक्त आक्रमण की शर्ते तय की गई ।

यह फैसला हुआ कि दोनो फौजे मिलकर एक साथ कश्मीर पर आक्रमण करेंगी और विजय मिलने पर जो कुछ प्राप्त होगा वह आधा-आधा बाँट लिया जायेगा । यह भी फैसला हुआ कि वजीर फतेहखा कश्मीर पर अधिकार करने के बाद महाराजा को हर साल 9 लाख रुपये नजराना दिया करेगा ।

इन सब बातो (शर्तो) के स्वीकार करने के बाद वजीर फतेहखा और महाराजा की ओर से उसके, प्रसिद्ध जरनैल मोहकम चन्द ने मिलकर कश्मीर पर आक्रमण किया । परन्तु वजीर फतेहखा की नीयत पहले से ही खराब थी । उसने लाहौर दरबार की फौजो को धोका देकर स्वय कश्मीर घाटी मे प्रवेश किया । दरबार की सेना पीर पंचाल पर रह गई । फिर भी वह कठिनाइयो के बावजूद कश्मीर पहुँचने मे सफल हो गई। वज़ीर फतेहखा ने कश्मीर पर अधिकार करने के बाद समझौते का पालन नही किया और मोहकम चन्द को कोई हिस्सा नही दिया । मोहकम चन्द ने फिर भी कश्मीर से लौटते हुए शाहशुजा को अपने सरक्षण मे लिया और अपने साथ लाहौर ले आया । शाहशुजा को सुरक्षित लाने के लिए उसकी पत्नी, वफा बेगम ने, जो कि लाहौर मे थी, महाराजा रणजीत सिंह से प्रार्थना की थी कि उसके पति को सुरक्षित कश्मीर से लाने पर वह उसके बदले मे बहुत कीमती हीरा देगी । इस प्रकार रणजीत सिंह ने सर्वप्रसिद्ध हीरा कोहेनूर प्राप्त किया, परन्तु जैसे यह किया गया वह एक जुदा कथा है ।

कश्मीर पर संयुक्त आक्रमण का निराशाजनक अन्त होने पर रणजीत सिह बहुत क्रुद्ध हुआ । उसने निर्णय किया कि वह वज़ीर फ़तेहखा से विश्वासघात का बदला लेगा । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने अटक के गवर्नर जहादादखा से साँठ-गाँठ आरभ की । जहादाद जानता था कि वजीर फतेहखा का कश्मीर पर अधिकार होने पर वह अटक को अपने अधीन नही रख सकेगा। इसलिए उसने रणजीत सिंह की ओर से अटक के किले के बदले मे जागीर ले ली और किला महाराजा के हवाले कर दिया । इस कारवाई के सफल होने मे महाराजा के प्रसिद्ध सलाहकार फकीर अजीजुद्दीन ने बहुत योग्यता दिखाई ।

अटक के महत्त्वपूर्ण किले पर महाराजा रणजीत सिंह का कब्जा होने से कश्मीर का नया शासक वजीर फतेहखा आगबबूला हो गया । उसने सिक्खों के विरुद्ध "जहाद" अथवा धर्मयुद्ध का नारा लगा कर सारे इलाके के मुसलमानो को अपने साथ मिलाने की

कोशिश की । हजारा और चज के मुसलमानो ने फतेहखा का साथ दिया । रणजीत सिंह इस प्रतिक्रिया के लिए तैयार था । उसने फतेहखां का मुकाबला करने के लिये हर तरह से तैयारी की । अपने प्रसिद्ध जरनैल जोध सिंह रामगढिया, हरि सिंह नलुआ, और दीवान मोहकम चन्द को अटक की सुरक्षा के लिए काफी सेना देकर भेजा ।

हजरो का युद्ध, (सन् 1813) रणजीत सिंह और अफगानो मे इस तरह पहली बार सीधा मुकाबला अटक के पास हजरो के स्थान पर हुआ। दोनो सेनाएँ एक दूसरे के विरुद्ध तीन महीने तक डटी रही। दीवान मोहकमचन्द ने अपने युद्ध कौशल से अफगानो को सिन्ध नदी के बीच अपनी फौजो को आगे बढाने और युद्ध करने पर मजबूर किया । इस युद्ध मे वजीर फतेहखा का भाई दोस्त मुहम्मद (जो कि बाद मे काबुल का अमीर बना) भी शामिल था । दीवान मोहकम चन्द ने अपनी युद्ध नीति का पूर्णतया लाभ उठाया । गर्मी के मौसम मे अफगानो को सिन्ध नदी से दूर रह कर प्रतिकूल हालत मे लडना पडा । घोर युद्ध हुआ और सर्द देश के रहने वाले अफगान भारी जानी नुकसान उठाकर और बहुत सी युद्ध सामग्री छोडकर भाग गए ।

हजरो की लड़ाई का महत्त्व हजरो की लडाई सिक्खो मे और अफगानो मे पहली सीधी लडाई थी । इस मे विजयी होना सिक्खों के लिए एक महान सफलता थी । इसका महत्त्व इस बात से लगाया जा सकता है कि मुहम्मद गजनवी के राजा जैपाल के विरुद्ध सन् 1002 ईस्वी के युद्ध के पश्चात् मुसलमानो को पहली बार इस युद्ध मे पराजित होना पडा । इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि अटक का किला सैनिक दृष्टिकोण से और रणजीत सिंह के राज्य विस्तार के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण था । लाहौर और पेशावर के बीच और मध्य एशिया को जाने वाले रास्ते मे अटक का किला बहुत सैनिक महत्त्व रखता था । उत्तर पश्चिम की दिशा से आने वाले आक्रमणकारी को यहा पर सफलता से रोका जा सकता था और पेशावर की दिशा मे बढने के लिए भी फौजे और सामान एकत्र करने के लिए अटक बहुत उपयोगी था। चूंकि इस स्थान से सिन्ध नदी को आसानी से पार किया जा सकता है, इसलिए अटक के किले को एक तरह से एक पिस्तौल समझा जाता था जो कि पेशावर की ओर इस्तेमाल किया जा सकता है । वज़ीर फतेहखा और उसके साथियो की छटपटाहट का अन्दाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उसको यह अच्छी तरह मालूम था कि अटक के किले का मालिक कश्मीर पर भी आसानी से आक्रमण कर सकता है । पर एलैक्जैण्डर बर्डज के शब्दो मे अटक की विजय "सिक्खों की अफगानो के विरुद्ध सबसे पहली वास्तविक विजय थी" इसलिये इसका सबसे अधिक महत्त्व था । अटक छीने जाने से अफगानों के लिए सिंध नदी के पूर्व की ओर बढना हमेशा के लिए असम्भव हो गया और रणजीत सिंह ने अपने राज्य की सीमाएं और भी सुदृढ बना ली ।

अटक की विजय से पजाब मे बहुत खुशियाँ मनाई गई और जन साधारण (जनता) ने यह समझ लिया कि अफगानो का खतरा हमेशा के लिए टल गया है । महाराजा रणजीत सिंह स्वयं भी इस मे हर्ष और उल्लास से शामिल हुआ । लोगो मे सोने और

चादी के सिक्कों की वर्षा की और युद्ध मे वीरता दिखाने वालो को बडे-बडे इनाम दिये गये ।

कश्मीर पर दूसरी चढ़ाई (सन् 1814) हजरो की लडाई मे विजय से प्रोत्साहित होकर महाराजा रणजीत सिंह ने कश्मीर पर दूसरी बार चढाई का प्रबन्ध किया । 30 हजार सिपाहियो की विशाल सेना दीवान रामदयाल की कमान मे कश्मीर घाटी को प्राप्त करने के लिए इकट्ठी की गई और ब्रह्मगला की ओर से उसको आगे बढने का आदेश मिला । स्वय महाराजा पूँछ की ओर चले गए ताकि दोनो दिशाओं से चढाई की जाए । कश्मीर के इलाके मे मौनसून बहुत जल्दी आ जाने और भारी वर्षा होने से सिक्ख सेना के आगे बढने मे बहुत बाधा पडी । दीवान रामदयाल ने ब्रह्मगला का किला जीत लिया और शेपिया से आगे बढ गया जहा पर कि उसका रास्ता कश्मीर के गवर्नर आजिमखा ने रोक लिया । महाराजा के अपने अधीन फौज जल्दी आगे न बढ सकी क्योकि पूँछ वासियो ने लाहौर दरबार के विरुद्ध साड-फूँक की नीति अपनाई । उन्होने सब खाद्य पदार्थ नष्ट कर दिये और भेड-बकरिया भी बहुत ऊँचे स्थानो पर ले गये । उस इलाके मे भी अधिक वर्षा से मैदानी फौजो के लिये आगे बढना बहुत कठिन हो गया । महाराजा की फौज मे हैजा फैल गया और बेशुमार सिपाही मारे गये । इसी कारण महाराजा की फौज का प्रसिद्ध तोपची मिया "गौसा" भी मारा गया। दीवान रामदयाल अनेक कठिनाइयो के होते हुए भी अपने स्थान पर डटा रहा । महाराजा की फौज के आगे बढ़ने मे असमर्थ होने पर यही उचित समझा गया कि कश्मीर के गवर्नर के साथ बातचीत करके युद्ध समाप्त कर लिया जाए । यह चढाई बुरी तरह असफल रही और रणजीत सिंह के मान को उससे बहुत धक्का लगा । महाराजा ने अनुभव कर लिया कि कश्मीर पर चढाई करने के लिए विशेष सेना की आवश्यकता है जो कि पहाड पर अच्छी तरह लड लकती हो और वहा की जलवायु के अनुसार काम कर सकती हो ।

कश्मीर पर तीसरी चढ़ाई (सन् 1819). सन् 1814 की चढाई मे नुक्सान उठाने पर महाराजा ने कश्मीर पर फिर से चढाई करने की योजना बहुत सोचविचार कर बनाई । वह इस ताक मे भी था कि कोई और महान विजय प्राप्त की जाए ताकि फौजो के हौसले ऊँचे हो और इस किस्म की चढाई मे सफलता मिले । साथ ही उस समय चल रही अंग्रेजो और गोरखो की लड़ाई का भी परिणाम वह देखना चाहता था । सन् 1814 से 1818 तक गोरखो के विरुद्ध अंग्रेजो के शिमले की पहाडियो मे चल रहे युद्ध के समय महाराजा रणजीत सिंह ने नेपाल दरबार की सहायता करने से इकार कर दिया था और अपनी ओर से अंग्रेजो को इस कार्य मे सहायता देने का आश्वासन दिया था । परन्तु अंग्रेजो ने उसे बडी नम्रतापूर्वक यह कहकर टाल दिया था कि उनको महाराजा को कष्ट देने की जरूरत नही होगी । गोरखाओ की इस लडाई मे पराजय के पश्चात् महाराजा ने बहुत से गोरखा सिपाहियो को अपनी फौज मे भर्ती कर लिया । कारण यह था कि उसे कश्मीर पर चढाई करने के लिए ऐसी फौज की जरूरत थी जो इस बीहड इलाके और विशेष मौसमी हालात

मे अच्छी तरह लड सके और पहाडी इलाके मे गोरखो से अधिक योग्य और कोई सैनिक सिद्ध नही हो सकता।

इस समय रणजीत सिंह के लिए एक और लाभदायक घटना यह हुई कि कश्मीर से एक प्रसिद्ध अधिकारी पडित बीरधर वहाँ के अफगान गवर्नर से रुष्ट होकर लाहौर चला आया। उसने महाराजा को कश्मीर पर चढाई करने के लिए प्रेरित किया और इस कार्य की सफलता के लिए उसे कश्मीर मे दाखिल होने के रास्तो की और वहाँ के गवर्नर की फौज की सख्या के बारे मे बहुत सी सूचनाएँ दी। इन सब बातो से लाभ उठाकर महाराजा ने कश्मीर पर तीसरी बार चढाई की थी।

इस बार घाटी मे प्रवेश करने के लिए तीन हिस्सो मे फौज भेजी गई। पहला हिस्सा मिसर दीवान चन्द जिस ने मुलतान पर विजय प्राप्त की थी, के अधीन था, दूसरा राजकुमार खडक सिंह के अधीन था जिस को यह आदेश दिये गये कि वह मिसर दीवान चन्द की सहायता करे और तीसरा दस्ता महाराजा के अपने अधीन नियुक्त किया गया। मुख्य रूप से आक्रमण मिसर दीवान चन्द ने आरभ किया। ब्रह्मगला पहुँचकर उसने पीर पजाल के रास्ते पर अधिकार कर लिया और फिर अपनी फौज को तीन टुकडियो मे बॉट दिया। अपने अधीन टुकडी के साथ मिसर ने कश्मीर घाटी मे प्रवेश किया। शेपिया पहुँचकर कश्मीर के गवर्नर जब्बार खा से घमासान युद्ध हुआ परन्तु वह लाहौर दरबार की अधिक सख्या मे और अधिक साहसवाली सेना के विरुद्ध न ठहर सका। अफगानो को बहुत हानि हुई। बहुत से अफगान जरनैल मारे गये। गवर्नर स्वय घायल हो गया और भाग गया। इस तरह कश्मीर घाटी पर महाराजा की विजय हो गई। लाहौर की सेना ने श्रीनगर को लूटना आरम्भ किया, परन्तु मिसर दीवान चन्द ने तुरन्त इसे बन्द कर दिया। लाहौर मे इस खबर के पहुँचने पर बहुत खुशियाँ मनाई गई। मिसर दीवान चन्द को "फतेह-ओ-नुसरत-नसीब" की नई उपाधि प्रदान की गई।

कश्मीर की विजय का महत्त्व 1. सारे इलाके की प्राप्ति के रूप मे कश्मीर की विजय बहुत प्रसिद्ध थी क्योकि इसके फलस्वरूप विशाल पहाडी प्रदेश महाराजा रणजीत सिंह के अधीन हो गया और उसकी उत्तरी सीमा हिमालय के ऊँचे पर्वतो से सुरक्षित हो गई। साथ ही कश्मीर घाटी की शिल्प की चीजो से और दूसरे रूप मे काफी आय मे भी वृद्धि हुई। कश्मीर को महाराजा रणजीत सिंह के राज्य का अलग प्रान्त बना दिया गया जिस को "कश्मीर जन्नत नजीर" कहते थे।

2. व्यापारिक रूप मे भी लाहौर दरबार को कश्मीर प्राप्त करने से बहुत लाभ हुआ। कश्मीर की राजधानी श्रीनगर ऊपरी हिमालय और मध्य एशिया के साथ होने वाले व्यापार का महान केन्द्र था। तिब्बत, समरकन्द, यास्कन्द आदि स्थानों से उस इलाके की प्रसिद्ध वस्तुऐं आती थी और यहाँ से पंजाब को बहुत सी वस्तुए भेजी जाती थी। श्रीनगर का लद्दाख, अस्करदू और तिब्बत के साथ सीधा संबध था। व्यापारियों के काफिले यहा से हो कर आते-जाते थे।

3. राजनीतिक दृष्टिकोण से कश्मीर पर महाराजा की विजय होने से अफगानों

का एक और गढ टूट गया। इस तरह से सिंध नदी के पूर्व मे अफगानो का प्रभाव पूर्णतया समाप्त हो गया और लाहौर दरबार की सुरक्षा का और भी अच्छा प्रवन्ध हो गया। पजाब की सीमा उत्तर की दिशा मे अपनी प्राकृतिक सीमाओ तक पहुँच गई। इसके अतिरिक्त पजाब और कश्मीर के बीच के बहुत से पहाडी राजे लाहौर दरबार के अधीन हो गये। इन सब कारणो से लाहौर दरबार की काफी समृद्धि हुई और उसका सम्मान भी बढा।

विजय के उपरान्त मिसर दीवान चन्द के सुपुत्र दीवान मोती राम को कश्मीर का पहला नाजिम (गवर्नर) बनाया गया। पडित बीरधर कश्मीरी जिसने महाराजा को इस विजय मे अपना काफी सहयोग और सहायता दी थी और जवाहर मल दोनो को आर्थिक मामलो का प्रबन्ध करने के लिए वहाँ भेजा गया। कश्मीर के बारे मे पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए फकीर अजीजुद्दीन को वहाँ भेजा गया। इतने महत्त्वपूर्ण प्रान्त पर विजय होने पर भी यह आश्चर्य की बात है कि महाराजा रणजीत सिंह कभी श्रीनगर नही गये। कारण यह था कि कश्मीर घाटी का जलवायु उनके स्वास्थ्य के प्रतिकूल था।

सिंध नदी के उस पार (पश्चिम की ओर) स्थित इलाकों पर विजय और पेशावर पर अधिकार अफगानिस्तान मे वजीर फतेहखा की हत्या के पश्चात् सन् 1818 मे काफी राजनीतिक उथलपुथल हुई। महाराजा रणजीत सिंह ने उस स्थिति का लाभ उठाया और उत्तर पश्चिम की ओर बढना आरंभ कर दिया। उसका उद्देश्य पेशावर तक पहुँचना था। उसने चढाई करके पेशावर की पहाडियो के निकट तक पहुँचकर सारा इलाका अपने अधीन कर लिया। पेशावर घाटी को जहादाद बरकजई (दोस्त मुहम्मद के भाई) को इस शर्त पर दे दिया गया कि वह हर साल महाराजा को नजराना देगा। इस काम के समाप्त होने के पश्चात् सन् 1820-21 मे सिंध के पार डेरा इस्माइलखा, डेरा गाज़ी खाँ और मानकेरा को अपने अधीन कर लिया।

महाराजा रणजीत सिह के पेशावर तक पहुँच जाने की तीव्र प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही थी। अफगानो के लिए उसका इस ओर बढना एक महान सकट से कम नही था। दोस्त मुहम्मद खा और उसके भाई यार मुहम्मद खा ने लाहौर की फौजो के वापिस आ जाने पर इस इलाके पर आक्रमण कर दिया। जहाँदाद खा को, जिसे पेशावर जागीर मे दिया गया था, भगा दिया गया और मुहम्मदखा ने स्वय पेशावर पर अधिकार कर लिया। महाराजा ने घुसपैठियो को पेशावर से निकालने के लिए तुरन्त फौज भेजी। यार मुहम्मद खा ने मुकाबला करने की बजाय महाराजा का आधिपत्य स्वीकार करने की इच्छा व्यक्त की और महाराजा की सेवा मे बहुत कीमती उपहार भेजे जिन की कीमत 50 हजार के लगभग थी। सन् 1822 मे यह प्रबन्ध मान लिया गया।

काबुल में आज़मखां का सत्ता प्राप्त करना और उसका पेशावर पर अधिकार

करने का यत्न करना, नौशहरा का युद्ध (सन् 1823) आजमखा ने काबुल का अमीर बन जाने पर पेशावर और अटक के इलाके के अफगानो को लाहौर सरकार के विरुद्ध "जहाद" अथवा धर्मयुद्ध करने के लिए ललकारा। महाराजा रणजीत सिंह ने अफगानो की तरफ से गभीर खतरे का मुकाबला करने के लिए पूरी तैयारी की। उसने बहुत अधिक सख्या मे सेना इकट्ठी करके सब पजाबियो को अफगानो का मुकाबला करने के लिए उद्यत किया। इस कार्य मे बाबा फूलासिंह अकाली के निहग भी शामिल हुए। महाराजा रणजीत सिंह स्वय सेना का नेतृत्व कर रहा था। इससे अदाजा लगाया जा सकता है कि स्थिति कितनी गंभीर थी। महाराजा रणजीत सिंह ने पूरी शक्ति से मुसलमान गाजियो का मुकाबला किया और जहागीरा के स्थान पर उनको खदेड दिया। परन्तु निर्णायक युद्ध नौशहरा के प्रसिद्ध स्थान पर हुआ जो कि पेशावर और रावलपिंडी के मध्य मे है। पजाबियो और अफगानो मे हुआ यह युद्ध बडा घमासान का था। अफगानो के लीडर ने इस्लाम के नाम पर सब मुसलमानो को उत्तेजित करके लड-मरने की प्रेरणा दी। स्थिति थोड़े समय के लिये लाहौर दरबार के लिए बहुत कठिन हो गई और कुछ फौजे पीछे हटने लगी। ऐसे नाजुक समय मे महाराजा रणजीत सिंह ने बडी वीरता और साहस से युद्ध मे कूद कर अपना झण्डा उठाये हुए अपने साथियो को पूरी शक्ति से लडने के लिए उभारा और अपने युद्ध कौशल और व्यक्तिगत वीरता से नाजुक स्थिति को सभाल लिया। अफगानो के पॉव उखड गये। हजरो की लडाई (सन् 1813) के बाद यह अफगानो का बडा गभीर आक्रमण था और इस का परिणाम भयकर हो सकता था।

लाहौर की फौज के बहुत से सिपाही मारे गये और सबसे बडी हानि फूला सिंह की मृत्यु थी। अपनी इस उल्लेखनीय विजय के पश्चात् महाराजा ने पेशावर मे प्रवेश किया। महाराजा ने अभी यही उचित समझा कि पेशावर को अपने सीधे शासन मे न लिया जाए। उसने दोबारा पेशावर घाटी यार मोहम्मदखा को एक लाख दस हजार रुपया नजराना देने के एवज मे दे दी।

मूल्यांकन: नौशहरा की लड़ाई महाराजा के जीवन मे बहुत प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण लडाई थी। उस समय महाराजा ने अपने प्रसिद्ध जरनैल मिसर दीवानचन्द, हरिसिंह नलुआ, फतेहसिंह अहलूवालिया, देस्सा सिंह मजीठिया, अतर सिंह सन्धावालिया आदि को नौशहरा के युद्ध मे झौक दिया। साथ ही अपने नये यूरोपियन कमाण्डर वन्तूरा और अलार्द को भी इस युद्ध मे शामिल किया। अपने गोरखा सिपाहियो को उनके नेपाली लीडर बलभद्र की कमान मे शामिल किया। अपनी सैनिक शक्ति के अलावा सिक्खो की धार्मिक और राष्ट्रीयता की भावना को भी उत्प्रेरित किया और इसके लिए अकाली फूलासिंह और उसके निहग साथियो को भी लड़ाई मे भाग लेने के लिए कहा। अपनी विजय को निश्चित करने के लिए महाराजा ने नीति का भी पूर्ण उपयोग किया। यह सत्य है कि महाराजा ने कोई साधन ऐसा नही छोड़ा जिसे न अपनाया गया हो। परन्तु विजय का सबसे बड़ा कारण महाराजा की अपनी

वीरता और सैनिक योग्यता थी। उसने अपने आपको युद्ध मे शामिल करके दूसरो को भी सब कुछ कुर्बान करने की प्रेरणा दी। नौशहरा की विजय से अफगानो के विद्रोह की एक प्रकार से कमर टूट गई।

प्रश्न

1. Give a detailed account of the conquests of Multan and Peshawar by Ranjit Singh. What was their importance ?
   रणजीत सिंह द्वारा मुलतान और पेशावर की विजयो का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। इन का क्या महत्त्व था ?
2. Describe Ranjit Singh's campaigns against Kashmir. What difficulties did he face in occupying it and what measures did he take to overcome the same ?
   रणजीत सिंह की कश्मीर की मुहिमो का वर्णन कीजिए। उसे कश्मीर पर कब्जा करते समय किन-किन कठिनाइयो का सामना करना पडा और उन्हे दूर करने के लिए उसने कौन-से उपाय किए ?
3. Write a detailed note on the causes, events and results of the battle of Huzro ?
   हजरो के युद्ध के कारणो, घटनाओ एव परिणामो पर एक सविस्तर टिप्पणी लिखिए ?
4. Describe briefly Ranjit Singh's relations with the Afghans ?
   रणजीत सिंह के अफगानो के साथ सबधो का सक्षिप्त वर्णन कीजिए ?

22

रणजीत सिंह के अधीन पंजाब का एकीकरण

चौथा अथवा अन्तिम चरण (सन् 1824 से 1834)

वहाबी आन्दोलन अफगानो के विरोध के खत्म होने के बाद भी उत्तर पश्चिमी सीमा पर गडबड खत्म नही हुई। इस समय तक मुसलमान धार्मिक नेता सय्यद अहमद खा ने, जो कि बरेली का निवासी था, उत्तर पश्चिमी इलाके मे जाकर अपनी गतिविधियो से लाहौर दरबार को काफी परेशान किया। शायद सय्यद अहमद का उद्देश्य इस्लाम को फिर से उभारना और मुसलमानो को किसी गैर मुसलमान के अधीन न रह कर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए उकसाना था। उत्तर पश्चिमी सीमा पर सिताना के स्थान पर सय्यद अहमद खा ने अपना हैडक्वार्टर बना लिया और अफगानो मे प्रचार किया कि वह सिक्खो के विरुद्ध जहाद अथवा धर्म-युद्ध करे। इस काम मे उसको पखली, स्वात, बुनेर और तीराह के अफगानो और काबुल के बरकजई सरदारो से काफी सहायता मिली थी। नये सकट का सामना करने के लिए महाराजा ने 20 हजार के लगभग फौज हरिसिंह नलुआ की कमान मे पेशावर की ओर भेज दी। उसकी सहायता के लिए कुछ और फौज बुध सिंह सधावालिया के अधीन भी भेजी गई।

सय्यद अहमद के विरुद्ध पहली लडाई सैदू के स्थान पर सन् 1827 मे हुई। घमासान का युद्ध हुआ और सय्यद अहमद हार कर भाग गया। स्वात के इलाके मे जाकर उसने सन् 1828 मे फिर अफगानो को अपने साथ मिलाकर पेशावर पर अचानक आक्रमण करके यार मुहम्मद और उसके बहुत से साथियो को मार कर अधिकार कर लिया। परन्तु थोड़े समय के बाद सय्यद अहमद अफगानो मे बहुत अप्रिय हो गया क्योकि उसने अफगानों के रीति-रिवाजो मे दखल देना आरम्भ कर दिया था और उनको बडे कठोर अनुशासन मे रखने की कोशिश की थी। अफगानो ने उस के साथियो और समर्थकों को समाप्त करने की योजना बनाई। सय्यद अहमद को भागना पडा। उधर दरबार की ओर से काफी सेना शहजादा शेर सिंह की कमान मे सय्यद अहमद के विरुद्ध भेजी गई।

बालाकोट का युद्ध और सय्यद अहमद की मृत्यु, (सन्1830) : बालाकोट के स्थान पर शहजादा शेर सिंह और सय्यद अहमद मे लड़ाई हुई। सय्यद अहमद के बहुत से साथी मारे गये और वह स्वयं भी लडाई में काम आया। ऐसा भी समझा जाता है कि सय्यद अहमद को हिन्दुस्तान से और कुछ लोगों का विचार है कि वहां की

सिंध नदी
काबुल
अफगानिस्तान
बलोचिस्तान
तिब्बत
सतलुज नदी
बीकानेर
शिकारपुर
सिंध
अलवर
रणजीत सिंह के अधीन पंजाब
1823
1830
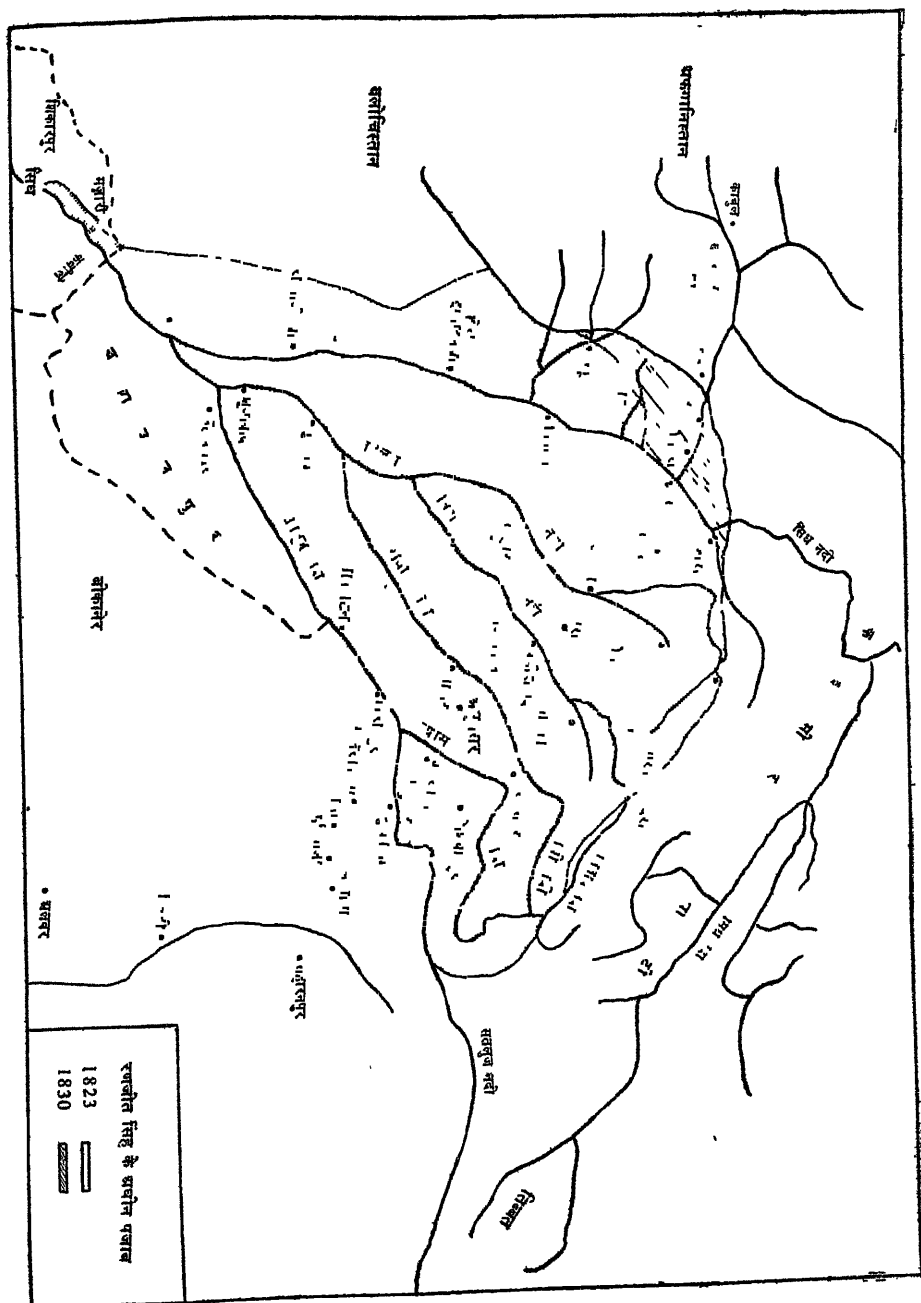
अग्रेज सरकार से भी प्रोत्साहन मिलता था। अग्रेजो के ऐसा करने का मतव्य यह मालूम होता है कि वे महाराजा रणजीत सिंह को उत्तर पश्चिमी सीमा पर सैनिक कारवाइयो मे उलझाये रखना चाहते थे ताकि उसका ध्यान अग्रेजो की उन गति-विधियो की तरफ न जा सके जिन से वे अपना व्यापारिक और राजनीतिक प्रभाव सिंध के इलाके मे बढा रहे थे। सय्यद अहमद को हिन्दुस्तान से मुसलमान समर्थको से लगातार आर्थिक सहायता मिलती थी और उसके एजेट भी आते-जाते थे।

पेशावर की घाटी का लाहौर राज्य में विलय और उसका सीधा शासन प्रबन्ध : बरकजई भाइयो के साथ किये गये प्रबन्ध निष्फल होने पर और उत्तर पश्चिमी इलाके मे धार्मिक षड्यन्त्रो को समाप्त करने के लिए विशेष तौर पर ऐसे समय मे जब कि अफगानिस्नान की राजनीतिक स्थिति बहुत खराब थी, महाराजा रणजीत सिंह ने पेशावर को अपने अधीन करने का निर्णय किया। इस समय बरकजई भाई दोस्त मुहम्मद खा के विरुद्ध राजनीतिक कारवाई मे लगे हुए थे क्योकि उसने अपने आपको काबुल का अमीर घोषित कर दिया था। इस समय को उचित समझ कर महाराजा रणजीत सिंह ने पेशावर का शासन प्रबन्ध अपने अधीन करके अपने प्रसिद्ध जरनैल हरि सिंह नलुआ को वहा का गवर्नर नियुक्त कर दिया।

दोस्त मुहम्मदखा को महाराजा के ऐसा प्रबन्ध करने पर कैसे चैन पड सकता था। उसने खैबर के अफगानो और अफरीदी मलिको की सहायता से पेशावर पर आक्रमण करने की कोशिश की परन्तु लाहौर दरबार की विशाल सेना के सामने उसकी एक न चली और उसको भागना पडा। उस समय महाराजा ने उत्तर पश्चिमी प्रान्त मे 40 हजार सैनिक भेजे हुए थे। इस तरह सन् 1835 मे दोस्त मुहम्मद खा को पराजित होना पडा।

हरि सिंह नलुआ ने इस इलाके का जो कि लाहौर दरबार की सुरक्षा के लिए बहुत महत्त्व रखता था अपने अधीन करने के लिए योग्य प्रबन्ध किया। उसने सारी घाटी मे किलो की शृ खला स्थापित की जिन के अन्दर सैनिक, हथियार और खाद्य सामग्री रखी। सन् 1835-36 मे नई योजना के अधीन काफी अच्छे प्रबन्ध कर लिये और जमरूद के स्थान पर भी, जो कि बिल्कुल खैबर के सामने स्थित है,' अपना किला बना लिया। हरि सिंह नलुआ की यह कारवाई और लाहौर दरबार का अफगानिस्तान के इतने निकट पहुँच जाना काबुल के अमीर के लिए बड़ा भारी खतरा था। दोस्त मुहम्मद खा ने लाहौर दरबार के विरुद्ध अपने दोनो बेटों के अधीन भारी सख्या मे सेना भेज कर चुनौती दी।

जमरूद का युद्ध (सन् 1837 ई०) **और हरि सिंह नलुआ की मृत्यु :** अफगानों ने जमरूद के किले पर चारो तरफ से धावा बोल दिया और गोलाबारी शुरू कर दी। हरि सिंह नलुआ ने, जो कि उस समय इस किले में था, बडी योग्यतासे उनका मुकाबला किया, यद्यपि उसको जल्दी से सहायता प्राप्त करने की आशा नही थी। अपने सीमित साथियो और साधनों के बावजूद भी उसने बडी योग्यता से अफगानो को पीछे हटा दिया। परन्तु एक छोटी टुकडी किले की आड़ मे छुपी हुई थी और एक अफगान ने हरि

सिंह नलुआ को गोली से घायल कर दिया। घायल होने पर भी उसने अपने साथियों का साहस न टूटने दिया और अफगानो को भगा दिया। पजाबियो ने बडी वीरता से जमरूद को बचा लिया और सहायता पहुचने पर अफगानो के विरुद्ध और कारवाई की। परन्तु जमरूद की सुरक्षा के लिए हरि सिंह नलुआ की मृत्यु के रूप मे बहुत बडी कीमत देनी पडी। इस खबर के सुनने पर स्वय महाराजा को बडा खेद हुआ और कहा जाता है कि अपने इस महान जरनैल की मृत्यु पर उनकी आँखो मे आँसू आ गये थे।

थोडे समय के लिए पेशावर का प्रबन्ध करने के लिए तेजसिंह को भेजा गया और उसके पश्चात् "आविनेबिले", जो कि एक इटली का रहने वाला था और महाराजा के बहुत योग्य अधिकारियो मे से था, को पेशावर का गवर्नर बनाकर भेजा। यह प्रबन्ध महाराजा की मृत्यु तक चलता रहा।

मूल्यांकन राज्य प्रसार के अन्तिम चरण मे महाराजा रणजीत सिंह ने उन सब प्रसिद्ध स्थानो पर अपना अधिकार कर लिया जो कि उत्तर पश्चिम की ओर से पजाब के लिए सदैव खतरा बने रहते थे और जिन से होकर आक्रमणकारी मध्य एशिया और अफगानिस्तान से बिना रोक-टोक के पजाब मे प्रवेश करते थे। पेशावर की घाटी के राज्य मे मिलाये जाने पर महाराजा रणजीत सिंह के अधीन सारे पजाब का एकीकरण सम्पन्न हो गया। अब उसके राज्य की सीमाए प्राकृतिक दृष्टि से सुदृढ हो गई थी और महाराजा रणजीत सिंह वास्तविक तौर पर अपने आपको बजा तौर पर इस सारे इलाके का महाराजा कह सकता था। यह थी उसकी उपलब्धि। वह एक मिसलदार से शुरू होकर सारे उत्तर पश्चिमी खड का अधिपति बन गया। उसके राज्य की सीमाए पेशावर से सतलुज तक और कश्मीर से सिन्ध तक पहुँच गई थी।

इस तरह महाराजा रणजीत सिंह पजाब का पहला पजाबी शासक था जिस ने पंजाब में परम्परागत आक्रमणो का सिलसिला न केवल तोड दिया बल्कि उनको उलटी दिशा मे मोड भी दिया। महाराजा अनगपाल जिस ने महमूद गजनवी के विरुद्ध सन् 1002 मे खैबर पार कर लडाई की थी, उसके बाद आठ सौ वर्षों मे यह अब पहली बार हुआ था। इस प्रकार उसके महान सपूत महाराजा रणजीत सिंह के अधीन पजाब का एकीकरण इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। गुरु गोबिन्द सिंह के आदेशानुसार पहली बार रणजीत सिंह के नेतृत्व मे पजाब मे पजाबियों ने एक स्वतन्त्र और पूर्ण सत्ता वाला राज्य कायम किया और जिसका प्रमुख श्रेय लोकप्रिय, नीतिवान और योग्य शासक रणजीत सिंह को जाता है। इसलिए रणजीत सिंह की यह आलोचना कि उसने बडे क्रूर साधनो से सारे पजाब को अपने अधीन किया, निराधार ही नही बल्कि अनुचित भी है। उसने उतना ही उल्लेखनीय और ऐतिहासिक कार्य किया जितना कि यूरोप मे कई देशो मिसाल के रूप मे इटली और जर्मनी के प्रसिद्ध नेताओ ने अपने देशो के एकीकरण के लिए किया था। इन घटनाओ को यूरोप के इतिहास मे बडी महत्ता दी जाता है। रणजीत सिंह के सत्ता प्राप्त करने से पहले पजाब टुकडों-टुकडो मे बँटा हुआ था जिस को इतिहासकारों ने "जिग्सा पज़ल"

भी कहा है। इसके विपरीत रणजीत सिंह की लगातार कोशिशो से पजाब अब एक समृद्ध और संगठित राजतत्र मे बदला गया था।

प्रश्न

1 Draw the boundary lıne of Maharaȷa Ranȷıt Sıngh's Empire and wrıte a brief note on hıs conquests
महाराजा रणजीत सिंह के साम्राज्य की सीमाओ को रेखाकित कीजिए और उसकी विजयो पर सक्षिप्त टिप्पणी भी लिखिये।

2 Gıve a brıef account of ımportant conquests of Ranȷıt Singh.
रणजीत सिंह की महत्त्वपूर्ण विजयो का सक्षिप्त वर्णन कीजिए ?

3 What was Wahabı movement ? What steps dıd Ranȷıt Singh take to deal with this movement ?
वहाबी आन्दोलन क्या था ? रणजीत सिंह ने इस आन्दोलन से निपटने के लिए क्या उपाय किए ?

4 Who was Harı Sıngh Nalwa ? What servıces dıd he render to hıs master ı.e., Maharaȷa Ranȷıt Sıngh ?
हरी सिंह नलुआ कौन था ? उसने अपने स्वामी महाराजा रणजीत सिंह की क्या सेवाएँ की ?

5. Give a detaıled note on the annexatıon of Peshawar valley by Maharaȷa Ranȷıt Sıngh ?
महाराजा रणजीत सिंह द्वारा पेशावर के अपने साम्राज्य मे विलय पर एक सविस्तर नोट लिखिए ?

23

सैनिक संगठन और सुरक्षा के प्रबन्ध

महाराजा रणजीत सिंह मुख्यत सैनिक नेता था और बाल्यकाल से उसकी रुचि फौजी कामों मे थी। इसी आधार पर उसको एक शासक की अपेक्षा सैनिक नेता माना जाता है। उसने अपना समस्त जीवन निरतर सैनिक कामो मे लगाया क्योकि समय की आवश्यकता ही ऐसी थी । उसको अपने राजतत्र का सगठन करने के लिए अनेक छोटे-छोटे राज्यो को अपने अधीन करना था और खुद ही अपने राजतत्र का निर्माण करना था। अपनी सैनिक शक्ति और अपने सैनिक सगठन को उत्तम बनाने मे उसने कोई कसर नही उठा रखी। यह इसलिए भी आवश्यक था कि उसके दोनो ओर अर्थात् पूर्व और पश्चिम मे शक्तिशाली राज्य थे जिनकी ओर से उसको हर समय खतरा बना रहता था। पूर्व मे उसके पडोसी अग्रेज थे जिनका बाकी सारे भारत पर राज्य था और जिन की सैनिक शक्ति असीम थी। पश्चिम की दिशा मे उसको अपने पुराने शत्रु अफगानो से मुकाबला करना था। इस प्रकार उसे अपनी सुरक्षा के लिए हर समय चौकन्ना रहना जरूरी था। वास्तव मे महाराजा रणजीत सिह की सफलता का कारण उसकी सैनिक शक्ति ही थी। हम जानते है कि सैनिक सगठन अथवा सुरक्षा प्रबन्ध साधारणतया भी बहुत महत्त्व रखता है। और महाराजा ने अपने सारे साधन और सारी शक्ति इस काम मे लगा दिये। यही कारण था कि सार्वजनिक या सिविल शासन की ओर वह ज्यादा ध्यान नही दे सका। उस समय की स्थिति और आवश्यकता के अनुसार उसे प्रथम स्थान सैनिक शासन को ही देना पडा।

परम्परागत और पश्चिमी (Western) **सैनिक विधि** अपने राज्य के आरम्भ मे ही रणजीत सिंह को अनुभव हो गया था कि पुराने अथवा परम्परागत सैनिक प्रबन्ध उस समय की जरूरत के अनुकूल नही है। विशेष तौर पर अंग्रेजो से वास्ता पडने पर यह स्पष्ट हो चुका था। सन् 1806 मे लार्ड लेक के पजाब की सीमा पर मराठा सरदार जसवन्तराव होल्कर के पीछे आने पर उसको अग्रेजो के सैनिक सगठन देखने का अवसर मिला था। कहा जाता है कि उस सकट के समय मे जब कि पंजाब मे युद्ध छिड जाने की सभावना थी रणजीत सिंह ने भेष बदल कर लार्ड लेक की सेना मे जाकर अग्रेजो के सैन्य सगठन और उनकी सैनिक शक्ति का ज्ञान प्राप्त किया था। उसे स्पष्ट हो गया था कि अग्रेजो की सेना उनकी अपनी सेना से बहुत अधिक सगठित और सुसज्जित थी। उसका यह विचार सन् 1808 मे और भी पक्का हो गया था क्योकि अग्रेजो के दूत मैटकाफ के अमृतसर प्रवास के समय

उसके सरक्षण के लिए आई हुई अल्प सख्यक फौज ने वहाँ के लोगो के विशाल समूह को हरा दिया था। बात ऐसी थी कि मैटकाफ के साथ आये हुए मुसलमान सैनिको ने अपना ताजिया का त्योहार मनाना चाहा जिसको स्थानीय अकालियो ने बहुत बुरा मनाया और उनके ऊपर आक्रमण कर दिया। मैटकाफ की छोटी-सी टुकडी ने बहुत डटकर और अच्छे हथियारो से उनको पछाड दिया। महाराजा ने मौके पर पहुँचकर स्थिति को काबू मे कर लिया परन्तु यह भी उसको पूर्णतया ज्ञात हो गया कि उसकी अपनी सैनिक शक्ति अग्रेजो की पश्चिमी तरीके पर सगठित फौज के विरुद्ध सफल नही हो सकेगी।

बेशक महाराजा रणजीत सिह ने अपने पुराने मिसल काल के सैनिको के साथ ही काफी सफलता प्राप्त की थी परन्तु यह सारी विजये या तो उसको विरोधी सरदारों या अफगानों के साथ युद्ध मे मिली थी जिन की सेनाए पुराने तरीके से सगठित थी और परम्परागत शस्त्रो का इस्तेमाल करती थी। अग्रेजो का सैनिक सगठन और शासन बिल्कुल भिन्न थे जिनको पश्चिमी सैनिक विधि के मुताबिक बनाया गया था। उनका सैनिक सगठन और रणनीति दूसरे सभी भारतीय राजाओ के विरुद्ध सफल हो चुके थे। लगभग सभी को पराजित करके अग्रेजो ने सारे भारत पर अपना शासन स्थापित कर लिया था। इसलिए उसने इस कार्य की ओर विशेष ध्यान दिया। रणजीत सिंह अपनी सुरक्षा के लिए अपनी सेना मे परिवर्तन आवश्यक समझता था क्योकि वह समझता था कि अगर वह अपनी फौजो को अग्रेजो के मुकाबले के लिए तैयार नही कर सकेगा तो उसके राज्य का सुरक्षित रहना असभव होगा।

सेना का पश्चिमी तरीके पर पुनर्गठन महाराजा रणजीत सिह ने एक तरह से अपने सैनिक सगठन मे पूरी तरह परिवर्तन का निर्णय किया। यह इसलिए भी आवश्यक था कि पुरानी सैनिक विधि अग्रेजो के विरुद्ध बिल्कुल नाकारा सिद्ध हुई थी। पश्चिमी सैनिक विधि मे तोपखाना और पैदल फौज प्रधान थे और इस किस्म की सेना पजाब की परम्परागत सेनाओ से बिल्कुल भिन्न थी। सारे फौजी घुडसवार थे और उनके लडने का तरीका गुरिल्ला किस्म का था। रणजीत सिंह ने स्वय देख लिया था कि अग्रेजो का मुकाबला करने के लिए तोपखाना अत्यावश्यक है और सेना को भी अधिक असरदार बनाने के लिए पैदल फौज को योग्य स्थान देना पडेगा। इसके अलावा घुड-सवार फौजो मे भी अनुशासन अथवा परेड आदि बिल्कुल नही थी और उनके शस्त्र भी पुरानी किस्म के थे।

इस उद्देश्य को सामने रखकर महाराजा रणजीत सिंह ने अंग्रेज़ों के साथ अमृतसर की संधि (सन् 1809) होने के पश्चात् अपनी सेना के पुनर्गठन का कार्य आरंभ कर दिया। सबसे पहले पैदल फौज की तरफ ध्यान दिया गया क्योंकि यह काम बहुत कठिन था। साधारण पजाबी पैदल फौज मे भर्ती होना अपनी शान के खिलाफ समझते थे क्योकि पदल फौज का काम पहरेदारी या किले की रक्षा करना ही था। रणजीत सिंह

ने अपने लिये पैदल फौज तैयार करने मे आरभ मे अग्रेजो की फौज से भागकर आये हुए गोरखा सिपाहियो को भर्ती किया। महाराजा स्वय उनकी परेड देखने के लिए हर रोज समय निकालता था। सन् 1822 के लगभग कुछ फ्रासीसी सैनिक अफसरो के पजाब मे आने पर महाराजा ने उनको इस काम पर लगाया। पैदल फौज को सगठित और ट्रेड बनाने (प्रशिक्षित करने) का काम प्रसिद्ध फ्रासीसी जरनैल वन्तूरा को दिया गया। उसने अपनी योग्यता से और महाराजा की सहायता से पैदल फौज को पजाबियो मे भी लोकप्रिय बना दिया। इसके साथ ही पैदल फौज को दूसरो की अपेक्षा ज्यादा तनख्वाह देकर लोगो को सेना के इस अग मे भर्ती होने के लिए प्रेरणा दी गई। फलस्वरूप थोडे समय मे ही पजाबी भी काफी सख्या मे पैदल सिपाही बनने लगे।

महाराजा ने पैदल फौज की ट्रेनिंग आदि के लिए वन्तूरा को यह भी आदेश दिया कि वह पजाब के दूसरे अफसरो की सुविधा के लिए एक विशेष पुस्तक लिखे जो कि उस ममय की प्रचलित फारसी भाषा मे हो। जो पुस्तक उसने लिखी इस का नाम "जफरनामा" अथवा "तर्जुमा कवायद-ए-सिपाह" है। इसकी एक प्रति राज्य पुरालेख विभाग पटियाला मे सुरक्षित है। यह लाहौर से लाई गई थी। उसमे सैनिक आदेश जो कि मूलरूप मे फ्रासीसी भाषा मे थे फारसी मे लिखे गए जिससे स्पष्ट होता है कि महाराजा ने इस काम की ओर कितना ध्यान दिया।

पैदल फौज की तरह ही महाराजा रणजीत सिह ने अपने तोपखाने का पुनर्गठन भी किया। इसमे भी उसे बहुत कठिनाई हुई क्योकि पजाब के परम्परागत सैनिक सगठन मे तोपखाने का लगभग अभाव था।[1] मिसल काल मे सिक्ख फौज न तो तोपें बना सकती थी और न ही गुरिल्ला लडाई मे उसकी आवश्यकता थी। इस काम मे मुगल काल से चले आ रहे तोपची कुशल थे। इस लिए महाराजा रणजीत सिह ने प्रोत्साहन दे कर उनकी सेवाएं प्राप्त की और यूरोपियन अफसरो के पजाब मे आने पर उनकी सहायता से अपनी सेना मे तोपखाने को भी स्थान दिया। महाराजा की विशेष इच्छा थी कि जैसे भी हो सके, तोपे प्राप्त की जाए। इसीलिए उसने "कडा खा वाली तोप" पटियाला से प्राप्त की। इसके अलावा अपने विरोधी मिसलदारो से जितनी भी उसे तोपे प्राप्त हो सकती थी, उसने अपने कब्जे मे ले ली। आगे के लिए पजाब मे ही तोपे बनाने का प्रबन्ध भी किया गया। इस काम के लिए कुछ इलाको मे उसको योग्य लुहार मिल गए। कोटली लोहारा, स्यालकोट के निकट इस काम के लिए प्रसिद्ध था। ये वही लोग थे जो कि अग्रेजो के अधीन जब पजाब मे हथियार बनाने का कार्य बन्द हो गया तो सर्जीकल यत्र बनाने मे कुशल माने जाने लगे। पजाब मे तोपे गुजरात और लाहौर मे बनाई जाने लगी। महाराजा की यह भी प्रबल इच्छा थी कि वह पजाबी अफसरो को इस कार्य के योग्य बना सके। प्रसिद्ध कश्मीरी मिया गौसा उसके माने हुए तोपची थे और लैहणा सिह मजीठिया जो

कि इस काम मे विशेष रुचि रखते थे, बाद मे तोपखाने के इचार्ज बनाए गए। इस तरह लगातार कोशिशो से महाराजा ने इस कमी को भी पूरा कर लिया।

घुडसवार फौज बनाने मे रगरूटो की तो कमी नही थी परन्तु पजाब के पुराने घुडचढे अथवा घुडसवार किसी किस्म का अकुश मानने के लिए तैयार नही थे। वे पुरानी किस्म के बाके सवार थे जो कि व्यक्तिगत वीरता मे विशेष विश्वास रखते थे, उनके शस्त्र भी पुरानी किस्म के थे। महाराजा ने अपनी घुडसवार फौज को यूरोपियन अफसरो के निरीक्षण मे नये सिरे से तैयार किया क्योकि पश्चिमी ड्रिल आदि पजाब के घुडसवार करने के लिये बिल्कुल तैयार नही थे और वे इसका मजाक इस तरह उडाते थे कि यह "बदरो का नाच है"। फ्रासीसी अफसर अलार्ड कोर्ट घुडसवार फौज की ट्रेनिग के लिए नियुक्त किये गये।

सैनिक संगठन

(क) "फौज-ए-आईन" अथवा नियमबद्ध सेना पुनर्गठन के उपरान्त जो स्थायी सेना बनाई गई उसको उपर्युक्त नाम से पुकारा जाता था क्योकि वह फौज नवीन कवायद/परेड आदि के अधीन रहती थी और उसको सरकारी खजाने से निश्चित वेतन मिलता था। इसके भिन्न-भिन्न अग ये थे

1. *पैदल सेना* जैसाकि बताया जा चुका है कि महाराजा रणजीत सिंह ने अंग्रेजो की सेना के सगठन के आधार पर अपनी पैदल सेना का नए सिरे से निर्माण किया क्योकि पश्चिमी युद्ध विधि मे इस जग का बहुत महत्त्व था और अपनी लगातार कोशिशो से वह सेना के इस अग मे काफी सख्या मे सैनिक भर्ती करने मे सफल हुआ। इस अग के सैनिक दूसरो की अपेक्षा अधिक वेतन पाते थे। धीरे-धीरे इस अग मे पंजाबी भी बहुत सख्या मे भर्ती हो गये थे। महाराजा के निधन से एक साल पहले अर्थात् 1838 मे पैदल फौज की कुल सख्या कोई 27 हजार के लगभग थी और इसका वेतन बिल दो लाख 27 हजार रुपये बनता था।

2. *सवार फौज* · इस अग मे वे सवार शामिल थे जिन को महाराजा के यूरोपियन अफसरो ने ट्रेनिग दी थी। उनमे से सबसे प्रसिद्ध फ्रासीसी अलार्ड साहिब थे। बेशक पजाब मे परम्परागत घुडसवार सेना बहुत थी परन्तु वह घुडचढे नये नियमो के अनुसार ड्रिल करने के लिए तैयार नही थे। उनको किसी किस्म के अंकुश मे काम करने की आदत नही थी। नयी सवार फौज को रेजिमैंटो मे गठित किया गया और उनको पश्चिमी ढंग पर ट्रेनिग देकर इकट्ठे मिलकर सामूहिक रूप मे आक्रमण करने की ट्रेनिग दी गई। अलार्ड साहिब के आने से पहले यह काम आरम्भ हो चुका था परन्तु उस समय तक ट्रेड रेजिमैंटों की संख्या केवल चार थी। अलार्ड साहिब ने बढ़ाकर एक हज़ार सवार इस अग मे शामिल किये। उनकी सख्या महाराजा की मृत्यु के समय सन् 1839 मे भी लगभग इतनी ही रही।

3. *तोपखाना :* पैदल सवारो की तरह इस अग की ओर भी महाराजा रणजीत सिंह ने विशेष ध्यान दिया क्योंकि पुरानी सेना मे तोपखाना नाममात्र ही

था। पश्चिमी सैनिक विधि मे इसका विशेष महत्त्व था और इसी लिए महाराजा को इस अग की ओर विशेष ध्यान देना पडा। इस कर्मा को पूरा करने के लिए आरम्भ मे महाराजा को मुसलमान तोपचियो की सहायता लेनी पडी और यूरोपियन अफसरो के आने पर उसने उनकी योग्यता का भी लाभ उठाया। महाराजा ने होल्कर की पराजय का कारण यह समझा था कि अग्रेजों का मुकाबला करने के लिए उसके पास काफी तोपखाना नही था।

सन् 1810 मे सेना के भिन्न अगो के रूप मे तोपखाना के अधीन इस अग का निर्माण किया गया।

महाराजा के तोपखाने का प्रसिद्ध अधिकारी मिया गौस खा था। बाद मे कोर्ट साहिब के अधीन इस अग को और वढाया गया। महाराजा की इच्छा थी कि पंजाबी अफसर इस कार्य मे रुचि लें। इस लिए उसने सरदार लैहणा सिह मजीठिया को इस अग का सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त किया।

तोपखाना को निम्नाकित चार उपविभागो मे बॉटा गया था

1. तोपखाना असपी (घोडो से खीचा जाने वाला तोपखाना)
2. तोपखाना गावी (बैलो से खीचा जाने वाला तोपखाना)
3. तोपखाना शुतरी (ऊँटो से खीचा जाने वाला तोपखाना)
4. तोपखाना जिन्सी (मिले-जुले पशुओ से खीचा जाने वाला तोपखाना)

यह बात निराधार है कि महाराजा का तोपखाना फीली अथवा हाथी से खीचा जाने वाला था। इस किस्म के तोपखाने की पजाब मे न तो आवश्यकता थी और न इतने हाथी ही उपलब्ध थे। तोपखाने को पैदल और सवार फौज के साथ सम्मिलित कर दिया जाता था। युद्ध मे फौज की सहायता के लिए इसका उपयोग होता था। सन् 1814 मे इलाही बख्श के अधीन एक विशेष घोडो से खीचे जाने वाले तोपखाने का निर्माण किया गया। सन् 1826 तक तोपखाने की बैटरिया जिन को डेरा कहा जाता था की सख्या 7 थी और 200 के लगभग तोपें महाराजा ने प्राप्त कर ली थी। सन् 1827 मे कोर्ट साहिब के पजाब मे आने पर और सन् 1832 मे कर्नल गार्डनर के निरीक्षण मे "जिन्सी" अथवा मिले-जुले और भारी तोपखाने का निर्माण किया गया। छोटी तोपे, जिनको जम्बूर खाना अथवा हल्की तोपें कहा जाता था, घोडो द्वारा खीची जाती थी, सन् 1835 मे हर एक ब्रिगेड के साथ एक घोडो से खीची जाने वाली बैटरी भी शामिल थी।

महाराजा के लगातार परिश्रम और उत्साह के कारण तोपखाने ने विशेष प्रगति की थी और उसके तोपची इस कार्य मे काफी कुशल बन गये थे। यह बात अंग्रेजो और सिक्खो की दो लडाइयो से सिद्ध हो जाती है। हालाकि पिछले 20-25 सालो से ही पजाब मे तोपखाने का निर्माण हुआ था परन्तु पजाबियो ने इस कार्य मे अग्रेजों से कम योग्यता प्राप्त नही की थी।

सन् 1838-39 मे दरबार के पास 300 के लगभग तोपे थी और तोपो के चलाने वाले कर्मचारियो का वेतन कोई 33 हजार रुपये मासिक था।

(ख) **"फौजे-बे-कवायद", बगैर ट्रेनिग के अथवा अनियमित सेना** इस भाग मे वे सैनिक समझे जाते थे जो कि मिसल काल की पुरानी फौज थे। महाराजा ने भिन्न-भिन्न सरदारो की सेना को जो उनके पास थी अपने अधीन ले लिया था। यह सेना घुडचढा कहलाती थी। इसमे भी दो भाग थे .

1. जागीरदारी अथवा मिसलदारी घुडचढे ।
2. घुडचढा खास ।

घुडचढा खास वे बडे-बडे सरदार थे जोकि महाराजा के सबधी या बडे उच्च अधिकारी होने के नाते अपनी विशेष घुडचढा फौज रखते थे। घुडचढा अपने आपको उच्च कोटि का सैनिक समझते थे और इसी कारण अपने आपको नियमबद्ध करने के लिए तैयार नही थे । महाराजा उनका उपयोग राष्ट्रीय सेना के रूप मे करते थे और युद्धो मे उनको भी शामिल किया जाता था। कुछ विदेशी अतिथियो ने घुडचढ़ों की बहुत प्रशसा की है। वह रंग-बिरगी और अपनी विचित्र वेशभूषा मे अपने युद्ध कौशल के लिए मशहूर थे और अपने आपको बहुत प्रसिद्ध समझते थे।

महत्त्व : घुडचढा अपने आपको सामन्ती युग का प्रतीक समझते थे और पजाब के समाज के उच्च वर्ग से सबध रखते थे। उनमे जाट, हिन्दू, राजपूत और पठान सभी जागीरदार शामिल थे। महाराजा भी उनका विशेष सम्मान करते थे। पजाब की स्वतत्रता के लिए अनका विशेष महत्त्व माना जाता था क्योकि वह साधारण वेतन पाने वाली सेना नही थे । जर्मन सैनिक नेता फोन ह्यूगल के सन् 1836 मे पजाब आने पर उसने घुडचढो को पजाब के पुराने सामत समझते हुए दरबार की सेना का सम्मानित अग बताया और इस बात से वह बहुत प्रसन्न हुआ कि वे ही असली रूप में पजाबी सैनिक है। घुडचढों के गुजारे के लिए महाराजा ने विशेष जागीरें दी हुई थी जो कि साधारण करो से मुक्त थी।

चरित्र और बनावट : महाराजा की पुर्नगठित सेना पूर्ण रूप से धर्म निरपेक्ष और राष्ट्रीय थी। उसमे योग्यता के आधार पर पजाबी अथवा विदेशी सभी भर्ती किये जाते थे । महाराजा का उद्देश्य अपनी सेना को उच्चस्तर की सेना बनाना था और योग्य व्यक्तियो के मिलने पर उनको उचित स्थान पर लगाया जाता था। यह और भी उल्लेखनीय है कि एक पीढी मे ही महाराजा ने कई पीढियो से चली आ रही परम्परागत सेना को नया रूप दे दिया और उसको हर प्रकार से नई सेना बना दिया जो कि पश्चिमी युद्ध नीति के अनुसार सगठित की गई थी। यह महाराजा की पंजाब को सबसे बडी देन थी। वास्तव मे उसको सन् 1809 मे अग्रेजो के साथ सन्धि करते समय अपनी सैनिक एव युद्ध विषयक त्रुटियो का जो तीव्र आभास हुआ था, उसने

उनको दूर करना अपना लक्ष्य बना लिया था ताकि वह अपनी सेना को अग्रेजो की सेना की तरह पुनर्गठित कर शक्तिशाली बना सके। इस काम मे उसको काफी सफलता मिली।

वेतन और भत्ते : महाराजा ने अपनी पुनर्गठित सेना के लिए योग्य सिपाही प्राप्त करने का भी प्रबन्ध किया । पजाब मे फौजी भर्ती मे न तो कोई कठिनाई थी और न ही योग्य आदमियो का अभाव । पजाब की जनता शारीरिक रूप मे बहुत योग्य थी और पजाब के उत्तर पश्चिमी सीमा पर स्थित होने के कारण यहाँ का हर निवासी वास्तविक सिपाही था। रणजीत सिंह को इस कार्य मे यहाँ के पुराने सैनिक वर्गो मे हर किस्म के सैनिक वडी सख्या मे मिले। सेना मे जाट, डोगरे, टिवाना, राजपूत और गोरखे आदि प्रसिद्ध थे। इस सैनिक सगठन के मुख्य कारण थे .

1 पजाब मे सैनिक परम्परा।
2. फौजी कार्यो का समाज मे सम्मान।
3 महाराजा का खुद एक महान सैनिक होना।

महाराजा की नई सेना नियमबद्ध और पक्की थी। हर वर्ग के लिए वेतन मुकर्रर था। फिर भी सिपाहियो को तनख्वाह किश्तो मे साल मे 3-4 बार मिलती थी। इससे फौज के सैनिको को कोई खास फर्क नही पडता था क्योकि वे केवल मासिक वेतन पर ही निर्भर नही थे। असल मे फौज मे भर्ती होने का उद्देश्य उस समय मे कई और भी लाभ प्राप्त करना था।

महाराजा रणजीत सिंह खुद अपने राज्य मे दौरे पर जाते समय फौजी भर्ती करते थे। महाराजा की सेना की कुल सख्या, उसके भिन्न भिन्न अगो और सैनिको के वेतन आदि का ब्यौरा हमे "खालसा दरबार" के रिकार्ड से मिलता है जो कि उस समय लाहौर दरबार के अधीन रखा जाता था। सौभाग्य से यह रिकार्ड अब पुरालेख विभाग पटियाला मे सुरक्षित है।

युद्ध सामग्री और दूसरा सामान नई फौज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए भी महाराजा ने उचित प्रबन्ध किया था। बारूद, बन्दूक और तोपे बनाने के लिए विशेष कार्यालय स्थापित किये गये और विशेष स्थानो पर उन लोगो को इस कार्य मे लगने के लिए प्रोत्साहित किया गया जोकि किसी रूप में हथियार बनाने का काम जानते थे। स्यालकोट के निकट कोटली लुहाराँ तथा गुजरात और लाहौर इस दिशा मे प्रसिद्ध स्थान थे जहा कि इस किस्म के प्रबन्ध किये गये थे।

युद्ध का सामान तम्बू, काठियाँ और फौजी काम मे आने वाली अनेक वस्तुएँ बनाने का भी प्रबन्ध सरकारी था। इस कार्य के लिए पंजाब मे सब जगह "कारखाने" स्थापित थे जिनमे वर्दियाँ आदि बनाने और दूसरी वस्तुओं को तैयार करने के लिए वर्कशाप थे। इस तरह से जो लोग सेना मे भर्ती नही थे वे भी सैनिक कामो मे लगे हुए थे। महाराजा के अधीन इस प्रकार के लगभग सभी शिल्पकार काम मे लगे रहते

थे। यहाँ लोगो के काम करने का भी बडा अच्छा ढग था। सब जनता इस बात से बडी सतुष्ट थी। पजाब मे ढलाई, लोहे के शस्त्र बनाना, वर्दियाँ और तम्बू आदि के लिए सारी सेना के लिए प्रबन्ध किया गया था। अनुमान लगाया गया है कि महाराजा की कुल आय का 41% सेना पर खर्च होता था और बाकायदा फौज की सख्या कोई 80,000 थी और उससे कई गुना लोग सैनिक सामान और सामग्री बनाने मे लगे हुए थे।

इनाम और उपाधियाँ : महाराजा विशेष सैनिक सेवाओ और वीरता के लिए उचित रूप मे इनाम भी देते थे। यह साधारण तौर पर जागीर और खिल्लत के रूप मे होते थे और खुले दरबार मे प्रदान किये जाते थे। वीरगति पाने वाले सिपाहियो या बुरी तरह जख्मी होने वालो को पैन्शन और गुजारे भी प्रदान किए जाते थे।

अपने राज्यकाल के अन्तिम सालो मे महाराजा ने अग्रेजो की देखादेखी अपनी फौज मे भी मैडलो का रिवाज जारी किया। मगर यह केवल प्रसिद्ध व्यक्तियो को ही प्रदान किये जाते थे। इस तरह का एक खास तौर पर तैयार करवाया हुआ सोने का मैडल सन् 1838 मे अग्रेज गवर्नर जनरल ऑकलैण्ड को पजाब पधारने पर भेंट किया था। यह मैडल उसके परिवार से महाराजा पटियाला ने खरीद लिया था। यह अब महाराजा पटियाला के मैडलो के सग्रह मे पुरालेख विभाग पटियाला मे मौजूद है। इस मैडल को "को-कबे-इकबाल-ए-पजाब" अथवा "स्टार ऑफ दी ग्लौरी ऑफ पजाब" अथवा "पजाब के तेजस्व का पदक" कहा जाता है। इसी तरह एक यूरोपियन जनरल, जोकि लाहौर दरबार की सेवा मे था, को भी दो पदक महाराजा दलीप सिंह और राजा लाल सिह ने प्रदान किये थे। ये दोनो मैडल भी पटियाला सग्रह मे है।

मूल्यांकन अगणित कठिनाइयो के होते हुए भी महाराजा ने अपने जीवन काल अथवा 20-25 साल के थोडे समय मे अपनी सेना का पूर्ण रूप से कायाकल्प कर दिया। शुकरचक्किया मिसल के सरदार के तौर पर केवल पुरानी किस्म के आठ हजार सैनिको के स्थान पर उसने महाराजा बनने के पश्चात् 80 हजार की विशाल सेना तैयार की थी जो कि पश्चिमी विधि के अनुसार सगठित थी और आधुनिक शस्त्रो से लैस थी। यह वास्तव मे एक चमत्कार था।

महाराजा रणजीत सिंह ने इस सेना मे चुन-चुन कर सजीले जवान भर्ती किये थे और जब कभी भी अग्रेजों को उसकी सेना की परेड देखने का अवसर मिला वे उससे बडे प्रभावित हुए। महाराजा ने अपनी सेना मे वह शाखा भी जो कि पजाब मे कभी मौजूद नही थी तैयार कर ली। उसने पैदल फौज और तोपखाने की तरफ विशेष ध्यान दिया और उस कमी को पूरा कर लिया जो कि बहुत से भारतीय शासक अग्रेजों के मुकाबले मे नही कर सके थे और एक-एक करके पराजित हो चुके थे। इतना ही नही, उनको उतने ही उच्च स्तर की शिक्षा और शस्त्र भी प्राप्त थे जितने कि अंग्रेजो की फौजो को।

महाराजा ने यह बहुत जल्दी अनुभव कर लिया था कि अग्रेजो का मुकाबला करने के लिए परम्परागत सेना और शस्त्र लाभदायक नही हो सकते। इसलिए उसने अपना पूरा ध्यान देकर शीघ्र से शीघ्र अपनी सेना का पुनर्गठन किया क्योकि वह इस परिणाम पर पहुँचा था कि पजाब की सुरक्षा के लिए आधुनिक सेना अत्यावश्यक है और वह हर प्रकार से उतनी ही कुशल होनी चाहिये जितनी की अग्रेजो की सेना। पंजाबी सिपाहियो से हुई दोनो लडाइयो मे अग्रेजो ने उनकी योग्यता की खुद सराहना की है। महाराजा की नई नीति इसलिए बिल्कुल उचित थी।

यूरोपीय सैनिक प्रणाली के प्रतिकूल प्रभाव यह भी मानना पडेगा कि महाराजा रणजीत सिंह ने जहाँ अपनी सेना का पुनर्गठन करके एक महान कार्य किया था, वहाँ ऐसा करने के कई बुरे प्रभाव भी हुए।

बडी सख्या मे नियमित सेना रखने से सरकार के ऊपर उसके खर्च का लगातार बोझ पड गया। यह किसी हद तक जब कि महाराजा रणजीत सिंह पुरानी सेना से ही पजाब के भीतर अपने सब विरोधियो को समाप्त कर चुके थे, अनुचित लगता है। पजाब का एकीकरण परम्परागत सेना के द्वारा ही सम्पन्न हुआ था। इसलिए अधिक इलाके फतेह (विजित) करना या राज्य का विस्तार करने का मौका न होने की अवस्था मे इतनी बड़ी फौज का खर्च खजाने पर डालना कोई विशेष दूरदर्शिता प्रतीत नही होती। (उत्तर-पश्चिमी इलाके, कश्मीर, लद्दाख आदि सब महाराजा रणजीत सिंह के उत्थान के आरम्भ मे ही अग्रेजो के हस्तक्षेप के बिना उसके अधीन हो गये थे)। फौज के खर्च के समय पर पूरा न होने से कई बार बकाया रह जाता था जिससे सेना मे असतोष फैलता था और कई सैनिक नौकरी छोडकर भाग जाते थे।

2. सेना को ट्रेनिग देने के लिए बडी-बडी तनख्वाहो पर यूरोपियन अफसरो को दीर्घकाल के लिए रखे रखना भी चतुराई की बात प्रतीत नही होती। यूरोपियन अफसरो की तनख्वाहे पजाबी अफसरो के मुकाबले मे कई सौ गुना अधिक थी। इस कारण इसी किस्म का काम करने वाले पजाबी अफसर मन ही मन कुढते रहते थे। साथ ही यूरोपियन अफसरो की वफादारी कोई निश्चित नही थी। बेशक वह नौकरी करने के समय महाराजा को हर प्रकार का आश्वासन दिलाते रहते थे और नौकरी की हर प्रकार की शर्ते मान लेते थे और हर एक देश जिसमे कि उनका अपना देश भी चाहे हो उसके विरुद्ध लडने के लिए तैयार रहने का विश्वास दिलाते थे। परन्तु उनमे से बहुत से धन बनाकर पजाब को छोड कर चले जाते थे और रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् अग्रेजो से युद्ध के समय सब के सब पजाब छोडकर चले गये थे क्योकि यह स्पष्ट था कि वे लाहौर दरबार के प्रति निष्ठावान नही थे। कुछ तो उनमे अग्रेजो के जासूस भी बन गये थे।

3 यूरोपियन अफसरो ने पजाब मे रहते हुए पजाबियो को अग्रेजो के विरुद्ध करने की कोशिश की। ऐसा करने से वह अपना महत्त्व बढाना चाहते थे और अपनी सेवाओ का अनुपातत ज्यादा फल प्राप्त करना चाहते थे।

4 महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी सेना का पुनर्गठन करते समय भर्ती के बारे मे उचित ध्यान नही दिया । नये सैनिक प्राप्त करने के लिए पुराने तरीके के मुताबिक ही जुदा-जुदा गॉवो से इकट्ठे लोग भर्ती करके उनको एक ही पल्टन/रेजिमैन्ट मे रख लिया जाता था जिससे उनके अन्दर पुराने जातिवाद या स्थानवाद की भावना कायम रहती थी । इसका परिणाम यह हुआ कि अपने फौजी अफसरो की अपेक्षा वह अपने सबधी और स्थानीय चौधरियों का ज्यादा सम्मान करते रहे और अपनी हर प्रकार की आवश्यकता पूरी करने के लिए उनके पास ही जाते रहे । महाराजा की सेना मे इस कुरीति से एक प्रकार का ट्रेड यूनियन का भाव पैदा हो गया । लीडरो की पोजीशन केवल युद्ध के समय कारवाई करने वाले विशेषज्ञो की बन गई और अफसरो के प्रति सैनिको की भक्ति उत्पन्न न हुई । इस भावना के उत्पन्न होने से लाहौर दरबार की सेना मे "पच" सिस्टम आरम्भ हो गया और सेना न तो अफसरो और न ही सरकार के अकुश मे रही । वह अपने आप मे एक दल बन गई जोकि कालातर मे सरकार को ही अपनी कठपुतली समझने लगी और जो अन्त मे राज्य के विनाश का कारण बनी ।

5. महाराजा रणजीत सिंह की यूरोपियन अफसरो को बडे-बडे लालच देकर अपने पास रखने की नीति पर एक और आक्षेप यह है कि उसने केवल "ड्रिल कराने वाले सारजट" को जो कि केवल धन एकत्र करने मे ही रुचि रखते थे सफेद हाथियो के रूप मे रख छोड़ा था, विशेष तौर पर जबकि उनको पजाब के प्रति कोई लगाव नही था । केवल पुनर्गठन के लिए अगर उनकी सेवाएँ प्राप्त करके एक मिलिट्री कालेज स्थापित कर लिया जाता और पजाबी अफसरो को यूरोपियनो से ट्रेनिंग दिलवा कर उनको वापिस भेज दिया जाता तो शायद बहुत अच्छा होता । ऐसा करने से न तो खजाने पर इतना अधिक बोझ पडता और न ही उन सब लोगो के ऐन सकट के समय पजाब छोड़ जाने का इतना बुरा प्रभाव होता । महाराजा ने उनको सतुष्ट रखने की भरसक चेष्टा की पर फिर भी परिणाम केवल गद्दारी निकला ।

लाहौर दरबार के सैनिक अधिकारियों/कर्मचारियों के वेतन की सूची

क्रम संख्या	विवरण	आरम्भिक मासिक वेतन	अन्तिम मासिक वेतन (अधिक से अधिक)
		रु०	रु० आने
1.	सिपाही	5/-	8/8
2.	सारजट	8/-	12/-
3.	नायक	10/-	12/-
4.	हवलदार	13/-	15/-
5.	जमादार	15/-	22/-
6.	मेजर (मौयूर)	21/-	25/-
7.	सूबेदार	20/-	30/-

		रु०	रु०
8.	एडजूमैन्ट (एडज्यूटन)	30 -	60/-
9	कौमन्डन्ट (कामेदान)	60/-	130/-
10.	करनैल (कोलोनल)	300/-	350/-
11.	जरनैल	400/-	460/-

महाराजा रणजीत सिह के सैनिक खर्च का ब्यौरा (1838-39 के लगभग)

	(क) बाकायदा फौज (आईन)	संख्या	वार्षिक खर्च
1.	पैदल फौज (पल्टन)	28600	27,50,000/-
2.	घुडसवार (रसाला/रजबन)	4600	12,30,000/-
3	तोपखाना (डेरा)	4800	4,00,000/-
	(ख) बाकायदा घुड़सवार फौज (गैर आईन)		
1.	सरदारो के अधीन डेरे	9600	25,20,000/-
2.	घुड-चढा खास	1200	6,36,000/-
3.	जागीरदारो के डेरे	3400	16,00,000/-
	(ग) किले में रखे हुए सैनिक (गैरिजन ड्यूटी पर सैनिक)		
		10,000	6,00,000/-
	जोड	62,200	जोड 97,36,000/-
	(घ) यूरोपीय अफसरो का वेतन		2,00,000/-
	वर्दी, परिवहन, गोला बारूद		8,00,000/-
		कुल जोड	1,07,36,000/-

प्रश्न

1 What were the main defects in the organization of the Sikh Army in the Pre-Ranjit Singh period ? How far did he succeed in removing them ?

रणजीत सिंह से पूर्व सिक्ख सेना के सगठन मे क्या-क्या दोष थे ? सिक्ख सेना के ये दोष रणजीत सिंह ने किस प्रकार दूर किये ?

2. Write a critical note on the new Army of Ranjit Singh.

रणजीतसिंह की नयी सेना के गुण-दोषों का विवेचन कीजिए।

3 Gıve a brıef account of Mılıtary organızatıon of Ranjıt Sıngh.
महाराजा रणजीतसिंह के सैन्य सगठन का सक्षिप्त वर्णन कीजिए।

4. Gıve the opınıon of European observers regardıng the efficıency of Ranjıt Sıngh's Army
रणजीत सिह की सेना के विषय मे यूरोपीय पर्यवेक्षको के विचार उल्लिखित कीजिए।

5. Wrıte short notes on
(A) 'Fauj-A-Aın' (B) 'Fauje-Be-Qwayad'.
सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
(क) 'फौज-ए-ग्राईन'
(ख) 'फौजे-वे-कवायद'

24

महाराजा रणजीत सिंह का सार्वजनिक प्रशासन

विशेषता और स्वरूप महाराजा रणजीत सिंह ने पजाब मे तत्कालीन मिसलो को समाप्त करके व्यक्तिगत निरकुश राज्य स्थापित किया। ऐसा करने मे उसने अपने मिसलदारो को जो सभी स्वतत्र थे, अपने दरबार के अनुशासन मे लाकर उनकी स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया। और इस प्रकार सिक्खो मे प्रचलित "गुरमत्ता" की सस्था का भी अन्त करना पडा। सिक्खो मे दरअसल अहमदशाह अब्दाली के निधन के पश्चात् गुरमत्ता की सस्था शिथिल हो गई थी और सब सरदार इसके प्रति लापरवाह हो गये थे। अतिम गुरमत्ता महाराजा रणजीत सिह ने सन् 1805 मे बुलाया था जबकि जसवन्त राव होल्कर के पजाब मे आने से सकट पैदा होने की सभावना थी। परन्तु जिन सरदारो को निमन्त्रण दिया गया था, वे उसमे शामिल नही हुए। ऐसा प्रतीत होता था कि सिक्ख सरदारो मे उस समय राष्ट्रीयता की अपनी पहली भावना बिल्कुल विलुप्त हो चुकी थी। महाराजा रणजीत सिंह को जो स्वय एक मिसल का सरदार था यह बात अच्छी तरह से ज्ञात थी कि सरदारो मे परस्पर कितनी ईर्ष्या थी और वे एक दूसरे का पतन करने के लिए किस सीमा तक उत्सुक थे। और किसी किस्म की व्यवस्था उस समय उचित नही थी। पजाब की राजनीतिक स्थिति भी सब सरदारो के आपसी सघर्ष के कारण इतनी बिगड चुकी थी कि किसी एक प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा सब को विजित करके सारे पजाब मे एक राजतन्त्र स्थापित करना समस्या का एकमात्र समाधान दीखता था।

महाराजा रणजीत सिंह ने अपना राजतन्त्र स्थापित करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा था कि सिक्खो की बराबरी की भावना का जो कि गुरु गोबिन्द सिंह ने उनको "खालसा" बनाकर उनके अन्दर फूँकी थी का समुचित सम्मान किया जाए। उसने अपने से पहले पजाब के मुगल शासको की भाँति अपने नाम के साथ बडी-बडी उपाधियाँ नही लगाई और न ही अपने आपको दूसरो से उच्च दर्जा देकर अपने लिए ईश्वरी अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा की। इसके विपरीत उसने अपने राज्य को खालसा का राज्य ही जाहिर किया और इसी कारण अपने लिए "सरकार खालसा जियो" की उपाधि धारण की। इससे ऐसा प्रतीत होता था कि उसका राज्य सारी सिक्ख जनता का अपना राज्य है। साथ ही उसने अपने लिए जो सबसे बडा खिताब स्वीकार किया वह "सिंघ साहिब" था।

रणजीत सिंह का राजतत्र सभी के लिए हितकर था। वह पजाब का कोई विदेशी राजा नही था और उसके राज्य की सफलता का सबसे बडा कारण भी प्रजा की भलाई था। उसने अपनी सूझ-बूझ से लोगो पर ऐसा प्रभाव डाला था कि वह पजाब का योग्य ओर सर्वप्रिय शासक बन गया। यह इस बात से भी सिद्ध होता है कि हिन्दू और मुसलमान जनता ने उसको लाहौर पर अधिकार करने का निमत्रण दिया था। उसने भी यह सिद्ध करने की कोशिश की कि वह पजाब मे ऐसी व्यवस्था लाना चाहता है कि सब लोग एक दूसरे से मिलकर काम करे और अपने को सुरक्षित समझे।

महाराजा रणजीत सिंह ने अपने अधीन किसी प्रकार के विशाल शासन प्रबन्ध को स्थापित करने की कोशिश नही की। ऐसा करना उसके लिए शायद कठिन भी था क्योकि उसका सारा समय सैनिक सगठन और सैनिक कामो मे ही बीता। उसका मुख्य उद्देश्य सारे पजाब को अपने राजतन्त्र मे शामिल करना था। इसलिए किसी विशेष प्रबन्ध या परिवर्तन के बिना जो साधारण शासन प्रबन्ध हो सकता था और जिसके लिए उसको कर्मचारी प्राप्त थे, वह उनसे ही सतुष्ट हो गया। पजाब के लोगो के लिए ऐसा प्रबन्ध वास्तव मे उपयुक्त था क्योकि वे चाहते थे कि उनके जनजीवन मे सरकार का दखल बहुत कम हो। रणजीत सिंह ने परम्परागत ग्रामीण जीवन जो कि पचायत द्वारा होता था को किसी तरह से नही बदला। अपने अधीन कानून और व्यवस्था बनाने के लिए उसने इस किस्म का केन्द्रीय प्रबन्ध किया जोकि सरल, साधारण और पजाब वासियो के लिए अनुकूल था।

I केन्द्रीय शासन

उसने जो केन्द्रीय शासन चलाया उसका मेरुदण्ड महाराजा स्वय था। इस लिए सारा शासन प्रबन्ध उसी के इर्द-गिर्द घूमता था। सब निर्णय वह खुद करता था चाहे वे आन्तरिक या विदेशी मामलो की बाबत हों। सब काम उसकी इच्छा के अनुसार होते थे। वह अपनी सहायता के लिए विशेषज्ञो की राय जरूर लेता था। अपने शासन प्रबन्ध को कुशल रूप से चलाने के लिए उसने अपने अधीन योग्य अधिकारी नियुक्त कर रखे थे पर ये इतनी देर ही रहे जब तक कि महाराजा उनसे प्रसन्न रहे।

प्रसिद्ध सलाहकार : महाराजा रणजीत सिह के अधीन भिन्न-भिन्न कार्यो के लिए योग्य सलाहकार थे जिन को वजीर कहा जाता था परन्तु इस नाम की कोई उपाधि प्रचारित नहीं थी। उसके सलाहकारो मे सर्वप्रथम स्थान ध्यान सिह डोगरा को मिल गया था जिस को कई इतिहासकारों ने "प्रधान मत्री" का नाम भी दिया है। वह वास्तव मे ही राजकाज के सारे कामो मे महाराजा को मशविरा देता था और उस शासन प्रबन्ध में उनकी ड्योढी का इंचार्ज कहा जाता था। महाराजा रणजीत सिंह ने उनको 'राजा कलाँ" की उपाधि प्रदान की थी। विदेशी मामलो में उनका प्रसिद्ध सलाहकार फकीर अजीजुद्दीन था। इसी कारण उसको विदेश मत्री की सज्ञा भी दी जाती है। महाराजा को उसपर बहुत विश्वास था और सब महत्त्वपूर्ण मामलो मे उसकी राय ली जाती थी। मिसाल के तौर पर, 1809 ईस्वी मे अंग्रेजो के साथ अमृतसर की संधि के समय

और अफगानो के साथ व्यवहार मे उसी से मशविरा किया गया। फकीर अजीजुद्दीन का छोटा भाई नूरुद्दीन गृह विभाग का इचार्ज था। अमृतसर मे गोबिन्दगढ के महाराजा के खजाने का भी वही इचार्ज था। महाराजा के खानपान का विशेष काम भी उसके सुपुर्द था। विभिन्न कार्यालयो के प्रबन्ध के लिए महाराजा ने विशेष अधिकारी नियुक्त किये हुए थे। प्रसिद्ध कश्मीरी दीवान गगा राम को दिल्ली से बुलाया गया और उनको अपने दफ्तर का प्रमुखतम अधिकारी बनाया गया था। भवानी दास चोपडा जो कि पहले काबुल मे अफगानो के वित्त के काम पर लगा हुआ था लाहौर आने पर इसी काम पर लगा दिया गया। इसके इलावा राजा दीनानाथ हर प्रकार के रिकार्ड रखने का काम कई साल तक करता रहा।

फौजी कामो मे सलाह-मशविरे के लिए प्रसिद्ध जरनैल थे। दीवान मोहकम चन्द आरम्भ काल मे बहुत योग्य और विश्वासपात्र सैनिक सलाहकार था। उसके पश्चात् मिसर दीवान चन्द और सरदार हरि सिह नलुआ से महाराजा फौजी मामलो मे मशविरा करता था।

केन्द्रीय विभाग

केन्द्रीय शासन प्रबन्ध मे सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग वित्त था। आरम्भ मे महाराजा ने अपना कोई खजाना कायम नही किया था। वह अपना लेन-देन अमृतसर के प्रसिद्ध सर्राफ रामानन्द से किया करता था। जसवन्त राव होल्कर के पजाब आने पर उसने रणजीत सिह को अपना खजाना स्थापित करने की सलाह दी थी। यह प्रबन्ध सन् 1811 मे सम्पन्न हुआ क्योकि तब तक महाराजा के पास कोई योग्य अधिकारी नही था जो कि यह काम कर सके। इसके अलावा सैनिक कामो और अग्रेजों के साथ संधि के पचडो ने (जो कि सन् 1809 मे हुई) उसे जरा भी अवकाश नही दिया। उसके पश्चात् उसने दीवान गगा राम को दिल्ली से बुलाकर अपने दफ्तर को स्थापित करने के लिए नियुक्त किया। यह प्रबन्ध दीवान भवानी दास के काबुल से लाहौर आने पर और भी अच्छा हो गया। इस तरह महाराजा ने सबसे पहले अपने वित्त विभाग को गठित किया जो कि केन्द्रीय विभागो मे सबसे प्रथम और आवश्यक था।

वित्त विभाग

वित्त विभाग जिसका सबसे पहले सगठन किया गया, भूमिकर और दूसरे साधनो से प्राप्त होने वाली आमदनी के सबध मे था। इसका उस समय का नाम "दफ्तर अबवाब-उल-माल" अथवा "मालियात" था। इस के दो मुख्य भाग थे

I **"जमा खर्चे-ई-ताल्लकात"** इसके अधीन मुख्यत भूमिकर अथवा 'मालिया' आता था।

भूमिकर का विशेष महत्त्व था जैसा कि सभी राजतंत्रो मे होता है। यह होने वाले खर्चे के प्रबध के लिए अत्यावश्यक साधन था। इस साधन के महत्त्व को समझने के लिए महाराजा रणजीत सिंह की राजस्व प्रणाली की जानकारी आवश्यक है।

महाराजा रणजीत सिंह और उसके उत्तराधिकारयो के राज्य काल मे राजस्व प्रणाली के तीन प्रसिद्ध चरण थे

1. '**बटाई**'' यह परम्परागत तरीका मुगल काल से चला आता था। जिसके अधीन भूमि की उपज सरकार और खेती करने वाले के बीच बाँटी जाती थी। यह बडा सीधा सादा तरीका था और उस समय पजाब मे प्रचलित था। रणजीत सिह ने सबसे पहले इसी को अपनाना उचित समझा। इसके अधीन सरकार का भाग जिन्स मे ही प्राप्त किया जाता था और यह प्रबध सन् 1823 तक चलता रहा। इस तरीके को लागू करने मे बहुत सी कठिनाइयाँ थी। सबसे पहले जिन्स को इकट्ठा करके एक जगह पर रखना, खासकर उस समय जब कि आवाजावी (यातायात) के साधान बहुत कठिन थे, बहुत ही हानिकारक होता था। दूसरे जिन्स का मडी का भाव अधिक या कम होते रहने से भी सरकार की आमदनी भी निश्चित नही हो सकती थी।

2 **कानकूत** उपर्युक्त कठिनाइयो को देखते हुए और विशेष साधन से प्राप्त होने वाली आय को निश्चित करने के लिए राजस्व का नया तरीका ढूँढना पडा। यह इसलिए भी आवश्यक हो गया था कि सन् 1824 के लगभग महाराजा रणजीत सिह ने अपनी फौज का पुनर्गठन समाप्त कर लिया था और एक नियमित और स्थायी सेना के खर्च के लिए उचित आमदनी का पक्का प्रबन्ध करना आवश्यक था। इसके साथ ही राज का सार्वजनिक शासन प्रबन्ध भी मुकम्मल हो गया था और इसके ऊपर खर्च का भी अच्छी तरह से अनुमान लगाया जा सकता था। इन जरूरतो को पूरा करने के लिए महाराजा ने भूमि राजस्व का नया तरीका 'कानकूत' लागू किया जो कि सन् 1824 से 1834 तक प्रचलित रहा। इस प्रणाली के अधीन सरकार का भाग नकद रुपये के रूप मे वसूल किया जाता था। जिन्स के पकने के समय सरकारी कर्मचारी वहाँ पहुँच कर कुल जिन्स का अनुमान लगाकर उसका उस समय मडी के भावके अनुसार मूल्याकन करके सरकारी भाग मुद्रा रूप मे वसूल कर लेते थे। यह प्रणाली पुराने ढग के मुकाबले मे बहुत लाभदायक सिद्ध हुई, क्योंकि एक तो कुल आय का अनुमान लगाना सभव हो गया और दूसरे जिन्स का दूर-दूर से लाकर एक जगह इकट्ठा करने का झझट और उसके भाव में कमी-बेशी होने का भी डर दूर हो गया।

कानकूत के अधीन भी सरकार को कुल आय का अनुमान केवल जिन्स के पकने के समय ही हो सकता था। इस कारण यह निश्चित नही हो सकता था कि अमुक साल मे कुल कितनी राशि भूमि राजस्व से प्राप्त होगी। इसलिए पहले से ही सरकारी खर्च के लिए पक्का प्रबन्ध सभव नही था। इस त्रुटि को दूर करने के लिए किसी और अच्छे तरीके का निकालना जरूरी हो गया।

3. **ठेकेदारी** सन् 1834 के पश्चात् महाराजा रणजीत सिह ने भूमि को लम्बे समय के लिए सर्वाधिक बोली देने वाले को ठेके पर देने का प्रबन्ध किया। इस तरीके को फार्मिग अथवा "अजारादारी" भी कहते थे। इसके अधीन भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमि 3 से 6 साल के लिए सर्वाधिक राशि देने वाले को पट्टे पर दे दी जाती थी।

सरकार को इस तरीके से यह लाभ हुआ कि उसको स्पष्ट तौर पर पता लग सकता थ कि जितने समय के लिए ठेका दिया गया है उतने ही समय मे उसको कितनी आय प्राप्त हो सकती है। कई बार सारे का सारा गाँव ही वहाँ के रहने वालो को लम्बे काल के ठेके पर दे दिया जाता था। उद्देश्य यह था कि सरकार को अपनी आमदनी का ठीक-ठीक अनुमान हो सके।

भूमि राजस्व की उपर्युक्त प्रणाली पर सबसे बडा एतराज यह था कि इसके अधीन सरकार ने भूमि को खेती करने वाले ठेकेदारो के अधीन कर दिया था और वे जो कुछ भी चाहते थे करते थे। सरकार को केवल अपने ठेके के रुपयो मे रुचि रह गई थी।

उपज में सरकार का हिस्सा इस बारे मे भी काफी मतभेद है कि महाराजा रणजीत सिंह खेती करने वालो से उपज का कितना भाग लेते थे। वास्तव मे राज्य के भिन्न-भिन्न भागो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमि मे उपज के कारण सरकार का हिस्सा भी जुदा-जुदा था। साधारणतया कहा जाता है कि यह 2/5 से लेकर 1/3 तक था जैसा कि 1849-50 की पजाब एडमिनस्ट्रेशन रिपोर्ट मे डूई साहिब ने लिखा था। फिर भी यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि इससे अधिक हिस्सा नही लिया जाता था। यह भी प्रमाणित है कि ऐसे स्थानो पर जहाँ कि सिचाई की सुविधाए थी और भूमि बडी उपजाऊ थी तथा गन्ना, रूई, तम्बाकू और नील जैसी फसले उगाई जाती थी, उपज का आधा हिस्सा भी सरकार वसूल कर लेती थी। भूमिकर के अलावा खेती करने वालो को 5 से 15% तक स्थानीय करो के रूप मे भी देना पडता था जिनको कि परम्परागत कर माना जाता था। मालिया साल मे दो बार यानी रबी और खरीफ (हाडी और सावनी) की फसलो के समय वसूल किया जाता था। हर जिले का कारदार सरकारी मालिये के लिए जिम्मेदार होता था और उसको हिसाब देना पडता था। भूमिकर सबधी स्थानीय अधिकारी पटवारी, गिरदावर और कानूनगो कहलाते थे जिन को वेतन गाँव के भूमिकर के भाग के रूप मे दिया जाता था।

2 फुटकर टैक्स वित्त विभाग का दूसरा भाग फुटकर टैक्सो से सम्बन्धित था। जिसको "जमा-खर्च-सैरात" कहते थे। इसके अधीन निम्नलिखित मदे थी

1. **"नजराना" अथवा उपहार आदि :** भिन्न-भिन्न कर्मचारियो को अपने पद के अनुसार राजा को विशेष अवसरो पर नजराना अथवा उपहार भेंट करने पडते थे और यह अवसर आमतौर पर जन्मदिन, राज्याभिषेक का दिन या विशेष दरबार वाले दिन होते थे।

2 **जब्ती अथवा पूँजी या सम्पत्ति को राज्य अधिकार मे ले लेना** ऐसी कारवाई दण्ड रूप मे उस समय की जाती थी जब कोई कर्मचारी या अधिकारी अपने कार्य मे विशेष बेईमानी करता था।

3 **आबकारी अथवा नशेवाली वस्तुओ पर टैक्स :** यह साधारणतया खतरनाक औषधियो या विशेष द्रव्यो के बेचने पर लगाया जाता था और इससे आय भी बहुत कम प्राप्त होती थी क्योंकि उस समय शराब पर किसी किस्म की कोई ड्यूटी नही थी।

4 **"वजूहाते मुकर्ररी," अथवा रजिस्ट्रेशन आफिस आदि :** यह आमदनी लोगो के इकरारनामे आदि रजिस्टर करने से होती थी। आमतौर पर किसी विशेष आदमी को इसका ठेका दे दिया जाता था जिससे सरकार को निश्चित आय मिलती रहती थी। इसमे "मोहराना" अथवा मोहर लगाने की फीस शामिल होती थी।

5 **तलबाना, जुर्माना तथा शुकराना :** सरकार की तरफ से लोगो के झगडे का फैसला करते समय भी विशेष रकम (1) तलबाना अथवा लोगो को बुलाने का खर्च, (2) जुर्माना अथवा अपराधी से वसूल किए जाने वाला कर और (3) शुकराना, अर्थात् जिस के हक मे फैसला हो उस की तरफ से धन्यवाद के रूप मे दी गई राशि होती थी। ये भी सरकार की आमदनी के साधन थे।

6 **चौकियात से आय :** "चौकियात" अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान आदि ले जाने पर जो कर लगाया जाता था वह विशेष स्थानो पर सरकारी चौकियो मे देना पडता था। यह लोगो को तंग करने का भी एक तरीका था। जिसके फलस्वरूप देश मे व्यापार बहुत कम होता था, क्योकि कई स्थानो पर लोगो को यह महसूल आदि देना पडता था। साधारणतया यह चौकियाँ दरियाओ को पार करने के स्थान या एक दूसरे इलाके मे दाखिल होने के स्थानो पर होती थी। बहुत सी वस्तुओ पर ये टैक्स लगाए जाते थे। कश्मीर मे भिन्न-भिन्न प्रकार की शिल्प की वस्तुओ पर जैसे शाल, पश्मीना और दूसरे ऊनी सामान और पहाडी इलाको मे बकरियाँ चराने पर भी कर लगाये जाते थे। इन साधनो से सरकार को काफी आमदनी हो जाती थी। सीमावर्ती इलाके मे हर एक घर से चूल्हा टैक्स के रूप मे भी सरकार कुछ रकम प्राप्त कर लेती थी।

3 "दफ्तरे-तहवीलात" अथवा तहवीलो के संबंध में हिसाब-किताब . इसका संबध उन अधिकारियो से आमदनी और खर्च का हिसाब लेना था जिन के पास सरकार की ओर से स्थानीय कामो पर खर्च करने के लिए रुपया दिया गया था। इस को 'तहवील' कहते थे।

4 दफ्तरे 'तोजिहात' इस विभाग का काम राज घराने का लेखा (अकाउण्ट) रखना था। इसका संबध (1) जनाना, (2) खिल्लत और दूसरे इनाम आदि, (3) ज्याफत अथवा भोज आदि, (4) "तोशाखाना" अथवा राजा और उनके परिवार की वेश-भूषा आदि से होता था।

5. "दफ्तरे मवाजिब" इस विभाग का सम्बन्ध उच्च अधिकारियों के वेतन वगैरा से था।

6. "दफ्तरे रोजनामचाये अखराजात" इस विभाग का संबध केन्द्र मे भिन्न-भिन्न कामों पर होने वाले उस दैनिक खर्च से था जो आम तौर पर फुटकर कामो पर होता था।

II. प्रान्तीय अथवा स्थानीय शासन प्रबन्ध

प्रशासन की सुविधा के लिए साम्राज्य को चार प्रान्तो में बाँटा हुआ था जिन के नाम इस प्रकार थे।

1. सूबा लाहौर।
2. सूबा मुलतान (जिस को दार-उल-उस्मान भी कहते थे)।
3. कश्मीर (जिस को 'जन्नत-नजीर' भी कहते थे)।
4 पेशावर।

हर एक प्रान्त का सर्वोच्च अधिकारी नाजिम कहलाता था। हर एक प्रान्त को ताल्लुको अथवा तहसीलो मे बॉटा होता था और हर एक तहसील मे लगभग 50 से 100 तक ग्राम थे। प्रान्तो का गठन वहाँ के लोगो के रहन-सहन, कानून और व्यवस्था की सुविधा के लिए और वहाँ से भूमिकर इकट्ठा करने के योग्य प्रबन्ध के आधार पर किया जाता था जैसा कि मुगल काल मे होता था।

हर एक प्रान्त मे नाजिम के अधीन कई कारदार अथवा कलैक्टर या डिप्टी कमिश्नर होते थे जिन को कार्यकारी (एग्जैक्टिव), अथवा वित्त के बारे मे अधिकार प्राप्त थे। सक्षेप मे कारदार के निम्नलिखित कर्त्तव्य थे

1. वह भूमिकर अथवा लगान इकट्ठा करने के काम का इचार्ज था।
2. वह सरकारी रुपया रखने के सबध मे कोषाध्यक्ष का काम भी करता था और इस सबध मे हिसाब-किताब रखता था।
3 स्थानीय मामलो मे उसको न्याय और कानून को लागू करने के अधिकार थे।
4. वह आबकारी और कस्टम अधिकारी के तौर पर फुटकर कर इकट्ठे करता था।
5. गवर्नमैण्ट की ओर से इलाके के दूसरे कामो का निरीक्षण करना भी उसी के जिम्मे था। कारदार के फैसले की अपील नाज़िम को की जा सकती थी। कारदार के बारे मे आम आदमियो का विचार अच्छा नही था। साधारणतया यह मशहूर था कि वे सरकार की आय मे से बहुत कुछ हडप कर जाते थे, बहुत से जनता की भलाई की तरफ ज्यादा ध्यान नही देते थे। साथ ही कुछ कारदार अपनी योग्यता के लिए प्रसिद्ध थे। जालन्धर द्वाब के कारदार मिसर रूप लाल को बहुत कार्यकुशल समझा जाता था। इसी तरह सरदार लैहणा सिंह मजीठिया अमृतसर के आसपास के इलाके के कारदार के तौर पर लोक-भलाई के कामो के लिए मशहूर थे।

कारदारो के कामो का निरीक्षण करने के लिए महाराजा रणजीत सिंह सारे राज्य मे अक्सर घूमते रहते थे। अपने दौरे के समय वह लोगो से भली भॉति यह मालूम कर लेते थे कि कारदार अपना काम किस तरह से कर रहे है। किसी कारदार के पकडे जाने पर उसको न केवल उसकी पदवी से हटा दिया जाता था बल्कि अनुचित तरीके से प्राप्त किया हुआ उसका धन भी जब्त कर लिया जाता था। इसलिए कारदारो को काफी भय बना रहता था और महाराजा का अकुश असरदार होता था।

प्रान्तीय नाज़िमों मे भी योग्य और अयोग्य नाज़िम थे। मुलतान का नाज़िम दीवान सावन मल अपनी कार्यकुशलता और विकास के कामो के लिए प्रसिद्ध था।

वह अपने प्रान्त से निश्चित आय जो कि 22 लाख रुपये सालाना के लगभग थी समय पर दरबार को भेज देता था। नाजिमो मे उनको उस समय के शासको मे आदर्श समझ जाता था। प्रान्त के बाकी सब मामलो मे उसको सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे।

कश्मीर के कई नाजिम नियुक्त हुए जिन्होने लोक भलाई के कामो के बजाय अपना ध्यान ज्यादातर धन एकत्र करने की तरफ दिया। इससे वहाँ की जनता को बहुत कष्ट उठाना पडा। इसी कारण सन् 1831 के लगभग कश्मीर मे अकाल पड गया और बहुत से कश्मीरी लुधियाना मे अग्रेजी राज्य मे चले गये।

पेशावर सब सूबो मे कम आमदनी वाला माना जाता था। सरहद पर स्थित होने और वहाँ की जनता के न्यायप्रिय अथवा शातिप्रिय न होने के कारण लाहौर सरकार को बहुत अधिक खर्च फौज पर करना पडता था। यह खर्च इसलिए भी अनिवार्य था कि इस भाग की सुरक्षा का उचित प्रबन्ध बहुत जरूरी था। ताल्लुका के अलावा ग्राम प्रबन्ध वहाँ की परम्परा के अनुसार पचायत द्वारा होते थे। लाहौर राज्य मे केन्द्रीय सरकार लोगो के निजी मामलो मे बहुत कम दखल देती थी और ग्रामीण जनता मे अपना शासन आप करने का यही प्राचीन तरीका प्रचलित था। लोग अपने सब कार्य और झगडे अपनी पचायत द्वारा निपटा लेते थे।

III न्याय संबंधी शासन प्रबन्ध

बाकी सार्वजनिक शासन प्रबन्ध की तरह ही रणजीत सिह ने न्याय सबधी मामलो में भी विस्तारपूर्वक कोई प्रबन्ध नही किया। ऐसा करना उसके लिए सम्भव भी नही था। उसने कार्य चलाने के लिए परम्परागत न्याय व्यवस्था को स्थापित करके लोगों के रस्मोरिवाज के अनुसार न्याय देने का प्रबध किया। हिन्दुओ और सिक्खो के लिए या तो स्थानीय रिवाज के अनुसार निर्णय होते थे या उनकी धर्म शास्त्र की मर्यादा का पालन किया जाता था। इसी तरह मुसलमानों के लिए उनके रीतिरिवाज मुख्य रखे जाते थे। विशेष मामलो का निर्णय उनके धर्म ग्रन्थ अर्थात् कुरान एव शरीयत के अनुसार किया जाता था। दोनो धर्मो के लिए भिन्न-भिन्न प्रबध मौजूद थे। जहाँ मुसलमानो के लिए फैसला काजियो के हाथो मे था हिन्दुओ और सिक्खो के बारे में धर्म ग्रन्थ की मर्यादा को लागू किया जाता था।

न्याय प्रबन्ध के बाकी मामलो मे विशेष अदालते भी स्थापित थी जो कि उच्च अधिकारियो के मामलों मे फैसले देती थी। इस अदालत के मुख्य अधिकारियो को अदालती कहा जाता था। स्वय महाराजा सबसे बडा अदालती समझा जाता था और उसके निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नही हो सकती थी।

लाहौर दरबार के काल मे कोई लिखित रूप मे कानून नही थे न ही किसी विशेष कार्य-विधि का पालन किया जाता था। कानून की व्यवस्था बड़ी साधारण थी जिस से बडी जल्दी निर्णय कर दिया जाता था आमतौर पर दीवानी और फौजदारी मुकदमे एक ही अदालत मे पेश किए जाते थे। केन्द्रीय न्याय प्रबन्ध केवल लाहौर मे ही था

और साधारण रूप मे यह राजधानी तक ही सीमित था। प्रान्तो से बहुत कम अपीले दरबार के पास आती थी।

ग्रामीण मामलो मे सब झगडे आदि पचायत निपटाती थी। पचायत का असली रूप न्यायलय का नही था। तथापि उसके पास जब कोई मामला लाया जाता था तब ही निर्णय होता था। पचायत के प्रसिद्ध स्थानीय लोग, जिन पर सब को विश्वास होता था और जिन का सब सम्मान करते थे, मैम्बर होते थे। पचायत के निर्णय को बहुत सत्कारयोग समझा जाता था जैसा कि इस देश मे प्रथा थी। सब "पचो मे परमेश्वर" वाले सिद्धात को मानते थे। पचो के निर्णय के विरुद्ध बहुत कम अपील होती थी। पचों के फैसले का पालन न करने पर जनमत द्वारा उस व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार किया जाता था, जिस से उसका ग्राम मे रहना कठिन हो जाता था। यह दड और किसी किस्म के दड से अधिक कारगर होता था।

ऐसे समय मे जबकि पजाब मे सर्वदा काफी राजनीतिक उथल-पुथल बनी रहती थी और केन्द्रीय सरकार का ग्रामीण लोगो पर बहुत कम प्रभाव था, पचायत ही ग्रामों मे कानून और व्यवस्था का माध्यम एव गारटी थी। जनसाधारण का जीवन इसी के सहारे चलता था चाहे कितने ही राज पलटते रहे। अग्रेजो ने भी पचायतो के महत्त्व को स्वीकार किया और वास्तव मे जनजीवन को चलाने के लिए पचायत को ही उपयुक्त माना। इसकी महानता और इसका महत्त्व उस समय मे और भी स्पष्ट हो गया जब कि रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् पजाब मे अराजकता फैल गई थी। (पंजाब एडमनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, 1849-50 और 1850-51, पृ० 11)।

पचायतो से ऊपर कारदार को न्यायधीश माना जाता था। वह आमतौर पर भूमिकर या भूमि के बारे मे झगडो का निर्णय करता था।,

कारदार के ऊपर अपील प्रान्तीय नाजिम के पास जा सकती थी मगर ऐसी कारवाई बहुत कम होती थी क्योंकि इस किस्म के लम्बे अदालती कामो के लिए न तो लोगो के पास समय था और न ही साधन थे। नाजिम के निर्णय के विरुद्ध बहुत कम अपीले महाराजा के पास जाती थी। साधारणतया उसके फैसले को ही अन्तिम समझा जाता था। नाजिम के अपने विरुद्ध कोई शिकायत होने से उसको या तो महाराजा स्वय सुनते थे या फिर भरे दरबार मे उसका निर्णय किया जाता था।

मुकदमों की किस्म, अदालती कारवाई और गवर्नमैण्ट को उससे प्राप्त होने वाला शुल्क : साधारण सार्वजनिक मुकदमो मे जोकि स्थानीय झगडो के कारण या मगनी, विवाह को तोडने के बारे मे होते थे पचायत निर्णय कर देती थी। दूसरे इकरारनामा तोड़ने या कर्जा न देने आदि के मुकदमे उचित अदालतो मे (कारदार, नाजिम आदि की अदालतो मे) जाते थे। इन सब मामलो का निर्णय स्थानीय रस्मो-रिवाज या सौगन्ध खाकर दी हुई गवाही के आधार पर किया जाता था। इन मामलो मे दोनो पार्टियो (पक्षो) को कुछ न कुछ देना पडता था। लोगों को अदालत मे बुलाने के लिए खर्चे के रूप मे "तलबाना" देना पडता था। इकरारनामे आदि पर मोहर लगाने के लिए "मोहराना" लिया जाता था। किसी मुकदमे का निर्णय होने पर अपराधी को "जुर्माना"

ग्रौर जिस के हक मे निर्णय हो उसको "शुकराना" देना पडता था। इस तरह न्याय प्रबन्ध ग्रामदनी का भी एक साधन था ग्रौर सरकार को इससे काफी धन लाभ प्राप्त होता था।

दण्ड व्यवस्था : उस समय के दण्ड देने का तरीका बडा क्रूर था ग्रौर ग्रपराधी को उसके ग्रपराध की गम्भीरता के ग्रनुसार दण्ड दिया जाता था। चोरी ग्रादि करने पर ग्रपराधी का ग्रग ग्रर्थात् ग्राम तौर पर हाथ काट दिया जाता था। गम्भीर ग्रपराध करने पर, जिसे कि सामाजिक दृष्टि से नीच समझा जाए, ग्रपराधी का नाक भी काट लिया जाता था ताकि देखने वालो को उससे घृणा हो। विश्वासघात ग्रादि के मामले मे जुर्माना देना पडता था।

मूल्यांकन : ऐसा न्याय प्रबन्ध बेशक साधारण ग्रौर ग्रसभ्य दिखाई पडता था परन्तु उस समय के लोगो के लिए बहुत लाभदायक था। इन दण्डो के भय से ग्रपराध काफी कम होते थे। न्याय करने वालो के ऊपर ग्रकुश रखा जाता था जिससे वह ग्रपने ग्रधिकारो का दुरुपयोग नही कर सकते थे। महाराजा स्वय ग्रपने राज्य के विभिन्न भागो का दौरा करके न्याय करने वालो की बाबत लोगो की राय जान लेते थे। किसी न्यायधीश पर जनता का विश्वास न होने या उसके ग्रपने ग्रधिकारो का दुरुपयोग करने पर उसको उसके पद से हटाया जा सकता था क्योकि उनकी नियुक्ति ही महाराजा की मर्जी से ही होती थी ग्रौर उसी पर निर्भर करती थी। जो व्यक्ति ऐसी उच्च पदवी को प्राप्त कर लेता था वह स्वय ग्रपने सामाजिक सम्मान ग्रौर महाराजा के भय से काफी चौकस रहता था।। इस तरीके से भ्रष्टाचार पर काफी नियत्रण रखा जाता था। वह न्याय प्रबन्ध व्यर्थ ग्रौर विलम्ब वाले तरीको से रहित था ग्रौर समय ग्रौर लोगो की ग्रावश्यकता के ग्रनुसार था।

प्रश्न

1. Describe the Land Revenue System of Ranjit Singh.
   रणजीत सिंह की भूराजस्व (मालगुजारी) व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
2. Write a detailed note on general administration of Ranjit Singh with special reference to his Central and Provincial administration.
   महाराजा रणजीत सिंह के केन्द्रीय तथा प्रान्तीय प्रशासन की विशेषताग्रो का हवाला देते हुए उसके सामान्य प्रशासन पर सविस्तर टिप्पणी लिखिए।
3. Discuss briefly civil administration of Ranjit Singh.
   रणजीत सिंह के सिविल प्रशासन का सक्षिप्त वर्णन कीजिए।

25

महाराजा रणजीत सिंह के विदेशी अथवा उसके अपने पड़ोसी राज्यों से संबंध

(क) अंग्रेज़ों और सिक्खों के राजनीतिक संबंध

महाराजा रणजीत सिंह का राज्य निर्माण और विस्तार साधारण तौर पर अपने पड़ोसी राज्यो और खास कर अंग्रेज़ो के साथ राजनीतिक सम्बन्धो पर निर्भर करता था। इतना ही नही उसके राज्य की सुरक्षा भी बहुत हद तक उसके पडोसियो के साथ राजनीतिक सम्बन्धो पर आधारित थी।

अंग्रेज़ों के साथ राजनीतिक संबंध

18वी शताब्दी के अन्त मे उत्तर भारत मे तीन राजनीतिक ताकते अंग्रेज, मराठे और सिक्ख प्रभुसत्ता के लिए प्रयत्नशील थे। यह सब कुछ मुगल साम्राज्य के पतन के कारण हुआ। मराठो की पराजय के पश्चात् अंग्रेज़ उत्तर भारत मे अपना आधिपत्य जमाने मे सफल हो गये थे। दूसरी ओर अब्दाली के पजाब मे निष्फल होने और उसकी मृत्यु के पश्चात् देश के इस भाग मे सिक्ख सरदार अपना राज्य स्थापित कर चुके थे। परन्तु अपनी आन्तरिक कमजोरी के कारण रणजीत सिंह सब का नेता बन गया और उसने पजाब के अधिक भाग मे अपना राजतन्त्र स्थापित कर लिया।

अंग्रेज़ो और महाराजा रणजीत सिंह के बीच राजनीतिक सघर्ष इन ऐतिहासिक घटनाओ के परिप्रेक्ष्य मे बहुत हद तक अनिवार्य था। अंग्रेज अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर पश्चिम दिशा मे जमुना तक करना चाहते थे, दूसरी ओर महाराजा रणजीत सिंह माझा और मालवा के सिक्खो को अपने अधीन करने के बाद अपना राज्य पूर्व की दिशा मे बढाना चाहता था।

अंग्रेज़ो का महाराजा रणजीत सिंह के साथ सबसे प्रथम सम्पर्क सन् 1800 मे हुआ जबकि उत्तर पश्चिम की दिशा मे शाहज़मान के आक्रमण का भय था। अंग्रेज़ो ने इस भाग मे राजनीतिक स्थिति को जानने के लिए मुशी यूसफ अली को उपहार देकर लाहौर नरेश रणजीत सिंह के पास भेजा। इसका तात्कालिक उद्देश्य शिष्टाचार मात्र था। उस समय किसी किस्म के राजनीतिक सबंध स्थापित नही किये गये। सन् 1803 मे सिंधिया की पराजय के पश्चात् अंग्रेज़ो ने दिल्ली मे अपना रेजीडेन्ट नियुक्त किया और वे जमुना और सतलुज के बीच के इलाके को अपने आधिपत्य मे

समझने लगे। इस समय वे कैथल के सरदार भाई ऊधम सिंह और जीन्द के राजा भाग सिंह के साथ मित्रता के सबध स्थापित कर चुके थे।

होल्कर का पजाब में आना और रणजीत सिंह के लार्ड लेक के साथ संबंध (1805) सिंधिया के बाद जसवन्तराव होल्कर की दिल्ली पर अधिकार करने की कोशिश विफल होने पर वह सन् 1805 मे महाराजा रणजीत सिंह से सहायता प्राप्त करने के लिए पजाब मे आया और अग्रेज जनरल लार्ड लेक उसका पीछा करते हुए ब्यास तक पहुँच गया। उस गभीर स्थिति के उत्पन्न होने पर महाराजा रणजीत सिह, जो मुलतान पर आक्रमण करने की सोच रहा था, बडी जल्दी से अमृतसर पहुँच गया और उसने इस सकट के समाधान के लिए दूसरे सिक्ख सरदारो से परामर्श करने के लिए "गुरमत्ता" की अन्तिम मीटिंग बुलाई। दूसरे सरदारो ने इसको राजनीतिक चाल समझा और निमत्रण स्वीकार नही किया। महाराजा रणजीत सिह ने बडी सावधानी से होल्कर के साथ बात-चीत करके उसके उद्देश्य को समझने की कोशिश की और इसी समय भेष बदलकर अग्रेजो की फौजो मे जाकर उनकी शक्ति का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। बेशक भावनात्मक तौर पर महाराजा रणजीत सिह जसवन्त राव होल्कर के साथ मिलकर अग्रेजो का विरोध करना चाहते थे परन्तु उसके सलाहकारो ने और विशेष तौर पर कैथल के सरदार भाई उदय सिंह और जीन्द के राजा भाग सिंह ने जो उनके रिश्तेदार थे उनको अग्रेजो से लडाई न करने की सलाह दी। रणजीत सिंह ने जसवन्तराव होल्कर की बडी अच्छी तरह से सेवा की और उससे अपने राजतत्र को समृद्ध करने की सलाह ली और अपनी मजबूरी इस रूप मे जाहिर की कि वह सब काम अपने धर्म ग्रन्थ की आज्ञा के अनुसार करते है और धर्म ग्रन्थ मे दो पर्चियाँ डालने पर उनको युद्ध करने का आदेश नही मिला। जसवन्त राव बहुत निराश होकर पजाब से चला गया। महाराजा रणजीत सिह ने लार्ड लेक के साथ पहली बार सन् 1806 मे मित्रता की जिसमे एक ओर लार्ड लेक अग्रेजो के प्रतिनिधि के रूप मे और दूसरी ओर से सरदार रणजीत सिंह और सरदार फतेहसिह अहलूवालिया हस्ताक्षर करने वाले थे। इस सधि का उद्देश्य केवल शिष्टाचार था और अग्रेजो ने एक दूसरे के इलाके की कोई सीमा निश्चित न करके इतना आश्वासन दिया था कि अगर महाराजा रणजीत सिंह जसवन्त राव होल्कर को पजाब से बाहर भेज देंगे तो अग्रेज उसके इलाके मे उस समय तक कोई हस्तक्षेप नही करेंगे जब तक कि वह अग्रेजो के शत्रु से कोई साँठ-गाँठ नही करेगा।

इस महत्त्वपूर्ण घटना के बाद रणजीत सिंह ने अनुभव किया कि उसे अपने राज्य का विस्तार करने मे स्वतन्त्र मान लिया गया था। इसलिए उसने सतलुज के पार सिक्ख सरदारों को अपने अधीन करने की चेष्टा की। ऐसा करने के लिए उसको सतलुज के पार सरदारो के आपसी झगडे बहुत लाभदायक सिद्ध हुए। सबसे पहले नाभा और पटियाला के राजाओ मे आपसी विवाद हुआ जिसका कारण एक छोटा-सा गाँव दोलादी था। यह गाँव नाभा के अधीन था जिस पर पटियाला ने अधिकार कर लिया था। इस मामले मे रणजीत सिंह ने हस्तक्षेप किया। नाभा और जीन्द नरेश

भाग सिंह जो कि रणजीत सिंह के मामा थे, ने रणजीत सिंह को निमत्रण दिया और आश्वासन दिया कि दोलादी वापिस दिलाने पर उसको सेवा का फल दिया जाएगा। रणजीत सिंह ऐसा करने के लिए पहले ही उत्सुक था। वह काफी सख्या मे फौज लेकर सतलुज के पार पहुँचा और उसने सफलतापूर्वक हस्तक्षेप करके दोलादी गाँव दुबारा नाभा नरेश को दिला दिया। इसके फलस्वरूप महाराजा को बहुत बडी रकम भेंट की गई। मालवा से लौटते हुए रणजीत सिंह ने लुधियाना और दूसरे बहुत से स्थानो पर अपना अधिकार कर लिया और अपने सहायको और साथियो को ये इलाके दे दिए। दूसरी बार सन् 1807 मे महाराजा रणजीत सिंह को पटियाला की महारानी आसकौर ने निमत्रण भेजा कि वह उसके पति राजा साहिब सिंह को मजबूर करे कि वह महारानी के पुत्र के लिए उचित इलाका जागीर के रूप मे प्रदान करे। रणजीत सिंह को इस काम के लिए एक बहुमूल्य मोतियो की माला और कडा खा वाली तोप देने का वचन दिया गया। महाराजा रणजीत सिंह ने पटियाला पधार कर साहिब सिंह की रानी के पुत्र के लिए 50 हजार रुपये की जागीर देने के लिए राजी कर लिया और रानी से वचनानुसार हार और तोप लेकर वह अपने राज्य का विस्तार करने की इच्छा से नारायणगढ और अम्बाला आदि के इलाके अपने अधीन करने मे सफल हो गया। इसके पश्चात् महाराजा लाहौर लौट गया और दीवान मोहकम चन्द को अन्य प्राप्त किये हुए इलाको का प्रबध करने के लिए मालवा मे भेज दिया। इस कारवाई से सतलुज पार के इलाको के सिक्ख सरदारो मे बडा आतक और घबराहट फैल गई। इलाके के सरदारो ने मिलकर अग्रेज रेजीडेन्ट सीटन साहिब से दिल्ली जाकर प्रार्थना की कि वह उनको रणजीत सिंह के विरुद्ध सरक्षण प्रदान करे। परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उस समय ऐसी नीति थी कि वह अपने इलाको को बहुत ज्यादा बढ़ाना नही चाहती थी और न ही स्थानीय झगडो मे हस्तक्षेप ही करना चाहती थी। अत सीटन साहिब ने सिक्ख सरदारो को कोई स्पष्ट आश्वासन नही दिया। सिक्ख सरदारों ने समझ लिया कि उनको रणजीत सिंह से निपटना होगा और उन्होने उसके साथ मित्रता करने की चेष्टा की। महाराजा पटियाला ने भी उनके साथ विशेष सबध स्थापित कर लिया।

यूरोप में राजनीतिक परिवर्तन, नैपोलियन का सारे यूरोप पर अधिकार और भारत पर उसके आक्रमण की संभावना नैपोलियन ने अपनी लगातार विजयो से यूरोप के लगभग सभी देशो को अपने अधीन कर लिया था। सन् 1807 मे उसने रूस के साथ टिलसिट के स्थान पर महत्त्वपूर्ण सधि की जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब कोई शक्ति नैपोलियन को विश्वविजेता बनने से नही रोक सकेगी।

उस समय वह अपनी शक्ति की चरम सीमा पर था और इग्लैड को भय हो गया था कि नैपोलियन स्थल के रास्ते मिस्र, ईरान और अफगानिस्तान की दिशा से उनके भारतीय साम्राज्य पर आक्रमण करने की चेष्टा करेगा। इसके लिए बचाव का समुचित प्रबध करना उचित समझा गया। अत· अग्रेजो को अपने पडोसियो के मामलों मे दखल न देने की नीति का त्याग करके उनके साथ मित्रता करने के लिए प्रबन्ध करने

की जरूरत पड़ी। नई नीति के अंतर्गत ईरान, अफगानिस्तान और पंजाब के साथ मित्रता करके नैपोलियन के विरुद्ध उनकी सहायता प्राप्त करने के यत्न किये गये। इस राजनीतिक कारवाई का उद्देश्य गवर्नर जनरल के शब्दों में, "इस इलाके के शासकों के साथ शिष्टाचार के संबंध स्थापित करके उनसे आज्ञा ली जाए कि अंग्रेज़ों को उनके इलाकों में प्रवेश करने दिया जाए ताकि फ्रांस के संभावित आक्रमण का मुकाबला किया जा सके।"

मैटकाफ का राजनीतिक मिशन और रणजीत सिंह से दोस्ती करने के लिए पंजाब में आना (12 अगस्त, 1808) : अंग्रेज़ों ने उचित समझा कि पंजाब के नये प्रभावशाली शासक रणजीत सिंह से मित्रता स्थापित की जाए। अंग्रेज़ों के दूत मैटकाफ ने महाराजा रणजीत सिंह से खेमकरण के स्थान पर मुलाकात की। महाराजा रणजीत सिंह ने उस से मिलने के लिए कोई उत्साह नहीं दिखाया। महाराजा रणजीत सिंह ने अंग्रेज़ों को नैपोलियन के विरुद्ध सहायता के लिए यह शर्त पेश की कि वह उसको सारे सिक्खों का एक मात्र शासक मानें और अफगानों के साथ उसके झगड़े में किसी किस्म का दखल न दें। मैटकाफ के यह जवाब देने पर कि यह मामला उसके अधिकार से बाहर है, रणजीत सिंह ने वहाँ से अपना कैम्प छोड़ दिया और सतलुज पार करके फरीदकोट, अम्बाला और थानेश्वर की तरफ अपने राज्य का विस्तार करने का अभियान जारी रखा। रणजीत सिंह के व्यवहार से मैटकाफ को बहुत आश्चर्य हुआ और उसने ऐसा अनुभव किया कि रणजीत सिंह का व्यवहार बहुत अनादरपूर्ण है और वह स्वभाव से शक्की और जल्दबाज है। वास्तव में रणजीत सिंह को अंग्रेज़ों के इस कथन पर विश्वास नहीं था कि इतनी दूर से नैपोलियन भारत पर हमला कर सकेगा। वह उसको चाल समझता था और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय गँवाना नहीं चाहता था। मैटकाफ के अपनी माँग के जवाब में गोलमोल जवाब देने पर महाराजा को यह भी शंका हो गई थी कि अंग्रेज़ सच्चे दिल से उसकी मित्रता नहीं चाहते। मैटकाफ को टालने के विचार से उसने उसे दूसरे स्थानों पर साथ चलने को कहा।

अंग्रेज़ रणजीत सिंह के बारे में न तो कोई स्पष्ट और न ही दृढ़ नीति अपना सकते थे क्योंकि अभी यूरोप की राजनीतिक स्थिति की कोई खास तस्वीर सामने नहीं थी। वे यह देखना चाहते थे कि नैपोलियन रूपी बादल कब छिन्न-भिन्न हों? बेशक मैटकाफ महाराजा रणजीत सिंह को खुले शब्दों में नहीं कहना चाहता था परन्तु उसको यह भी स्वीकार नहीं था कि रणजीत सिंह उसको अपने साथ ले जाकर नये इलाके जीत कर अपने राज्य में मिलाता चला जाए और उसको इस सारे काम में एक गवाह बना ले और आगे चलकर यह दावा करे कि अंग्रेज़ों का अपना दूत उस समय वहाँ उपस्थित था जब कि उसने नये इलाके प्राप्त किये थे। मैटकाफ ने ऐसी स्थिति में रहना स्वीकार नहीं किया और महाराजा से प्रार्थना की कि वह उसको किसी विशेष स्थान पर निश्चित समय पर मिलने का वचन दे जब कि उसकी बातों पर विचार

करके दो टूक निर्णय किया जा सके । इसलिए वह अमृतसर चला गया जहाँ पर कि महाराजा ने उसको मिलने का समय दिया था ।

इसी बीच यूरोप मे उपमहाद्वपीय युद्ध छिड जाने पर नैपोलियन स्पेन मे बुरी तरह फँस गया और उसके लिए पूर्व मे इतनी दूर भारत पर आक्रमण करना असम्भव हो गया । अंग्रेजो ने स्थिति को अपने अनुकूल पाकर महाराजा रणजीत सिंह से स्पष्ट शब्दो मे यह कहने का निर्णय किया कि वह मालवा खण्ड मे अपने अधीन लिये गये सब इलाके खाली कर दे । इसके फलस्वरूप अंग्रेजो ने रणजीत सिंह से मित्रता वाली नीति एकदम छोडकर उसको खुले शब्दो मे चेतावनी दे दी । अंग्रेजो ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि अगर उचित हुआ तो वह अपनी माँगे मनवाने के लिए सैनिक शक्ति भी बरतने के लिए विवश होगे । अंग्रेजो ने महाराजा को सूचित किया कि अपने हितो की रक्षा के लिए वे लुधियाना मे अपनी सैनिक चौकी स्थापित करेगे । महाराजा ने जब अंग्रेजो की माँग स्वीकार करने मे आनाकानी की तो अंग्रेजो ने उसके विरुद्ध युद्ध करने की सभावना के बारे मे भी उसको बता दिया । इस तरह महाराजा रणजीत सिंह दूसरी बार मालवा मे कारवाई करने के बाद अमृतसर वापिस चला गया । परन्तु वहाँ वह मौज मनाने में व्यस्त हो गया और मैटकाफ से भेट न हो सकी । महाराजा अंग्रेजो के नये चैलेंज से चकित हो गये और उसको यह समझ मे नही आया कि अंग्रेज जोकि उसकी मित्रता के इच्छुक थे एकदम उसका इतना कडा विरोध करने के लिए किस प्रकार उद्यत हो गये । उसने ऐसी कठिन स्थिति मे अपने ऊपर काबू पाने की कोशिश की क्योकि उसको अत्यन्त निराशा हुई थी और वह रोष से भर गया था । कुछ समय के लिए उसने युद्ध के लिए अपनी तैयारियाँ तेज कर दी । अपने अधीन सरदारो को अपनी फौजो को इकट्ठा करने के लिए आदेश दे दिये गये । अमृतसर के निकट गोबिन्दगढ का नया किला और सुदृढ किया गया और उसमें खाने-पीने की वस्तुएँ इकट्ठी की गई । अपने जरनैल दीवान मोहकम चन्द को कागडा से बुलाकर उसने फिल्लौर की ओर भेज दिया ।

अंग्रेजो ने भी कुछ सेना कर्नल ऑक्टर लोनी की कमान मे दिल्ली से लुधियाना की ओर भेज दी । ऐसा भय हो गया कि अंग्रेजों और महाराजा मे युद्ध होने ही वाला है । परन्तु महाराजा रणजीत सिंह के प्रमुख सलाहकार फकीर अजीजुद्दीन और उसके साथी कैथल के सरदार भाई उदयसिंह और जीद के राजा भाग सिंह ने सुझाव दिया कि वह अंग्रेजो से टक्कर न ले । महाराजा रणजीत सिंह ने ठीक अन्तिम समय मे अंग्रेजो के साथ सुलह करने का निश्चय किया । इस बीच ऑक्टर लोनी अपने साथ काफी सेना लेकर फरवरी 1809 मे लुधियाना पहुँच गया था और उसने यह घोषणा कर दी थी कि सतलुज के पूर्व का सारा इलाका अंग्रेजों के संरक्षण मे समझा जाएगा।

अपनी तरफ से भरसक प्रयत्न करने के बाद और अंग्रेजों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्टा करने के उपरान्त महाराजा रणजीत सिंह ने अंग्रेजो के साथ समझौते का निर्णय करना ही उचित समझा । ऐसा करने के कुछ विशेष कारण निम्नलिखित है

1 रणजीत सिह जानता था कि उसके जो साथी युद्ध करने की सलाह दे रहे थे वास्तव मे उसके हितैषी नही थे। वे वही सरदार थे जिनको रणजीत सिह ने कुछ समय पहले ही अपने अधीन किया था। वे चाहते थे कि अग्रेजो के साथ युद्ध कर के उसका जल्दी पतन हो जाए।

2 रणजीत सिह अभी अपने राजतन्त्र की स्थापना के आरम्भिक काल मे था। उसने अपना शासन अच्छी तरह से स्थापित भी नही किया था और न ही वह अभी तक सारे पजाब को अपने अधीन कर सका था। उसको भली-भाँति पता था कि अग्रेजो के साथ युद्ध करने के परिणामस्वरूप उसके पुराने विरोधी अफगान अथवा पठान उसका लाभ उठाकर उसके लिए कठिनाइया पैदा करेंगे और हो सकता है कि वे पश्चिम की ओर से उस पर आक्रमण ही कर दे।

3 रणजीत सिह को अच्छी तरह मालूम था कि उसके अपने साधन बहुत सीमित है और न ही अभी उसके पास इतनी अधिक सेना है कि अग्रेजो के साथ युद्ध कर सके। उसने स्वय लार्ड लेक के कैम्प मे छुपे तौर पर जाकर देख लिया था कि अग्रेजो की सेना कितनी कुशल और शक्तिशाली है। इन सब बातो को सामने रखते हुए रणजीत सिह ने इसी मे अपनी भलाई समझी कि अग्रेजो के साथ सधि करके मित्रता स्थापित कर ली जाए जिसके फलस्वरूप उसको न केवल अग्रेजो की तरफ से मान्यता मिल जाए बल्कि वह अपनी पूर्व सीमा की सुरक्षा के लिए भी निश्चिन्त हो जाए। अग्रेजो की मित्रता पर वह विश्वास कर सकता था।

अमृतसर की सधि हो जाने के पश्चात् जब अग्रेजो और सिक्खो का विवाद समाप्त हो गया और दोनो सरकारे एक दूसरे की मित्र बन गई तो मैटकाफ ने स्वयं यह भविष्यवाणी की थी कि रणजीत सिह को इस सधि का फल 20 साल के बाद पता चलेगा। इसका अभिप्राय यह था कि अब रणजीत सिह अग्रेजो की ओर से बिल्कुल निश्चिन्त होकर अपने राज्य का पश्चिम की दिशा मे विस्तार कर सकेगा।

अमृतसर की संधि के प्रभाव

प्रारभ मे अमृतसर की सधि को परस्पर सदेह और अविश्वास के साथ देखा जाता था। रणजीत सिह के अपने जीवन का सबसे प्रिय उद्देश्य सिक्खो को अपने अधीन लाना था। इससे उसे सदा के लिए अपना यह उद्देश्य छोड देना पडा। उसके मन मे अग्रेजो के बारे मे अनेक शकाए उत्पन्न हो गई जो कि बहुधा काल्पनिक ही थी। तथापि दोनों सरकारे एक दूसरे के विरुद्ध अपनी सैनिक तैयारियो को तेज करने लगी और एक दूसरे के बारे मे भिन्न-भिन्न प्रकार की अफवाहे फैलाने लगी। यह बात अग्रेजो के समकालीन पत्र-व्यवहार के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। लुधियाना स्थित राजनीतिक एजेंट ने गवर्नर जनरल को जो रिपोर्टें भेजी उनमे अधिकतर रणजीत सिह की सैनिक तैयारियो का वर्णन मिलता है। इनमे रणजीत सिह की अग्रेजो के बारे मे शकाएँ साफ-साफ झलकती है।

फिर से परस्पर विश्वास पैदा करने के लिए दोनो सरकारों मे कुछ समय दरकार

था और कुछ परस्पर मित्रतापूर्ण व्यवहार का आदानप्रदान भी। सन् 1812 मे महाराजा रणजीत सिह ने कर्नल ऑक्टरलोनी, जोकि अग्रेजो के प्रसिद्ध अधिकारी थे और लुधियाना मे नियुक्त थे, को अपने ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार खडग सिंह के विवाह पर निमत्रण दिया। उस समय दोनो सरकारो ने एक दूसरे को उपहार भेजे। इसके साथ ही सन् 1812 से लेकर 1819 तक के समय मे रणजीत सिंह ने अपनी मुख्य विजये प्राप्त की तथा मुलतान, कश्मीर और डेराजात को अपने राज्य मे सम्मिलित किया। इस प्रकार उसने 1823 तक अपने राज्य की सीमा पेशावर तक बढा ली। उसकी सब सैनिक कारवाइयो से यह सिद्ध होता है कि वह अग्रेजो के साथ अपनी सधि का अधिकाधिक लाभ जल्दी से जल्दी उठाना चाहता था।

सन् 1822 मे थोडी देर के लिए वधनी गाँव के बारे मे, जो कि उसकी सास सदाकौर की जागीर समझा जाता था और जहाँ पर महाराजा रणजीत सिह ने अधिकार कर लिया था, सकट उत्पन्न हो गया। लुधियाना के राजनीतिक एजेट ने महाराजा के सैनिको को वहाँ से निकाल दिया और गाँव माई सदाकौर को लौटा दिया। ऐसा इस लिए किया गया क्योकि अग्रेज सदाकौर को कन्हैया मिसल की उत्तराधिकारी मानते थे। साथ ही सतलुज के बाएँ किनारे पर स्थित होने के कारण इस गॉव को वे रणजीत सिह के अधीन भी नही समझते थे। महाराजा रणजीत सिंह ने अग्रेजो के साथ खुले तौर पर टक्कर न लेकर मामले को और खराब न होने दिया। परन्तु उसके मन मे अग्रेजों के बारे मे फिर शकाए उत्पन्न हो गईं और उसने अपनी सैनिक तैयारियाँ फिर से तेज कर दी। महाराजा की तरफ से गवर्नर जनरल को जो रोष पत्र भेजा गया उससे मामला ठीकठाक हो गया और अग्रेजो ने अपने राजनीतिक एजेट की गलती को ठीक कर दिया।

महाराजा ने इसी समय अपनी फौज मे यूरोपियन अफसर वन्तूरा, अलार्द और कोर्ट को नौकर रख कर अपनी फौज का यूरोपीय ढग से पुनर्गठन और प्रशिक्षण उनके सुपुर्द कर दिया। कुछ देर तक सैनिक कारवाइयो से जो अवकाश-समय मिला उसको इस काम मे लगाया गया। इन तैयारियो से अग्रेजो मे यह विश्वास हो गया कि महाराजा सिंध पर आक्रमण करने की सोच रहा है।

सन् 1825-26 मे अग्रेजो और महाराजा रणजीत सिह के सबध फिर कुछ खराब होने लगे। उस समय महाराजा के सबसे पुराने साथी और मित्र फतेह सिंह अहलूवालिया और कसूर के नवाब कुतबुद्दीन महाराजा के भय से सतलुज के पार अग्रेजो के सरक्षण मे चले गये। परन्तु अग्रेजो ने अपनी निष्पक्ष रहने की नीति के आधार पर उनको वापिस जाने की सलाह दी। महाराजा ने भी सहनशीलता से काम लेकर उनको पजाब मे वापिस आने दिया और शाति फिर से स्थापित हो गई।

सन् 1826 मे महाराजा अधिक बीमार हो गये और उनकी चिकित्सा के लिए एक अग्रेज डाक्टर मि० मर्रे की सेवाएँ प्राप्त की गईं। 8 महीने के अपने पजाब प्रवास के समय मे डाक्टर मर्रे ने रणजीत सिंह का इलाज ही नही किया बल्कि पजाब के बारे मे विस्तारपूर्वक सब प्रकार की जानकारी भी प्राप्त कर ली जो गवर्नर जरनल के साथ

हुए उसके पत्राचार के रूप मे अभी तक प्राप्त है।

महाराजा रणजीत सिंह ने उस समय गवर्नर जरनल लार्ड एमह्र्स्ट के पास शिमला मे एक शिष्टाचार मिशन भेजा। उसके जवाब मे 1827 मे अग्रेजो की ओर से कैप्टन वेड और उनके साथ कुछ अग्रेज अधिकारी महाराजा की सेवा मे भेजे गये।

सन् 1827-28 मे अग्रेजो ने चमकौर, आनन्दपुर और माखोवाल के धर्म स्थानो पर महाराजा रणजीत सिंह का अधिकार मान लिया परन्तु फिरोजपुरा को उसके अधीन नही माना। सन् 1830 के लगभग महाराजा रणजीत सिंह अपनी शक्ति और ख्याति के चरम शिखर पर पहुँच चुका था। उसने सय्यद अहमद (बरेली वाले) को इस समय हराकर और भी यश प्राप्त कर लिया और अपनी उत्तर पश्चिमी सीमा की सुरक्षा को और सुदृढ बना लिया था। अग्रेजो ने महाराजा की बढती हुई शक्ति को देखकर सतलुज के पार पश्चिमी इलाको मे हस्तक्षेप न करने की अपनी नीति मे परिवर्तन कर लिया। वे अब रणजीत सिंह को सिंध की ओर बढने नही देना चाहते थे। इस नई नीति की मूल स्थापना यह थी कि रणजीत सिंह को और अधिक शक्तिशाली न बनने दिया जाये और सिंध को अग्रेजो के प्रभाव क्षेत्र मे समझा जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने अपने एक प्रसिद्ध अधिकारी पोटिन्जर को सिंध के अमीरो के साथ बातचीत करने के लिए भेज दिया। उधर महाराजा रणजीत सिंह ने भी सारे पजाब को अपने अधीन करने के पश्चात् सिंध और अफगानिस्तान के मामलो मे ज्यादा रुचि दिखानी आरम्भ कर दी ताकि वह अपने राज्य का और विस्तार इन दिशाओ मे कर सके।

लार्ड विलियम बैंटिक के शिमला पधारने पर सन् 1831 मे महाराजा ने विदेशी मामलों के सलाहकार फकीर अजीजुद्दीन के अधीन उसकी सेवा मे एक राजनीतिक मिशन भेजा। जवाब मे गवर्नर जनरल ने कैप्टन वेड को रणजीत सिंह की सेवा मे तोहफे देकर भेजा। उसका एक उद्देश्य यह भी जानना था कि महाराजा गवर्नर जनरल से रोपड के स्थान पर मिलना चाहते है। साथ ही साथ अग्रेजो ने अपने विशेष अधिकारी एलैक्जैंडर बर्न्ज़ को सिंध के रास्ते से महाराजा के लिए कुछ और वस्तुएँ देकर भेजा। उसका मूल उद्देश्य सिंध नदी के बारे मे यह जानकारी प्राप्त करना था कि इसके द्वारा सिंध के साथ कितना व्यपार हो सकेगा ?

सन् 1831 मे अंग्रेजों के सर्वोच्च अधिकारी और महाराजा रणजीत सिंह के बीच रोपड में एक उल्लेखनीय मुलाकात हुई। रणजीत सिंह ने अपने राज्य की सैनिक शक्ति और प्रतिभा का खूब प्रदर्शन किया और अंग्रेजों पर यह सिद्ध करना चाहा कि पजाब अब कितना बडा शक्तिशाली राज्य है ? इस मौके पर रणजीत सिंह सिंध के बारे मे अंग्रेजो की नीति को स्पष्ट तौर पर जानना चाहता था। गवर्नर जनरल के साथ अपनी बातचीत मे उसने यह सुझाव दिया कि सिंध की विजय के लिए अग्रेज और लाहौर दरबार क्यों न मिलकर कारवाई करें। परन्तु गवर्नर जनरल ने इस बारे मे किसी किस्म की कोई रुचि नही दिखाई। महाराजा रणजीत सिंह ने जब यह पूछा कि पोटन्जर सिंध मे किस लिए भेजा गया है तो गवर्नर ज़नरल ने इसका कोई जवाब देना उचित नही समझा।

सिंध की समस्या : सिंध सतलुज के उत्तर की ओर एक रेतीला प्रान्त था जिस मे आवाजावी (यातायात) के साधन बहुत कम थे। अमृतसर की सधि के अनुसार यह समझा जाता था कि इस इलाके मे अग्रेजो का किसी प्रकार का कोई दखल नही होगा और रणजीत सिंह को सतलुज के उत्तर पश्चिम मे दूसरे इलाको की भाँति सिंध के साथ भी निपटने का पूर्ण अधिकार होगा। परन्तु जैसा कि अग्रेज काल मे भारतीय इतिहास मे कई बार हुआ अग्रेजो ने आगे बढने की नीति फिर अपना ली क्योकि उस समय तक वे अपने अधीन इलाको मे राज्य प्रबध की सुचारु व्यवस्था कर चुके थे। सन् 1830 के पश्चात् अग्रेजो ने अपने व्यापार को उत्तर पश्चिम की ओर बढाने के विशेष प्रयत्न किए और इसके लिए सिंध नदी का उपयोग करना चाहा। अत किसी न किसी बहाने उन्होंने अपने दूत बर्न्ज साहिब को महाराजा रणजीत सिंह के लिए तोहफे देकर सिंध के रास्ते लाहौर भेजा।

ऐसा करने मे अग्रेजो का दोहरा उद्देश्य था। एक तो यह कि सिंध नदी का सर्वेक्षण हो सकेगा और दूसरे उनको सिंध प्रान्त मे प्रवेश करने का बहाना मिल जायेगा। उनको आशा थी कि सिंध के अमीर अग्रेजो के प्रवेश का जरूर विरोध करेंगे। ऐसी सूरत मे अग्रेजो ने रणजीत सिंह को यह कहना चाहा कि सिंध के अमीर महाराजा के लिए तोहफे लाने वाले दूत को रोक कर वास्तव मे महाराजा का ही अपमान कर रहे हैं। अग्रेजो की इस कारवाई का रणजीत सिंह खुद भी विरोध नही कर सकता था क्योंकि अग्रेज़ी दूत कीमती तोहफे लेकर उसीको मिलने के लिए आ रहा था।

अग्रेजो के ऐसा करने का उद्देश्य बेशक दिखावे के लिए व्यापारिक था पर वास्तव मे वे अपनी राजनीति के अधीन ही यह सब कुछ कर रहे थे। वे चाहते थे कि रणजीत सिंह के सिंध मे दखल से पूर्व ही वे किसी न किसी रूप मे इस इलाके को अपने प्रभाव मे ले आएँ।

महाराजा रणजीत सिंह भी सिंध को अपने राज्य मे सम्मिलित करने की सोच रहा था। उसने मुलतान के नाज़िम दीवान सावन मल को सिंध की ओर बढने की तैयारी के लिए आदेश दे दिया था और कुछ देर तक सीमा पर झडपें भी होती रही थी। महाराजा को खबर मिली कि सिंध मे रहने वाले मजारी कबीले ने उनके इलाके मे घुसकर तोड-फोड करने की कोशिश की थी। कुछ फौजें "रोजहाल" की ओर बढ भी चुकी थी।

जैसा कि दूसरे महत्त्वपूर्ण मामलों मे रणजीत सिंह ने किया था वह सिंध की तरफ बढने से पहले यह स्पष्ट तौर पर जान लेना चाहता था कि ऐसा करने से अग्रेज़ों के ऊपर क्या प्रभाव पडेगा ? इस बारे मे आगे उनकी क्या नीति होगी ? सन् 1826 के लगभग रणजीत सिंह शिकारपुर की ओर बढना चाहता था। परन्तु उसकी बीमारी के कारण यह कार्य नही किया जा सका। रोपड के स्थान पर गवर्नर जनरल से भेंट के समय रणजीत सिंह स्पष्ट तौर पर जानना चाहता था कि सिंध के बारे मे अग्रेजो की क्या नीति है ? गवर्नर जनरल की तरफ से सीधा उत्तर

न मिलने से रणजीत सिह् ने समझ लिया कि अग्रेज सिध मे उसका हस्तक्षेप अच्छा नही समझते। रोपड वाली मीटिंग के पश्चात् गवर्नर जनरल के दूत वेड साहिब ने लाहौर जाकर खुले शब्दो मे महाराजा को बता दिया कि अग्रेज सिध की तरफ अपना व्यापार बढाना चाहते है। केवल इतना ही नही अग्रेजो ने महाराजा रणजीत सिह के साथ सिध के रास्ते व्यापार करने की सधि भी कर ली। अग्रेजो के ऐसा करने से महाराजा रणजीत सिह् को बहुत निराशा हुई और उनका अग्रेजो के साथ मित्रता मे विश्वास बहुत कम हो गया। परन्तु महाराजा रणजीत सिह ऐसी स्थिति मे नही था कि अग्रेजो को नाराज कर सके या उनके विरोध के बावजूद सिध को अपने अधीन कर सके। उसको एक बार फिर सिध के बारे मे कडवा घूँट पीना पडा। यह भी अग्रेजो के सामने उसके घुटने टेकने की एक और मिसाल थी। उसके प्रसिद्ध दरबारियो ने अपने पुराने कथन को ठीक साबित कर दिया कि अग्रेज महाराजा के साथ मित्रघात करेगे। और उनके साथ हमेशा रियायत करने की नीति महाराजा के हित में नही है और वास्तव मे यह उसकी दुर्बलता का प्रतीक है।

रूस का हौवा और सन् 1838 की त्रिपक्षीय सधि भारत मे अग्रेजी साम्राज्य को रूस की ओर से खतरा बना रहा। उनकी विदेश नीति का आधार रूस को मध्य एशिया मे भारत की सीमा के निकट न आने देना था। इसके लिए वे बीच मे पडने वाले देशो अर्थात् ईरान और अफगानिस्तान को अपना मित्र बनाकर रखना चाहते थे। सन् 1836 मे रूस की ईरान के साथ मित्रता हो जाने पर उन्होने ईरान को हिरात पर हमला करने की प्रेरणा दी। इसके साथ ही अग्रेजो ने भारत मे अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए अफगानिस्तान को अपने साथ मिलाने की कोशिश की। उनकी विदेशी नीति यह थी कि हिन्दुस्तान के साथ लगने वाले देशों को मित्र बनाकर उनको भारत पर आक्रमण करने वाले देशो के विरुद्ध "बफ्फर" स्टेट के रूप मे बरता जाए। उस समय भारत के गवर्नर जनरल लार्ड ऑकलैण्ड ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अग्रेजो, काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद खा और महाराजा रणजीत सिह को एक दूसरे के निकट लाने के लिए त्रिपक्षीय सधि (गठजोड) करने की कोशिश की। इस काम के लिए बर्न्ज साहिब को अफगानिस्तान भेजा गया। ऊपर से यह जाहिर किया गया कि उसकी यात्रा का उद्देश्य व्यापारिक था। वास्तव मे उसका उद्देश्य निपट राजनीतिक था। इसी तरह वेड साहिब को लाहौर भेजा गया। परन्तु ये सब यत्न निष्फल रहे क्योकि दोस्त मुहम्मद इस बात के लिए जिद्द करता था कि अग्रेजो और रणजीत सिह से मित्रता केलिए उसको सिक्खो से पेशावर का इलाका वापिस दिलाया जाये। इस बारे मे अंग्रेजों के दखल न देने पर दोस्त मुहम्मद ने रूस के साथ मित्रता कर ली और अग्रेजो के राजदूत को खाली हाथ लौटना पडा।

अंग्रेजों ने इस स्थिति का मुकाबला करने के लिए यह योजना बनाई कि वह शाहशुजा को जो कि उनके पास लुधियाना मे पैन्शनर थे, काबुल के तख्त पर बैठाने का यत्न किया जाए। इस काम के लिए वे महाराजा रणजीत सिह का सहयोग प्राप्त करना चाहते थे।

काबुल से निष्कासित अमीर शाहशुजा काबुल को दोबारा प्राप्त करने की कई बार कोशिश कर चुका था और इस काम के लिए उसने सबसे पहले अग्रेजो की सहायता माँगी थी। परन्तु उन्होने इस किस्म की सैनिक कारवाई करने के लिए अपनी कोई रुचि नही दिखाई थी। शाहशुजा ने महाराजा रणजीत सिंह से भी इस काम मे सहायता के लिए प्रार्थना की थी। परन्तु मुलतान आदि पर शाहशुजा के किसी किस्म के अधिकार को महाराजा ने स्वीकार करने से इकार कर दिया था। उसको शाहशुजा की योग्यता पर भी अधिक विश्वास नही था। इसलिए इस प्रकार की बातचीत सन् 1834 मे निष्फल हो गई थी।

अग्रेजो ने अपने राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए रणजीत सिह को अपनी नई योजना से अवगत कराया। महाराजा की सबसे पहली प्रतिक्रिया इसके बिल्कुल विपरीत थी क्योकि काबुल की अग्रेजो के साथ साँठगाँठ को वह अपने गिर्द लोहे का घेरा डालने के समान समझता था। दूसरे वह यह भी जानता था कि शाहशुजा एक अयोग्य और अभागा व्यक्ति था। अग्रेजो ने सन् 1838 मे मकनाटन साहिब को महाराजा के इस कार्य मे सम्मिलित होने की प्रेरणा देने के लिए भेजा और इस बारे मे अपना उद्देश्य स्पष्ट तौर पर बताने की कोशिश की। महाराजा ऐसी किसी कारवाई मे हाथ बँटाना नही चाहता था जो कि उसके अपने ही विरोध मे हो। इसलिए उसने दीनानगर के स्थान पर जहाँ कि उसकी मकनाटन से भेंट हुई थी खुले शब्दो मे बता दिया कि वह इस कार्य मे सम्मिलित नही होना चाहता। उसके बाद महाराजा एकदम दीनानगर से लाहौर की ओर चल पडा। और अग्रेज दूत को उत्तर दिया गया कि अग्रेज जिस तरह भी चाहे इस मामले मे कारवाई कर सकते है। फिर भी मकनाटन साहिब ने महाराजा को यह बता दिया कि अग्रेजो का यह दृढ सकल्प है कि वह शाहशुजा को काबुल का अमीर बनाने का प्रयत्न करेगें चाहे महाराजा रणजीत सिंह उसमे सहयोग करे या न करे। ऐसी स्थिति मे महाराजा ने यह समझ लिया कि जब अग्रेज ऐसा करने पर तुल गए है तो उनको भी उनके साथ मिलकर जो कुछ भी लाभ प्राप्त हो, ले लेना चाहिये। इसलिए उसने त्रिपक्षीय सधि मे शामिल होना मान लिया। आरम्भिक कारवाई के बाद लार्ड ऑकलैण्ड सन् 1838 मे पजाब आया और त्रिपक्षीय सधि के बारे मे छोटे-छोटे परिवर्तन करके महाराजा की उन्ही शर्तो को जो कि उसने सन् 1834 मे शाहशुजा को पेश की थी मान लिया और त्रिपक्षीय सधि कर ली गई।

त्रिपक्षीय सधि के अधीन काबुल पर दो तरफा सैनिक कारवाई करने का प्लान बनाया गया। एक ओर से शाहशुजा के सुपुत्र तैमूर शाह, जिसके साथ वेड साहिब होगे सिक्खो की सहायता से खैबर के रास्ते अफगानिस्तान की ओर बढेगे। दूसरी ओर से शाहशुजा मकनाटन के साथ सिंध के रास्ते अफगानिस्तान की ओर जाएँगे। सिक्खो ने इस सधि के अधीन कुँवर नौनिहाल सिह की कमान मे पेशावर के स्थान पर सहायक सेना इकट्ठी की और तैमूरशाह और वेड साहिब के साथ मिलकर

अफगानिस्तान की तरफ बढने का प्रोग्राम बनाया। जितनी देर महाराजा रणजीतसिंह जीवित रहे उन्होने अपने दरबारियो के विरोध के बावजूद अपना पूरा योगदान दिया। अंग्रेजो की सहायता के लिए उन्होने न केवल सेना बल्कि बहुत सी खाद्य सामग्री और दूसरा सामान भी दिया। जून 1839 मे महाराजा की मृत्यु के बाद सिक्खो का सहयोग नाम मात्र का ही रह गया क्योकि एक तो पजाब की राजनीतिक स्थिति अनिश्चित हो गई थी और दूसरे प्रमुख अधिकारी इस त्रिपक्षीय सधि मे शामिल होना नही चाहते थे। इसलिए थोडी ही देर सीमा प्रान्त मे ठहरने के बाद कुवर नौनिहाल सिंह राजनीतिक स्थिति को काबू मे रखने के लिए लाहौर आ गया और सहायक सेना दूसरे सरदारो के अधीन विशेष काम नही कर सकी क्योकि बहुत सी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई थी।

निष्कर्ष उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महाराजा रणजीत सिंह के अंग्रेजो के साथ सबध अधिक उपयोगी सिद्ध नही हुए। बेशक आरम्भ मे रणजीत सिंह को कुछ लाभ हुआ परन्तु वह सारा जीवन इस भय से मुक्त नही हो सका कि उस को हर हालत मे अंग्रेजों के साथ मित्रता रखनी चाहिये। अग्रेजो की शक्ति का महाराजा पर कुछ ऐसा प्रभाव पडा था कि चाहे उनकी माँग कितनी ही अनुचित क्यो न हो वह हमेशा उनके आगे घुटने टेकता रहा। इसलिए प्रसिद्ध इतिहासकार डा०एन० के० सिन्हा ने लिखा है कि "हर राजनीतिक समझौते मे दो पक्ष होते है: एक पक्ष घोडे के रूप में और दूसरा सवार के रूप मे। अंग्रेजों और सिक्खों के सबधों के सिलसिले मे यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि अंग्रेज हमेशा ही सवार की तरह प्रबल रहे और महाराजा घोडे की तरह दब्बू रहे।" इसी प्रकार यह कथन भी सत्य है कि अग्रेजों के साथ राजनीतिक सबंधो मे महाराजा की नीति सदैव "झुकने, झुकने और झुकने" की रही। इसका प्रमाण इस घटना से भी मिलता है कि एक बार अंग्रेजों के राजनीतिक एजेन्ट ने जब महाराजा को एक नक्शा दिखाया जिसमे अग्रेजी इलाका लाल रंग मे दर्शाया गया था तो उसने स्वत ही यह भविष्यवाणी की कि "सब लाल हो जाएगा" अर्थात् एक दिन पजाब पर भी अग्रेजो का शासन हो जायेगा।

अग्रेजो ने भी कुछ देर महाराजा को ढील देकर उसको उत्तर पश्चिम दिशा मे हर प्रकार की कारवाई करने के लिए खुला छोड दिया परन्तु वे अमृतसर की सधि की शर्तों को पूर्ण रूप से मानना नही चाहते थे। कुछ समय बाद उन्होंने रणजीत सिंह के चारों ओर घेरा डालने की नीति बनाई और सिंध और अफगानिस्तान मे हस्तक्षेप करके न केवल यह स्पष्ट कर दिया कि अग्रेज़ अपना हित इस इलाके मे छोड़ना नहीं चाहते थे बल्कि वे यह भी चाहते थे कि रणजीत सिंह जरूरत से ज्यादा शक्तिशाली न बन जाये और इन देशो को अपने अधीन न कर ले।

महाराजा रणजीत सिंह के लिए अग्रेजो के आगे झुकने की यह नीति किस हद तक उचित थी यह कहना बहुत ही कठिन है। यह तो मानना पडेगा कि उसने अग्रेजों को जरूरत से ज्यादा खुश करने की नीति अपनाई और अपने अधिकार धीरे-धीरे छोड

दिये और किसी भी मामले मे दृढता से अंग्रेजो को यह कहने का साहस नही किया कि वह अपने वचन से फिर गये है या उन्होने उसके साथ की हुई सधि का उल्लघन किया है। हो सकता है कि रणजीत सिंह को पूर्ण विश्वास हो गया हो कि अंग्रेजो के विरुद्ध उसकी सैनिक कारवाई सफल नही हो सकती परन्तु अग्रेजो ने उसकी इस कमजोरी का अनुचित लाभ उठाया और हर बार अपनी जायज या नाजायज बाते मनवाने मे सफल रहे और महाराजा को चिकनी-चुपडी बातो से ही टरका दिया।

ऐसी कमज़ोर नीति पर भी हमे कुछ ऐसे चिह्न अवश्य दिखाई पडते है जो कि महाराजा के दृढ नीति के प्रतीक माने जा सकते है। महाराजा रणजीत सिंह ने सिंध के बारे मे अग्रेज़ो की तरफ से बिल्कुल निराश होने पर नेपाल के साथ राजनीतिक सबध स्थापित करने की पूरी कोशिश की। इस बारे मे उसने अग्रेजो के हितो या इच्छा की कोई परवाह नहीं की। सन् 1837 मे नेपाल से राजनीतिक मिशन आने पर उसका भव्य स्वागत किया गया और महाराजा ने पहली बार ऐसा करने का साहस किया हालाकि अग्रेज़ो के राजनीतिक एजेंट (वेड) ने स्पष्ट शब्दो मे उसको ऐसा करने से रोकना चाहा फिर भी उसने नेपाल के साथ सधि करना अपने लिए लाभदायक समझा। इससे पहले उसने नेपाल की तरफ से कई बार की गई ऐसी कोशिशो की ओर ध्यान नही दिया था। अग्रेज़ो के साथ मित्रता की नीति इस बात का भी प्रमाण है कि रणजीत सिंह वास्तविकताओ को अच्छी तरह समझता था और व्यावहारिक नीति पर चलता था। इसलिए वह किसी किस्म की जोश वाली कारवाई नही करना चाहता था। अपने दरबारियो के इस आक्षेप के जवाब मे कि वह अग्रेज़ो के विरुद्ध कायर है उसने कहा था "अपनी शक्ति के साथ अग्रेजो को पीछे धकेल कर अलीगढ तक शायद पहुँचा दूं। परन्तु अग्रेजो के साधन इतने विशाल है कि उनके कारवाई करने पर भी उसके राज्य का ही पतन होना निश्चित होगा, यही नही वह अपने राज्य को अफगानो के मुंह मे भी धकेल देगा।"

महाराजा के लगातार शक्ति बढ़ाने और सेना को पश्चिमी तरीके से ट्रेनिंग देकर कुशल बनाने का परिणाम यह था कि उसने न केवल अपने राज्य को 40 साल तक सुरक्षित रखा परन्तु अग्रेजो के साथ उनके मरने के पश्चात् युद्धो मे जो योग्यता सिक्ख फौजो ने दिखाई और जिस वीरता से वे लडे वह अपनी मिसाल आप बन गई। यह बात भी निश्चित रूप से नही कही जा सकती कि अगर उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके महाराजा शेर सिंह (सन् 1842) जैसे अयोग्य उत्तराधिकारी न होते और अग्रेजो के अफगानिस्तान से पराजित होने पर लौटते समय कठोर नीति बरत कर या अफगानो के साथ मिलकर उनके विरुद्ध कारवाई करते तो क्या फल होता और पजाब का इतिहास क्या करवट लेता ?

इतिहास के दृष्टिकोण से महाराजा रणजीत सिंह का सबसे बडा उद्देश्य यह भी समझा जा सकता है कि उन्होने अपने राज्य का आधार राष्ट्रवाद पर रखा और उन्होने सब पजाबियो मे राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने की कोशिश की। आशा

थी कि सैनिक रूप मे शक्तिशाली पजाबी शायद अंग्रेजो के विरुद्ध अपनी स्वतत्रा को अपनी एकता के कारण बनाये रख सकेगे। परन्तु यह कौन जानता था कि उसके उत्तराधिकारी इतने अयोग्य सिद्ध होगे, और उसके मरणोपरान्त उसकी अपनी सेना का नेतृत्व करने वाले राष्ट्र भक्ति से इतने शून्य।

प्रश्न

1 Describe the Anglo-Sikh relations from 1809 to 1839.
सन् 1809 से 1839 तक अंग्रेजो और सिक्खो के सबधो का वर्णन कीजिऐ।

2 Discuss briefly the relations of Maharaja Ranjit Singh with the British Government from 1799 to 1839
सन् 1799 ने 1839 तक के महाराजा रणजीत सिंह के अंग्रेज सरकार के साथ सबधो का सक्षिप्त वर्णन कीजिए।

3. Examine critically the importance of Treaty of Amritsar. What effects did it produce ?
अमृतसर की सन्धि की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। इसका क्या प्रभाव पडा ?

26

देसी राज्यों के साथ महाराजा रणजीत सिंह के संबंध

(क) अफगानिस्तान के साथ राजनीतिक संबंध

महाराजा रणजीत सिंह के राजनीतिक उत्थान और सफलता के मुख्य कारण उस समय उत्तर पश्चिमी सीमा पर अफगानो की आन्तरिक गडबड और वहाँ पर राजनीतिक स्थिरता का अभाव थे। जब सन् 1809 मे अग्रेजो ने महाराजा को पूर्व की ओर सतलुज पार जाने से रोका तो इसकी प्रगति का एक ही साधन बाकी बचा था और वह था अफगानो पर विजय पाना और अपने राज्य को सुदृढ बनाकर उनके लगातार आक्रमणो से सुरक्षित रखना।

महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी सूझ-बूझ तथा उस समय अफगानो के आपसी झगडो और अफगानिस्तान मे उथल-पुथल का पूरा लाभ उठाया। अपने राज्य काल के प्रारम्भ मे ही अर्थात् सन् 1798 मे उसने जमान शाह के पजाब पर आक्रमण के समय जेहलम मे रह गई उसकी तोपे निकाल कर उसको लौटाने से बहुत लाभ उठाया और उससे यह लिखित रूप मे प्राप्त कर लिया कि उसको लाहौर का न्यायोचित शासक बनने का अधिकार प्राप्त है, बेशक यह अधिकार केवल पत्र मात्र ही था परन्तु रणजीत सिंह ने इसी आधार पर अपनी शक्ति से लाहौर को अपने अधीन करके यह सिद्ध कर दिया कि उसको जमान शाह ने स्वय अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था।

महाराजा रणजीत सिंह ने अपने राज्य का विस्तार करके और उत्तर पश्चिमी भारत मे अफगानो से वे इलाके छीन लिए जिन पर किसी समय मे अफगानिस्तान का अन्यतम अधिकार माना जाता था और ऐसा करते वक्त अफगानिस्तान की राजनीतिक स्थिति का पूर्ण लाभ उठाया। वास्तव मे यह उसका सबसे बडा सौभाग्य था कि उसके उत्थान के काल मे अफगानिस्तान मे कोई शक्तिशाली नेता नही उभर सका था और अफगान एक झण्डे के नीचे इकट्ठे होकर अपनी शक्ति नही लगा सकते थे। वस्तुत रणजीत सिंह ने कूटनीति के सहारे उनको मिलकर विरोध करने का मौका ही नही दिया।

महाराजा रणजीत सिंह को अफगानो से मित्रता की आशा कभी नही थी। परन्तु उसने उनकी आपसी ईर्ष्या और द्वेष का लाभ उठाने मे कोई कसर उठा नही रखी। काबुल के बरकज़ई अमीर दोस्त मुहम्मद के अपने भाइयो मे इतनी फूट थी

कि वे अपने भाई की अपेक्षा रणजीत सिंह के साथ मिलना अच्छा समझते थे और अपने स्वार्थ के लिए शत्रु के साथ भी मिल जाते थे। ऐसी स्थिति मे रणजीत सिंह को अगर कुछ भय था तो 'जहाद' या धार्मिक विरोध का। अफगानो मे आपसी एकता केवल धर्म के नाम पर हो सकती थी और किसी समय भी कोई लीडर धर्मयुद्ध का नारा लगाकर महाराजा का विरोध करने के किए अफगानो को अपने साथ मिला सकता था। अफगानिस्तान की विस्फोटक स्थिति को सामने रखते हुए महाराजा की सबसे बडी इच्छा यह थी कि वह अपने राज्य को जितनी जल्दी हो सके उत्तर पश्चिम दिशा मे विस्तार करके वहाँ अपना शासन प्रबन्ध पक्का करले। इसी नीति के अनुसार उसने सन् 1813 मे अटक के किले को प्राप्त किया और उसके पश्चात् उत्तर पश्चिम के इलाको को अपने अधीन करने की भरसक कोशिश की और उसने रास्ते मे पडनेवाले दो बड़े मुस्लिम राज्यो मुलतान और कश्मीर को भी विजित किया। सन् 1823 तक उसने पेशावर पर भी अपना आधिपत्य जमा लिया था। महाराजा ने उस इलाके को आरम्भ मे अफगानो के अपने शासन मे रखा और यार मुहम्मद को जो कि दोस्त मुहम्मद का भाई था पेशावर का इलाका जागीर मे दे दिया।

इसी समय अफगानो के अलावा उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त मे महाराजा रणजीत सिंह के लिए बरेली के सय्यद अहमद ने अपने नये "बहाबी आन्दोलन" का आह्वान किया जिसका उददेश्य नये सिरे से शुद्ध इस्लामी राज्य स्थापित करना था। इस प्रकार उसने सिक्खो के लिए बहुत भारी मुश्किल खडी कर दी। ऐसा भी समझा जाता है कि सय्यद अहमद को अग्रेजो से भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था ताकि वे रणजीत सिंह को इस इलाके मे उलझाये रखे और वह सिंध की ओर बढने का प्रोग्राम न बना सके। सत्य चाहे कुछ भी हो लेकिन इतना प्रमाणित है कि सय्यद अहमद को हिन्दुस्तान के मुसलमानो से धन प्राप्त होता था और बहुत से लोग इधर से जाकर उसके साथ मिल गये थे। रणजीत सिंह को सय्यद अहमद के आन्दोलन को कुचलने मे बहुत कठिनाई हुई। आखिर मे सन् 1830 मे बालाकोट के स्थान पर सय्यद अहमद की पराजय और मृत्यु होने पर यह खतरा दूर हुआ। इसके पश्चात् महाराजा ने काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध शाहशुजा के साथ जोडतोड आरम्भ की। परन्तु शाहशुजा की योग्यता मे महाराजा को बहुत कम विश्वास था। वह उसको एक अभागा अफगान समझते थे।

महाराजा रणजीत सिंह ने अफगानिस्तान मे गडबड़ वाली स्थिति का भरपूर लाभ उठाया और सन् 1834 मे पेशावर पर अपना सीधा शासन स्थापित करके हरि-सिंह नलुआ को अपना मुख्य अधिकारी बनाकर भेजा। उत्तर पश्चिमी भाग में उसने अपने राज्य की सीमा को अधिक से अधिक बढा लिया और अपनी सुरक्षा के प्रबन्ध दृढ बनाने का काम आरम्भ किया। पेशावर पर महाराजा रणजीत सिंह के कब्जे को दोस्त मुहम्मद अपने लिए महान खतरा समझता था फलस्वरूप सन् 1835 मे महाराजा रणजीत सिंह के विरुद्ध धर्मयुद्ध का फिर आह्वान करके उत्तर पश्चिमी इलाके के सभी

अफगान कबाइलियो को साथ मिलाकर युद्ध करने के लिए आमत्रित किया। इस सकट का पूर्ण रूप से मुकाबला करने के लिए महाराजा को तैयारी के लिए कुछ समय चाहिये था जो कि उसने अपने योग्य और विश्वासपात्र मुसलमान सलाहकार फकीर अजीजुद्दीन को दोस्त मुहम्मद के पास भेजकर उससे बातचीत आरम्भ करके प्राप्त कर लिया। दोस्त मुहम्मद खैबर के निकट महाराजा की विशाल फौज को देखकर बिना युद्ध किये ही अपने देश को लौट गया। इस तरह से उसकी यह कोशिश बेकार हो गई। हरि सिंह नलुआ ने अफगानिस्तान (अफगानो) से हमले के खतरे को हमेशा के लिए दूर करने के लिए उपयुक्त स्थानो पर किले बनाकर उसमे सेना और सामग्री रखने का कार्य आरम्भ किया। जब वह जमरूद के प्रसिद्ध किले मे ठहरा हुआ था, उस समय दोस्त मुहम्मद ने एक बार फिर सन् 1837 मे महाराजा के विरुद्ध सब अफगानो को इकट्ठा करके जमरूद पर आक्रमण कर दिया। थोडी सख्या मे होते हुए भी दरबार की फौजो ने बडी वीरता से अफगानो का मुकाबला करके उनको पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। परन्तु दुर्भाग्य से एक छोटी-सी टुकडी कही छुपी हुई रह गई थी जिस ने हरि सिंह नलुआ को गोली का निशाना बना दिया। ऐसे प्रसिद्ध जरनैल की मृत्यु का जो कि अफगानो के लिए एक हौवा बन चुका था, महाराजा को भी बहुत दुख हुआ। महाराजा ने अधिक सेना भेजकर अपनी सुरक्षा का और भी अच्छा प्रबन्ध कर लिया। इस तरह से दोस्त मुहम्मद खा की अतिम कोशिश भी निष्फल हो गई। महाराजा ने अपने सबसे अच्छे जरनैल और सेना के सबसे अच्छे भाग को उत्तर पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के लिए अपनी मृत्यु पर्यन्त उस इलाके मे नियुक्त रखा। इस तरह अफगानो के आक्रमण का किसी हद तक खतरा टल गया।

सन् 1838 मे दोस्त मुहम्मद खा के रूस के विरुद्ध अग्रेजो के साथ न मिलने के कारण और यह माँग करने पर कि वे सिक्खों से पेशावर उसे दिलवादे अग्रेजो ने शाहशुजा साधुजई को उसके स्थान पर काबुल का अमीर बनाने का यत्न किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अग्रेजो ने त्रिपक्षीय सधि करके और रणजीत सिंह को साथ मिलाकर शाह-शुजा को उपयुक्त सख्या मे सेना और प्रचुर मात्रा मे दूसरी सहायता देकर काबुल के तख्त पर बैठाने का बीडा उठाया। महाराजा रणजीतसिंह की इस कार्य मे कोई रुची नही थी क्योकि वह जानते थे कि अफगानो के शक्तिशाली बनने या काबुल मे स्थायी राजनीतिक प्रबन्ध होने से उसके विरुद्ध खतरा बढ जाएगा। परन्तु फिर भी जब उसने देखा कि अग्रेज हर हालत मे यह कारवाई करने पर तुल गए है तब उसने भी इसका लाभ उठाने की नीति से शाहशुजा का समर्थन करने का निर्णय किया। यह सब कार्य अभी समाप्त नही हुआ था कि 27 जून, 1839 को महाराजा परलोक सिधार गये। परन्तु अपने जीवन काल मे उन्होने सतोषजनक सुरक्षा प्रबन्ध करके इतिहास मे ऐसा महान काम कर दिखाया था जो कि पिछले कई सौ सालो से नही हो सका था। यह स्पष्ट है कि पजाब मुहम्मद गजनवी के प्रथम आक्रमण 1001 ई० के बाद हमेशा मुसलमान आक्रमणकारियो का सब से पहला निशाना बना रहा। इस इलाके के अन्तिम स्वतत्र भारतीय राजा अनगपाल के पतन के पश्चात् यह स्थिति कोई 800 वर्ष तक

चलती रही। लेकिन महाराजा रणजीत सिंह ने इस दिशा को सर्वथा बदल दिया। अब अफगानो से कोई खतरा नही रहा बल्कि अफगानिस्तान को पजाब के शक्तिशाली नरेश महाराजा रणजीत सिंह से यह खतरा हो गया कि अगर सम्भव हुआ तो वह काबुल पर भी अपना झण्डा लहरा देगा। यह रणजीत सिंह की अफगानों के साथ अपनी नीति की और उसकी योग्यता की महान सफलता थी मानो उसने नदी की धारा को ही उलटा चला दिया हो। यह पजाबी राष्ट्रवाद की एक अद्वतीय देन थी। यह सब कुछ बहुत हद तक इसलिए हो सका था कि अफगानिस्तान की राजनीतिक स्थिति महाराजा रणजीत सिंह के लिए लाभदायक सिद्ध हुई और उसने कूटनीति और युद्ध कौशल से अपना उद्देश्य प्राप्त कर लिया।

(ख) महाराजा रणजीत सिंह के नेपाल दरबार के साथ राजनीतिक संबंध

गोरखों से महाराजा रणजीत सिंह का सम्पर्क पहली बार सन् 1809 मे हुआ था जबकि उन्हो ने कागडा को घेर रखा था और वहाँ के राजा ससार चन्द कटोच ने अपनी स्थिति की गभीरता के दृष्टिगत महाराजा रणजीत सिंह से सहायता मागी थी। महाराजा रणजीत सिंह ने गोरखो को पीछे हटा दिया और उनके साथ किसी किस्म की सधि करने से इकार कर दिया। वास्तव मे महाराजा रणजीत सिंह नही चाहते थे कि किसी रूप मे भी गोरखे कागडा के निकट के इलाके पर अपना अधिकार जमा ले और वहाँ अपना राज्य स्थापित कर ले। इसका स्पष्ट कारण यह था कि वह गोरखों जैसे लडाकू और साम्राज्य स्थापित करने वाले लोगो को अपना पडोसी नही बनाना चाहता था। वह खुद अपने राज्य का विस्तार कर रहा था इसलिए अपना रास्ता साफ रखना चाहता था। गोरखो की कटु पराजय के बाद महाराजा रणजीत सिंह और गोरखो मे किसी किस्म का परस्पर सम्पर्क न होना स्वाभाविक ही था। गोरखे इस बात से विशेष तौर पर निराश हुए थे कि महाराजा रणजीत सिह ने अपनी सैनिक शक्ति के प्रभाव से उनको कागडा और उसके आस-पास की रियासतो पर अधिकार नही करने दिया था।

सन् 1814-16 मे अंग्रेजो और गोरखो के बीच शिमले के पहाडी इलाको मे युद्ध के समय महाराजा ने अंग्रेजो को अपनी सेवाएँ अर्पित की थी परन्तु अंग्रेजों ने यह कह कर टाल दिया था कि वे गोरखो के विरुद्ध कारवाई करने मे पूरी तरह समर्थ है। गोरखो के शिमला की पहाडियो के पीछे धकेले जाने पर लाहौर दरबार का नेपाल दरबार के साथ संबध और भी कठिन हो गया और उनके बीच का क्षेत्र अंग्रेजो के अधीन होने से मैदानी रास्ता बिल्कुल बद हो गया।

महाराजा रणजीत सिंह फिर भी गोरखों की सैनिक योग्यता से बहुत प्रभावित था और उसने अपनी कश्मीर पर पहली दो चढाइयो के विफल होने पर अपनी फौज मे गोरखों को भर्ती किया था जो कि पहाड़ी इलाके मे लडाई करने के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। अपनी सेना के पुनर्गठन के समय भी महाराजा रणजीत सिंह ने गोरखों को पैदल फौज मे भर्ती करने का प्रयत्न किया। महाराजा के दरबार मे अंग्रेजों

के विरोधी दरबारियो ने भी महाराजा को नेपाल के साथ राजनीतिक सबध स्थापित करने की प्रेरणा दी थी। परन्तु महाराजा रणजीत सिंह ने अंग्रेजो के साथ अपनी मित्रता के बलबूते पर गोरखो से किसी किस्म का सबध स्थापित करने के लिए इच्छा जाहिर नही की। जब कभी गोरखो ने महाराजा रणजीत सिंह से अच्छे सबध स्थापित करने की कोशिश की, महाराजा रणजीत सिह ने उसमे ज्यादा रुचि नही दिखाई और अंग्रेजो को हमेशा इस की सूचना दी।

सन् 1835 मे नेपाल का दूत देवी सिंह महाराजा को अमृतसर मे कुछ तोहफे लेकर मिला था और उसने गोरखो की ओर से दो हाथी, दो पिस्तोल, दो खजर और कुछ कीमती कपडे महाराजा रणजीत सिंह को भेंट किये थे। महाराजा रणजीत सिंह ने इस बात की सूचना लुधियाना मे अंग्रेजो के राजनीतिक एजेंट को भेज दी जिस पर उस ने कहा था कि अंग्रेजो और महाराजा के बीच इतनी पक्की दोस्ती के सबध है कि महाराजा को किसी और राज्य से राजनीतिक सबधो की चेष्ट नही करनी चाहिये अर्थात् अंग्रेज नही चाहते थे कि महाराजा रणजीत सिंह नेपाल के साथ किसी किस्म का राजनीतिक सबध स्थापित करे।

नेपाल राज्य के एक प्रसिद्ध असतुष्ट उच्चाधिकारी जरनल मतबर सिह ने महाराजा रणजीत सिंह से मिलने की बहुत कोशिश की। उसका उद्देश्य महाराजा रणजीत सिंह के पास नौकरी प्राप्त करना था। परन्तु अंग्रेजो ने उसकौ पजाब प्रवेश करने की आज्ञा नही दी। महाराजा रणजीत सिंह के स्वय कहने पर भी उन्होने कुछ ऐसी शर्ते लगाने की कोशिश की जो कि मतबर सिंह के लिए सम्मानीय नही थी। अत वह न तो पजाब मे आ सका न ही दरबार की नौकरी प्राप्त कर सका।

सन् 1837 मे नेपाल की ओर से बाकायदा एक राजनीतिक मिशन महाराजा रणजीत सिंह के पास भेजा गया। इसका प्रबन्ध विख्यात गोरखा अगर सिंह थापा के एक पुत्र के द्वारा किया गया जो कि महाराजा की सेवा मे था। इस मिशन मे कालू सिंह और कैप्टन करबर सिंह प्रसिद्ध व्यक्ति थे। इस समय नेपाल राज्य अंग्रेजो से क्रुद्ध था और सम्भवत उनके विरुद्ध युद्ध की स्थिति मे महाराजा रणजीत सिंह की सहायता प्राप्त करना चाहता था। रणजीत सिंह स्वय भी कई बातो मे अंग्रेजो के व्यवहार से असतुष्ट था। साथ ही वह अपनी शक्ति को भी इतनी बढा चुका था कि अब वह स्वतत्र रूप से गोरखो के साथ राजनीतिक सबध स्थापित कर सके। इस लिए महाराजा रणजीत सिंह ने नेपाल के मिशन के प्रति सद्-भावना का प्रदर्शन किया। नेपाल का दूत महाराजा की बहुत प्रशसा करके उसकी सहायता प्राप्त करना चाहता था। इस समय पर उन्होने रणजीत सिंह को हिन्दुओ के 'दीपक' और 'अवतार' आदि की उपाधियो से अलकृत किया। और महाराजा ने भी यह वक्तव्य दिया कि दोनो राज्यो के उद्देश्य एक-जैसे है और वह एक दूसरे के साथ अधिक मेल-मिलाप करना चाहते है। इस लिए लाहौर नरेश ने पत्र मे नेपाल दरबार को कैप्टन करबर सिंह के हाथो भेजे गए उपहारों के लिए बहुत धन्यवाद दिया

ग्रौर यह इच्छा व्यक्त की कि उनकी परस्पर मित्रता बढती जाएगी। इस किस्म का व्यवहार पहले कभी नही किया गया था। वास्तव मे नेपाल राज्य के साथ महाराजा रणजीत सिह के राजनीतिक सबध अग्रेजो के अधीन थे और अंग्रेज नही चाहते थे कि ये दोनो दरबार मिलकर किसी समय भी उसके विरुद्ध कारवाई कर सके। पहले नेपाल की ओर से जब कभी ऐसी कोशिश की गई तो महाराजा रणजीत सिंह ने नेपाल के दूत को मिलने का मौका भी नही दिया।

लद्दाख मे जोरावर सिह द्वारा महाराजा रणजीत सिंह अपने राज्य की सीमाओं का जो विस्तार कर रहा था, उसका भी उद्देश्य यही प्रतीत होता था कि वह नेपाल राज्य के साथ पहाडो के मार्ग से अपना सम्पर्क बनाना चाहता था, चाहे यह रास्ता कितना ही बीहड क्यो न हो। लद्दाख मे सिक्खो का अधिकार स्थापित करना एक तरीके से नेपाल मे पहुँचने की इच्छा का द्योतक था। यह बात अग्रेजो से छुपी नही थी। सन् 1837 मे कर्नल वेड ने, जो कि लुधियाना मे अग्रेजो का राजनीतिक एजेंट था, लाहौर से लौटने पर गवर्नर जनरल को भेजी अपनी रिपोर्ट मे लिखा था कि "उसे अपनी लाहौर की यात्रा से ऐसा अनुभव हुआ है कि रणजीत सिंह का लद्दाख को प्राप्त करने का एक उद्देश्य यह भी है कि अपने इलाके को 'स्पित' नदी तक बढा लिया जाए ताकि वह नेपाल के उत्तरी पूर्वी सरहद के साथ लग जाए। ऐसा होने पर दोनो सरकारे आपसी मेलमिलाप बढा सकेगी। बेशक ऐसा लगता है कि लाहौर दरबार ने इस इलाके मे सैनिक कारवाई अपना व्यापार बढाने के लिए की है परन्तु असली उद्देश्य लाहौर दरबार का नेपाल राज्य के साथ सीधा सबध स्थापित करना है जिस को महाराजा रणजीत सिंह अपने लिए बडा लाभदायक समझता है क्योकि इस किस्म की सधि आगे जाकर दोनो सरकारो के लिए परस्पर महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है।" उसने यह भी लिखा कि नेपाल के राजनीतिक मिशन के लाहौर पधारने पर और महाराजा रणजीत सिंह का उनके साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार यह सिद्ध करता है कि महाराजा रणजीत सिंह अपना मन बना चुके है कि वह उस राज्य के साथ राजनीतिक सबध स्थापित करके, जिस का इलाका पजाब राज्य के साथा नही लगता था, कोई विशेष उद्देश्य प्राप्त करना चाहते है। यह समझना उचित नही होगा कि यह मित्रता साधारण रूप से एक दूसरे को तोहफे देने तक ही सीमित है। वेड साहिब ने स्पष्ट तौर पर यह भी कहा है कि "हमारे लिए यह समझना कि महाराजा रणजीत सिंह अपने स्वार्थ के सिवाय किसी और कारण से भी मित्रता रखते है अपने आप को धोखा देना होगा। न तो मै और न उसके इसी पद पर पुराने योग्य उत्तराधिकारी, सर डी० ऑक्टर लोनी और कैप्टन मर्रे, इस किस्म का विचार रखते थे।"

अब यह बात बगैर किसी लगलगाव के स्पष्ट हो गई थी कि महाराजा रणजीत सिंह अंग्रेजो की सद्भावना पर ही निर्भर नही रहना चाहता था। गोरखो के साथ निकट संबध स्थापित करना इस बात का प्रतीक था कि वह अंग्रेजों के विरुद्ध कोई कारवाई करने के समय अपनी सहायता के लिए किसी और राज्य के साथ भी सम्पर्क स्थापित

करना चाहता था। नेपाल दरबार के साथ लाहौर दरबार के राजनीतिक सबध स्थापित करना इस बात का स्पष्ट प्रमाण था कि अगर अंग्रेजों के साथ मामला बिगड जाए तो रणजीत सिंह बिल्कुल अकेला न पड़ जाए।

नेपाल राज्य के साथ महाराजा रणजीत सिंह के नये दृष्टिकोण से यह स्पष्ट हो जाता है कि रणजीत सिंह अपने आपको अंग्रेजों के विरुद्ध शक्तिशाली बनाकर अपने लिए भारत मे मित्र बनाना चाहता था। नेपाल राज्य के सिवाय उस समय उसके निकट कोई ऐसा राज्य नही था जिससे किसी किस्म की सहायता की आशा रखी जा सकती थी। नेपाल और लाहौर दरबार के राजनीतिक उद्देश्य जहाँ तक अंग्रेजो के साथ उनके सबध थे बहुत हद तक एक-जैसे थे। दोनो को ही अंग्रेजो से खतरा था।

प्रश्न

1. Study in brief Ranjit Singh's Relations with the Afghanistan.
   महाराजा रणजीत सिह के अफगानिस्तान के साथ सबधो का उल्लेख कीजिए।
2. Study in brief Ranjit Singh's Political relations with Nepal Darbar.
   नेपाल दरबार के साथ रणजीत सिंह के राजनीतिक सबधों का सक्षिप्त वर्णन कीजिए।

27

रणजीत सिंह का चरित्र और उपलब्धियाँ

पजाब के इतिहास मे कोई और शासक या वीर पुरुष इतना सर्वप्रिय नही हुआ जितना कि महाराजा रणजीत सिंह। सर लैपल ग्रिफन जो कि अंग्रेजो के राज्य मे पजाब सरकार के मुख्य सचिव थे और जिन्होने उसकी जीवनी लिखी है इस बात को बडी उल्लेखनीय मानते है कि महाराजा की मृत्यु के 90 साल बाद भी जब कि पजाब एक स्वतत्र राज्य नही रहा महाराजा रणजीतसिह का नाम हर पजाबी की जबान पर है और उसको एक साधारण किसान और उच्चकुल के कुँवर एक जैसे सम्मान से याद करते है।

अद्‌भुत व्यक्ति : चाहे शारीरिक तौर पर महाराजा रणजीत सिंह बहुत कम प्रभावशाली था (कद दरमियाना, रग गहरा गेहुआँ) चेहरे पर चेचक के दाग और बाई आँख से कोरा) मगर किसी भी सभा मे वह विशेष आकर्षण का केन्द्र होता था। उसकी दृष्टि बहुत अन्वीक्षक थी और वह हर समय ज्ञान प्राप्त करने का अभिलाषी रहता था। बहुत से अंग्रेज अधिकारियो ने जो कि महाराजा को समय-समय पर मिलने आते रहे उनके बारे मे विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उनके चरित्र की भिन्न-भिन्न विशेषताए समकालीन इतिहासकारो ने भी, जिन मे हिन्दुस्तानी भी थे और यूरोपियन भी, अच्छी तरह से वर्णित की है। मूर क्राफट, बर्न्ज, जेकोमा, ह्यू गल, मेकग्रेगर और औसबॉर्न आदि यूरोपियनो ने उनके चरित्र का बहुत अच्छी तरह चित्रण किया है।

एक सिपाही के रूप मे रणजीत सिंह जन्म से ही सिपाही था। उसकी रुचि बचपन से ही युद्ध कार्यों मे अधिक थी और वह सामन्य शिक्षा प्राप्त करने का इच्छुक नही था। बताया जाता है कि बाल्यकाल मे ही वह अपने साथियो को दो टुकडियो मे बाँट कर स्वयं एक का नेता बनकर उनको दूसरी टुकडी के साथ युद्ध करने की ट्रेनिंग दिया करता था। उसने अंग्रेजो के राजनीतिक एजेंट वेड साहिब को अपनी एक भेंट मे बताया था कि जब उसके पिता महासिंह का देहात हुआ था तब उसने 75 हजार के 75 हजार कारतूस जो कि उसके पिता ने पीछे छोड़े थे निशानेबाजी की ट्रेनिंग मे खर्च कर दिये। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वह कितना कुशल निशानेबाज था। इसके साथ ही वह घुड़सवारी का अत्यन्त शौकीन था और युवा अवस्था मे घोडे पर 60-70 मील लगातार सवारी कर सकता था। उसका शरीर गठीला था और वह अथक परिश्रम कर सकता था। वह नेता के रूप

मे हमेशा अपनी सेना के आगे रहता था। युद्ध मे उसका साहस अद्वितीय था। बहुत से मौको पर वह अपनी निजी बहादुरी और सूझ-बूझ से ही सफल हुआ था। घोडो के लिए उसका प्रेम असीम था। उसने अपने अस्तबल मे सैकडो अच्छे से अच्छे घोडे प्राप्त किये थे जिनको हीरे जवारात से सुसज्जित किया जाता था।

राजनीतिज्ञ के रूप में · महाराजा एक सुलझा हुआ राजनीतिज्ञ (नीतीवान) था। वह समय पर अपनी सूझ-बूझ से काम लेकर कठिन से कठिन समस्या का समाधान करने की कोशिश करता था। अंग्रेजो ने भी इस बात का विशेष तौर पर वर्णन किया है कि महाराजा जोश मे भी किसी किस्म का नुकसान नही करता था। वह अच्छी तरह समझता था कि उनको किस हद तक जाना है, वह अपनी शक्ति को वृथा नही गँवाता था। वह बडे ठडे दिल से कारवाई करता था जैसा कि अंग्रेजो के और अफगानो के साथ उसके सबधो से स्पष्ट होता है। अपने सारे राज्य काल मे उसने अपनी नीति का एकातिक निष्ठा से पालन किया।

एक शासक के रूप में : महाराजा के एक श्रेष्ठ और कुशल शासक होने का सबूत इस बात से मिलता है कि उसने अपनी सारी प्रजा की पालना का काम अपने जिम्मे ले लिया और धर्म के आधार पर किसी को किसी किस्म की हानि नही होने दी। इसलिए पजाब मे रहने वाले सभी लोग उसको अपना प्रिय शासक समझते थे और उसकी प्रजा होने मे गौरव का अनुभव करते थे। यह बात उसके लाहौर मे प्रवेश करने के समय से ही सिद्ध हो गई थी क्योकि उस समय भी उनको लाहौर मे रहने वाले बहुसख्यक मुसलमानो ने विशेष तौर पर उसे आमन्त्रित किया था कि वह उनके शासन का भार अपने ऊपर ले ले क्योकि एक योग्य शासक के तौर पर उसकी प्रशसा वे बहुत सुन चुके थे। महाराजा रणजीत सिंह ने शासक के तौर पर सब वर्गों को और सब जातियों को एक समान समझते हुए मिल-जुल कर रहने का उचित प्रबन्ध किया था। यह बात भी प्रमाणित है कि उसके शासन के अधीन किसी को किसी प्रकार की कोई शिकायत नही थी। हर एक योग्य आदमी उसके शासन मे उचित स्थान प्राप्त कर सकता था और हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, डोगरे, कश्मीरी ब्राह्मण, गोरखे अथवा यूरोपियन भी उच्च पदो पर नियुक्त थे। महाराजा की सबसे बडी योग्यता शासक के रूप मे यह थी कि उसने सारे पंजाब का एकीकरण करके अपने सारे राज्य मे उस समय के अनुसार शासन प्रबन्ध किया जो कि उसके अपने कड़े निरीक्षण मे अच्छी तरह चलता रहा और जिससे उसकी प्रजा बहुत सतुष्ट थी। उसका शासन प्रबन्ध उसके पहले मिसल काल के शासन प्रबन्ध से बहुत अच्छा सिद्ध हुआ और लोगो ने उसका बहुत स्वागत किया।

बेशक महाराजा रणजीत सिंह को अधिक समय अपने राज्य के विस्तार मे सैनिक कारवाइयो मे लगाना पडा और उसका विशेष ध्यान अपनी सैनिक शक्ति बढाने और सेना का पुनर्गठन करने मे लगा रहा तथापि उसने सार्वजनिक शासन प्रबन्ध मे सुधार करके उस समय की आवश्यकता के अनुसार शासन स्थापित किया। इस कार्य मे उसने कोई विशेष नई प्रणाली नही अपनाई। केवल पुराने मुगल काल के

प्रबन्ध या पजाब के परम्परागत पचायती प्रबन्ध को फिर से चालू कर दिया। ऐसा करना वास्तविक तौर पर लाभदायक सिद्ध हुआ क्योकि उसके पास इतना समय नही था कि वह सार्वजनिक शासन मे विस्तार से सुधार कर पाता। इस लिये उसने सर्वसाधारण की जरूरत के मुताबिक सीधा सादा शासन स्थापित किया।

महाराजा रणजीत सिह ने विशेष ध्यान अपनी सेना के पुनर्गठन की ओर दिया। उसको अपने राज्य काल के आरम्भ से ही यह अच्छी तरह से ज्ञात हो गया था कि अग्रेजो जैसे शक्तिशाली राज्य के साथ उसके सबध स्थापित होने पर सुरक्षा का उचित प्रबध बहुत जरूरी है। इस कार्य के लिए उसने अपनी सेना के अग्रेजी सेना के अनुसार ही पुनर्गठन करने मे न तो किसी किस्म के खर्च की परवाह की और न ही इस कार्य की तरफ लापरवाही होने दी। परिणामस्वरूप उसने 20-25 सालो मे अपनी सेना को बिल्कुल पश्चिमी तरीके पर ट्रेनिंग देकर उसे इतना योग्य बना दिया कि वह अग्रेजो के विरुद्ध पजाब की सुरक्षा के योग्य बन गई। इस कार्य मे जो सफलता महाराजा रणजीत सिंह ने प्राप्त की वह विशेष तौर पर उल्लेखनीय है क्योकि इतने थोडे समय मे इतना महान काम किसी भी और भारतीय शासक ने नही किया था। उससे पहले मराठो ने या टीपू सुलतान ने विदेशियो की सहायता से अपनी सेना को यूरोपियन हथियारो से लैस करके उसी प्रकार ट्रेनिंग देने का बहुत प्रयत्न किया था पर उनका प्रयास इतना सफल नही कहा जा सकता जितना कि महाराजा रणजीत सिंह का। महाराजा रणजीतसिह नें एक तरह से पंजाब की परम्परागत सैनिक प्रणाली पर सफल तौर पर पश्चिमी सिस्टम चालू कर दिया था।

उदार और दयालू राजा के रूप में: महाराजा रणजीत सिंह को हर प्रकार से महान और दयावान शासक कहा जा सकता है क्योंकि उसकी सारी नीति शासन प्रबन्ध, लोगो के प्रति अच्छे व्यवहार और प्रजा की भलाई के सिद्धान्त पर आधारित थी। उनकी उदारता और लोगो के प्रति दया और प्रेम भाव के कारण उसको "लख बख्शा" या "पारस पत्थर" भी कहा है। यह सत्य है कि उसने ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध भी उदारता दिखाई थी जिसने युद्ध मे उसका विरोध किया था। उसको अधिराज मानने पर ऐसे व्यक्ति को महाराजा ने उचित पैन्शन देकर सम्मान योग्य जीवन बिताने के योग्य बना दिया। महाराजा नही चाहता था कि चाहे वह उसका शत्रु रह चुका हो ऐसे उच्च घरानो के लोग भीख माँगते हुए लाहौर के बाजारों में फिरते नजर आएँ। इस तरह से मुलतान और कसूर के नबाबो के उत्तराधिकारी थोड़ी बहुत पैन्शन और जागीर पाकर लाहौर मे रहते थे और दरबार मे उनको भी बुलाया जाता था। महाराजा नें किसी अपराधी को मरण दण्ड नही दिया। यह ठीक है कि विरोध करनें पर महाराजा अपने शत्रु के विरुद्ध पूरी शक्ति लगाता था और अपने मित्रों के प्रति बहुल उदार था। इसीलिए खुशवन्त सिंह ने ठीक ही कहा है कि "महाराजा रणजीत सिंह मे एक पंजाबी के गुण और अवगुण पूरी मात्रा में पाये जाते थे"।

राष्ट्रवादी राजा के रूप मे महाराजा रणजीत सिंह ने अपने राज्य काल मे धर्म निरपेक्ष शासन द्वारा उसके अधीन रहने वाले मुसलमान, हिन्दू और सिक्खो को पूरा सरक्षण दिया। इस नीति का आधार इस सिद्धान्त पर था कि उसने पहली बार पजाब मे एक पजाबी शासक के तौर पर राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत् की। वह स्वय सब लोगो के त्योहारो मे शामिल होता और सब धर्म स्थानो का उचित सम्मान करता और सारी प्रजा को एक जैसा समझता। इसलिए सारी प्रजा उसका राष्ट्रीय नरेश के रूप मे सम्मान करती। पजाब मे पहली बार ऐसी भावना को उजागर किया गया जिससे वहाँ का रहने वाला साधारण आदमी भी अपने आपको पजाबी समझने लगा। पजाब के प्रति अपनी देश भक्ति का सबूत सब पजाबियो ने अग्रेजो के विरुद्ध दो युद्धो मे दिया। मिसाल के तौर पर हिन्दू, मुसलमान और सिक्खो ने महाराजा की समाधि पर जाकर एक साथ पजाब की स्वतन्त्रता को अपनी पूरी शक्ति से बनाये रखने की सौगन्ध खाई और युद्ध क्षेत्र मे जाकर अपनी देश भक्ति का प्रमाण दिया। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि उस समय सब ने मिलकर अपने पजाबीपन का सबूत दिया था और यह महाराजा रणजीत सिंह की पजाब को सबसे बडी देन थी। पजाब के प्रसिद्ध राष्ट्रकवि शाह मुहम्मद ने जगनामा लाहौर मे स्पष्ट शब्दों में सिक्खो की अग्रेजो के विरुद्ध लडाई, (सन् 1845-46) मे पजाबी वीरो की प्रशसा की है।

"अज होवे सरकार ताँ मुल्ल पावे, जेहडिया तेगाँ खालसे ने मारीयाँ ने,
शाह मुहम्मदा इक सरकार बाजो, फौजाँ जित के अन्त नू हारियाँ ने"।

महाराजा रणजीत सिंह की उदारता की बहुत सी मिसाले है। उसने जहाँ हरिमन्दिर साहिब को बहुत दान दिया वहाँ हिन्दुओं और मुसलमानो के धर्म स्थानो को भी दान पात्र माना। उसकी धार्मिक सहिष्णुता इतनी प्रसिद्ध थी कि सब धर्मों के अनुयायी पूरी तरह से अपने धर्म का पालन करने मे स्वतत्र थे। इस बात का प्रमाण हमे महाराजा के बीमार होने पर उन के स्वास्थ्य के लिए की गई प्रार्थनाओ से मिलता है जोकि मुसलमानो ने मस्जिदो मे, हिन्दुओं ने मन्दिरो में और सिक्खो ने गुरद्वारों मे की। यह ठीक है कि महाराजा एक अच्छे सिक्ख के तौर पर अपने धर्म का पालन करता था, परन्तु किसी प्रकार से उसने किसी और धर्म के मानने वाले को शिकायत का कभी मौका नही दिया। अत इस बात मे कोई अतिशयोक्ति नहीं कि महाराजा रणजीत सिह पंजाब का सर्वप्रिय और राष्ट्रीय नरेश था।

पंजाब के पतन के लिए महाराजा रणजीत सिंह का उत्तरदायित्व

महाराजा रणजीत सिंह के राज्य का पतन दो विशेष कारणो से हुआ। वे कारण है :

(क) ऐसे कारण जिनके लिए महाराजा रणजीत सिंह को व्यक्तिगत रूप मे उत्तरदायी कहा जा सकता है।

(ख) वे कारण जिनके लिए महाराजा को जिम्मेदार नही ठहराया जा सकता।

(क) ऐसे कारण जिनके लिए महाराजा रणजीत सिंह को व्यक्तिगत रूप में उत्तरदायी कहा जा सकता ।

1. व्यक्तिगत कारणो मे सर्वप्रथम यह बात थी कि महाराजा रणजीतसिंह ने समूचा राजतत्र सर्वथा अपने अधीन रखा हुआ था और इसका अनुचित केन्द्रीकरण किया हुआ था। ऐसे राजप्रबन्ध मे बेशक एक व्यक्ति कितना ही योग्य और सफल क्यो न हो यह असम्भव हे कि वह सदैव जीता रहे। भारत के इतिहास मे कई बार ऐसा हुआ कि एक महान शासक की मृत्यु के बाद उसके राज्य का पतन अवश्यम्भावी हो गया। कारण कि किसी योग्य उत्तराधिकारी को वह अपने जीवन काल मे योग्यता प्राप्त नही करने देता था और न ही राज्य के काम मे उनको उचित भाग दिया जाता था। जहाँ यह चाहिये था कि वह अपने उत्तराधिकारियो को यह अवसर देता कि वे राज्य को चलाने की योग्यता और अनुभव प्राप्त करते। परन्तु हो सकता है कि महाराजा रणजीत सिंह को सारा बोझ अपने ऊपर ही उठाना पडा हो और ऐसी स्थिति उत्पन्न नही हो सकी हो जब कि वह उचित विकेन्द्रीकरण करके दूसरों को योग्यता प्राप्त करने देता। महाराजा के बारे मे यह भी कहा जा सकता है कि वह "स्वय ही सरकार थे"। और उनके मरने के बाद यह भी कहा जा सकता है कि पजाब मे राज्य करने की कोई आसामी खाली नही थी बल्कि एक बडा सा शून्य पैदा हो गया था। भाव यह है कि उसके मरणोपरान्त सारा केन्द्रीय शासन एक तरह से अपग बन कर रह गया था।

2. महाराजा रणजीत सिंह को पूर्ण ज्ञान था कि उसके अधीन डोगरा परिवार अनुचित तौर पर शक्तिशाली बन गया था। तीनों डोगरा भाइयो—ध्यान सिंह, गुलाब सिंह और सुचेत सिंह ने दरबार मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिये थे और उनकी जागीरे और इलाके बहुत विशाल हो गये थे। डोगरा परिवार ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके सारे शासन को अपने अधीन कर लिया था। वह किसी और व्यक्ति या ग्रुप को पनपने ही नही देते थे। किसी हद तक महाराजा भी अपने आपको डोगरो के विरुद्ध कारवाई करने मे असमर्थ समझता था। यही नही डोगरे लाहौर दरबार के लिए खतरा बन गये थे जिसका महाराजा को भली भाँति ज्ञान था। परन्तु वह इस बुराई को दूर करने मे बिल्कुल असमर्थ हो गया था। इसलिए डोगरा परिवार के प्रभाव को अनुचित रूप मे बढने देना बहुत हद तक महाराजा की अपनी कमजोरी का फल था जो आगे जाकर राज्य के पतन का एक बडा कारण सिद्ध हुआ।

3. *यूरोपियन अफसरों की नियुक्ति* महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी सेना का पुनर्गठन करने के लिए बडे-बड़े वेतन देकर यूरोपियन अफसरों को इस काम के लिए नौकर रखा था। परन्तु महाराजा जानते हुए भी इस बात की आशा रखता था कि वे लाहौर दरबार के वफादार रहेगे। यूरोपियन अफसर महाराजा को झूठे आश्वासन देते रहते और बडी-बड़ी तनख्वाहें और इनाम प्राप्त करके बहुत धन

इकट्ठा करते रहते। परन्तु उनमे से कोई भी महाराजा की मृत्यु के बाद मौका पडने पर दरबार के प्रति विश्वासपात्र सिद्ध नही हुआ। उनमे से कई तो अग्रेज़ों के गुप्त एजेन्ट के तौर पर काम करते रहे। इन अफसरो की नियुक्ति महाराजा की बहुत बडी भूल थी। इससे तो अच्छा था कि वह अफसरो की सेवाए थोडे समय के लिए बेशक बडी-बडी तनख्वाहो पर प्राप्त करते और योग्य पजाबी अफसरो को इस काम के लिए ट्रेड कर लिया जाता जैसा कि कई देशो मे दूसरे देशो से विशेषज्ञ बुलाकर किया जाता है।

(ख) *वे कारण जिनके लिए महाराजा को स्वय जिम्मेदार नही ठहराया जा सकता।*

1. महाराजा के उत्तराधिकारी अयोग्य थे। यह दुर्भाग्य की बात है कि उनका ज्येष्ठ पुत्र खडग सिंह बिल्कुल निकम्मा सिद्ध हुआ खास कर ऐसे राज्य के लिए जिसकी सुरक्षा का भार उसकी सैनिक शक्ति पर था और जहाँ के लोग एक प्रसिद्ध सैनिक नेता को ही अपना महाराजा स्वीकार करना चाहते थे।

2. महाराजा रणजीत सिंह का यह भी दुर्भाग्य था कि वह पजाब मे उस समय अपना राज्य स्थापित कर सका जब कि अग्रेज़ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन सारे भारत पर अपना राज्य कायम कर चुके थे। मुख्य तौर पर व्यापारिक शासन के रूप मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी उत्तर पश्चिम की ओर अपना प्रभाव बढाना उचित समझती थी। रणजीत सिंह की आरम्भिक विजयो के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने शासन को उत्तर पश्चिमी की ओर बढा कर उसके चारो ओर लोहे का एक घेरा डालना आरम्भ कर दिया था। महाराजा रणजीत सिंह को यह दुखदायी अनुभव हो गया था कि अग्रेज उसके साथ सन्धि करने के बाद भी उसकी शक्ति को या उसके राज्य के विस्तार को बढने से रोकना चाहते है। ऐसी हालत मे बेशक रणजीत सिंह ने अपनी सूझबूझ से काम लेकर अपने राज्य काल मे अग्रेजो के साथ टक्कर नही ली या सघर्ष नही होने दिया परन्तु उसके मरने पर अग्रेजो ने अपनी भावना बिल्कुल स्पष्ट कर दी। और इस बात का बहुत हद तक रणजीत सिंह को भी ज्ञान था जैसा कि उसने अग्रेज सारजट के उसको भारत का एक नक्शा दिखाने पर कहा था। अंग्रेजी इलाको को लाल रग से नक्शे पर दर्शाने पर महाराजा ने स्वयं कहा था कि "एक दिन सब लाल हो जाएगा" अर्थात् पजाब भी अत मे अग्रेजों के अधीन हो जाएगा। वह एक ऐतिहासिक तथ्य था जिसको महाराजा रणजीत सिंह भी नही मिटा सकता था।

प्रश्न

1 "Maharaja Ranjit Singh was responsible for the fall of Kingdom of Panjab," comment.
"पजाब के साम्राज्य के पतन के लिए महाराजा रणजीत सिंह उत्तरदायी थे," टिप्पणी कीजिए।

2. Mark out the boundaries of the kingdom of Maharaja Ranjit Singh in 1839 and show any four of the following places and explain their historical significance
Lahore, Multan, Peshawar, Kangra, Rupar, Attock.
सन् 1839 मे महाराजा रणजीत सिंह के साम्राज्य की सीमाओ को चिह्नित कीजिए और निम्नलिखित मे से किन्ही चार को नक्शे मे दिखाइये तथा उनका ऐतिहासिक महत्त्व बताइए
लाहौर, मुलतान, पेशावर, कागडा, रोपड, अटक ।
3. Form an estimate of Ranjit Singh's Character and personality.
महाराजा रणजीत सिह जी के चरित्र एव व्यक्तित्व का मूल्याकन कीजिए ।
4. Give a brief account of Ranjit Singh's achievements. What place will you assign to him in the history of Panjab ?
रणजीत सिह की उपलब्धियो का सक्षिप्त वर्णन कीजिए । आप उसे पजाब के इतिहास मे कौन-सा स्थान देंगे ?

28

सिक्ख राज्य का संध्या काल (1839 से 1849)

महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी मृत्यु के कुछ समय पहले अपने ज्येष्ठ पुत्र खडग सिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित करके राजा ध्यान सिंह को प्रमुख अधिकारी या प्रधान मत्री के रूप मे राजप्रबध चलाने के लिए नियुक्त किया था। बडे महाराजा की क्रियाकर्म से निपट कर 27 जुलाई, 1839 को खडग सिंह का विधिपूर्वक राज्याभिषेक हुआ। आरम्भ से ही शासन को चलाने मे कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगी। कारण यह था कि महाराजा खडग सिंह स्वावलम्बी न होने के कारण अपने निकट सबधियो तथा चाटुकार व्यक्तियो के ज्यादा अधीन होकर राज-काज मे उनकी राय पर चलने लगा। उनमे से प्रसिद्ध था सरदार चेत सिंह। उसके प्रभावशाली पुत्र नौनिहाल सिंह ने अपने पिता की कमजोरी का लाभ उठाया और अपने तौर पर ही राजप्रबन्ध चलाने लगा।

पुराने अधिकारियो ने चेत सिंह के दखल को अनुचित समझते हुए उसका अन्त करने का उपाय किया। इस षड्यत्र मे युवा कुमार नौनिहाल सिंह को भी मिला लिया गया। राजा ध्यान सिंह इस काम मे सबसे आगे थे क्योकि चेत सिंह ने खुले दरबार मे उसको धमकी दी थी कि 24 घण्टो मे ही उसका प्रभाव समाप्त कर दिया जायेगा।

कुँवर नौनिहाल सिंह के साथ मिल कर डोगरा ग्रुप ने रात के समय किले मे प्रवेश करके चेत सिंह को जिस समय वह महाराजा खडग सिंह के साथ उसके सोने वाले कमरे मे था पकड़ कर मार दिया। इस काम मे राजा ध्यान सिंह सबसे आगे था। महाराजा खडग सिंह ने अपने विश्वस्त सलाहकार और सबधी की मृत्यु पर और वह भी उसके सामने होने पर बहुत शोक मनाया। महाराजा कुँवर नौनिहाल सिंह और वरिष्ठ अधिकारियो से रुष्ट हो गया और उसने दरबार के कामो मे किसी किस्म की रुचि ही लेनी छोड दी। उसने किला छोडकर शहर मे अपनी हवेली मे चले जाने की भी धमकी दी। विरोधी ग्रुप ने किसी प्रकार से न तो महाराजा की कटुता को कम या दूर करने की कोशिश की और न ही उसकी चेतावनी की तरफ कोई ध्यान दिया। इस दल ने अग्रेजो के राजनीतिक एजेंट, वेड साहिब के महाराजा खडग सिंह के साथ सहानुभूति प्रकट करने पर पजाब के आतरिक प्रबन्ध मे हस्तक्षेप के आरोप मे लुधियाना से बदलवा दिया और उनके स्थान पर नये राजनीतिक एजेंट क्लार्क साहिब को नियुक्त करवा दिया।

महाराजा खडग सिंह राजकाज से विमुख होकर धार्मिक काम के लिए अमृतसर चला गया, जहाँ पर वह अधिक बीमार होने पर लाहौर पहुँचकर 5-11-1840 को

परलोकवासी हुआ। कुँवर नौनिहाल सिंह पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसने अपने पिता की सेवा करने के स्थान पर राजकाज का काम सम्भालने की उत्सुकता दिखाते हुए उनके जीवन का अन्त निकट लाने मे सहायता दी थी। कुँवर नौनिहाल सिंह जो कि पहले भी राजकाज मे प्रमुख भाग लेता रहा था अब सर्वेसर्वा बनने और निरकुश शासन करने के लिए बडा उत्कठित था। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराजा खडग सिंह के दाह सस्कार करते समय उसने किसी किस्म का शोक प्रकट नही किया और अपने साथियो को ऐसा सकेत दिया कि अब वह राजकाज बहुत अच्छी तरह से और अपनी इच्छा से चला सकेगा। इस को दैवयोग कहिए या कोई षड्यन्त्र कि नदी से लौटते समय किले को जाते हुए जब वह बाहरी दरवाजे से गुजर रहा था तो बिल्कुल उसी समय उसका एक भाग गिरा और कुँवर नौनिहाल सिह बुरी तरह से घायल हो गया राजा गुलाब सिह का पुत्र मिया उधम सिंह, जो कि उस समय उसके साथ चल रहा था, उसी स्थान पर मर गया। घायल नौनिहाल सिह को शीघ्र उठाकर किले मे ले जाया गया और राजा ध्यान सिंह ने घोषित किया कि कुँवर ठीक-ठाक है। सारे मामले को इस तरह से गुप्त रखा गया कि कुँवर की धर्मपत्नी और उनकी माता को भी उनके पास नही जाने दिया गया। उनको उसी समय सूचना दी गई जब नौनिहाल सिंह प्राण त्याग चुका था। इस तरह से एक ही दिन मे महाराजा खड़ग सिंह और कुँवर नौनिहाल सिंह की मृत्यु से रणजीत सिह के वश का अत हो गया।

पजाब मे चेत सिंह की मृत्यु सबसे पहला राजनीतिक वध था और राजवश के किसी और सीधे उत्तराधिकारी के न होने के कारण गृह युद्ध की नीव रखी गई थी। इस झगडे से सिक्ख राज्य के अत का आरम्भ हुआ।

उस समय सुप्रसिद्ध अधिकारी राजा ध्यान सिंह ने कुँवर शेर सिंह को राजगद्दी पर बैठाने की योजना बनाई और उसको अपनी जागीर बटाला से बुला भी लिया। परन्तु शेर सिंह के लाहौर पहुँचने पर कुँवर नौनिहाल सिह की माता चान्दकौर ने राज्य पर अपना अधिकार अधिक समझा और उसका विरोध किया और यह भी घोषणा कर दी कि कुँवर नौनिहाल सिंह की पत्नी गर्भवती है और उसकी सतान होने तक यह निश्चित नही है कि राजवंश की उस शाखा मे से उत्तराधिकारी पैदा नही होगा। अत. उस समय तक माई चान्दकौर ने राजकाज स्वय चलाने का निश्चय किया। ऐसी स्थिति मे ध्यान सिंह ने कुँवर शेर सिंह को वापिस बटाला चले जाने का सुझाव दिया।

माई चान्दकौर के सहायक महाराजा रणजीत सिह के वशज सिंधावालिया सरदार थे और उसको ध्यान सिंह के बडे भाई राजा गुलाब सिंह और उसके अपने पुत्र राजा हीरा सिंह का भी सहयोग प्राप्त था। इस समय बडी अद्भुत राजनीतिक स्थिति उत्पन्न हो गई थी। एक ओर तो कुँवर शेर सिंह और उसके सहायक राजा ध्यान सिंह थे और दूसरी ओर किले के अन्दर माई चान्दकौर और उसके साथी सिंधावालिये

श्रौर कुछ डोगरे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमे भी डोगरो की गहरी चाल थी। उन्होने दोनो दलो का साथ देकर दोनो तरफ से लाभ उठाने का प्रबन्ध कर लिया। डोगरे पजाब पर श्रपना प्रभाव किसी तरह से भी कम नही होने देना चाहते थे। इसलिए राज्य के लिए युद्ध करने वाले दोनो दलो के साथ वे शामिल थे। इनका उद्देश्य केवल यही हो सकता था कि किसी दल की भी विजय होने पर डोगरा पार्टी श्रपना प्रभाव कायम रख सकेगी। साथ ही डोगरे यह भी सिद्ध करना चाहते थे कि उनकी सहायता के बिना कोई दल भी शायद सफल नही हो सकता।

इस स्थिति से श्रसतुष्ट होकर राजा ध्यान सिंह जम्मू चला गया श्रौर कुँवर शेर सिंह को श्राश्वासन दिया कि लाहौर मे स्थिति श्रनुकूल होने पर उसको फिर निमत्रण भेजा जायेगा। इसी बीच शेर सिंह ने सन् 1840 के श्रन्त मे श्रपने मित्र जनरल वन्तूरा की सहायता से लाहौर पर श्रधिकार करने की कोशिश की। परन्तु जैसा कि हम जानते है माई चान्दकौर के प्रमुख सहायक राजा गुलाब सिंह ने भी श्रपने राजपूत सैनिक जम्मू से बुलाकर किले की सुरक्षा का यथोचित प्रबन्ध किया श्रौर यह घोषणा कर दी कि वह एक श्रच्छे राजपूत के तौर पर श्रन्त तक पूरी शक्ति से प्रतिरक्षा करेगे। बेशक कुँवर शेर सिंह लाहौर श्रा गया था श्रौर उसने किले पर श्रधिकार प्राप्त करने की कोशिश की थी परन्तु राजा गुलाब सिंह श्रौर उन के सहायको ने बडी वीरता से उसका विरोध किया श्रौर उस समय तक किसी प्रकार की बातचीत करने से भी इकार कर दिया जब तक राजा ध्यान सिंह जम्मू से लाहौर नही पहुँच जाता। ध्यान सिंह के राजधानी पहुँचने पर उसने कुँवर शेर सिंह को सलाह दी कि उनके लिए यही उचित होगा कि वह चान्दकौर के साथ समझौतावार्ता श्रारम्भ कर दे। कुँवर शेर सिंह ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि राजकाज चलाने मे राजा ध्यान सिंह को पहले की तरह ही पूर्ण श्रधिकार प्राप्त होगे। माई चान्दकौर के साथ इस श्राधार पर समझौता किया गया कि उनको जम्मू के निकट जागीर देदी जाएगी श्रौर उनके राजपूत सहायको को पूरे सम्मान श्रौर सब सामान के साथ किले से बाहर जाने दिया जायेगा। यह भी श्राश्वासन दिया गया कि कुँवर नौनिहाल सिंह की पत्नी से बच्चा पैदा होने तक उनको सम्मानित तरीके से लाहौर मे रहने दिया जाएगा। इस तरह के समझौते हो जाने पर जो कि दोनो श्रोर से मुख्यत डोगरा सहायको के सौजन्य से हुश्रा था श्रधिकतर लाभ भी डोगरों को ही प्राप्त हुश्रा। बेशक कुँवर शेर सिंह को राजगद्दी पर बैठा दिया गया परन्तु सब श्रधिकार राजा ध्यान सिंह के पास रहे। दूसरी श्रोर माई चान्दकौर के दल के प्रमुख साहयक राजा गुलाब सिंह ने जम्मू के निकट जागीर दिलाने से श्रपना प्रभाव कायम रखा श्रौर साथ ही यह भी निश्चित कर लिया कि उस को किला छोडकर जाने पर वहाँ से सब खजाना श्रौर दूसरी सपत्ति भी बिना किसी रुकावट के ले जाने दी जाएगी। जब कुँवर शेर सिंह ने किले मे प्रवेश किया तो खजाना बिल्कुल खाली था। इस तरह से डोगरो के दोनो हाथो मे लड्डू थे।

शेर सिंह 20 जनवरी, 1841 को राजगद्दी पर बैठ गया। ध्यान सिंह को उसका

प्रमुख वजीर घोषित किया गया और कुँवर प्रताप सिंह सुपुत्र महाराजा शेर सिंह उनके उत्तराधिकारी बनाये गये। महाराजा शेर सिंह के राज्यकाल के आरम्भ से ही उनके पक्ष मे और प्रतिपक्ष मे शक्तिशाली धडे पैदा हो गये थे। कपूरथला के राजा निहाल सिंह अहलूवालिया, प्रसिद्ध धार्मिक नेता भाई गुरबख्श सिंह, धन्ना सिंह मलवई और फ्रासीसी जनरल वन्तूरा और कोर्ट उनके सहायक माने जाते थे। उनके प्रमुख विरोधी संधावालिया सरदार थे जोकि महाराजा रणजीत सिंह के शरीक होने के नाते शेर सिंह को रणजीत सिंह का उत्तराधिकारी नही मानते थे और माई चान्दकौर के साथ थे तथा महाराजा की पहली शाखा के पक्ष मे थे। भाई गोविन्द राम, भाई राम सिंह और जमादार खुशहाल सिंह भी शेर सिंह के महाराजा बनने से प्रसन्न नही थे।

सधावालियो ने पजाब को त्याग कर अग्रेजी इलाके मे जाकर माई चान्दकौर के हक मे अग्रेजो से समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की। परन्तु अग्रेजो ने इस घरेलू मामले मे हस्तक्षेप करने से इकार कर दिया। तथापि सधावालिये पजाब के बाहर से शेर सिंह के विरुद्ध षड्यत्र खडे करते रहे।

महाराजा शेर सिंह स्वाभाविक तौर पर उदार था और अपने विरोधियो से नर्मी का बरताव करता था। माई चान्दकौर से उसने सुलह करने की चेष्टा की परन्तु उसकी सब कोशिश विफल हो गई। इसलिए महाराजा ने माई चान्दकौर को किला छोड़कर शहर मे अपनी हवेली मे जाकर रहने का प्रबन्ध कर दिया। फिर भी माई चान्दकौर ने महाराजा के विरुद्ध अपनी कारवाई बन्द नही की और वह एक तरह से सब षड्यत्रो का केन्द्र बन गई।

दूसरी ओर महाराजा की सेना ने काफी कठिनाई पैदा कर दी। महाराजा शेर सिंह के गद्दी पर बैठने के पश्चात् उन्होने यह समझा कि महाराजा उनकी सहायता से ही सफल हुआ है। इसलिए वे अनुशासनहीनता पर उतर आये। कई बार वे लोगों को इस कारण लूट लेते थे कि वह महाराजा के विरोधी थे। महाराजा की तरफ से साधारण फौजियो के वेतन मे एक रुपये सी वृद्धि करने से वह सतुष्ट नही हुए और यह समझने लगे कि महाराजा यूरोपियन अफसरो के कहने से वेतन मे और वृद्धि से इकार कर रहे है। परिणामस्वरूप वह यूरोपियन जरनैल कोर्ट और वन्तूरा के विरुद्ध हो गये और बाकी सरदारो पर भी आक्षेप करने लगे। राज्य मे लूटमार और राजनीतिक वध शुरू हो गये। महाराजा शेर सिंह ने ऐशपरस्ती के कारण राजकाज की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। वह बहुधा शिकार आदि के लिए राजधानी से गैरहाजिर रहता था। उसकी अनुपस्थिति मे ध्यान सिंह का प्रभाव भी कम होने लगा था क्योकि पहले ही दरबार मे उनके विरुद्ध शक्तिशाली सरदार थे।

सतलुज के पार अंग्रेज़ों ने इस गडबड की स्थिति को देखते हुए महाराजा को चेतावनी दी कि उसके राज्य मे व्यवस्था को सामान्य करने के लिए उनको हस्तक्षेप करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति मे महाराजा ने भी शासन की तरफ विशेष ध्यान देना शुरू किया। लेकिन उसने राजा ध्यान सिंह की सलाह पर अंग्रेज़ों के राजनीतिक एजेंट

को उत्तर दिया कि उसको लाहौर दरबार के शासन मे दखल देने की आवश्यकता नही पडेगी ।

राज्य मे सैनिक गडबड जारी रही । मण्डी, कुल्लू, मुलतान और डेराजात से सेना के विद्रोह के समाचार मिलते रहे । पेशावर और कश्मीर मे भी गडबड फैल गई । श्रीनगर मे कश्मीर के गवर्नर कर्नल मिया सिंह को उसके अधीन सेना ने इस कारण मार दिया कि उसने उनके वेतन मे वृद्धि करने से इकार कर दिया था । ऐसी बिगडती हुई स्थिति मे महाराजा को कडे पग उठाने पडे । गडबड करने वालो के लीडरो को दण्ड दिया गया । परन्तु सेना मे दरबार के विरुद्ध अशाति दूर नही हो सकी ।

दूसरी ओर महाराजा शेर सिंह और उनके प्रधान मत्री ध्यान सिंह के बीच भी अविश्वास बढ रहा था । वास्तव मे डोगरा वजीर और महाराजा शेर सिंह मे परस्पर पूर्ण सद्भावना नही थी, उनका आपसी मेल सौदेबाजी पर आधारित था । ऐसी स्थिति मे ध्यान सिंह ने कुँवर दलीप सिंह को जिस का लोगो को बहुत कम ज्ञान था सामने लाने की कोशिश की । उसका उद्देश्य यह था कि महाराजा शेर सिंह को यह अनुभव कराया जाये कि रणजीत सिंह का कोई और उत्तराधिकारी भी प्राप्त किया जा सकता है । ऐसी कारवाई पर महाराजा के सहायको ने बहुत रोष प्रकट किया । खुले तौर पर वह बेशक उसका विरोध नही कर सकते थे परन्तु उन्होने महाराजा को ध्यान सिंह की तरफ से चौकस कर दिया ।

तब महाराजा शेर सिंह ने सधावालिए सरदारों की सहायता प्राप्त करने का विचार किया । उसने उनको क्षमा करने का आश्वासन दिया । परन्तु सरदार अतर सिह और अजीत सिंह सधावालिया ने जो उस समय लुधियाना मे थे उनकी इस बात को अस्वीकार कर दिया । उन्होने अपने विचार इस बारे मे बदलने से इकार कर दिया कि महाराजा शेर सिंह वास्तविक रूप मे राज्य के उत्तराधिकारी है । वे इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि पजाब मे राजनीतिक क्राति होने पर वे अपना उद्देश्य प्राप्त कर सकेंगे । महाराजा की कठिनाई का लाभ उठाकर उन्होने उसके विरुद्ध अपनी कारवाई और भी तेज कर दी और इस काम मे उन्होने माई चान्दकौर, जो कि लाहौर मे थी, का सहयोग भी प्राप्त कर लिया ।

कुँवर नौनिहाल सिंह की विधवा के एक मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ । इससे महाराजा शेर सिंह को यह भय नही रहा कि उनके विरुद्ध कोई और उत्तराधिकारी भी हो सकता है । इस घटना के बाद माई चन्दकौर के पक्ष को बहुत क्षति हुई और संधावालिया सरदार भी यह समझने लगे कि शेर सिंह का विरोध कोई लाभदायक नही होगा । अंग्रेजो के लुधियाना स्थित राजनीतिक एजेंट ने भी संधावालिया सरदारो और महाराजा शेर सिंह को एक दूसरे के निकट आने मे सहायता दी । उन्होने ऐसी प्रेरणा विशेष तौर पर अप्रैल 1842 मे लाहौर आने पर दी थी ।

महाराजा शेर सिंह की सेना मे उसकी गिरती हुई साख का एक विशेष कारण माई चान्दकौर थी । इसलिए महाराजा ने ध्यान सिंह को विशेष आदेश दिया कि वह

चान्दकौर का अन्त करने का प्रबन्ध करे। ध्यान सिंह ने महाराजा को खुश करने के लिए उसको शिकार के लिए वजीराबाद की तरफ चले जाने के लिए कहा। जून 1842 मे माई चान्दकौर को उसकी दासियो द्वारा ही जब कि वह सो रही थी सिर पर इंटे मार कर मरवा दिया गया।

चान्दकौर की मृत्यु हो जाने पर सधावालिया सरदारो की शेर सिंह को तख्त पर से उतारने की अन्तिम आशा भी समाप्त हो गई। किसी हद तक डोगरो के विरोधी दल ने भी महाराजा शेर सिंह और सधावालिया सरदारो को एक दूसरे के निकट लाने की कोशिश की। इस प्रकार अतर सिंह और अजीत सिंह सधावालिया को इस बात के लिए मना लिया गया कि वे महाराजा से क्षमा माँग कर पजाब मे लौट आएँ। सिक्खो के धार्मिक नेता ऊना वाले बाबा विक्रम सिंह ने उनको उनकी सुरक्षा का विश्वास दिलाया था। बाकी के सधावालिया सरदार भी जो कि पजाब मे बन्दी बनाये हुए थे, छोड दिये गये। नवम्बर 1842 मे सब सधावालिया सरदारो का भव्य स्वागत किया गया। महाराजा शेर सिंह का सधावालिया सरदारो से मित्रता करने का उद्देश्य यह भी था कि वह अग्रेजो के साथ अच्छे सबध स्थापित करना चाहता था। साथ ही साथ वह डोगरा वजीर ध्यान सिंह पर भी पूरी तरह निर्भर नही रहना चाहता था। सधावालिया सरदारो के पजाब मे पुन आगमन पर भी पजाब मे शान्ति नही हो सकी। महाराजा शेर सिंह सधावालिया सरदारो के साथ बहुत घुलमिल गया और इसके परिणामस्वरूप महाराजा शेर सिंह ऐशोइशरत मे इतना व्यस्त हो गया कि राजकाज की तरफ से उसका ध्यान बिल्कुल ही हट गया। ध्यान सिंह को सधावालिया सरदारो का शेर सिंह के साथ अधिक मेलजोल पसन्द नही था। महाराजा के इन नये चहेतो ने ध्यान सिंह के विरुद्ध महाराजा के कान भरने शुरू कर दिये। ऐसी स्थिति से विरक्त और महाराजा के व्यवहार से निराश होकर ध्यान सिंह लाहौर छोडकर जम्मू चला गया। कुछ समय बाद महाराजा ने उनको बुलवा भेजा। परन्तु लाहौर लौट आने पर भी ध्यान सिह ने राजकाज की तरफ ध्यान नही दिया। फलत गडबड और भी बढती गई। राजा ध्यान सिंह मे महाराजा शेर सिंह का कितना अधिक विश्वास था, इसका प्रदर्शन करने के लिए उसने सार्वजनिक रूप मे उनको अपना वजीर नियुक्त किया और उसको शासन प्रबन्ध के पूर्ण अधिकार दे दिये गये। परन्तु अगस्त 1843 मे की गई यह कारवाई भी दिखावा ही सिद्ध हुई। सधावालिया सरदारो ने महाराजा और वजीर के बीच बढते हुए विरोध को प्रोत्साहन दिया और इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए एक ओर महाराजा शेर सिंह और दूसरी ओर वजीर ध्यान सिंह का अन्त करने का षड्यंत्र रचा। महाराजा शेर सिंह के साथ मिलकर उन्होने पहले ध्यान सिंह को मारने के लिए पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिए। महाराजा का पत्र ध्यान सिंह को दिखाकर उन्होने महाराजा को मारने की चाल मे ध्यान सिंह को भी सम्मिलित कर लिया। 15 सितम्बर, 1843 को संक्राति के दिन जिस समय महाराजा शेर सिंह दरबार से छुट्टी मनाने के लिए लाहौर से बाहर शाहबलावत के स्थान पर

विराजमान था, अजीत सिंह सधावालिया ने उनकी सेवा मे जाकर प्रार्थना की कि वह उसके विशेष सैनिको का निरीक्षण करे। उसने पहले ही महाराजा को मारने की योजना बना रखी थी। महाराजा की सेवा मे एक बन्दूक भेट करते समय जब महाराजा ने उस को पकडने के लिए हाथ बढाया तो घोडा दबा देने से गोली मार कर उसको समाप्त कर दिया। उसी समय अपनी स्कीम के अनुसार लैहणा सिंह सधावालिया ने शालीमार बाग के एक भाग मे कुँवर प्रताप सिंह का जिस समय उसका तुलादान हो रहा था तलवार से वार करके सिर काट दिया। अपने मुख्य कार्यो मे सफल होने पर सधावालिया सरदार लाहौर के किले में चले गले और ध्यान सिंह को यह कह कर घर से बुलवा लिया कि महाराजा शेर सिंह उसको बुलाते है। किले के अन्दर पहुँचने पर ध्यान सिंह पर गोली चला कर उसका भी अत कर दिया गया।

महाराजा शेर सिह, उसके सुपुत्र प्रताप सिंह और वजीर राजा ध्यान सिंह की मौत से लाहौर शहर मे शोक फैल गया और गडबडी शुरू हो गई। राजा ध्यान सिंह के एक समर्थक ने जो कि उसकी मृत्यु के समय किले के अन्दर था बडी चतुराई से वहाँ से भाग कर उनके सुपुत्र राजा हीरा सिंह को सूचना दे दी थी। राजा हीरा सिंह ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने का बीडा उठाया। बेशक वह बडा शान्तिमय स्वभाव का व्यक्ति समझा जाता था। तथापि अपने पिता की इस मृत्यु पर उसने बडी वीरता और साहस का प्रदर्शन किया। उसने छावनी मे जाकर सबसे पहले सेना को और विशेष तौर पर उसके कमान्डर वन्तूरा साहिब को अपनी सहायता के लिए प्रेरित किया। महाराजा के घातको को दण्ड देने के लिए फौज लेकर वह तत्काल किला पहुँचा और उसको घेर लिया।

सधावालिया सरदार अपनी मूर्खता के कारण केवल किले पर अधिकार से ही सतुष्ट रहे। उन्होने साधारण जनता या सेना को अपने साथ मिलाने की कोई कोशिश नही की। एक समकालीन लेखक मौलवी अहमद बख्श ने जो कि उस समय लाहौर में था, उनकी मूर्खता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि सधावालिए किले मे जाकर बैठने की बजाय कुँवर दलीप सिंह को महाराजा घोषित करके उसको हाथी पर बिठाकर उसके ऊपर सोना-चान्दी के सिक्के न्यौछावर करते तो लाहौरवासी शायद उनके साथ मिल जाते और वे अपने मिशन मे सफल हो जाते।

राजा हीरा सिंह ने सधावालियो की गम्भीर असावधानी का लाभ उठाकर और अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने की अपील करके सेना की सहायता से किले पर अधिकार कर लिया। अपनी पराजय के कारण अजीत सिंह ने पॉव मे रस्सा बाध कर किले की दिवार से कूदने की कोशिश की परन्तु घायल होकर गिर जाने पर एक सतरी ने उसको पकड लिया। अजीत सिह ने काफी लालच देकर उससे मुक्ति खरीदने की कोशिश की पर वह न माना और उसने अजीत सिह का सिर काटकर हीरा सिंह को भेट किया और इनाम हासिल किया। लैहणा सिंह किले मे एक भौरे मे छिप गया और जब ढूँढने पर वह मिल गया तो अपनी जान के लिए गिडगिडाया।

परन्तु उसको गोली मार दी गई। केवल अतर सिह भागकर अंग्रेजी इलाके मे चला गया।

लाहौर मे शाति होने और सधावालिया सरदारों के मारे जाने के उपरन्त राजा हीरा सिंह ने सबसे पहले शहर मे सेना की लूट-मार को बद किया। इस समय भाई गुरबख्श सिंह और मिसर बेली राम भी महाराजा शेर सिह के सयहोगी होने के कारण मारे गये। राजा हीरा सिंह ने इस बात का भी उपाय किया कि अंग्रेजों के साथ अच्छे सबध स्थापित किए जाएँ। लाहौर दरबार के लुधियाना स्थित वकील को आदेश दिया गया कि अंग्रेजो को परम्परागत अच्छे सबधो का आश्वासन दिलाये। कुँवर दलीप सिंह को, जिन की आयु उस समय केवल 5 वर्ष की थी, महाराजा घोषित किया गया और राजा हीरा सिंह उसका वजीर बना।

राजा हीरा सिंह की वजारत के काल मे असतोष की असाधारण स्थिति किसी हद तक काबू मे रही। नये वज़ीर ने शासन के कामो मे बहुत योग्यता दिखाई और बेड़ी तेजी से साधारण जैसी हालत फिर स्थापित कर ली। परन्तु उसको उस समय बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पडा जब कि उसने राज्य की आर्थिक हालत को सुधारने और सेना मे अनुशासन लाने की कोशिश की। शासन के कामो मे उसके प्रमुख सहायक उसके गुरु और कुल पुरोहित पडित जल्ला थे। उसने सरदारो की जागीरो की पडताल और खर्च मे बचत करने का सुझाव दिया। बडे-बडे सरदारो ने ऐसी कारवाई को अपने हित के विरुद्ध समझा और राजा हीरा सिंह के प्रबन्ध को विफल बनाने की कोशिश की। उसके चाचा राजा सुचेत सिंह को उसके विरुद्ध भडका दिया और यह प्रोत्साहन दिया कि उसका वज़ीर बनने का हक राजा हीरा सिंह से कही अधिक है। इस तरह उसके ताऊ राजा गुलाब सिंह ने भी नये शासन प्रबन्ध के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट नही की और अपने भतीजे के साथ सहयोग नही किया।

राजा सुचेतसिंह को उकसाने वाला था सरदार जवहार सिंह जो कि महाराजा दलीप सिंह का मामा था। सुचेत सिंह को जो कि एक बडी आन वाला राजपूत सिपाही था, सेना ने सहायता का आश्वासन दिया और उसको लाहौर आने का निमत्रण भेजा। सुचेत सिंह अपने थोड़े से साथियो को लेकर लाहौर पहुँच गया। परन्तु सेना ने उनका साथ नही दिया। राजा हीरा सिंह और उसके सलाहकार पण्डित जल्ला ने स्थिति को काबू में रखा। राजा सुचेत सिंह ने हठ करते हुए एक राजपूत वीर के तौर पर पीछे हटना उचित नही समझा और अपने प्राणो की बाजी लगा दी। अपने बहुत थोड़ी शक्ति से लडते हुए वह 27 मार्च, 1844 को मारा गया। राजा सुचेत सिंह से निश्चिन्त हो कर राजा हीरा सिंह ने अतर सिंह संधावालिया को, जो कि तरणतारण के निकट नौरगाबाद में भाई वीर सिंह के डेरे मे उसके सरक्षण मे रहता था, के बिरुद्ध कारवाई करने का फैसला किया। उनके विरुद्ध भेजी गई फौज के साथ छोटी-सी मुठभेड़ मे सधावालिया सरदार और भाई बीर सिंह दोनों मारे गये।

राजा हीरा सिह ने सब यूरोपियन अफसरो को सेवा से मुक्त कर दिया क्योकि सेना मे उनके विरुद्ध दुर्भावना बढती जा रही थी और उन पर पूर्णतया विश्वास नही किया जा सकता था। घरेलू मामलों से निपट कर राजा हीरा सिंह ने फिरोजपुर मे पडे राजा सुचेत सिंह के खजाने के बारे मे अग्रेजो से माँग की। अग्रेजो ने इस बारे मे विलम्ब करके डोगरा परिवार मे इस खजाने के कुछ और भी हकदार पैदा कर दिए। राजा गुलाब सिंह ने इस खजाने के लिए माँग की क्योकि उसके अनुसार उनके एक पुत्र को राजा सुचेत सिंह ने दत्तक पुत्र बनाया हुआ था।

ऐसी स्थिति मे जब कि शासन प्रबन्ध मे काफी सुधार हो रहा था, राजा हीरा सिंह ने आर्थिक साधन जुटाने की कोशिश की। खर्च मे बचत के लिए कई सैनिको को नौकरी से हटा दिया गया। इन सब सुधारो का सरदार जवाहर सिंह ने अनुचित लाभ उठाया और लोगो को राजा हीरा सिंह और पण्डित जल्ला के विरुद्ध उकसाया। सेना मे विद्रोह फैलने पर राजा हीरा सिंह और पडित जल्ला कुछ धन सम्पत्ति लेकर चुपके से लाहौर छोडकर चले गये। सेना को उनके भागने का पता लग गया। उनके पीछे लोग भेजे गये और लाहौर से जम्मू की दिशा मे 14 मील दूर एक छोटे-से गाँव मे उनको घेर लिया गया। दोनो ने उनके विरुद्ध काफी सेना होते हुए भी बडी वीरता स युद्ध किया और 21 दिसम्बर, 1844 को वीरगति को प्राप्त हुए।

राजा हीरा सिंह की मृत्यु के साथ ही पजाब मे अच्छे शासन प्रबन्ध की अन्तिम आशा भी समाप्त हो गई। नौजवान वजीर ने भरसक कोशिश की थी कि स्थिति को सामान्य बनाया जाए ताकि पजाब को अच्छा राजप्रबन्ध दिया जा सके। परन्तु उस समय की राजनीतिक स्थिति और सरदारो के परस्पर विरोध के कारण उनको बडी कीमत देनी पडी। अब यह स्पष्ट हो गया कि महाराजा रणजीत सिंह के स्थापित किए हुए राजतत्र की नैया भँवर मे घिर गई है, लाहौर दरबार का पतन निश्चित नजर आने लगा।

राजा हीरा सिंह की मृत्यु के उपरान्त महारानी जिन्दा और उनके भाई सरदार जवाहर सिह थोडी देर के लिए बडे प्रसन्न हुए। अब उनको पूर्ण सत्ता प्राप्त थी और दूसरे सरदार और प्रमुख अधिकारी एक दूसरे को वधाई दे रहे थे। सबसे पहली बात जो उन्होंने की वह यह थी कि राजा गुलाब सिंह को लाहौर बुलाकर उसको सारे धन का हिसाब देने के लिए कहा जाए जो कथित तौर पर उसने राजा ध्यान सिंह और राजा हीरा सिंह के समय मे इकट्ठा किया था।

महारानी जिन्दा और उनके चहेतो की प्रसन्नता अधिक समय तक टिकी न रह सकी क्योकि सेना ने उनको बडी जल्दी यह अनुभव करा दिया कि वास्तव मे सत्ता सेना के हाथ मे है। एक विशेष सैनिक समारोह मे जब कि वहाँ सरदार जवाहर सिह, किशोर महाराजा दलीप सिंह और उनकी माता महारानी जिन्दा उपस्थित थी सेना ने स्पष्ट तौर पर कह दिया कि राज्य की प्रभुसत्ता की देखभाल उनके सुपुर्द है। वे महाराजा दलीप सिंह को उसी समय तक राज्य करने देंगे जब तक उनको

ठीक ढग से वेतन मिलता रहेगा जैसा कि हीरा सिह ने किया था। ऐसा न होने पर वे कोई दूसरा प्रबन्ध करेंगे अर्थात् कुँवर पिशौरा सिह को राजकाज सौप देंगे। वास्तव मे राज्य के एक ज्येष्ठ अधिकारी कुँवर पिशौरा सिंह को जो कि उस समय अम्बाला मे थे इन सब बातो की सूचना मिल चुकी थी और उसने पजाब मे लौटने का निश्चय कर लिया था। अब महारानी और उसके सहायको को अच्छी तरह मालूम हो गया कि सेना को सतुष्ट रखे बगैर राजकाज नही चल सकेगा। इसलिए उनको तीन महीने का वेतन दे दिया गया। एक महीना-दान के तौर पर, एक महीना मासिक वेतन के रूप मे और एक महीना-अग्रिम राशि के रूप मे। इतना ही नही सेना को यह भी आश्वासन दिया गया कि उनका मासिक वेतन साढे ग्यारह से बढाकर 14 रुपये कर दिया जाएगा। महारानी जिन्दा के भाई जवाहर सिंह की इस उदारता से सेना थोडे समय केलिए प्रसन्न हो गई। परन्तु उस समय यह बात भुला दी गई कि राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत नाजुक है और उचित साधन न होने के कारण उनको पहले से भी ज्यादा कठिनाइयो का सामना करना पडेगा। साथ ही नये शासको ने सारे लोगो को खुश करने के लिए भी सब सुधारो का पुन बहिष्कार कर दिया। राज्य की आवश्यकता का ध्यान न रखते हुए आयकर घटा दिया गया और कुछ लोगो की जागीरे भी लौटा दी गईं। इस तरह से सरकार ने उन सब साधनो का उपयोग नही किया जिन से कि सेना को वेतन देने के लिए पर्याप्त धन प्राप्त हो सकता था।

नये राजप्रबन्ध ने ऐसी अल्प दृष्टि वाली कारवाई से अपनी अयोग्यता सिद्ध कर दी और स्थिति को सामान्य करने के बजाय उसमे और भी गडबड पैदा कर दी। सेना ने अपनी माँग और बढा दी जब कि कोष बिल्कुल खाली हो गया था। महारानी ने कुछ देर उनको प्रसन्नता और सहानुभूति से खुश करने की कोशिश की परन्तु सेना ने इस बारे मे कोई सदेह नही रहने दिया कि उनकी माँग पूरी न होने पर वह विकल्पित प्रबन्ध कर लेंगे। इस तरह से आरम्भ मे झूठा जोश बहुत जल्दी ठण्डा पड गया। लोगों को भी इस बात का ज्ञान हो गया कि नये राजप्रबन्ध के अधीन अच्छा शासन प्रबन्ध असम्भव है।

कुँवर पिशौरा सिंह अम्बाला से गुप्त रूप से भागकर इस उद्देश्य से लाहौर पहुँच गया कि या तो राजगद्दी पर बिठा दिया जायेगा या कम-से-कम उसे बालक महाराजा दलीप सिंह का "रीजैन्ट" बना दिया जाएगा। उसने इस बात की भी कोशिश की कि लोगो का यह विचार न होने पाये कि वह अग्रेजो के हाथों मे खेल रहा है और उनकी सहायता से सत्ता प्राप्त करना चाहता है क्योकि ऐसी स्थिति मे सेना का विरोध निश्चित था परन्तु पिशौरा सिंह ने महारानी जिन्दा को भी खुश करने की नीति अपनाई। इस तरह से उसने अपनी पुरानी 12 हजार की जागीर को 40 हजार तक बढवा लिया और पारितोषिक के रूप मे काफी धन, हीरे-जवाहरात और हाथी-घोडे प्राप्त किये। कुँवर ने यह भी घोषित किया कि महारानी उसकी माता के समान है और दलीप सिंह को वह अपना संरक्षक समझता है।

साथ ही साथ कुँवर पिशौरा सिंह ने सेना के साथ साँठ-गाँठ करने की कोशिश जारी रखी। उसने सेना को महारानी की अपेक्षा अधिक वेतन देने का वचन दिया। सेना ने उसको शासक घोषित कर दिया और महाराजा दलीप सिंह के विरुद्ध उसके अधिकारो का समर्थन किया। कुँवर पिशौरा सिंह ने इस स्थिति का लाभ नही उठाया और अपने आपको सेना का प्रमुख नेता और खालसा का सेवक बन जाने पर ही सतोष व्यक्त किया।

महारानी जिन्दा ने पिशौर सिंह की बढती हुई साख से घबराकर खुले तौर पर उसके विरुद्ध कारवाई आरम्भ कर दी। उसने पिशौरा सिंह को मशविरा दिया कि वह अपनी जागीर पर चला जाए। साथ ही पिशौरा सिंह भी सेना से पूरी सहायता की आशा नही रखता था और उसको यह भी विश्वास था कि वह सेना की सारी माँगे पूरी नही कर सकेगा। सेना ने उसके सकोच से समझ लिया कि वह राज्य अधिकार प्राप्त नही करना चाहता। महारानी ने सेना को कुछ और इनाम देकर अपने साथ मिला लिया और उनको यह भी आशा दिलाई कि जस्सरोटा पर अधिकार करने और राजा गुलाब सिंह से वह बहुत मात्रा मे राशि मिलने पर जो कि उसने दरबार को देनी थी वह उनको और भी इनाम देगी।

पिशौरा सिंह के साथ सेना की सहानुभूति समाप्त होने पर वह उसके लिए और कुछ करने और उनमे अपने ऊपर विश्वास पैदा करने के लिए तैयार नही था। सेना ने कुँवर को यह सलाह दी कि वह अपनी जागीर पर चला जाए। समय पर उसको लाहौर बुला लिए जाएगा।

लाहौर दरबार मे इस तरह अस्थिरता समाप्त न हो सकी और सेना प्रबन्धको के लिए खतरा बनी रही। लाहौर दरबार ने सेना को नष्ट करने के उपाय सोचने आरम्भ कर दिये।

अपने आपको सेना के विरुद्ध असमर्थ समझते हुए महारानी ने अंग्रेजों की सहायता या उनकी अधीनता स्वीकर करने का यत्न किया। परन्तु सेना को इस कारवाई का ज्ञान होने पर और पिशौरा सिंह के लाहौर पधारने पर ऐसी कारवाई बन्द कर दी गई। अंग्रेजो ने भी यह स्पष्ट कर दिया कि पजाब के आतरिक मामलो मे वे किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना न केवल अनुचित समझते है बल्कि अपने लाहौर दरबार के साथ परम्परागत संबधो के विरुद्ध भी समझते है। अंग्रेजो से पूरी तरह निराशा होने पर लाहौर दरबार के पास केवल एक ही उपाय रह गया था कि वह किसी न किसी प्रकार सेना का ध्यान राजा गुलाब सिंह की ओर करके अपनी जान छुडाये। इस तरह से उनको यह आशा थी कि वह सेना को लाहौर से बाहर भेज सकेंगे और इस तरह गुलाब सिंह से बहुत-सा धन प्राप्त करके, उनकी बढी हुई माँगे भी पूरी कर सकेंगे।

गुलाब सिंह के विरुद्ध कारवाई

गुलाब सिंह को दरबार की फौजो के जम्मू पर चढाई करने की सूचना मिलने पर उसने जस्सरोटा के किले से अपनी सब कीमती वस्तुएँ निकाल ली। दरबार की

फौज के सैनिक भी जस्सरोटा की तरफ बढने मे आनाकानी कर रहे थे। वे अपनी तनख्वाह मे आश्वासित बढौतरी की माँग करते रहे। उन की तनख्वाह प्रति मास आठ आना बढा दी गई और उनको कई सुविधाएँ भी प्रदान की गईं। गुलाब सिंह अपने विरुद्ध कारवाई को जितना हो सके धीमा करना चाहता था। उसने बाहरी रूप से दरबार के प्रति अपनी वफादारी दिखाते हुए अन्दर ही अन्दर अपनी सुरक्षा के प्रबन्ध तेज कर दिए। राजनीतिक स्तर पर उसने दरवार के प्रसिद्ध सरदारो और कर्मचारियो को लालच देकर अपने साथ मिला लिया।

दरबार की फौज शाम सिंह अटारीवाला के अधीन जनवरी 1845 मे चल पडी। जम्मू के निकट पहुँचकर उसने दरबार को असतोषजनक स्थिति की रिपोर्ट भेजी और अधिक फौज भेजने के लिए अनुरोध किया। दरबार गुलाब सिंह के साथ जल्दी फैसला करना चाहता था। उसकी इच्छा केवल यह थी कि काफी मात्रा मे धन प्राप्त कर लिया जाए।

गुलाब सिंह को लाहौर मे राजनीतिक अस्थिरता का अच्छी तरह ज्ञान था। वह शाम सिंह अटारीवाला के साथ युद्ध नही करना चाहता था क्योकि वह डोगरा वश का कट्टर विरोधी था। डोगरा परिवार भी अभी आपस मे वँटा हुआ था और ऐसी स्थिति मे यह संभावना थी कि 'डोगरा सिपाही दरबार के सिपाहियो के साथ मिल जाएँगे। ऐसी हालत मे गुलाब सिंह ने उचित समझा कि जस्सरोटा का किला दरबार के सुपुर्द कर दिया जाए। किले के दरबार के अधीन आने-जाने की खबर से लाहौर मे कुछ समय के लिए बहुत खुशियाँ मनाई गईं। परन्तु किले के अन्दर से अधिक माल प्राप्त न होने से दरबार को बहुत निराशा हुई।

दरबार ने राजा गुलाब सिंह के विरुद्ध अधिक फौजे भेजने के बारे मे काफी कठिनाइयो के बाद लाल सिंह के अधीन फौजे भेजने का प्रोग्राम बनाया। इस बीच राजा गुलाब सिंह ने अपने सहायकों द्वारा और कुछ प्रभावशाली आदमियो को लालच देकर अपने हक मे प्रचार करने का काम तेज़ कर दिया। साथ ही उसने फौज के लीडरो को रिश्वत देकर फौज का विरोध कम करने की कोशिश की। इस कारवाई के कारण दरबार की फौजों का जम्मू की तरफ बढना वहुत अधिक धीमा हो गया।

राजा लाल सिंह फरवरी 1845 मे 6 हजार फौज के साथ जम्मू की ओर भेजे गये। सरदार शाम सिंह अटारीवाला और जस्सरोटा मे दूसरे कमाडर को आदेश दिया गया कि वह उन की आज्ञा का पालन करें। आरम्भ से ही राजा लाल सिंह और उसके अधीन फौज गुलाब सिंह से कोई फैसला करने के लिए उत्सुक थी। ऐसा करना इसलिये भी उचित समझा गया कि उस समय फौज और दूसरे सरदारो मे काफी असंतोष था। इस लिए सरदार रत्न सिंह को राजा गुलाव सिंह के पास बातचीत करने के लिए भेजा गया। गुलाब सिंह ने लीपापोती से काम लेते हुए दरबार के दूतों को खुश करने की कोशिश की और साथ ही साथ यह भी सकेत दिया कि वह जरूरत पडने पर लडने के लिए भी तैयार है।

लाल सिह् के अधीन भेजी गई फौज के एजेटो ने अपने तौर पर ही गुलाब सिह् से समझौतावार्ता आरम्भ कर दी। इससे लाहौर दरबार और भी भयतीत हो गया।

राजा गुलाब सिह् ने कुँवर पिशौरा सिह् के साथ सरदार जवाहर सिह् के विरुद्ध साँठ-गाँठ करनी शुरू कर दी जिससे सरदार जवाहर सिह् किशोर महाराजा दलीप सिह के साथ सतलुज को पार करके अग्रेजो के सरक्षण मे जाने के बारे मे बडी गभीरता से विचार करने लगा। परन्तु महारानी जिन्दा ने इस किस्म के सुझाव को नही माना और अपने भाई को स्पष्ट शब्दो मे बता दिया कि ऐसा करने पर फौज उन्हे अवश्य ही मार देगी। इसलिए सरदार जवाहर सिह् और उनके सहायको को अपने विरोधियो का मुकाबला करने के लिए और तरीका बरतना पडेगा।

फौज को भी सरदार जवाहर सिह् के इस षड्यत्र का ज्ञान हो गया और उन्होने पूर्व की ओर जाने वाली सडक पर पहरेदार बिठा दिये ताकि ऐसा होने पर वे फौज को सूचित कर सके। फौज ने सरदार जवाहर सिह् को यह भी आदेश दिया कि वह किसी जगह जाने से पहले फौज को सूचित करे। इस तरह से सरदार जवाहर सिह् और महारानी पर फौज कडा नियत्रण रखने लगी।

दूसरी ओर जम्मू मे गुलाब सिह् के साथ बातचीत मे अडचन पड गई। गुलाब सिह् इस ताक में था कि वह फौजो और उसके नेताओ के बीच फूट डालकर लाभ उठाये। उसने दरबार के दूतो को चार लाख रुपये देकर वापिस भेज दिया और आश्वासन दिलाया कि वह और भी न्यायोचित रकम जो भी उसके जिम्मे निकलेगी वह देने का यत्न करेगा। राजा गुलाब सिह् ने फौज को खुश करने के लिए कई प्रकार से उसको रिश्वत दी और उनकी तनख्वाह बढाने का भी आश्वासन दिया।

दरबार अपने तौर पर राजा गुलाब सिह् के विरुद्ध जल्दी से ज़ल्दी कारवाई करके अपने असली मतव्य को पूरा करना चाहता था। इसलिए जम्मू स्थित फौज के लिए अधिक गोलाबारूद और सामान भेजकर जम्मू पर आक्रमण करने का हुकम दिया गया। आरम्भ मे दरबार की फौजों को काफी कठिनाई हुई और राजपूतो का पलडा भारी होने लगा। परन्तु शाम सिह् ने शीघ्र कारवाई करके दरबार के पक्ष को शक्तिशाली बना दिया।

फौज की इच्छा राजा गुलाब सिह् के साथ सुलह करने के पक्ष मे थी। उसके अपने इलाके और राजा ध्यान सिह के इलाके भी उसके अधीन थे। राजा गुलाब सिह बकाया रकम देने के लिए तैयार था और अपने जिम्मे तीन साल का भूमिकर देनेके लिए उद्यत था। वह मान गया कि कुल 35 लाख रकम मे से 5 लाख उसी समय दे देगा और बकाया इतनी ही राशि हर महीना किश्तो मे अदा करेगा। यह भी फैसला किया गया कि दरबार की फौजो के वापिस लौटने पर अगले पडाव पर राजा गुलाब सिह् भी उनके साथ शामिल हो जाएगा। इस किस्म की सूचना से लाहौर के शासक दल को निराशा हुई। सरदार जवाहर सिह् और महारानी जिन्दा आशा करते थे कि सेना

अधिक समय तक जम्मू में फँसी रहेगी। साथ ही साथ उनको यह जान कर भी दुख हुआ कि गुलाब सिंह से सेना ने बहुत थोड़ी रकम लेकर फैसला कर लिया है। इस राशि से न तो सेना को दो महीने का वेतन इनाम के तौर पर दिया जा सकेगा और न ही आगे के लिए उसको अधिक वेतन देने का प्रबन्ध हो सकेगा।

जम्मू से लाहौर की ओर चलते हुए गुलाब सिंह ने अपने आपको पूर्ण तौर पर सेना के सुपुर्द कर दिया। जनरल मेवा सिंह मजीठिया और उसके ब्रिगेड की फौजों ने गुलाब सिंह को अपने संरक्षण में ले लिया और लाहौर ले जाने की जिम्मेदारी ले ली।

लाहौर में गुलाब सिंह के सहायक उसके लिए प्रचार करने लगे और यह सुझाव दिया कि गुलाब सिंह को वज़ीर बनाने से ही स्थिति सुधर सकती है क्योंकि वह ही राज्य को बचा सकता है और उसके पास इतना धन है कि वह राजकाज व काम को दो साल तक अपने खर्च पर ही चला सकता है चाहे और सब किस्म की आय बन्द हो जाए।

जवाहर सिंह गुलाब सिंह के विरुद्ध साँठ-गाँठ करता रहा। वह चाहता था कि उसकी रक्षा करने वाला ब्रिगेड उसको दूसरों के सुपुर्द कर दे। गुलाब सिंह ने ऐसी स्थिति में इस कारवाई को विफल बनाने के लिए अपने आपको सेना के अधीन दिखाते हुए अपनी तरफ से वज़ीर बनने की कोई इच्छा प्रकट नहीं की। बल्कि उसने यह दिखाने की कोशिश की कि सेना की पंचायतें स्वयं वज़ीर हैं। सेना के सिपाही की तनख्वाह उन्होंने 15/-रुपये मासिक कर देने का वचन दिया। शर्त यह थी कि खर्चे का उचित हिस्सा देने के लिए दूसरे सरदारों को भी बाध्य किया जाये। इस काम के लिए उसने ऐसा सुझाव दिया जिससे कि दूसरे बड़े-बड़े सरदारों से 67 लाख रुपया इकट्ठा किया जा सके और जो उसके कथनानुसार उन्होंने दरबार को देना था। सेना ने गुलाब सिंह से अपने घनिष्ठ संबंधों की घोषणा की और यह स्पष्ट कर दिया कि अगर उसको छुड़ाने के लिए कोई सैनिक कारवाई की गई तो सेना पिशौरा सिंह को राजा बनाने का अभियान आरम्भ करेगी।

इस खबर से लाहौर में आतंक फैल गया। सरदार लोग इस बात से भयभीत हो गये कि सेना उनको कर्ज़ाई सिद्ध करेगी और महारानी जिन्दा को यह भय हो गया कि उसके बेटे के राजगद्दी के अधिकार को भी चुनौती दी जायेगी। इन सब दुर्घटनाओं के कारण लाहौर नये-नये षड्यंत्रों का केन्द्र बन गया। हर एक दल फौज को अपने साथ मिलाने के लिए अधिक से अधिक लालच देने का यत्न कर रहा था।

दूसरी ओर राजा गुलाब सिंह जो कि नाम मात्र का बंदी था, अपने विरोधियों में फूट डालने में सफल हो गया। पर वह स्वयं यह कहता रहा कि वह सेना की आज्ञा का पालन करेगा। सेना के पंच यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि लाहौर पहुँचने पर गुलाब सिंह का भव्य स्वागत किया जाये। इसलिए उन्होंने हर प्रकार के कार्यों पर अपना नियंत्रण आवश्यक समझा। सरदार अपनी ईर्ष्या के कारण बँटे हुए थे और गुलाब सिंह के विरुद्ध किसी अप्रिय कारवाई के अपराधी नहीं बनना चाहते थे।

गुलाब सिंह ने इस प्रकार बडी बुद्धिमानी से अपने आपको एक प्रकार से अपने विरोधी दलो और प्रसिद्ध सरदारो के बीच रैफरी अथवा "चौधरी" बना लिया।

जवाहर सिंह राजाध्यक्ष जरूर बना रहा परन्तु उनके पास सेना को सतुष्ट रखने के साधन नही थे। ऐसी स्थिति मे सेना ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह अपनी माँग पूरी करवाने के लिए या तो गुलाब सिह को वजीर बना देगे या पिशौरा सिह को बुलवा लेगे जिसका एजेट पहले ही वहा उपस्थित था।

महारानी जिन्दा के लिए गुलाब सिंह और लाल सिंह के बीच निर्णय करना कठिन हो गया। वह अपने लिए एक योग्य मत्री का प्रबन्ध करना चाहती थी और साथ ही महाराजा के बालिग होने तक राजप्रबन्ध करना चाहती थी। उसको विश्वास था कि गुलाब सिंह ही कोई प्रबन्ध कर सकता है। अत मे महारानी ने शायद अपने भाई के लिए पारिवारिक सबधो के कारण निर्णय करके उसको 14 मई, 1845 को वजीर घोषित कर दिया। इस काम के लिए इतनी जल्दी दरबार का आयोजन किया गया और सब कारवाई इतनी जल्दी कर दी कि सेना को भी इसका पता न लग सका, केवल तोपो की गर्जना से ही उनको इस बात का ज्ञान हुआ। बडे-बडे सरदारो की प्रतिक्रिया भी स्पष्ट न हो सकी क्योकि सब का ध्यान कुँवर पिशौरा सिह के लाहौर की तरफ बढने के कारण उस तरफ लगा हुआ था।

लाहौर दरबार के साथ सुलह-सफाई हो जाने के बावजूद राजा गुलाब सिंह गुप्त रूप से कुँवर पिशौरा सिंह को प्रोत्साहन देते रहे। भिम्बर और राजौरी के राजाओ के पुत्रो ने उसकी सहायता की। महारानी जिन्दा और सरदार जवाहर सिंह को कुँवर की इस कारवाई से बहुत घबराहट हुई। वह इस गडबड को दबा देना चाहते थे। परन्तु जनरल कोर्ट के सिपाहियो ने खुले तौर पर कुँवर का विरोध करने से इकार कर दिया और दरबार से माँग की कि वह उसकी कठिनाइयो को दूर करे। जवाहर सिंह ने इस बारे मे गुलाब सिंह से सलाह की। गुलाब सिंह ने अपनी वह जागीर जो उसको ध्यान सिंह के मरणोपरान्त मिली थी और जिन पर कुँवर पिशौरा सिंह ने अधिकार कर लिया था अपने लिए वापिस ले ली। सरदार जवाहर सिंह सैनिको से मिलने के लिए किशोर महाराजा, राजा गुलाब सिंह, लाल सिंह और दूसरे सरदारो सहित शहादरा गया। उसने सेना को अपने साथ मिलाने का यत्न किया और यह इच्छा व्यक्त की कि वह कुँवर पिशौरा सिंह के विरुद्ध कारवाई करे। परन्तु पचायत ने उत्तर दिया कि वह जो कुछ उचित समझेगे करेगे। इस तरह से यह स्पष्ट हो गया कि इस सकट के समय केवल गुलाब सिंह ही ऐसा व्यक्ति था जो दरबार की सहायता कर सकता था। परन्तु "मुत्सद्दी पार्टी", जिनका नेता दीवान दीनानाथ था, गुलाब सिंह के विरुद्ध थी। उसने लाल सिंह और दूसरे सरदारो की सहायता से जवाहर सिंह को और महारानी को मना लिया।

गुलाब सिंह ने इस समय यह भी सुझाव दिया कि महारानी को अपने पुत्र का नाता सरदार चतर सिह अटारीवाला की पुत्री के साथ करके अपनी शक्ति बढा लेनी

चाहिये। महारानी ने इसको उचित समझा और अपने बेटे की मगनी 10 जुलाई, 1845 को अटारीवाला परिवार मे कर दी और इस अवसर को बडी धूमधाम से मनाया।

इस बीच जरनल महताब सिंह स्यालकोट की ओर बढा और मगल सिंह ने भी पिशौरा सिंह के विरुद्ध सख्त कारवाई करके वे सब इलाके उससे वापिस ले लिये जिन पर उसने अधिकार कर लिया था। भिम्बर के राजा और उसके कई समर्थकों को पकडकर लाहौर भेज दिया गया। महताब सिंह ने कुँवर के साथ बातचीत करके फैसला करने की कोशिश की। रात के समय कुँवर का एक अचानक हमला विफल कर दिया गया इसके बाद उसको आश्वासन दिया गया कि उसकी रक्षा का प्रबन्ध किया जाएगा तथा उसकी पुरानी जागीरें उसको लौटा दी जायेंगी, अगर वह आत्मसमपर्ण के लिए तय्यार हो जाए। यह भी प्रबन्ध किया गया कि उसको लाहौर लाया जाये। परन्तु जवाहर सिंह इसके लिए बिल्कुल तैयार नही था और उसने सैनिको को बहुत तोहफे देकर ऐसा करने से रोका।

कुँवर पिशौरा सिंह अपने परिवार के साथ कोटला चला गया और वहाँ से डेरा बाबा नानक की तरफ चल पडा। उसका उद्देश्य यह दिखाना था कि वह ज्वालामुखी की यात्रा के लिए जा रहा है। परन्तु वह एकदम गुम हो गया और सिंध नदी की तरफ चला गया। 14 जुलाई 1845 को कुँवर पिशौरा सिंह अपने थोडे से साथियों के साथ अटक के किले के दरवाजे पर पहुँचा और सत्री को छुरा मार कर अन्दर की सेना को अपने अधीन कर लिया। कुँवर का वहाँ अचानक पहुँचना किले की अन्दर की सेना के लिए बडी अचम्भे की बात थी और उसने हथियार डालकार तुरन्त किला छोड कर जाने की बात को मान लिया। कुँवर पिशौरा सिंह ने उस इलाके के लोगो को अपने साथ मिलाने का निमत्रण दिया और थोडे ही समय मे उसके अधीन कई हजार सिपाही हो गये। किले पर कब्जा करने से उसको दो लाख रुपये नकद और बडी अधिक मात्रा मे दूसरे स्टोर और खाद्य पदार्थ प्राप्त हुए। इस बात से प्रोत्साहित होकर कुँवर ने दरिया के दूसरे किनारे पर खैराबाद के किले पर भी कब्जा कर लिया। इसके साथ ही जेहलम पर खैबर के बीच सभी सरदारों और दरबार के कर्मचारियो को सूचित किया गया कि वह अब लाहौर की गद्दी पर बैठ गया है और वह लाहौर दरबार को मालिया देना बँद कर दे। उसने अमीर दोस्त मुहम्मदखा को भी पत्र लिखा और उनको वचन दिया कि अगर वह उनकी सहायता करेंगे तो वह पेशावर उनको जागीर के रूप में दे देगा।

जवाहर सिंह के लिए स्थिति और भी गम्भीर हो गई। उसने भिन्न-भिन्न स्थानो से दरबार के सिपाहियों को और उनके लीडरो को पिशौरा सिंह के विरुद्ध कारवाई करने का आदेश दिया। बहुत से सरदारों ने कुँवर पिशौरा सिंह को राजगद्दी का अधिकारी मान लिया और उनके साथ गुप्त समझौते कर लिये। इस उथल-पुथल मे गुलाब सिंह को जम्मू वापिस जाने दिया गया।

इस घटना से बहुत से स्थानो मे गडबड हुई। मूलराज के अधीन सैनिक भी विद्रोह करने की चेष्टा करने लगे और हजारा और दूसरे स्थानों से भी इसी प्रकार की

घटनाओ की सूचनाएँ मिली। सरदार जवाहर सिंह की चिन्ता यह जानकर अत्यन्त बढ गई कि अंग्रेजो ने भी बडी सख्या मे सेना और युद्ध सामग्री सीमा पर इकट्ठी कर ली है। इस किस्म की अशातिपूर्ण घटनाओ को देखते हुए दरबार और पिशौरा सिंह के बीच सुलह-सफाई की कोशिश की गई। सरदार चतर सिह अटारीवाले को भी इस कार्य के लिए नियुक्त करके अटक की ओर भेजा गया। कुँवर पिशौरा सिंह ने अटक का किला इस शर्त पर छोडना मान लिया कि उसकी स्यालकोट की जागीर उसको लौटा दी जाए और उनको लाहौर जाने के लिए पूरा सरक्षण दिया जाए। जवाहर सिंह पिशौरा सिंह को मरवा देना चाहता था और उसने अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए अपने एजेंट अटक की ओर भेज दिये तथा उनको रिश्वत देकर ऐसा करने के लिए कहा गया। परन्तु दरबार के सिपाही पिशौरा सिंह की रक्षा करने के लिये उद्यत थे। 4 सितम्बर, 1845 को महाराजा दलीप सिंह की वर्षगाँठ के समय महारानी जिन्दा ने पिशौरा सिंह को बुलाने की इच्छा प्रकट की और यह भी इशारा किया कि वह उसको एक लाख रुपये की जागीर देकर प्रशासन का काम चलाने का अवसर देना चाहती है। उसके सफल होने पर उसको और अधिक जागीर दी जायेगी। जवाहर सिंह को यह सब जानकर बड़ा रोष हुआ। वह प्रोटेस्ट के तौर पर अमृतसर के निकट दलीपगढ चला गया। यह अफवाह फैल गई कि वह फिरोजपुर जाना चाहता है। उसको वापिस लाने के लिए दीवान दीनानाथ को भेजा गया।

अपनी प्रबल इच्छा के बावजूद जवाहर सिंह सरदार चतर सिंह अटारीवाला को कुँवर पिशौरा सिह को मरवाने के लिए प्रेरित नही कर सका। सरदार चतर सिंह को लाहौर आने का आदेश दिया गया और यह घोषित किया गया कि पिशौरा सिंह अपने आप राजधानी आ जाएगा। ऐसा करने का एक मात्र उद्देश्य यह था कि अपने गुप्त एजेंट के हाथो कुवर को मरवा दिया जाए।

अपने ऊपर बहुत दबाव बढने के पश्चात् चतर सिंह ने जवाहर सिंह की इच्छा के अनुसार कारवाई करने का निर्णय किया। कुँवर पिशौरा सिंह को अपने कुछ साथियो और साले सहित मिलने के लिए बुलाया गया। मीटिंग पर पहुँचने के समय कुँवर पर आक्रमण कर दिया और वह गम्भीर रूप से घायल होकर 11 सितम्बर, 1845 को परलोक सिधार गया।

यह मामला विल्कुल गुप्त रखा गया मगर बात निकल गई। अफवाहे फैल गईं और लोगो मे पिशौरा सिंह की मृत्यु के बारे मे बड़ी उत्तेजना फैल गई। सेना ने कुछ पचायतो को सच्ची बात मालूम करने के लिए भेजा। इसी समय सरदार जवाहर सिंह ने सेना को सतलुज की ओर भेजने मे बहुत उत्साह दिखाया ताकि अंग्रेजो के साथ किसी तरह की कोई झडप हो जाए।

सेना शासन प्रबन्ध मे बढते हुए बिगाड के कारण सरकार को बदलना चाहती थी। उनकी तनख्वाह कई महीनो से नही मिली थी। सूबो से मालिया नही पहुँच रहा था और इस तरह से अशाति बढ रही थी। सरदार जवाहर सिंह और उसके साथियों

को इस सकट का एकमात्र समाधान यह नजर आता था कि अग्रेजो के साथ किसी न किसी तरह से फौज को उलझा दिया जाये। बडे-बडे सरदार इसके पक्ष मे नही थे। उनका विचार था कि ऐसे समय मे जब कि लाहौर दरबार मे फूट पडी हुई है और सेना भी सतुष्ट नही है अग्रेजो के साथ युद्ध बहुत हानिकारक होगा। ऐसी हालत मे कुछ सरदारो ने तो पजाब को छोड दिया और बाहर चले गये। इनमे सरदार लैहणा सिंह मजीठिया प्रमुख थे।

सेना को स्थिति का पूरी तरह ज्ञान था और वह दरबार की चालो से वाकिफ थी। उन का विचार था कि सरदार जवाहर सिंह के विरुद्ध आने वाले दशहरे के मौके पर उचित कारवाई की जाए। उस समय तक उनके प्रतिनिधि जो कि पिशौरा सिंह के मामले की पडताल करने गए थे उनको परिणाम से सूचित कर सकेगे। परन्तु मामला जल्दी ही बिगड गया। 17 सितम्बर, 1845 को पचायतो ने जरनल अविताबिले की मैगजीन पर धावा बोल दिया और जवाहर सिंह को चेतावनी दी गई कि वह अपनी बहुत-सी अनुचित कारवाइयो के लिए सेना को जवाब दे। उनमे से गभीर बात पिशौरा सिंह का कत्ल थी। सरदार जवाहर सिंह उनके धमकाने वाले सदेश से बहुत भयभीत हुआ। उसने सेना को यह आश्वासन देने की कोशिश की कि पिशौरा सिंह जीवित है और कही छुपा हुआ है और वह कुछ समय बाद उनको उस स्थान की सूचना देगा। इस किस्म की टाल-मटोल के जवाब से सेना की तसल्ली नही हुई। फतेह खा टिवाणा के सुपुत्र अपने विरुद्ध सख्त कारवाई करने की बात सुन कर लाहौर से भाग गए क्योकि उनपर पिशौरा सिंह के कत्ल का सदेह था।

सेना ने शासन प्रबन्ध अपने हाथ मे ले लिया और अपने आपको "पथ खालसा जियो" घोषित करके सब कार्य आरम्भ कर दिये। महारानी को यह पत्र भी भेजा गया कि वह अपने पुत्र के साथ सेना के कैम्प मे पधारे और अपने भाई को उनके सुपुर्द करे। सरदार जवाहर सिह ने अपनी नई भर्ती की हुई सेना और तोपखानों के साथ किले मे सुरक्षित रहने का अन्तिम प्रयास किया। उसने लाहौर से भागने का प्रयत्न भी किया परन्तु निष्फल रहा।

सरदार जवाहर सिंह का वध

19 सितम्बर, 1845 को दीवान दीनानाथ, फकीर नूरुद्दीन और सरदार अतर सिंह कालेवाला सेना के पचो से शिष्ट मण्डल के रूप मे मिलने गये और सेना को नरम करने की कोशिश की गई। उनको यह भय दिलाया गया कि अग्रेज पंजाब पर आक्रमण करने वाले है। सेना ने डैपुटेशन के सदस्यो को बदी बना लिया और केवल फकीर नूरुद्दीन को यह सदेश देकर वापिस भेज दिया कि जवाहर सिंह को 20 सितम्बर, 1845 तक सेनाके सुपुर्द कर दिया जाए। उन्होने अपने सैनिको को जो कि उस समय किले के इर्दगिर्द पहरा देते रहते थे यह आदेश भी दिया कि किले मे से कोई आदमी बाहर न जाने पाये और हर एक दरवाजे पर पहरेदार नियुक्त कर दिये जाये। बचने का कोई रास्ता न देखकर यह निर्णय किया गया कि सरदार जवाहर सिंह, महारानी जिन्दा

तथा महाराजा दलीप सिंह सेना को 21 सितम्बर, 1845 को मिलने जाएँगे। महारानी ने वहाँ जाकर अपने भाई के लिए सेना से क्षमादान माँगा। उनकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नही दिया गया और किशोर महाराजा को तम्बू मे बिठा दिया गया और उस हाथी को जिस पर जवाहर सिंह सवार थे बिठाने का आर्डर दिया गया। सरदार जवाहर सिंह को तलवार के कई वार करके हौदे मे ही मार दिया गया और उसका मृतक शरीर भूमि पर फैंक दिया गया। अपने भाई का इस तरह वध होता देखकर महारानी जिन्दा शोक मे डूब गई और सारी रात उसी मैदान मे विलाप करती रही और सेना को शाप देती रही। परन्तु सेना ने उसको जवाब दिया कि शहजादा पिशौरा सिंह की माता भी इसी तरह से अपने पुत्र की मृत्यु पर शोक करती होगी। उस समय कुछ सैनिक हर्षोल्लास से उन्मत्त हो कर "मिर्जा साहिबान" गा रहे थे।

अन्त मे मृतक शरीर को किले मे ले जाने की आज्ञा दे दी गई। उसकी चार बीवियाँ अपने पति की लाश के साथ चिता मे जल कर मर गईं। उन देवियो को भी जो कि हर तरह से आभूषणो से सुसज्जित थी उस समय सेना ने अपमानित किया। उनके कानो की बालिया और दूसरे ज़ेवरात छीन लिये गये। इन घटनाओ का महारानी जिन्दा पर जो प्रभाव पडा उनका अन्दाजा नही लगाया जा सकता। ऐसा कहा जाता है कि महारानी जिन्दा ने अपने आप को सेना के विरुद्ध बिल्कुल बेबस पाकर क्रोध मे आकर घोषणा की कि वह सेना का विनाश अवश्य करेगी। इस बारे मे कहा जाता है कि उनके शब्द थे "अगर मैं सेना को बरबाद न करूँ तो मेरा नाम भी जिन्दा नही। आम लोगो मे यह भी प्रचलित था "महारानी जिन्दा जिन्हे सिक्खा नूँ फड़ाइया टिण्डा" अर्थात् महारानी जिन्दा ने सिक्खो को भिखारी बना दिया।

जवाहर सिंह के वध के बाद कुछ समय तक सेना ने सब प्रशासन कार्य अपने हाथ मे ले लिया। उन्होने दीवान दीनानाथ को हुक्म दिया कि जवाहर सिंह की मृत्यु के बारे मे सब गवर्नरो और सरकारी अधिकारियो और कर्मचारियो को सूचित कर दिया जाए। उन्होंने लुधियाना स्थित दरबार के वकील को सूचना न देने के लिए कहा। उनका विचार था कि राजा गुलाब सिंह को लाहौर का वजीर बना दिया जाए। परन्तु यह स्कीम पूरी न हो सकी। इसके बाद राजप्रबन्ध महारानी जिन्दा और लालसिंह को चलाने दिया गया क्योंकि उन्होने सेना को प्रसन्न करने की कोशिश की।

उस समय जब कि लाहौर दरबार अंग्रेजों के साथ अच्छे सबध बनाने की चेष्ठा कर रहा था सेना ने आश्चर्यजनक तरीके से माँग की कि उसका अंग्रेजो के विरुद्ध फिरोजपुर पर हमला करने के लिए नेतृत्व किया जाए। साथ ही उन्होने पिछले चार महीनों के वेतन की भी माँग की। लाहौर दरबार का शासन प्रबन्ध चलाने वालो को अब इस बात के सिवा कोई रास्ता नजर नही आता था कि इस निरकुश सेना को अंग्रेजो के साथ लडा दिया जाए। इस नीति का एक मात्र उद्देश्य सेना की शक्ति को कम करना था। दरबार किसी किस्म का नियत्रण सेना पर रखने के योग्य नही रह गया था। इसलिए दरबार ने सेना को अंग्रेजो के विरुद्ध उकसाने

की कोशिश की। छोटी-छोटी घटनाओ को भी इतना बढाचढा कर दिखाया गया कि अग्रेजो के साथ सघर्ष जरूर और जल्दी हो।

अग्रेज इस स्थिति को अच्छी तरह से देख रहे थे और उन्होने अपनी तैयारियाँ अन्तिम सीमा तक पहुँचा दी थी। दोनो तरफ एक तरह से पाउडर-मैगजीन तैयार थे सिर्फ किसी चिगारी की जरूरत थी जिससे कि आग भडक उठे। लाल सिह अदालती को सतलुज के पार के इलाके से निकाले जाने पर और अग्रेज पौलिटिकल एजेट मेजर ब्राड फुट की भडकाने वाली कारवाइयो से यह सघर्ष और भी ज्यादा जल्दी हो गया।

इस गभीर स्थिति को देखते हुए राजा लाल सिह को वजीर और सरदार तेजा सिह को 8 नवम्बर, 1845 को प्रधान सेनापति बना दिया गया। सेना इस समय भी चाह रही थी कि गुलाब सिह उनका नेता बने। परन्तु डोगरा सरदार ने उनको ऊपर-ऊपर से बहलाने की कोशिश की। वास्तव मे वह अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध के हक मे नही था। क्योकि उसको पूरी तरह ज्ञान था कि दरबार सफल नही हो सकता। 23 नवम्बर, 1845 को अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध की घोषण कर दी गई और उस समय जो दरबार हुआ उसमे महारानी जिन्दा ने सेना को सतलुज की तरफ कूच करने का आदेश दिया। 6 सितम्बर, 1845 को अग्रेजो ने अपनी सेना को अम्बाला और मेरठ से लुधियाना और फिरोजपुर आने का आर्डर दिया। सिक्ख सेना को यह सूचना मिल चुकी थी और वह यह नही चाहती थी कि अचानक आक्रमण का शिकार हो। 12 और 13 दिसम्बर 1845 को लाहौर की सेना ने सतलुज को पार कर लिया। उसी दिन लार्ड हार्डिग, गवर्नर जनरल ने युद्ध की घोषणा कर दी। अग्रेजो और लाहौर दरबार के बीच घमासान का युद्ध हुआ जिस की प्रसिद्ध घटनाएँ मुदकी, 18-12-45, फेरुशहर 21-12-45, बद्दोवाल 21-1-1846 अलीवाल 28-1-1846 और सबराओ 10-2-1846 की लड़ाइया थी। आखरी स्थान पर अग्रेजो की पूर्ण विजय के साथ ही अग्रेजो का पंजाब पर अधिकार हो गया।

प्रश्न

1. Give a brief account of the events after the death of Ranjit Singh upto the start of the First Anglo-Sikh War.

   रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् और प्रथम अग्रेज-सिक्ख युद्ध तक के समय की मुख्य घटनाओं का उल्लेख करो।

2. How far is it true to say that "Naunihal Singh was the ablest among the Ranjit Singh's successors" and "in his death the Sikh people lost a gallant and promising ruler."

   यह कहाँ तक सत्य है कि "रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका सब से योग्य उत्तराधिकारी नौनिहाल सिंह था और उसकी मृत्यु से सिक्खो से एक बहादुर एवं होनहार शासक छिन गया।"

3 In the outlіne map of Panjab supplied to you show any four of the following places and explain their importance in the history of Panjab Muktsar ; Sirhind ; Rupar ; Anandpur Sahib ; Amritsar.

पंजाब के नक्शे की रूपरेखा मे निम्नलिखित मे से किन्ही चार को दिखाइए और पजाब के इतिहास मे इनकी महत्ता का उल्लेख भी कीजिए

मुक्तसर, तलवण्डी, सरहिन्द, रोपड, आनदपुर साहिब, अमृतसर।

4. Write short notes on
   (1) Pandit Jalla.
   (2) Jawahar Singh
   (3) Hira Singh.
   (4) Dogra Brothers i e. Dhyan Singh, Gulab Singh, Suchet Singh.
   (5) Ventura.

   सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (1) पडित जल्ला
   (2) जवाहर सिंह
   (3) हीरा सिंह
   (4) डोगरा भाई अर्थात् ध्यान सिंह, गुलाब सिंह, सुचेत सिंह
   (5) वन्तूरा

29

सिक्खों के अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध

अंग्रेजों के साथ सिक्खों का पहला युद्ध (सन् 1845-46)

महाराजा रणजीत सिंह के मरने के केवल सात साल बाद ही अंग्रेजो के साथ सिक्खो का पहला युद्ध हुआ। महाराजा रणजीत सिंह ने अपने जीवन काल मे कई बार पर्याप्त उत्तेजना होने पर भी अंग्रेजो के साथ अपने सबध बनाये रखे। उनकी मृत्यु के बाद लाहौर मे काफी उथल-पुथल होती रही और ऐसा कोई भी शासक नही मिल सका जो कि इस सकट मे पजाब की बागडोर अच्छी तरह सभाल सकता। प्राय लाहौर दरबार नित-नये षड्यन्त्रों का शिकार होता रहा और अन्त मे सेना इतनी निरकुश हो गई कि उससे बचने का एक मात्र साधन यही नजर आने लगा कि इसको अंग्रेजो के साथ लडा दिया जाए। अगर वह विजयी हो गई तो यश और कीर्ति लीडरो को मिलेगी और अगर पराजित हो गई तो भी उनकी शक्ति और सख्या कम हो जायेगी।

ऐसी स्थिति मे कुछ अन्दरूनी और कुछ बाहरी कारणों से सेना ने 13 दिसम्बर, 1845 को सतलुज नदी को पार करके अंग्रेजो के इलाके मे फिरोजपुर के निकट अपना डेरा जमा लिया। अंग्रेजो ने भी लाहौर दरबार की ओर से युद्ध घोषित किए जाने पर युद्ध की घोषणा कर दी और इस तरह से दोनो सरकारो मे मित्रतापूर्ण सबध समाप्त हो गये और लुधियाना स्थित लाहौर दरबार के वकील राय किशन चन्द भण्डारी को आदेश दिया गया कि वह अंग्रेज़ों का इलाका छोड़कर चला जाए।

युद्ध के आरम्भ के बारे मे भिन्न-भिन्न मत है। लतीफ जो कि अंग्रेजों के समर्थक समझे जाते है यह मानते है कि "उस असाधारण समय मे जबकि लाहौर दरबार मे गडबड और उधम मच रहा था अंग्रेजो ने बडी शातिपूर्ण और धैर्य की नीति अपनाई थी।" जार्ज कैम्पबैल का कथन है कि "अंग्रेजो और सिक्खो की टक्कर का तत्कालीन कारण सीमा पर स्थित अंग्रेज़ एजेंट मेजर ब्राड फुट की भड़काने वाली कारवाई थी।" सर माइकल स्मिथ ने लिखा है, "पजाब के युद्ध के बारे मे मेरा न तो यह मत है कि सिक्खो ने बगैर किसी कारण से आक्रमण किया था और न ही मै यह समझता हूँ कि अंग्रेजो ने उनके प्रति सहनशीलता से काम लिया था"। प्रसिद्ध इतिहासकार जे० डी० कनिंघम यह मानते है, "ऐसा समझना असम्भव है कि अंग्रेज़ो ने पंजाब के बारे में आक्रामक नीति नही अपनाई थी या उन्होने पजाब को अपने साथ शामिल करने की पहले ही योजना नही बनाई हुई थी।"

कारण . अग्रेजो के साथ युद्ध के कारण काफी दूर तक जाते है और वास्तव मे यह कारण उसी समय उत्पन्न हो गये थे जबकि अग्रेजो के साथ लाहौर दरबार की सीमा निर्धारित की गई थी। अग्रेजो ने उस समय की राजनीतिक अवस्था के अनुसार अपने आगे बढने की नीति को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया था परन्तु उसे सदा के लिए नही त्यागा था। खुले तौर पर आक्रमण करने की नीति की बजाय उन्होने बाहर से लाहौर दरबार के साथ अच्छे सबध रखते हुए भी उसकी शक्ति को और प्रभाव को समाप्त करने की कोशिश जारी रखी। जैसा कि कई बार रणजीत सिह के जीवन काल मे ही मतभेद खडे होने से सिद्ध होता है। अग्रेजो की इस कूटनीति को महाराजा रणजीत सिंह के लिए बरदाश्त करने का मुख्य कारण यह था कि वह अग्रेजो के मुकाबले मे अपने आपको इतना शक्तिशाली नही समझते थे। इस नीति के परिणामस्वरूप अग्रेजो ने अपनी तैयारियाँ जारी रखी और कुछ तो अपने आप पजाब मे गडबड होने के कारण और कुछ अग्रेजो की गुप्त कारवाइयों के कारण गड़बड पैदा करके ऐसी स्थिति पैदा कर दी गई कि अग्रेज पजाब को आसानी से अपने अधीन कर सके और साथ ही ससार को यह भी दिखा सके कि यह सब कुछ लाहौर दरबार के अयोग्यतापूर्ण और उकसाने वाले कामो के कारण हुआ है।

अंग्रेजों की पंजाब को फतेह करने की तैयारियाँ . यह साधारण आदमी को भी मालूम हो गया था कि अग्रेज 1809 की सधि के पश्चात् उत्तर पश्चिमी सीमा के साथ-साथ अपने सैनिक प्रबन्ध मजबूत बना रहे है। सबसे पहले अग्रेजो ने उस सैनिक टुकडी को जोकि कर्नल ऑक्टर लोनी के साथ केवल सधि होने तक लुधियाना मे ठहरने के लिए भेजी गई थी वहाँ पर उसे स्थायी रूप से रख लिया। ऐसा उन्होंने महाराजा रणजीत सिंह को आश्वासन देने के बावजूद किया। इसके साथ-साथ लुधियाना मे नये किले का निर्माण करके वहाँ पर और उससे भी आगे फिरोजपुर को भी जोकि लाहौर से केवल 40 मील दूर सतलुज के किनारे पर था अपनी छावनी मे बदल लिया। ऐसा करने का एकमात्र उद्देश्य यह ही हो सकता था कि अंग्रेज रणजीत सिंह के बाद पजाब मे प्रवेश करने के लिए इस अड्डे का उपयोग करना चाहते थे। इसी तरह उत्तर पश्चिमी सीमा मे अग्रेजो ने अपनी सेना की शक्ति को जोकि सन् 1809 के लगभग आठ हजार सैनिक थी सन् 1844 मे बढाकर 32 हजार सैनिक कर दिया था और यहाँ पर 68 बडी तोपें भी भेज दी थी। युद्ध से कुछ महीने पहले अग्रेजो की 45 हजार फौज और 98 तोपे उत्तर पश्चिमी सीमा के साथ-साथ पहुँच चुकी थी और इस कार्य के लिए अग्रेजो ने अम्बाला, सबाथु, कसौली, जतोग, लुधियाना और फिरोजपुर सब स्थानो पर अपनी छावनीयाँ स्थापित कर ली थीं। इन सब कार-वाइयो से यह स्पष्ट था कि अग्रेज पजाब पर आक्रमण करने के तैयार थे। यह तैयारियाँ महाराजा रणजीत सिंह के मरणोपरान्त और भी तेज कर दी गई थी।

दूसरी ओर यह भी मानना पड़ेगा कि सिक्खो ने अंग्रेजों को उनके विरुद्ध कारबाई करने का कोई मौका नही दिया था। यही नहीं सन् 1842 में अंग्रेजो को

अफगानिस्तान की पराजय के समय सिक्खो ने उनको न केवल पजाब के रास्ते लौटने दिया बल्कि उनके इस सकट से किसी तरह से अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा नही की थी। महाराजा खड़ग सिंह को दरबारियो ने इस किस्म की राय देने की कोशिश भी की थी परन्तु उन्होने ऐसा सुझाव बिल्कुल अस्वीकार कर दिया था और अग्रेजो के साथ अपने सबध परम्परागत तरीके पर ही रखने की कोशिश की। सन् 1838 मे त्रिपक्षीय सधि मे भी लाहौर दरबार ने यह सिद्ध कर दिया था कि चाहे उनको कोई विशेष लाभ होने की आशा नही थी फिर भी वह शिष्टाचार के नाते अग्रेजो की सहायता करने को उद्यत थे।

अग्रेजो ने अपनी तैयारियो से और लाहौर दरबार के अन्दर गुप्त तौर पर गडबड पैदा करके अपनी हानिकारक नीति को जारी रखा।

सब तैयारियाँ हो जाने पर अग्रेजो ने लाल सिंह अदालती को जो कि सतलुज के पार दरबार के इलाके मे कारवाई करने के लिये आया था वहाँ से निकाल कर यह प्रमाणित कर दिया था कि अग्रेज युद्ध करना चाहते है। जार्ज ब्राड फुट ने सीमा के इलाके के लोगो को दरबार के विरुद्ध खुले तौर पर भडकाना शुरू कर दिया था।

पंजाब में अराजकता :

यह ठीक है कि दुर्भाग्य से पजाब का शासन प्रबन्ध महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् बिगडता ही गया। अयोग्य उत्तराधिकारी और उससे भी ज्यादा स्वार्थी अधिकारियो ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि सेना को काबू करना असम्भव हो गया और सेना निरकुश और नेतृत्वहीन हो गई। ऐसी स्थिति का अन्त करने का एक मात्र उपाय यह था कि सेना को अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध मे लगा दिया जाए जिस से कि उसका ध्यान दरबार की ओर से हटकर दूसरी तरफ लग जाए और अग्रेज उनकी शक्ति को कम कर सकें। ऐसी भड़काने वाली स्थिति मे किसी कारण से भी हर समय युद्ध होने की सभावना थी। अग्रेजो की फौज बहुत अधिक सख्या मे सतलुज के साथ-साथ पूरी तैयारी के साथ मौजूद थी। उनका सतलुज के पार के इलाके मे प्रवेश युद्ध नीति के अनुसार उचित कदम था।

मुख्य घटनाएँ

35-40 हज़ार पजाबी सेना 150 के लगभग तोपो के साथ सतलुज को पार करके उस इलाके मे पहुँच गई जो कि लाहौर दरबार का अपना इलाका समझा जाता था। यह घटना 13 दिसम्बर, 1845 की थी। उस समय प्रधान मंत्री राजा लाल सिंह इस सेना के नेता थे। जवाब मे 14 दिसम्बर, 1845 को लार्ड हार्डिंग गवर्नर जनरल ने युद्ध की घोषणा कर दी। मुदकी के स्थान पर 18-12-1845 को बड़ा घमसान युद्ध हुआ। पंजाबी सेना ने बड़ी वीरता के साथ अग्रेजो पर आक्रमण किया। ऐसे नाजुक समय पर राजा लाल सिंह मैदान छोड कर चले गये और यह घोषणा कर दी गई कि वह घायल हो गये हैं और अपनी सेना को जिस तरह से भी वह चाहे लड़ने के लिए छोड़कर चले गये। उधर अंग्रेज़ी सेना बड़े

सकट मे थी क्योकि उनको इतने सख्त मुकाबले की आशा नही थी और उन्होने पजाबी फौज की योग्ता और सख्या का गलत अनुमान लगाया था। इस समय लार्ड हार्डिंग गवर्नर जनरल, जो कि स्वय युद्ध मे मौजूद थे, ने स्वीकार किया कि स्थिति बडी गम्भीर हो गई थी और उन्होने अपने दोनो पुत्रो को, जो कि उनके साथ थे, पीछे भेजने का आदेश दिया और अपने पत्र आदि को सम्भालने का भी जरूरी आदेश दिया। सिक्खो के कैम्प से और भी कई प्रकार की गुप्त सूचनाए पहुँचने पर अंग्रेजो ने मैदान न छोडना ही उचित समझा और गोला-बारूद खत्म होने के कारण पजाब की फौज को पराजित होना पडा।

21-12-1845 को फेरूशाह के स्थान पर फिर टक्कर हुई। परन्तु अंग्रेजों ने सिक्खो के मोर्चों पर दूसरे दिन (22-12-1845 को) सिक्ख जरनैलो की गद्दारी के कारण कब्जा कर लिया। इस विजय के लिये अंग्रेजो को भी बहुत कीमत देनी पडी। लार्ड गफ कमाण्डर इन चीफ ने इस युद्ध के बारे मे लिखा था "इस किस्म की एक और विजय प्राप्त करने का परिणाम हमारी सारी शक्ति को समाप्त कर देगा"। इस युद्ध मे आठ हजार पजाबी सिपाही मारे गये और 73 तोपें उनके हाथ से छिन गई।

ऐसी स्थिति मे सरदार रणजोध सिंह मजीठिया की अगवाई मे पीछे से सतलुज को पार करके सिक्ख सेना ने अंग्रेजो की सप्लाई काटने और लुधियाना पर कब्जा करने की कोशिश की। बद्दोवाल के स्थान पर 21-1-1846 को सिक्खो को अधिक सफलता मिली। परन्तु अधिक सहायता न मिलने के कारण उनको पीछे हटना पडा। अंग्रेजो की कुमक पहुँच जाने पर और सरदार तेज सिंह दरबार के कमाण्डर इन चीफ के अपनी सेना सहित बगैर युद्ध किये और फिरोजपुर पर आक्रमण किए बिना ही लौट जाने पर सिक्ख सेना के हौसले बहुत कम हो गये। 28-1-1846 को अलीवाल के स्थान पर अंग्रेजो को एक और विजय प्राप्त हुई। सबराओ के स्थान पर इस युद्ध को सबसे अधिक खूनी लडाई के पश्चात् अंग्रेजो को पूर्ण विजय प्राप्त हुई। अंग्रेजो के विरुद्ध यह किसी भी भारतीय सेना की सबसे कठोर और वीरतापूर्ण लडाई समझी जाती है। इस युद्ध मे जहाँ बहुत बडे-बडे लीडरो ने अपने स्वार्थ के लिए अंग्रेजों की सहायता की और अपने देश के प्रति गद्दारी का सबूत दिया केवल शाम सिंह अटारीवाला ने सच्चे देशभक्त के तौर पर लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की। इस युद्ध के बारे मे कनिंघम ने बिल्कुल उचित तौर पर लिखा है "बेशक पजाबी फौज मे बड़े-बड़े वीर सैनिक थे और वह सब कुछ अपने हाथो से करने के लिए तैयार थे। परन्तु उनका नेतृत्व करने के लिए और उनका उत्साह बढ़ाने के लिए कोई योग्य नेता नही था।" ब्रिटिश कमाण्डर ने भी इसी प्रकार कहा था "अंग्रेजो को अपनी फौज के विरुद्ध सर्वाधिक वीर और धैर्यवान फौज के साथ लडाई करनी पडी थी।"

13-2-1846 को अंग्रेज सेना सतलुज को पार करके लाहौर दरबार की सीमा मे प्रवेश कर गई और 20 फरवरी, 1846 को लाहौर पहुँच गई।

सिक्खों की हार के कारण

1 लाहौर दरबार की अंग्रेजो के साथ पहले युद्ध में हार का सबसे बडा कारण नेताओं की गद्दारी और अयोग्यता था। यह सत्य कहा गया था कि "इस युद्ध मे जहाँ साधारण सिपाही शेर की तरह लडे उनके नेता बहुत कायर और गधे सिद्ध हुए।"

2 लाहौर की बिल्कुल ताज़ा दम 30 हजार सेना, जिस की कमान सरदार तेज सिंह कर रहे थे, जान-बूझ कर लडाई मे शामिल नही हुई और उनके नेता ने फिरोजपुर पर आक्रमण नही किया। युद्ध नीति की यह सबसे बडी गल्ती थी जिससे अंग्रेजो को बहुत सहायता मिली।

3 इसी तरह प्रधान मत्री लाल सिंह का घमसान युद्ध के समय सेना को छोडकर छुप जाना भी एक गहरी चाल थी। उसका भाव स्पष्ट तौर पर यह था कि अंग्रेजो को एक नाजुक समय पर सभलने का मौका दिया जाए। यह कहना बिल्कुल ठीक प्रतीत होता है कि लाल सिंह ने अपनी चालाकी से अग्रेजो को एक निश्चित हार से बचा दिया था।

4. लाहौर दरबार की सेना निरकुश हो चुकी थी और उसमे अनुशासनहीनता इतनी बढ चुकी थी कि उनके लिए एक नेता के अधीन काम करना कठिन था। साथ ही उनको अपने राजनीतिक और सैनिक नेताओ पर इतना अविश्वास हो गया था कि वह उनकी बात को शक की नजर से देखते थे। ऐसी स्थिति मे बेशक सैनिकों ने थोडी देर के लिए वीरता दिखाई परन्तु वे अग्रेजो के विरुद्ध बड़ी देर तक इकट्ठे रह कर नही लड सकते थे। अत उनकी हार यकीनी थी।

5 यह स्पष्ट था कि लाहौर के शासक तग आ चुके थे और उनका अग्रेजों के साथ युद्ध करने का एक मात्र उद्देश्य अपनी हैकडबाज सेना को नष्ट करना था। उन्होने फौज को हर प्रकार की सैनिक सामग्री भेजने मे न केवल देर की बल्कि कई बार घटिया किस्म का सामान भी भेजा।

6. लाहौर दरबार ने अंग्रेजो के साथ युद्ध करने का समय ठीक नही चुना था। अंग्रेजो को इस समय पूरी तरह तैयारी करने का मौका मिल चुका था और वह अफगानिस्तान मे पराजय के बाद अपनी शक्ति को फिर बढ़ा सके थे। लाहौर दरबार ने उस समय टक्कर ली जब कि उनकी अपनी आतरिक स्थिति अत्यन्त खराब थी। उनमें न केवल एकता का अभाव था बल्कि उनकी लगातार गडबड से साधन भी इतने कम हो गये थे कि अंग्रेजो जैसे शक्तिशाली दुश्मन से लड़ना मूर्खता की बात थी।

लाहौर दरबार के साथ नई राजनीतिक व्यवस्था

लाहौर पहुच कर अंग्रेजो ने लाहौर दरबार के साथ की गई 9-3-46 की प्रथम संधि के आधार पर नये राजनीतिक सबंध स्थापित किये। इस संधि के अनुसार—

1. लाहौर दरबार के वे सब इलाके जो सतलुज के बाएं किनारे पर थे अंग्रेजो को दिये गये ।

2 द्वाब "बिस्त् जालन्धर" को अंग्रेजी राज्य मे शामिल कर लिया गया जिससे सतलुज की बजाय अंग्रेजो और लाहौर दरबार की नई सीमा ब्यास नदी को बना दिया गया । इसका उद्देश्य सर्वाधिक उपजाऊ द्वाबे को दरबार से छीनकर उसकी शक्ति को कम करना था । ब्यास लाहौर के भी काफी निकट था और यहाँ से राजधानी पर आसानी से चढ़ाई की जा सकती थी ।

3 लाहौर दरबार को युद्ध करने के लिए दण्ड के रूप मे डेढ करोड रुपया देना पडेगा । इसमे से एक करोड रुपया महाराजा दलीप सिंह की ओर से उस इलाके के बदले मे समझ लिया गया जो कि जम्मू और कश्मीर रियासत के रूप मे राजा गुलाब सिंह को दे दिया गया और जिसका उसको महाराजा घोषित करके दरबार से अलग और अंग्रेजो के अधीन कर दिया गया ।

4 सेना की सख्या मे 20 हजार पैदल और 12 हजार घुडसवार तक कम करने का आदेश दिया गया । अंग्रेजो के विरुद्ध युद्ध मे बर्ती गई 36 तोपो जो कि सबराओ के स्थान कर अंग्रेजो के हाथो मे नही पडी थी, उन को दे दी गईं ।

5 यह भी मान लिया गया कि जरूरत पर अंग्रेज सेना को पजाब से गुजरने दिया जाएगा । कोई अंग्रेज या यूरोपियन अधिकारी अंग्रेज सरकार की आज्ञा के बिना दरबार के अधीन नौकर नही रखा जाएगा ।

लाहौर दरबार के साथ पहली संधि की विनियोग धारा

प्रथम सधि के दो दिन बाद ही लाहौर दरबार के कथित अनुरोध पर किशोर महाराजा की सुरक्षा के लिए, और दरबार की सेना के पुनर्गठन के कार्य को अच्छी तरह से पूरा करने के लिए कुछ नई विनियोग धाराए सधि मे शामिल कर ली गई । इसके अनुसार यह प्रबन्ध किया गया कि अंग्रेंज सरकार सन् 1846 के अत तक काफी सेना लाहौर मे रखने का प्रबन्ध करेगी जिस का मुख्य उद्देश्य महाराजा की सुरक्षा और सधि के बारे में दूसरे प्रबन्ध पूरा करना था । इस सेना को अगर आवश्यकता नही हुई तो दरबार की प्रार्थना पर पहले भी वापिस बुलाया जा सकता है ।

लाहौर दरबार सधि के अनुसार सेना के पुनर्गठन का काम जल्दी से जल्दी पूरा करने की कोशिश करेगा और इसकी प्रगति की सूचना लाहौर मे नियुक्त अंग्रेज अधिकारी को दी जाएगी ।

दोनो सरकारें तत्काल ऐसे कमिश्नर नियुक्त करेगी जो कि दोनो सरकारो के नई सीमा के बारे मे निर्णय करके उनको पक्के तौर पर निश्चित कर सकेंगे ।

गुलाब सिंह के साथ अमृतसर की सन्धि (16-3-1846)

लाहौर दरबार के साथ मुख्य संधि के साथ ही साथ राजा गुलाब सिंह को उनकी सेवाओं के बदले एक जुदा संधि के रूप मे दरबार से अलग करके उसको

अपने अधीन सब पुराने इलाके जो पहले उसकी जागीर समझे जाते थे, दे दिये गये। और इसके अलावा उनको कश्मीर घाटी और सिन्ध के पूर्व की ओर का उस पर निर्भर इलाका, जिन मे चम्बा तो शामिल था पर लाहूल नही था, उसको दे दिया गया। राजा गुलाब सिंह को अग्रेजो के अधीन महाराजा घोषित कर दिया गया। इस तरह से एक जम्मू और कश्मीर अलग राज्य का आरम्भ हुआ।

लाहौर दरबार के साथ दूसरी संधि अर्थात् मेरोवाल की सन्धि, (16-12-1846)

राजा लाल सिंह ने गुप्त रूप मे कश्मीर के गवर्नर इमामुद्दीन के साथ गठ-जोड करके राजा गुलाब सिंह को कश्मीर पर अधिकार नही करने दिया था। इसके लिए उसके विरुद्ध इंक्वायरी करके उसको पजाब से बाहर अग्रेजी इलाके मे देश निकाला दिया गया। इस पर लाहौर मे उचित प्रबन्ध करना आवश्यक हो गया। पुरानी सधि से असतुष्ट होकर दरबार के कथित अनुरोध पर अग्रेजो के साथ दूसरी अर्थात् मेरोवाल की सधि की गई। इसके अनुसार 9 मार्च, 1846 वाली सधि मे कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिये गये जिनके अनुसार एक उच्च अग्रेज अधिकारी अपने अधीन आवश्यक स्टाफ आदि के साथ लाहौर मे नियुक्त किया गया जिसे कि सरकार के हर विभाग के कार्य पर नियत्रण रखने और निर्देश देने का पूर्ण अधिकार रखेगा। इस उच्च अधिकारी का पद रेजीडेन्ट का पद घोषित किया गया और इसके अधीन एक 8 सरदारों की रिजैन्सी परिषद् बनाई गई।

महाराजा की सुरक्षा और लाहौर दरबार के अधीन इलाके मे शान्ति रखने के लिए काफी संख्या मे अग्रेज सेना रखने का प्रबन्ध किया गया। इस सेना को महाराजा के 16 साल की आयु प्राप्त करने तक अर्थात् चार सितम्बर 1854 तक पजाब मे रखने का प्रबन्ध किया गया था। इस सेना के खर्च के रूप मे लाहौर दरबार को 22 लाख नानकशाही रुपये हर साल देने के लिए बाध्य किया गया।

निष्कर्ष

इस प्रकार लाहौर की पहली सधि विनियोग धाराओ और लाहौर की दूसरी अर्थात् मेरोवाल की सधि के अधीन अग्रेज सरकार ने लाहौर दरबार पर पूर्ण रूप से अपना अधिकार स्थापित कर लिया। लाहौर दरबार की स्वतत्रता नाम मात्र की रह गई। सब कार्य अग्रेज रेजीडेन्ट और उसके अधीन अग्रेजी स्टाफ द्वारा करने का पूर्ण रूप से प्रबन्ध किया गया। यह कहना वास्तविक रूप से सच है कि पहले युद्ध में ही अग्रेजों ने पजाब पर उसका विलय न करते हुए भी उस पर अपना पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिया था। केवल दिखावे के रूप मे रिजैन्सी काउन्सिल स्थापित कर दी गई और महाराजा दलीप सिंह के नाम से राजप्रबन्ध करने का नाटक रचा गया। वास्तव मे राजप्रबन्ध रेज़ीडेन्ट के अधीन था और उसकी आज्ञा के बिना किसी भी भाग मे कोई भी काम नही हो सकता था। गवर्नर जरनल लार्ड हार्डिंग के अपने शब्दों मे "मेरोवाल की सधि के अनुसार राज्य के सर्वोच्च अधिकारी महाराजा दलीप सिंह को किसी किस्म का युद्ध करने या शान्ति सन्धि करने का अधिकार नही दिया गया था। उसको इतने अधिकार से भी वचित कर दिया था

कि वह एक एकड भूमि बेच सके या किसी को बदले मे दे सके। न ही उसको किसी भी यूरोपियन अधिकारी को रखने की आज्ञा थी। वास्तव मे राज्याध्यक्ष कोई भी कार्य उनकी आज्ञा के बगैर नही कर सकता था। इस तरह देश का राजा पूरी तरह जकडा हुआ था और हमारे सरक्षण मे रहते हुए हमारे आदेश मानने के लिए बाध्य था"। (हैनरी लारैंस के नाम लिखा हार्डिंग दिनाक 23-10-74 का पत्र "लाइफ ऑफ लारैंस" मैनवल)

(ख) अंग्रेजों के साथ दूसरा (कथित) युद्ध (1848-49)

लार्ड हार्डिंग गवर्नर जनरल ने अपना कार्यकाल समाप्त होने पर हिन्दुस्तान से जाते हुए ऐसी भविष्यवाणी की थी, "जहाँ तक किसी मनुष्य के लिए आगामी राजनीतिक अवस्था के बारे मे कुछ कहना सभव है, इस बात की आवश्यकता प्रतीत नही होती कि अगले सात साल तक भारत मे बन्दूक चलाने की जरूरत पडेगी"। परन्तु उसके भारत से चले जाने के 6 मास पश्चात् ही पजाव मे एक बार फिर युद्ध छिड गया जिस को अग्रेजो और सिक्खो का दूसरा युद्ध कहते है।

कारण

1. अग्रेजो के पजाब पर नियत्रण और उनके शासन प्रबन्ध मे बढते हुए दखल को पजाबवासी पसद नही करते थे। परम्परागत शासन के विपरीत अग्रेजो ने ऐसा प्रवन्ध किया और कुछ ऐसे कानून भी लागू किये जो कि न तो पजाब के शासकों को और न ही जनसाधारण को पसद थे। अग्रेजो के नये राजनीतिक प्रबन्ध पजाब की स्वतत्रता को खत्म करने वाले थे और बेशक बाहरी रूप से ऐसा दिखाया गया था कि शासन प्रबन्ध एक रिजैन्सी काउन्सिल द्वारा किया जाता है। परन्तु वास्तव मे अग्रेज रेजीडेन्ट ही सब कुछ करता था और उसकी आज्ञा के बगैर किसी किस्म की कोई कारवाई नही हो सकती थी। रिजैन्सी काउन्सिल एक कठपुतली के समान थी। यह सब प्रवन्ध पजाब मे जनसाधारण के लिए दुखद था।

2 लाहौर दरबार की सेना अग्रेजो के विरुद्ध पहली लडाई मे पूरी वीरता से लड़ी थी और उनको यह अनुभव हुआ था कि उनके लीडरो ने अग्रेजो के साथ मिलकर और अपने देश के साथ द्रोह करके उनकी हार कराई है। उनको अब भी अपनी शक्ति पर विश्वास था और वे समझते थे कि अगर सब मिल कर अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध करते तो सम्भवत· वे अग्रेजो को हरा सकते थे। साथ ही साथ जो सैनिक पहले युद्ध से वापिस आये थे और जिनकी छँटनी कर दी गई थी वे इस बात से बहुत असतुष्ट थे। उनके लिए फौजी जीवन साधारण जीवन बन चुका था। अपने गाँवो मे जा कर उनके लिए सम्मान योग्य साधन प्राप्त नही थे। जब कभी भी वे अपनी वीरता की बात करते तो लोग उनको ताना देते थे, "खालसा जी तुसी की पूरीयाँ पा आये हो।" उनको साधारण जीवन मे काफी कठिनाई हो रही थी। इसलिए वे उत्सुक थे कि एक बार अग्रेजो के साथ फिर टक्कर लेकर अपनी शक्ति और आत्मविश्वास का प्रमाण दे सके।

3 अग्रेजो के विरुद्ध लाहौर दरबार की हार के बाद महाराजा दलीप सिह की माता महारानी जिन्दा के साथ जो व्यावहार किया गया वह भी किसी तरह से भी सम्मान योग्य नही था। अग्रेजो ने राजकाज मे उसका दखल कम करने की कोशिश की और यह जानकर कि महारानी लोगो को अग्रेजो के विरुद्ध उकसाती है उसको महाराजा दलीप सिह से अलग करके शेखपुरा के स्थान पर भेज दिया गया और उसने अग्रेजो के बढते हुए हस्तक्षेप के विरुद्ध स्पष्ट और गुप्त रूप से प्रचार जारी रखा।

4 लार्ड हार्डिग के पश्चात् नये गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी विस्तारवादी थे। उन्होने अपने कार्यकाल मे देसी रियासतो को अग्रेजी राज्य मे मिलाने की पालिसी लागू की। लार्ड डलहौजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का उत्तर पश्चिमी भारत मे व्यापार बढाने के लिए भी उत्सुक थे। उन्होने पजाब से आगे जा कर सिंध के साथ अपने व्यापारिक सबध पहले ही स्थापित कर लिए थे और पजाब मे लगातार गडबड के कारण उन्होने यह नीति निर्धारित कर ली थी कि जितनी जल्दी हो सके पजाब का अग्रेजी राज्य मे विलय उनके लिए लाभदायक होगा। अग्रेजों ने नये हालात मे पजाब को अपने और सीमा से लगने वाले बाहरी देशो के बीच "बफर" देश बनाने की पालिसी भी त्याग दी थी। वे समझने लगे थे कि अब इसकी कोई आवश्यकता नही है। इसलिए वह नीति जो कि 1809 मे महाराजा रणजीत सिंह के साथ संधि करके अग्रेजो ने अपनाई थी वह अब त्याग दी गई और यह प्रोग्राम बनाया गया कि युद्ध के बगैर या ऐसा युद्ध करके जिसमे अग्रेजो को हस्तक्षेप करने वाला न समझा जाए पंजाब को अग्रेजी राज्य में शामिल करना उचित और आवश्यक होगा।

5. अग्रेजो ने अटारी के प्रसिद्ध परिवार जिस के साथ कि महाराजा दलीप सिह की सगाई का रिश्ता हुआ था को भी अपने व्यवहार से विरोधी बना लिया। उन्होने महारानी के बार-बार कहने पर महाराजा की शादी की तिथि निश्चित नही होने दी। अथवा सरदार अतर सिह अटारीवाला के, जो कि उस समय हजारा के गवर्नर थे, काम में दखल देकर उसको अपने विरुद्ध कर लिया। अटारी परिवार की मान हानि करने मे सर्वाधिक अंग्रेज रेजीडेन्ट का हाथ था। यह प्रसिद्ध परिवार भी इस बात की चेष्टा करने लगा कि उनको अंग्रेज़ो के विरुद्ध लडने का मौका मिल सके तो अच्छा होगा।

6. मुलतान मे एक स्थानीय घटना जो कि वहाँ के गवर्नर मूलराज के विद्रोह से उत्पन्न हुई थी, लार्ड डलहौजी नें जल्दी काबू मे लाने की कोशिश नही की अथवा उसको किसी न किसी बहाने बढने दिया। उस का मतव्य यह था कि इस गड़बड को एक सार्वजनिक विद्रोह या जैसा कि अग्रेजों ने दिखाने की कोशिश की अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध कहा जाए।

7 लार्ड डलहौजी ने रेजीडेन्ट को मुलतान के विरुद्ध सख्त कारवाई न करने के लिए कहा। वह इस विद्रोह को फैलने देना चाहते थे ताकि पंजाब को अपने अधीन करने के लिए उसको पूरी तरह से बहाना मिल जाए।

8. इसी समय महारानी ज़िन्दा को पंजाब से हटाकर बनारस भेज दिया गया। पंजाब मे इस कारवाई के विरुद्ध रोष स्वाभाविक था। लार्ड डलहौजी शायद जलती पर तेल डाल कर इस ज्वाला को युद्ध का नाम देकर अपना उद्देश्य पूरा करना चाहता था।

मुलतान के विद्रोह के समय चतर सिंह के सुपुत्र राजा शेर सिंह को सेना देकर मूलराज के विरुद्ध भेजने और उसके मूलराज के साथ मिल जाने और वहाँ से अपने पिता चतर सिंह अटारीवाला के साथ हजारा मे सम्मिलत होकर अंग्रेजो के विरुद्ध कारवाई करने को एक युद्ध का नाम दे दिया गया और लार्ड डलहौजी ने 10 अक्तूबर, 1848 को यह घोषणा की, "पिछली मिसाल से चेतावनी न लेते हुए, और अपने पुराने अनुभव से प्रभावित न होकर सिक्ख कौम ने फिर से युद्ध आरम्भ किया है। मै आश्वासन देना चहाता हूँ कि इस बार उनसे पूरी तरह बदला लिया जाएगा।"

घटनाएँ

16-11-1848 को अंग्रेज सेनापति लार्ड गफ रावी पार करके सरदार चतरसिह के विरुद्ध युद्ध के लिए चल पडा। 22-11-1848 को रामनगर के स्थान पर चिनाब नदी के किनारे उनकी सरदार चतर सिंह के सुपुत्र शेर सिंह से मुठभेड हुई जिस का कोई निर्णय नही हो सका। 13-1-1849 को चिलियाँवाला के स्थान पर सिक्खो ने मोर्चे बना रखे थे। उन्हो ने बहुत घमसान युद्ध किया और इस बार भी मुकाबला निर्णायक सिद्ध नही हो सका। इस बीच मुलतान का विद्रोह समाप्त हो गया और दीवान मूलराज ने हथियार डाल दिये। चिलियाँवाला के स्थान पर इतना जानी नुकसान हुआ कि कुछ समय के लिए उन्होने लार्ड गफ को सेना पति के पद से हटाकर उनकी जगह नेपियर को नियुक्त करने का विचार किया। इग्लैड मे इस बारे कोलाहल मच गया। परन्तु जब तक कि कोई नया प्रबन्ध किया जाता लार्ड गफ ने गुजरात पहुँच कर जहाँ कि सिक्खों ने मोर्चे बना लिये थे और जहाँ पर उनके साथ दोस्त मुहम्मद खा के सुपुत्र अफगान सेना लेकर आ मिले थे सिक्खो को 21-2-1849 को हरा दिया। इस युद्ध को तोपो की लडाई कहते है। क्योकि तीन घण्टे तक दोनो ओर से दनादन तोपे चलती रही। अन्त मे सिक्ख अपने स्थान छोडने पर मजबूर हो गये और अंग्रेजो को विजय प्राप्त हुई। इस लडाई को उनके अपने शब्दों में "अंग्रेजो की भारत मे लडी गई सब लडाइयों मे सर्वाधिक उल्लेखनीय कहा जाता है।" गुजरात की पराजय के बाद 13-3-1849 को रावलपिंडी के स्थान पर सिक्ख फौजो ने हथियार डाल दिये और एक बूढे सिक्ख फौजी ने अपनी तलवार को उस ढेर पर फैकते हुए जहाँ सब हथियार डाल रहे थे अपने दिल की बात कह दी "अज रणजीत सिंह मर गया" अर्थात् वास्तव मे आज रणजीत सिंह की मृत्यु हुई है।

मूलराज को बन्दी बनाकर उसके विरुद्ध मुकदमा चलाकर उसको देश

चिलियाँवाला का युद्ध
13 जनवरी, 1849
संदर्भ
ब्रिटिश पैदल सेना
ब्रिटिश घुड़सवार सेना
सिक्ख पैदल सेना
सिक्ख घुड़सवार सेना
पैमाना
1000 500 0 1000 2000 3000 गज
पूरन
कोरी दर्रा
चांग
सिक्ख सेना की मोर्चाबंदी
रसूल
कोकरी
बद्दोवाल
नूर जमाल
छोटा उमराव
बड़ा उमराव
बाजुरवाला
तुल्यानी
डिंगी
आक्रमण के समय बगार्गे
गोलाबारी के समय ब्रिटिश सेना
समझौता होने से पूर्व और आक्रमण के बाद ब्रिटिश सेना
मोजीवाला
आक्रमण के बाद बगार्गे
चिलियाँवाला
सिक्ख सीमा चौकी
लोलियाँवाला
कोट बलोच
मुंग
फतेहशाह दा चक्क
ब्रिटिश सेना की आक्रमण पंक्ति

गुजरात का युद्ध
21 फरवरी, 1849
संदर्भ
ब्रिटिश पैदल सेना
ब्रिटिश घुड़सवार सेना
सिक्ख पैदल सेना
सिक्ख घुड़सवार सेना
लोकवुड और हेयरसे
जमालपुर
युद्ध के बाद ब्रिटिश पैदल सेना
सिक्ख शिविर
सिक्ख शिविर
गुजरात
सिक्ख घुड़सवार सेना
लोकवुड
और हेयरसे
कालरा
लोकवुड
और हेयरसे
विश
गिलबर्ट
कालराकला
मारखम
गिलबर्ट
माउन्टेन
सिक्ख घुड़सवार सेना
भारी तोपखाना
डुडास
थोकवैल
और व्हाइट
होगन
होगन
डुडास
थोकवैल और व्हाइट
शादीवाल
शिविर
ब्रिटिश सेना और सामान
काश्त-योग्य भूमि
नाला
नाला
नाला
चिनाब नदी
पत्तन
पत्तन
ब्रिटिश सेना का चिलियांवाला से मार्च
अंग्रेजी मील
0 1 2 3 4 5

निकाला दे दिया गया और पजाब को 29-3-1849 को अग्रेजी राज्य मे सम्मिलित कर लिया गया। लाहौर दरबार का इस तरह अन्त हो गया।

मूल्यांकन

साधारण तौर पर इस युद्ध को अग्रेज सरकार और अंग्रेज इतिहासकारो ने दूसरे अग्रेजो और सिक्खो के युद्ध का नाम दिया है। परन्तु इस सघर्ष के तत्त्वो को सामने रखते हुए और जो शासन प्रबन्ध उस समय था उसके दृष्टिगत ऐसा कहना एक बडी भूल होगी। अग्रेजो ने स्वय यह स्वीकार किया है कि पहले मुलतान का विद्रोह एक स्थानीय घटना थी जिस को पजाब मे अग्रेजो के अधीन नये शासन प्रबन्ध के विरुद्ध असतोषजनक समझना चाहिए। दीवान मूलराज जो कि पहले मुलतान का गवर्नर था उस पर नये प्रतिबन्ध लगाये गये जो कि उसको अस्वीकार थे। अत उसने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। फिर उसको आदेश दिया गया कि वह अपना कार्यभार नव-नियुक्त गवर्नर को सौप दे। इस कार्य के लिये दो अग्रेज अधिकारी मुलतान भेजे गये। परन्तु उन पर फौज के कुछ आदमियो ने आक्रमण किया और घायल कर दिया जिससे वहा की स्थिति बिगड गई और मूलराज को अग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करना पडा।

इस बीच यह बिल्कुल स्पष्ट है कि लाहौर दरबार का सारा कार्य अंग्रेज रेजीडेन्ट के अधीन था। उसके सब सहायक अग्रेज अधिकारी लाहौर मे मौजूद थे और अग्रेजो के पंजाब मे प्रवेश पर किसी किस्म का प्रतिबन्ध नही था। जैसा कि लार्ड हार्डिग ने स्वय स्वीकार किया था अग्रेजों और सिक्खो के प्रथम युद्ध के पश्चात् लाहौर दरबार के साथ ऐसे राजनीतिक प्रबन्ध स्थापित किये थे कि पंजाब के शासन का सारा काम अग्रेज रेजीडेन्ट के अधीन आ गया था और राज्याध्यक्ष को अथवा महाराजा दलीप सिंह को किसी किस्म के हस्तक्षेप और किसी काम मे परिवर्तन का कोई अधिकार नही रहा था। शासन प्रबन्ध के किसी भी विभाग मे कोई भी कारवाई अंग्रेज रेजीडेन्ट की आज्ञा के बगैर नही हो सकती थी। इस पृष्ठभूमि मे यह मानना पडेगा कि मुलतान का विद्रोह रेजीडेन्ट के नियत्रण के अधीन था और इसकी सारी जिम्मेदारी उसके ऊपर होनी चाहिए थी।

इसी तरह सरदार चतर सिंह अटारीवाला का रोष भी अग्रेजों के विरुद्ध था जो कि पंजाब के शासन प्रबन्ध को इस तरीके से चला रहा था कि उसके अधीन वरिष्ठ परिवारों और पुराने सरदारों का सम्मान नहीं रहा था। इसके अतिरिक्त इस परिवार के निजी मामलों में भी अनावश्यक हस्तक्षेप किया जाता था। अतएव अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान के लिए उनका विद्रोह करना भी स्थानीय घटना से अधिक नही समझा जाना चाहिए था जिस की सारी जिम्मेदारी अंग्रेज रेजीडेन्ट के ऊपर होनी चाहिए थी। सर्वाधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि इस कथित युद्ध के समय जिस को लार्ड डलहौजी ने सिक्खों की तरफ से एक सारे राष्ट्र का विद्रोह और युद्ध की घोषणा कहा है अंग्रेज रेजीडेन्ट और उसके सारे सहायक "शत्रु" राजधानी मे उपस्थित रहे। उनके साथ महाराजा के राजकाज के चलाने के लिए बनाई गई रिजैन्सी

काउन्सिल ने पूर्ण सहयोग दिया और उनकी सेना को चिनाब और उससे भी आगे जेहलम तक जाने दिया और उसको सब प्रकार की सप्लाई, अनाज आदि पजाब से प्राप्त करने दिया गया। अतः इन सब बातो के दृष्टिगत इस सारी कारवाई को किस रूप मे पजाब की तरफ से युद्ध की घोषणा कहा जा सकता है ? दो राष्ट्रो मे युद्ध होने पर सबसे पहली कारवाई शत्रु देश के सब अधिकारियो और दूतो आदि को उस देश से चले जाने का आदेश होता है। अग्रेजो ने स्वय लाहौर दरबार के वकील राय किशन चन्द भण्डारी को सन् 1845 में पहले युद्ध के समय लुधियाना से चले जाने का आदेश दिया था। किस अतर्राष्ट्रीय आधार पर अग्रेजो के रेजीडेन्ट या उनके सहायक या उनकी फौजे "दुश्मन" के देश मे रहने दी गई ? यह एक पहेली है। लार्ड डलहौजी के साथ लाहौर स्थित रेजीडेन्ट के गुप्त पत्र व्यवहार से यह भी सिद्ध होता है कि उन्होने रेजीडेन्ट को यह भी आदेश दिया था कि वह उस समय तक दरबार को अग्रेजो की युद्ध करने की इच्छा से वाकिफ न होने दे जब तक कि गवर्नर जनरल पजाब के अन्दर अग्रेज फौजो के प्रवेश के मुकम्मल प्रबन्ध न कर ले। अन्तर्राष्ट्रीय परम्परा और सबधो का मूल आधार यह है कि युद्ध की स्थिति मे दूसरे देश के किसी नौकर को, जिस देश के साथ युद्ध की घोषणा की जाए, अपने देश मे न रहने दिया जाए।

सारी कारवाई का अच्छी तरह से अध्ययन करने के पश्चात् यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि 1848-49 के सघर्ष को अग्रेजो और सिक्खो के बीच दूसरे युद्ध का नाम देना बिल्कुल गलत है एक प्रकार से कुछ स्थानीय घटनाओ को जानबूझ कर बढने दिया गया और ऐसी हालत मे जब कि किसी किस्म के विद्रोह आदि की सारी जिम्मेदारी अग्रेजी रेजीडेन्ट के ऊपर डालनी चाहिए थी, क्योकि सारा कार्यभार उसके सुपुर्द था उसे "एक राष्ट्रीय युद्ध घोषित करना अग्रेजों की एक चाल थी।" "यह कहना सत्य है कि पजाब को हमेशा के लिए हडप करने के लिए यह अंग्रेजों की एक चाल थी। इसको अग्रेजो और सिक्खों के दूसरे युद्ध का नाम देना एक ऐतिहासिक धोखा है।"

(ग) लाहौर दरबार का पतन

जहाँ यह बात रणजीत सिह के हक मे प्रसिद्ध इतिहासकार, परिसप के शब्दों में इस प्रकार कही जा सकती है कि, "उसने पजाब को एक बिखरे हुए संघ के रूप में पाया जहाँ पर कि मराठो के आक्रमण आरम्भ हो गये थे और जहाँ के बारे में यह स्पष्ट नजर आता था कि अग्रेज उस पर अधिकार कर लेगे, ऐसे समय मे अपनी योग्यता से उसने सारे पंजाब को अपने अधीन कर के एक शक्तिशाली राजतंत्र स्थापित किया और काबुल से उसका सबसे सुन्दर प्रान्त पेशावर छीन लिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ अपने व्यवहार मे भी उसने ऐसी नीति अपनाई कि अपने जीवन मे उसने अंग्रेजों के साथ बहुत अच्छे सबंध कायम रखे और उनको अपने राज्य मे हस्तक्षेप करने का कोई मौका नही दिया। इस तरह अराजकता को दूर

करके पजाब मे महाराजा रणजीत सिंह ने सुचारु रूप से शासन प्रबन्ध कायम किया। परन्तु जहाँ उसकी सफलता इतनी प्रशसनीय थी, यह भी मानना पडेगा कि यह सब सफलता उसके अपने व्यक्तित्व पर आधारित थी और उसके साथ ही समाप्त हो गई। जितनी कि उसकी उन्नति चमत्कारपूर्ण थी उतना ही उसके राज्य का पतन तात्कालिक था"। महाराजा रणजीतसिंह कहाँ तक अपने राज्य के पतन के लिए स्वय जिम्मेदार थे, इसका हम विस्तारपूर्वक वर्णन पहले ही कर चुके है। परन्तु उसके अलावा भी कई ऐसे कारण थे जिनसे लाहौर दरबार का पतन हुआ। यहाँ उन्ही कारणो का वर्णन अभीष्ट है।

1. उसके शासन तत्र की एक बडी कमजोरी यह थी कि वित्त विभाग इस किस्म का कायम किया गया था जिससे सारे लोगो को काफी कठिनाई हुई थी। महाराजा अपनी सुविधा के लिए राज्य को बडे-बडे टुकडो मे बाँटकर उन्हे सबसे बडी बोली देने वाले को ठेके पर देने की व्यवस्था की थी जिस को 'अजारादारी" कहते है। इसका मुख्य कारण यह था कि उसको भूमि से होने वाली आमदनी का निश्चित रूप मे प्रबन्ध करने के लिए आसानी हो गई। यह ठेका कई सालो के लिए दिया जाता था। और महाराजा का उद्देश्य केवल अधिक से अधिक धन प्राप्त करना मालूम होता था। ऐसे वित्तीय प्रबन्ध मे ठेकेदार अपने लिए अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहते थे और प्रजा के हित का पूरा ध्यान नही रखते थे। प्रजा को किसी किस्म की सुविधा के लिए राजा किसी तरह से भी जिम्मेदार नही था। इसका परिणाम असतोष के रूप मे निकला और साधारण किसानो को ठेकेदारो के लिए धन कमाने का साधन समझा जाने लगा। इसके साथ-साथ ही चुगी आदि का प्रबन्ध भी इतना त्रुटिपूर्ण व नाकस था कि लोगो को उससे काफी कठिनाई होती थी।

2. महाराजा के अधीन यूरोपियन अफसर विश्वासपात्र सिद्ध नही हुए। उनमे से कुछ तो अग्रेजो के जासूस के तौर पर भी काम रहे थे और महाराजा की मृत्यु के पश्चात् उनपर किसी किस्म का भरोसा नही रहा था।

3. **अयोग्य अधिकारी** : लाहौर दरबार की सबसे बड़ी कमज़ोरी महाराजा रणजीत सिंह के अयोग्य उत्तरधिकारी थे। महाराजा को शायद इस बात का अच्छी तरह से ज्ञान था कि उसके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र खड़ग सिंह अयोग्य शासक सिद्ध होगा। तथापि उसने कोई अच्छा प्रबन्ध करने की चेष्ठा नही की। और यह समझ कर कि राजा ध्यान सिह जो कि उसके अधीन प्रधान मंत्री का काम करता था, कामकाज को सुचारु ढग से चलाता रहेगा। दरबार मे महाराजा रणजीत सिंह के मरणोपरान्त कई दल उत्पन्न हो गये और ये दल एक दूसरे की शक्ति को कम करने के लिए सदैव उत्सुक रहे। महाराजा खड़ग सिंह की मृत्यु के बाद आशा की जाती थी कि महाराजा रणजीत सिंह का पौत्र कुँवर नौनिहाल सिंह जो कि कई बातों मे अपने दादा के गुणो से पूर्ण था, बड़ा योग्य शासक होगा। परन्तु दुर्भाग्य से उसको राज्य करने का अवसर ही नही मिला और वह इस दुर्घटना मे मारा गया।

इस दुर्घटना मे किसी दल का हाथ या किसी व्यक्ति ने अपने स्वार्थ के लिए ऐसा किया था यह आज तक स्पष्ट नही हो सका ।

4. महाराजा शेर सिंह का शासन काल उनकी अपनी और उस समय की असफलताओ के कारण बदनाम है । उसने राजकाज की तरफ किसी किस्म का ध्यान न देकर स्थिति को सुधारने की कोई कोशिश नही की । जो प्रबध पहले ही खराब हो रहे थे वे और भी खराब होते चले गये और आपसी फूट उसके अपने और राज्य के पतन का कारण बन गई ।

5. **अंग्रेजों के षड्यंत्र :** उत्तर पश्चिम की ओर अग्रेजो का बढना और रणजीत सिंह के साथ काफी कठिनाई के बाद सतोषजनक सधि कर लेना एक बडी महत्त्वपूर्ण बात थी । रणजीत सिंह को अग्रेजो की अधिक शक्ति और योग्यता का पूर्ण ज्ञान था । बेशक उसने उनके प्रति सद्भावना रखते हुए मित्रतापूर्ण सबध स्थापित कर लिए थे, परन्तु अग्रेज़ो ने अपने स्वार्थ की पूर्ति को सदा सर्वोपरि रखा । उनकी नीति मे लगातार परिवर्तन होते रहे और उन्होने रणजीत सिंह के साथ हुई सधि का कभी पूरी तरह पालन नही किया । कई बार अग्रेज़ो ने रणजीत सिंह को उनकी अनुचित माँग मानने के लिए मजबूर किया और इस तरह यह स्पष्ट हो गया कि रणजीत सिंह अग्रेजों के विरुद्ध घुटने टेकने की पालिसी पर चल रहा है । रणजीत सिंह की पोजीशन अग्रेज़ो के मुकाबले मे एक "घोडे" की थी और अग्रेज़ो की एक "सवार" की । हर बार रणजीत सिंह को अग्रेज़ो की मनमानी के सामने भुकना पडता था । अग्रेजो ने उत्तर पश्चिम की तरफ बढने की अपनी नीति को बिल्कुल तिलाजली नही दी थी । उन्होने रणजीत सिंह की शक्ति को एक विशेष सीमा से आगे बढने से रोकने के लिए सिंध मे कारवाई आरम्भ कर दी थी । वे नही चाहते थे कि रणजीत सिंह इस इलाके पर कब्जा कर ले । इसलिए उन्होने सिंध के अमीरो के साथ मिलकर अपनी नीति से उनको अपने अधीन कर लिया । इस तरह अफगानिस्तान के साथ रणजीत सिंह का विवाद पुराना था और अग्रेजो ने सन् 1838 मे उसको जबरदस्ती अपने साथ सम्मिलित करके शाहशुजा को अफगानिस्तान के तख्त पर बिठाने की कोशिश की ।

रणजीत सिंह के मरणोपरान्त अग्रेजो ने आगे बढने की स्कीम बना ली थी और लार्ड नार्थ ब्रुक के समय में इसका बाकायदा प्रोग्राम भी तैयार कर लिया गया था । परन्तु अग्रेज़ यह चाहते थे कि पजाब मे स्थिति इतनी खराब हो जाए कि साधारण लोग पजाब पर उनके अधिकार करने का विरोध न करे और उनके लिए हस्तक्षेप करने को उचित समझे । यह बात किसी से छुपी नही थी कि अग्रेजो ने उत्तर पश्चिमी सीमा पर अपनी सैनिक शक्ति बढा ली थी, अधिक मात्रा मे युद्ध सामग्री इकट्ठी कर ली थी और अन्त मे सतलुज को पार करने के लिए किश्तियो का पुल बनाने का सब प्रबन्ध कर लिया था । अग्रेज अन्दर-अन्दर से लाहौर दरबार के लिए कठिनाइयाँ पैदा कर रहे थे और एक दल को दूसरे दल के विरुद्ध उकसाते थे । ऐसी स्थिति मे जबकि सेना बिल्कुल निरकुश हो गई थी और शासन प्रबन्ध चलाने वाला कोई योग्य उत्तराधिकारी नही था, दरबार का पतन पूर्ण तथा निश्चित था ।

6 **दरबार के लीडरों की गद्दारी** रही-सही कसर पूरी करने के लिए लाहौर दरबार के उच्च अधिकारी इतने स्वार्थी और सकीर्ण दृष्टिकोण वाले सिद्ध हुए कि वे स्थिति को सुधारने की बजाय उसको और बिगाडने मे लगे रहे। लाहौर मे सेना को मनमानी कारवाई करने की खुली छुट्टी थी और बडे से बडा अधिकारी भी उनसे भयभीत था। साथ ही, आपसी ईर्ष्या और द्वेष के कारण उस समय के लीडर मिलकर काम नही करना चाहते थे। दरबार बुरी तरह से दलो की दुश्मनी का अखाडा बना हुआ था और नित-नये उपद्रव होते रहते थे। बडी शोक वाली बात यह थी कि ऐसी स्थिति मे लाहौर दरबार के सर्वोच्च अधिकारी अग्रेजो के साथ साँठ-गाँठ कर रहे थे। मिसाल के तौर पर, अग्रेजो के साथ युद्ध के समय प्रधान मत्री राजा लाल सिंह और सेनापति सरदार तेजासिंह दोनो ही अंग्रेजो से अन्दर ही अन्दर मिले हुए थे। ऐसी स्थिति मे लाहौर दरबार के स्वतत्र रहने की भला क्या आशा की जा सकती थी ? अग्रेजो ने ऐसी स्थिति का पूर्ण लाभ उठाया और उन्होने एक तरफ राजा गुलाब सिंह. डोगरा को अपने साथ मिला लिया और दूसरी तरफ लाहौर दरबार मे फूट डालकर उसकी शक्ति को समाप्तप्राय कर दिया। इन सभी कारणो से लाहौर दरबार का पतन अवश्यभावी था।

(घ) पंजाब का अंग्रेजी राज्य में विलय (सन् 1849)

घोषणा . 29-3-49 को लाहौर के किले मे शीश महल के प्रागण मे एक विशाल दरबार का प्रबन्ध किया गया जिसमे विधिवत् पजाब के अग्रेजी राज्य मे विलय की घोषणा की गई और यह सारी कारवाई कुछ मिनटो मे समाप्त कर दी गई।

महाराजा दलीप सिंह को जिन की आयु केवल 11 वर्ष की थी उस दिन अन्तिम बार अपने पिता के सिंहासन पर बिठाया गया और सब प्रसिद्ध सरदार और अहलकार उस दरबार मे उपस्थित थे। अग्रेजो के विशेष अधिकारी विदेश-सचिव सर एच० इलियट ने, जो कि कुछ और अग्रेज अधिकारियों के साथ वहाँ उपस्थित था, गवर्नर जनरल के आदेशानुसार यह घोषणा पहले अग्रेजो मे पढकर सुनाई फिर इसका अनुवाद फारसी और हिन्दुस्तानी मे किया गया कि लाहौर राज्य का अन्त होने पर पजाब का विलय अंग्रेजी राज्य मे कर लिया गया है। इसके पश्चात् एक कागज् पेश किया गया जिस पर वे शर्ते लिखी हुई थी जिसके अनुसार दलीप सिंह, उसके परिवार और दूसरे प्रसिद्ध सरदारो के साथ व्यवहार किया जाना था। इसको महाराजा दलीप सिंह के साथ अतिम सधि कहा जा सकता है। इस सब को पढने के बाद यह पत्र सरदार तेजासिंह को दे दिया गया जिस ने महाराजा दलीप सिंह को पेश किया और उनके हस्ताक्षर करवाकर अग्रेज़ विदेश-सचिव को लौटा दिया। इस तरह यह सब नाटक समाप्त हो गया।

अंग्रेजों की कारवाई की समीक्षा

1. सन् 1848-49 के कथित "युद्ध" की समाप्ति पर अग्रेजों के सामने दो

रास्ते थे (1) महाराजा दलीप सिंह को राज्याध्यक्ष रहने दिया जाए और पजाब पर अग्रेजो का नियत्रण और भी कडा और पूर्ण कर दिया जाए। (2) पजाब का अग्रेजी राज्य मे विलय कर लिया जाए।

दोनो मे से अतिम कारवाई के लिए लार्ड डलहौजी ने पहले ही फैसला किया हुआ था। और जैसा कि दूसरी कथित अग्रजो और सिक्खो की लडाई के बारे मे मूल्याकन किया जा चुका है यह सारी कारवाई दुनिया को धोका देने के लिए की गई थी और अग्रेजो ने पहले ही यह मन बना रखा था कि जल्दी से जल्दी पजाब को अग्रेजी राज्य मे शामिल कर लिया जाए। पहले अग्रेजो और सिक्खो के युद्ध के पश्चात् लार्ड हार्डिग ने पजाब के विलय का नाम न लेते हुए भी ऐसा प्रबन्ध किया था कि पजाब हर प्रकार से अग्रेजों के अधीन आ जाए। परन्तु पजाब ने अपने सम्मान के लिए और कुछ गर्वीले सरदारो ने अपनी मान हानि के कारण सब कठिनाइयो के होते हुए भी अग्रेजो को पजाब से बाहर निकालने की अन्तिम कोशिश की थी जो कि विफल हो गई। अग्रेज अब किसी किस्म का खतरा मोल लेना नही चाहते थे। इस लिए पजाब का स्पष्ट रूप मे विलय अनिवार्य था।

लार्ड डलहौजी की पजाब के प्रति पालिसी के बारे मे भिन्न-भिन्न विचार है। गवर्नर जनरल को काउन्सिल मे भी सर जी० आर० क्लार्क ने उनके इस फैसले से असहमति प्रकट की थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरैक्टरो मे भी सब का मत एक नही था। 13 इसके पक्ष मे थे और 7 इसके विरोध मे।

लार्ड डलहौजी के समर्थको मे इतिहासकार मार्शमैन और ड्यूक ऑफ आर्गाइल प्रसिद्ध है। उनका विचार है कि पजाब का विलय उस समय की स्थिति के कारण हुआ था क्योकि—

1 लाहौर दरबार ने अग्रेजो के साथ की गई सधि का उल्लघन किया था। उनके विचार मे अग्रेज रेजीडेन्ट की आज्ञा का पालन न करके दरबार मे युद्ध जैसी कारवाई की थी।

2 लाहौर दरबार और विशेष तौर पर महारानी जिन्दा अग्रेजो के विरुद्ध षड्यत्र कर रहे थे और उनके अधिकार को खत्म करना चाहते थे। लार्ड डलहौजी के विचार मे प्रसिद्ध सिक्ख दरबार अग्रेजो के नियत्रण को स्वीकार नही कर रहे थे। इसलिए उनके विरुद्ध यह कारवाई बिल्कुल उचित थी।

लार्ड डलहौजी के विरोधी जिन मे ट्राटर प्रसिद्ध है, डलहौजी की नीति को "बिल्कुल अनावश्यक और व्यावहारिक सिद्धान्तो के विपरीत" मानते है। उनका विचार है कि लार्ड डलहौजी ने जानबूझकर मुलतान के विद्रोह को फैलने दिया और इसको एक सार्वजनिक विद्रोह बना दिया। मुलतान के विद्रोह को दबाने के लिए कारवाई न करके उन्होने पजाब के राष्ट्रवादी नेताओ को अग्रेजो के विरुद्ध कारवाई को प्रोत्साहन दिया। इन सब बातो का एक मात्र उद्देश्य ऐसा बहाना ढूँढना था जिससे लार्ड डलहौजी पजाव का अग्रेजी राज्य मे विलय कर सके। इसी कारण महारानी जिन्दा को पजाव से बाहर बनारस भेज दिया गया और सरदार

चतर सिह अटारीवाला को उसके साथ हुए अपमानजनक व्यवहार के कारण शस्त्र उठाने के लिए बाध्य कर दिया। लार्ड डलहौजी ने इस गडबड को सारे पजाब मे फैलने पर प्रसन्नता व्यक्त की थी। लाहौर मे अग्रेज रेजीडेन्ट सर फ्रेडरिक को बडे हर्ष के साथ उसने लिखा था "हर जगह सिक्ख जनता अग्रेजो के विरोध के लिए उत्सुक है और इस तरह से सघर्ष की आशा बढती जा रही है। मै इसको एक अच्छा शकुन समझता हूँ। मै कई महीनो से ऐसे मौके की प्रतीक्षा कर रहा था।" इससे सिद्ध होता है कि गवर्नर जनरल एक स्थानीय गडबड को एक सार्वजनिक विद्रोह मे बदल देना चाहता था जिससे उनका असली उद्देश्य पूरा हो सके। लार्ड डलहौजी के एक और विरोधी मेजर एडवर्ड ने स्पष्ट तौर पर कहा था "यह उसका अपना विश्वास था कि अगर मुलतान विद्रोह को तत्काल समाप्त कर दिया जाता तो सिक्खो का विद्रोह उत्पन्न न होता"[1] सर हैनरी लारैंस जो कि पजाब मे रेजीडेन्ट नियुक्त किये गये थे भी इस पक्ष मे नही थे। थार्बर्न साहिब ने सत्य ही कहा था, "गवर्नमैंट ऑफ इण्डिया ने यह निर्णय कर लिया था कि पजाब के फोडे को अच्छी तरह पकने दिया जाये और आने वाली शरद ऋतु मे मलतान के विद्रोह को अच्छी तरह पकने पर नश्तर से चीर दिया जाए।" बहुमत यह सिद्ध करता है कि पजाब का विलय अन्यायपूर्ण था और उसको टाला जा सकता था। पजाब की अपनी स्थिति भी इस किस्म की नीति के लिए अनुकूल नजर नही आती थी। गुजरात की विजय के बाद पजाब मे अग्रेजो के विरोध करने की कोई शक्ति बाकी नही रह गई थी। साथ ही यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कुछ लोगो ने ही अग्रेजी राज्य के विरुद्ध कारवाई की थी। परन्तु जहाँ तक लाहौर दरबार का सबध है उसका किशोर राज्याध्यक्ष दलीप सिंह पूर्ण तौर पर अग्रेजो के सरक्षण मे था और सारा राज्य प्रबन्ध अग्रेज रेजीडेन्ट कर रहा था। उसने अग्रेजो का किसी प्रकार से विरोध नही किया था। इसलिए उसने कोई अपराध नही किया था जिसके कारण पजाब को अग्रेजी राज्य मे शामिल कर लिया जाए। इस किस्म के उदाहरण भी मिलते है कि किसी राज्य के कुछ नागरिकों के विद्रोह या उस राज्य के अपने विद्रोह के कारण उसका विलय अनिवार्य नही हो जाता। राजा दीनानाथ ने ऐसे ही विचार पजाब के विलय के बाद प्रकट करने की कोशिश की थी जबकि उसने कहा था कि अग्रेज के महान शत्रु नैपोलियन की पराजय के बाद उसके देश फ्रास को इग्लैंड मे विलय नही किया गया था। महाराजा दलीप सिंह को किस दोष के लिए यह दण्ड दिया जा रहा है? इसी तरह अग्रेजों के नेपाल राज्य के विरुद्ध युद्ध के पश्चात् नेपाल की पराजय पर नेपाल को अंग्रेजी राज्य मे शामिल नही किया गया था।" परन्तु लार्ड डलहौजी एक व्यापारिक कम्पनी के मुख्य अधिकारी के रूप में अपने राज्यकाल की सबसे बड़ी प्राप्ति अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार के रूप में दिखाना चाहता था। उसकी यह नीति बन चुकी थी कि किसी न किसी बहाने किसी छोटी-सी घटना को बढा-चढा कर और दुनिया को उसका गलत रूप दिखाकर किसी

[1]Edward, A year on the Panjab Frontier, p. 147.

क्षेत्र को हथिया लिया जाए ।

मेजर इवान्स बैल्ल ने महाराजा दलीप सिंह की सफाई पेश करते हुए बहुत सुन्दर शब्दो मे कहा है कि पजाब का विलय अग्रेजो की ओर से महाराजा के साथ "एक महान विश्वासघात था" । महाराजा अपने बालिग होने तक पूर्णतया अग्रेजों के सरक्षण मे था और सत्ता लाहौर स्थित अग्रेज रेजीडेन्ट के हाथ मे थी । अगर मूलराज ने विद्रोह किया था या उसकी देखा-देखी सरदार चतर सिंह और उनके सुपुत्र शेर सिंह ने विद्रोह किया था तो यह महाराजा के गार्डियन (अग्रेज रेजीडेन्ट) का कर्त्तव्य था कि अपराधी सरदारो को दण्ड देते न कि बेगुनाह महाराजा दलीप सिंह का राज्य छीन लेते । पजाब के अग्रेजी राज्य मे विलय की राजनीतिक और नैतिक दोनो की दृष्टियो से यह आलोचना बिल्कुल उचित है ।

पजाब का विलय जॉन लुडलो ने एक बडे मनोरजक उदाहरण के रूप मे, जिसमे अग्रेजो की चालबाजी स्पष्ट रूप मे साबित हो जाती है, वर्णन किया है । उसके कथनानुसार "आप कल्पना करे कि एक विधवा स्त्री अपने घर मे बहुत से सेवको के साथ रह रही है जोकि उसके विरुद्ध विद्रोह कर देते है और ऐसी स्थिति मे वह बाहर जाकर पुलिस के साथ भिड जाते है । पुलिस उनको काबू मे लाकर घर मे प्रवेश करके घर की मालकिन को उसको अपने नौकरों के विरुद्ध रक्षा के लिए सेवाएँ अर्पित करती है । नौकर दोबारा दगा करते है परन्तु पुलिस दूसरी बार उनको नियंत्रण मे लाने के बाद बडी नम्रता से मालकिन को सूचित करती है कि उसका घर और उसके इर्दगिर्द की सम्पत्ति अब उसकी नही रही । पुलिस उनको अपनी फीस समझ कर अपने अधिकार मे ले लेगी । उसको बाहर निकालने पर यह आश्वासन जरूर दिया जाता है कि उसको गुजारे के लिए हर साल उसकी जायदाद मे से एक पाउन्ड मे 6 पैन्स के बराबर राशि दी जायेगी । परन्तु ऐसा किये जाने पर उसको अपने हीरो की माला पुलिस आयुक्त की धर्मपत्नी को उपहार के रूप मे देनी पडेगी ।"

प्रश्न

1. Give an account of causes, events and results of the First Anglo-Sikh War.
   अग्रेजो के साथ हुए सिक्खो के प्रथम युद्ध के कारणो, घटनाओ तथा परिणामो का वर्णन कीजिए ।

2. In the outline map of Panjab show any three of the following places and explain their significance with reference to the First Anglo-Sikh War Mudki, Badowal, Sabraon, Ferushah.
   अग्रेजो के साथ हुए सिक्खो के प्रथम युद्ध के सन्दर्भ मे पजाब के नक्शे मे

निम्नलिखित स्थान उल्लिखित कीजिए एव उनका महत्त्व भी बताइए
मुदकी, बद्दोवाल, सोबराम्रो, फेरूशाह ।

3. Give an account of causes, events and results of the Second Anglo-Sikh War.
   अग्रेजो के साथ सिक्खो के दूसरे युद्ध के कारणो, घटनाम्रो तथा परिणामों का वर्णन कीजिए ।

4. In the outline map of Panjab trace the courses of the rivers—Ravi and Beas and explain the significance of those places where the Second Anglo-Sikh War was fought.
   पजाब मे रावी नदी और ब्यास नदी का बहाव दिखाइए और उन स्थानो का महत्त्व बताइए जहाँ पर कि अग्रेजो के साथ सिक्खो का दूसरा युद्ध लडा गया था ।

30

पंजाब में शान्ति की स्थापना और अंग्रेजी राज का संगठन (सन् 1849 से 1857)

बोर्ड ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन अर्थात् प्रशासन-बोर्ड के अधीन पंजाब (सन् 1849-53)

इलाकाई और राजकीय पुनर्गठन पजाब के विलय के पश्चात् पजाब के सतलुज के पार और सतलुज के पूर्व की ओर वाले दोनो खण्डो को मिलो दिया गया और एक नया प्रदेश बनाया गया और साझे शासन प्रबन्ध के अधीन कर दिया गया। उस समय के पजाब का क्षेत्रफल कोई 73 हजार वर्गमील था और उसकी जनसख्या एक करोड के लगभग थी। साथ ही इस नये प्रदेश मे पुरानी मुद्रा (जिनको नानकशाही, हरिसिंघी अथवा गोबिन्दशाही रुपया कहते थे) के स्थान पर नई मुद्रा प्रचलित की गई।

निश्शस्त्रीकरण सर्वप्रथम अग्रेजो ने अपने राज्य की स्थापना के समय पजाब मे नया आर्म्स ऐक्ट लागू किया जिसके अधीन जनता को अपने शस्त्र छोड देने का आदेश दिया गया। लोगों ने अपनी इच्छा से कई हजार शस्त्र सरकार के सुपुर्द कर दिये। पिछले विद्रोह मे वफादार रहने वाले सैनिको को इकट्ठा किया गया और उनको नौकरी मे रखा गया। बाकी सब सैनिकों की छँटनी कर दी गई। सारे प्रान्त मे किले और सुरक्षा प्रबन्ध समाप्त कर दिये गये। अग्रेजो को कागडा के किले पर अधिकार करने मे कुछ कठिनाई हुई। परन्तु वहाँ पर फौजे भेजने पर किलेदार ने किला छोडना स्वीकार कर लिया। हर प्रकार की सैनिक जागीरे समाप्त कर दी गई। पेशावर के इलाके मे निश्शत्रीकरण लागू नही किया गया जिस का स्पष्ट अर्थ यह था कि वहाँ की जनता निश्शस्त्र नही रह सकती थी, जनसाधारण की सुरक्षा के लिए काफी अंग्रेज फौज भी उपलब्ध नही थी।

बोर्ड के सदस्य और अधिकार : पहलेपहल प्रशासनिक बोर्ड इसलिए बनाया गया था कि पजाब भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रशासनो के अधीन रह चुका था और एकदम अग्रेजी प्रशासन मे उसे लाना उचित नही समझा गया था। पजाब प्रान्त को इसलिए "नान-रैगुलेशन" घोषित कर दिया गया जिस का अर्थ यह था कि अग्रेजी राज्य के दूसरे प्रान्तो के कानून और कायदे इस पर लागू नही समझे जाएँगे। परन्तु धीरे-धीरे परिवर्तन करके पजाब को भी दूसरे प्रान्तो के स्तर पर लाया जायेगा। बोर्ड के

सदस्य वे लोग बनाये गये जो कि योग्य और सर्वोच्च थे। परन्तु वह साधारण शासन प्रणाली से बाध्य नही थे। इस किस्म का शासन प्रबन्ध उस समय पजाब की स्थिति के बिल्कुल अनुकूल समझा गया क्योकि इस प्रदेश मे रहने वाले सारे लोग लडाकू थे और उनकी राजनीतिक सत्ता को छिने बहुत थोडा समय हुआ था। नये सिस्टम मे तीन मुख्य सरदार बनाये गये। सबसे पहले साधारण प्रान्त को उचित जिलो मे बाँट दिया गया और सिविल अधिकारियो को वित्तीय, न्यायिक और व्यवस्था रखने के अधिकार दिये गये। ऐसा प्रबन्ध किया गया कि लोगो की परम्परा के अनुसार सरल तरीके से यहाँ का शासन प्रबन्ध किया जाए।

त्रिमूर्ति : बोर्ड के प्रमुख सदस्य तीन महानुभाव (1) हैनरी लारैंस, प्रधान, (2) जान लारैंस, वित्तीय और कर सबधी मामलो के इचार्ज, और (3) चार्ल्स मैल्विल कानूनी और न्यायिक मामलो के मैम्बर थे। उन की सहायता के लिए दूसरे प्रदेशो से फौज और सिविल प्रशासन से सबधित बडे योग्य और अनुभवी अधिकारी इकट्ठे किये गये। अपने कार्य करने के लिए बोर्ड को बडे विशाल अधिकार दिये गये थे और जहाँ वे अपना काम करने मे अलग-अलग थे उनकी जिम्मेदारियाँ सयुक्त थी।" नये प्रान्त को अच्छे ढग से चलाने के लिए ऐसे अधिकारी प्राप्त हुए जिन के बारे मे कहा गया था "कि बहुत कम इतने योग्य और वरिष्ठ अधिकारी एक साथ किसी प्रशासन को उपलब्ध हुए होगे"। उन मे से प्रमुख अधिकारियो के नाम हरबर्ट एडवर्ड्स, जान निकल्सन, मिस्टर ऐबट और दर्जनों दूसरे अधिकारी थे।

बोर्ड की कारगुजारी : आवश्यक आरम्भिक कारवाई के शुरू होने पर बोर्ड ने उचित सैनिक प्रबन्ध किये, प्रान्त की सुरक्षा को उच्चतम प्राथमिकता दी गई थी। इस कार्य के लिए "गाइडकोर" को, जोकि सन् 1846 मे आरम्भ की गई थी, और शक्तिशाली बनाया गया और उसमे अधिक पैदल और घुडसवार सैनिक भर्ती किये गये। उद्देश्य यह था कि उत्तर पश्चिमी सीमा पर लडाकू कबीलो के विरुद्ध अच्छा सुरक्षा प्रबन्ध किया जाए।

नई रेजिमैन्टों की भर्ती 10 नई रेजिमैन्टो को जिन मे 5 पैदल और 5 घुडसवार थी आन्तरिक सुरक्षा के लिए भर्ती किया गया। इसका नाम "पजाब फोर्स" रखा गया था। इसमे खालसा फौज के वफादार सैनिक भी सम्मिलित कर लिये गये। साथ ही मिलिट्री पुलिस की स्थापना की गई। 8 हजार पुलिस कर्मचारी, जिन मे अधिकतर पजाबी मुसलमान थे, भर्ती किये गये। उनका कार्य मुख्यत खजाने की देखभाल, जेलो पर पहरा देना और सडको पर पैट्रोल करना था। इनकी सहायता के लिए एक गुप्त पुलिस (खुफिया) भी भर्ती की गई। इस विभाग का काम अपराधियों को पकडना और जनता की रुचि की जाँच करना था। इसके साथ प्राचीन समय से चले आ रहे "खोजी" भी लगाये गये जो मनुष्यों और पशुओ के पाँव के निशान देखकर अपराधी को पकडवा सकते थे। बाकायदा पुलिस के अलावा ग्राम चौकीदार भी नियुक्त किये गये जिन का काम गाँवो मे होने वाली घटनाओ की सूचना देना था। पुलिस और फौज की कुल

संख्या कोई 50 हजार थी और इनका विशेष कार्य प्रान्त मे शान्ति और व्यवस्था बनाए रखना था।

सिविल प्रबन्ध . बोर्ड ने शान्ति स्थापित करने के पश्चात् लोगो की भलाई के काम अर्थात् पब्लिक वर्क्स आरम्भ किये। सर्वप्रथम जरनैली सडक (जी० टी० रोड) को फिर से चालू किया गया और इसको पेशावर तक पहुँचा दिया गया। पुरानी नहरें साफ की गई और उनमे से ब्राचे निकाली गई ताकि सिचाई की सुविधा बढाई जा सके। दरख्त उगाने का काम बजर भूमि पर आरम्भ किया गया। नई किस्म की इमारती लकडी के वृक्ष लगाये गये और कुछ जगल "रख" के तौर पर सुरक्षित बना दिये गये। पशुओ के लिए खुले घास के मैदानो का भी प्रबन्ध किया गया। इन सब साधनो से खेतीबाडी मे काफी प्रगति हुई। पजाब मे अच्छी कपास, गन्ना, सन, तम्बाकू और कुछ जमीन के नीचे उगनेवाली सब्जियो का प्रबन्ध किया गया। पहाडों मे विशेष तौर पर मर्री और कागडा के इलाको मे चाय उगाने और रेशम के कीडे पालने का प्रबन्ध किया गया जिन से कि सिल्क तैयार की जा सके। इस काम के लिए शहतूत के वृक्ष उगाये गये। नई किस्म की ऊन प्राप्त करने के लिए इटली से मेरोनी नस्ल की भेडे लाकर यहाँ पालने का प्रबन्ध किया गया।

भूमि का पुनर्गठन · महाराजा रणजीत सिंह के उत्तराधिकारियों के काल मे भूमि का वह प्रबन्ध जो उसने पंजाब मे स्थापित किया था बिल्कुल शिथिल हो गया था। भूमिकर लगाने का कार्य और भूमिकर इकट्ठा करने का सिलसिला बहुत ढीला पड गया था। इस कारण राज्य की आमदनी मे बहुत गडबड हो गई और कोष के खाली होने के कारण सेना मे असतोष भी बढ गया था।

पंजाब का अंग्रेजी राज्य मे विलय होने से पहले लाहौर दरबार के अधीन कोई 45 किस्म के भिन्न-भिन्न कर थे। प्रशासकीय बोर्ड ने अब आतरिक कर हटा दिये और महसूल चुंगी केवल सीमाओ पर स्थापित की गई और एक स्थान पर ही कर इकट्ठा किए जाने की व्यवस्था की। नशेवाली वस्तुओं पर भी कर लगाया गया और दरियाओं से पार जाने वाले स्थानों पर कर व्यवस्था लागू की गई। सिविल अदालतो मे होने वाले मुकदमों पर स्टाम्प ड्यूटी लागू की गई। इस तरह से जो आतरिक कर हटाए गए थे उनका नुकसान पूरा हो गया और कर इकट्ठे करने का जटिल तरीका जिसमे कुल आमदनी केवल 16 लाख होती थी हटा दिया गया। ऐसा करने से जनसाधारण स्थानीय अधिकारियों की लिप्सा से बच गए।

कर लागू करने अर्थात् रैवन्यू सैटलमैन्ट का बाकायदा प्रबन्ध किया गया और भूमिकर की मात्रा भी बहुत कम कर दी गई और अधिक से अधिक कर 1/4 से लेकर 1/8 वसूल करने का प्रबन्ध किया गया। इस तरह मात्रा कम होने के बावजूद भी किसी बिचौले के न होने के कारण मालिया मे कोई नुकसान नही हुआ। इसके विपरीत नये लाभदायक प्रबन्ध करने से सरकार की आमदनी बढ गई और वार्षिक बजट मे लाभ होने लगा। विलय के पश्चात् पजाब एक खुशहाल प्रान्त बन गया।

सामाजिक और शिक्षा प्रबन्ध प्रशासकीय बोर्ड ने कुछ बुरे रस्मोरिवाज हटाने का यत्न किया। सती प्रथा को बन्द कर दिया गया। बच्चो को मारने के रिवाज भी हटा दिये गये और विवाह के रिवाज मे सशोधन किया गया। मरणोपरन्त सम्पत्ति हस्तातरण के प्रबन्ध मे भी यथोचित परिवर्तन किया गया। छोटे-छोटे मामलो मे ग्राम पचायतों को निर्णय करने का अधिकार दिया गया।

नई शिक्षा नीति का निर्णय होने तक पुरानी शिक्षा प्रणाली को ही चालू रखा गया। इस तरह से धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष शिक्षा दोनो को चलते रहने दिया गया। स्थानीय पाठशालाओ और मदरसो को कुछ सहायता देकर काम करने दिया गया। बडे-बडे शहरो मे केन्द्रीय मॉडल स्कूल स्थापित कर दिये गये।

फुटकर और सामान्य प्रबन्ध बोर्ड ने कानूनो का एक जगह सग्रह करके उनको एक सूत्र अथवा 'कोड' का रूप दे दिया और नये न्याय सबधी सिद्धान्तों की व्याख्या करने का विशेष प्रबन्ध किया जिन का आधार लोगो के पुराने रस्मोरिवाज पर था। इस कोड को सर आर० मोण्टगुमरी और आर० टैम्पल ने सम्पन्न किया। इस तरह से भिन्न-भिन्न स्थानीय रिवाजो को सक्षिप्त रूप मे वर्णन करके उनमे प्रगतिशील सशोधन किये गये।

सिविल जागीरो की पड़ताल लाहौर दरबार के अधीन प्राप्त की हुई सिविल जागीरो की छानबीन की गई। इसका उद्देश्य इस बात का पता लगाना था कि प्रसिद्ध व्यक्तियो ने धन और सम्पत्ति किस तरह से प्राप्त की थी और वह कहाँ तक उचित थी। हर एक मामले मे अलग-अलग निर्णय किये गये। इस बारे मे प्रशासकीय बोर्ड के दो प्रसिद्ध सदस्यो—हैनरी लारैंस, प्रेजीडेण्ट और उसके भाई जॉन लारैंस, मैम्बर के बीच काफी मतभेद था। हैनरी जागीरदारो के साथ सहानुभूति रखता था और जॉन लारैंस सामतो के विरुद्ध था और यह चाहता था कि उनकी जागीरे को छोटे-छोटे भूमि के मालिको मे बॉट देना चाहिये। लार्ड डलहौजी उस समय के गवर्नर जनरल जॉन लारैंस के साथ सहमत थे। अन्त मे गवर्नर जनरल का मत मान लिया गया और जागीरदारी का अन्त कर दिया गया जिसके कारण पजाब मे यू० पी० (सयुक्त प्रान्त) की तरह से बहुत बडे-बडे भूमिपति नही रहे और यह प्रदेश छोटे-छोटे किसानों का प्रदेश बन गया।

प्रशासकीय बोर्ड का अन्त. उपर्युक्त कारणो से बोर्ड के सदस्यों मे गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गया। यह भी स्पष्ट हो गया कि गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी एक जूनियर सदस्य जॉन लारैंस के निर्णयो मे ज्यादा विश्वास रखते थे और बहुत से मामलों में प्रधान और सीनियर मैम्बर हैनरी लारैंस के सुझाव अस्वीकार कर दिये जाते थे। इस सकट का समाधान करने के लिए दोनों लारैंसों ने अपने पदो से त्यागपत्र दे दिया। सर हैनरी लारैंस को राजपूताना मे रेजीडेन्ट बनाकर भेजा गया और अकेले जॉन लारैंस को पजाब का चीफ कमिश्नर बना दिया गया। इस प्रकार प्रशासकीय बोर्ड को भग कर दिया गया।

मूल्यांकन : अपने थोड़े से कार्य काल मे बोर्ड ने बहुत सराहनीय काम किया। इस के बारे मे निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि "बोर्ड ने चार साल के थोडे-से समय मे उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की और पूर्ण रूप से अपने काम को सम्पन्न किया। यह सब कुछ उस प्रदेश मे किया गया जिसमे विलय से पहले बाकायदा शासन प्रबन्ध नही था। उसके स्थान पर एक बिल्कुल नये और सब प्रकार से पूर्ण प्रशासन की व्यवस्था की गई। जिसके सैनिक, सिविल और वित्तीय विभाग भिन्न-भिन्न थे। ऐसे शासन प्रबन्ध से तेजी से पजाब की प्रगति का पक्का प्रबन्ध किया गया। सारे प्रान्त मे शान्ति स्थापित करके सडके बनाई गई, नहरे खोदी गई, डकैती का अन्त किया गया और जेले बनाई गई। पुराने कानूनो को एक सूत्र मे पिरोया गया, मुद्रा मे सशोधन किया गया और कृषि की प्रगति को प्रोत्साहन दिया गया।" इस तरह से यह कहा जा सकता है कि बोर्ड को पूरी सफलता प्राप्त हुई। अच्छे काम करने के लिए गवर्नर जनरल और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरैक्टर्ज ने पजाब को "समृद्ध और सम्पन्न" बनाने के लिए बोर्ड की बहुत प्रशसा की और उसका धन्यवाद किया।

(ख) पंजाब के चीफ कमिश्नर के रूप में, जॉन लारैंस (1853-1858)

पजाब के प्रशासन के सर्वेसर्वा बनने पर जॉन लारैंस को चीफ कमिश्नर के रूप मे केन्द्र से सीधे सम्बन्ध रखने का अधिकार प्राप्त हो गया। उसकी सहायता के लिये एक न्याय कमिश्नर और एक भूमिकर आयुक्त की सेवाएँ उपलब्ध की गईं। नये प्रबन्ध के अधीन पजाब मे शान्ति स्थापना का काम और भी तेजी से होने लगा। जॉन लारैंस बेशक पहले सामन्तो के विरुद्ध थे परन्तु उन्होने अपना रवैया काफी नम्र कर लिया। बहुत से उच्च परिवारो को काफी पैन्शने दी गई और उनके अधिकारो को भी बहुत हद तक सुरक्षित बना दिया गया। राजविधवाओ को और दूसरे पुराने सेवकों को भी जीविका प्रदान की गई। धर्म स्थानो पर और विशेषकर डेरा बाबा नानक, तरन-तारन, अमृतसर, आनन्दपुर साहिब जैसे प्रसिद्ध स्थानो के लिए धर्मार्थ राशि निश्चित की गई।

साथ ही साथ कृषि के विकास के लिए भी अधिक प्रबन्ध किये गये और बजर काश्त मे लाई गई। अंग्रेजो का उद्देश्य पजाब के किसानो को इस रूप मे सतुष्ट रखना था। उन्हों ने मालिया नकद देने का प्रवन्ध किया और "तकावी" कर्जे भी दिये गए। पंजाब से फौज मे अधिक भर्ती को प्रोत्साहन दिया गया। परन्तु नए भर्ती होने वाले सिपाहियो के बारे मे यह तसल्ली कर ली जाती थी कि वे सिक्ख राज्य के हामी न हो। फौज मे पजाबियो की सख्या बढाकर इस प्रदेश में हिन्दुस्तानी अथवा पूर्व के सिपाहियो की गिनती को कम कर दिया गया।

भवन-निर्माण का काम चालू किया गया। अमृतसर के व्यपार को कराची बन्दरगाह से मिलाने के लिए सन् 1854 मे रेलवे लाइन का सर्वेक्षण किया गया और यह रेलवे लाइन अमृतसर से लेकर मुलतान तक बनाने का प्रबन्ध किया गया। जॉन लारैंस

ने अपने काम को सन् 1857-58 के विद्रोह के बावजूद भी चालू रखा और सन् 1859 में यह रेलवे लाइन तैयार हो गई ।

बारी द्वाब नहर खोदने का काम आरम्भ किया गया और उसकी सयुक्त नहरो पर 80 हजार पाउड खर्च किये गये । इन सब साधनो से पजाब मे समृद्धि का एक नया युग आरम्भ हो गया और पजाब के रहनेवाले अपनी राजनीतिक स्वतत्रता छिन जाने से ज्यादा असतुष्ट नही रहे । इसी उत्साह के कारण आर्नल्ड साहिब ने पजाब के लोगो मे उत्साह को देखते हुए कहा था, "पजाब के शहर यातायात बढाने के लिए उत्सुक हैं । उनके दरिया पुल माँगते है और मैंदान सिंचाई के साधनो के लिए बेचैन है ।" पजाब मे पहली बार पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का आरम्भ किया गया । यह उस नीति के आधार पर किया गया था जो कि अग्रेजों ने "वुड्ज-डिस्पैच", 1854 के बाद निर्धारित की थी । पजाब मे एक बाकायदा शिक्षा विभाग खोला गया और बहुत से आरंभिक स्कूल चालू किये गये । पंजाब के कानूनो को एक सग्रह के रूप मे इकट्ठा किया गया जिस को पजाब कोड का नाम दिया गया । यह सकलन सर आर० मोण्टगुमरी और आर० टैम्पल ने किया था । इसे इतना अच्छा समझा गया कि दूसरे प्रान्तों मे भी इसे लागू करने के आदेश दिए गए । पजाब मे न्याय का ऐसा प्रबन्ध किया कि किसानो को बाहर न जाना पडे और छोटे मुकदमो के लिए ऐसी अदालते कायम की गई जो कि उनके बिल्कुल निकट थी । इन अदालतो को "अदालते खफीफ" कहते थे ।

समाज सुधार के कामो को भी प्रोत्साहन दिया गया । जॉन लारैंस अपने दौरे मे लोगों में यह प्रचार करते थे, "बेवा मत जलाओ" और "बेटी मत मारो"। उन्होने पजाब में शादी-विवाह के कामों मे भी काफी सशोधन किये ।

अच्छे शासन प्रबन्ध का परिणाम पजाब मे एक आदमी के अधीन शासन प्रबन्ध होने से प्रगति और भी तेज हो गई और वादविवाद मिट गये । पजाब विकास और समृद्धि की दिशा मे चलने लगा । जनसाधारण नये राज्य प्रबन्ध से काफी सतुष्ट हो गए क्योंकि इससे एक तो शान्ति और दूसरे प्रगति निश्चित हो गई । शक्तिशाली शासन के स्थापित होने पर किसी किस्म की आन्तरिक और बाहरी गडबड का भी खतरा दूर हो गया । शायद जॉन लारैंस के अच्छे शासन प्रबन्ध का ही परिणाम था कि पंजाबियो ने अग्रेजो की सन् 1857 के विद्रोह मे सहायता करने का निर्णय किया । यह कहना कठिन है कि पजाबियों को अंग्रेजों से कोई विशेष प्रेम था । परन्तु जो कुछ पिछले 8-9 सालों मे पंजाबियो के लिए उन्होंने किया था, वह उल्लेखनीय था । जनसाधारण को अपना जीवन अब बगैर किसी भय के बिताने का अवसर मिल गया था । पंजाब ने और भी सब क्षेत्रों मे बडी प्रगति की थी और यहाँ की लगातार खुशहाली अंग्रेजी राज्य की देन मानी जाने लगी । इसका बहुत सा श्रेय सर जॉन लारैंस और उसके योग्य अधिकारियों को जाता है । उनके सक्रिय प्रयत्नों से पंजाब प्रगति के मार्ग पर तेजी से बढने लगा और महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के उपरान्त जहाँ निरन्तर खून-खराबा रहा था वहाँ शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित हो गई । जॉन लारैंस मे

अपने कार्य मे शासन चलाने मे दृढता से काम लिया और लोगो के धार्मिक विचारों का मान करते हुए भिन्न-भिन्न धर्मो के मानने वालो को अग्रेजी राज्य के अधीन सुखद जीवन प्रदान किया। लाहौर मे, हाईकोर्ट के निकट लगाये गये उसके बुत के नीचे यह लिखा हुआ था "क्या आप तलवार से या लेखनी से शासन करवाना चाहते है ?" भाव यह था कि अग्रेज अपने आपको इतना प्रबल समझते थे कि पजाबियो पर अपनी शक्ति से भी राज्य कर सकते थे। साथ ही उन्होने यह भी उनको मौका दिया कि अगर वह उनके साथ सहयोग करेगे तो वह न्यायपूर्ण तरीके से शासन प्रबन्ध भी कर सकेंगे।

पजाब-वासियो ने ऐसी स्थिति को अपने लिए बहुत लाभदायक माना और अग्रेजो के 'कल्याणकारी' राज्य का स्वागत किया। उनके लिए वास्तव मे यह एक अनोखा अनुभव था। कारण यह कि पजाब के सब पुराने शासक तुर्क, पठान, अफगान और मराठे शायद इस बात के लिए प्रसिद्ध थे कि उन्होने विधिवत् रूप से पजाब को केवल लूटा ही था। जान लारैंस के सफल प्रशासन का ही परिणाम था कि सन् 1857 के विद्रोह मे पजाबियो ने मुख्यत अग्रेजो का साथ दिया और पजाब मे अग्रेजी राज्य को समाप्त करने के लिए अधिक उत्साह नही दिखाया।

प्रश्न

1. Describe in detail the reforms introduced by the Board of Administration of the Panjab
   पजाब के प्रशासन-बोर्ड द्वारा किए गए सुधारो का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. Describe the reforms effected by John Lawrence as Chief Commissioner of the Panjab What results did these reforms produce ?
   पजाब के चीफ कमिश्नर के तौर पर जॉन लारैंस द्वारा किए गए सुधारो का उल्लेख कीजिए। इन सुधारो के क्या परिणाम निकले ?

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

Akbar, M., *Panjab under the Mughals.*

Allen, Wn H. Co., *History of the Panjab.*

Archer., *The Sikhs*

Bannerjee, Indu Bhushan *Evolution of the Khalsa*, Vol. I & II.

Chhabra, Dr. G S , *Advanced History of the Panjab.*, Vol. I, II.

Chopra , Dr. G S., *The Panjab as a Sovereign State.*

Cunningham, H D , *History of the Sikhs.*

David Ross., *The land of the five Rivers and Sindh*

Gupta, Dr. H R , *History of the Sikh Gurus.*

Gupta, H R., *History of the Sikhs*, Vols I, II & III.

Gupta, Dr. H.R., *Studies in Later Mughal History of the Panjab.*

Griffin, Sir. L , *Ranjit singh.*

Henry Court, Lt. Col., "*Sikhan de Raj de Vikhya*" (History of the Sikhs).

Khushwant Singh, *A History of the Sikhs*, Vols I & II.

Kohli, Principal, S R., *Army of Ranjit Singh.*

Kolhi, Principal, S.R., *Sunset of the Sikh Empire.*

Latif., Syed Mohd., *History of the Panjab*

M 'Gregor, W.L , *History of the Sikhs*

Narang, Gokal Chand, *Transformation of Sikhism.*

Narang, K S. & Gupta, Dr. H R. *Historv of the Panjab.*

Osborne, W G , *Court and Camp of Ranjit Singh.*

Prinsep, H.T *Origin of the Sikh power in the Panjab.*

Payne, *Short History of the Sikhs.*

Sinha, N.K , *Rise of Sikh power.*

Sinha, N.K., *Ranjit Singh.*

Teja Singh Ganda Singh. *A short History of the Sikhs.*